પાલિ-પ્રાકૃત-અપભ્રંશ સંગ્રહ

पालि प्राकृत-अपभ्रंश-संग्रह

পালি-প্রাকৃত-অপভ্রংশ-সংগ্রহ

पालि-प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह

रामअवध पाण्डेय
रविनाथ मिश्र

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-संग्रह

सम्पादक
रामअवध पाण्डेय, एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरणाचार्य
तथा
रविनाथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०
संस्कृत विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

PĀLI-PRĀKRITA-APABHRAṀSHA-SANGRAHA

Edited by

Dr. Ram Avadh Pandey & Dr. Ravinath Mishra

ISBN : 978-81-7124-699-1

संस्करण : 2009 ई०

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी–221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2413741, 2413082

E-mail : vvp@vsnl.com ● sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी–221 001

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विनिवेदन

पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ संस्कृत भाषा से विकसित हुई हैं तथा आगे चलकर इन्हीं भाषाओं से आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं—हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि—का उद्भव हुआ। अतः भारतीय आर्य-भाषाओं के विकास-क्रम तथा भारतीय संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से इन भाषाओं का अध्ययन नितान्त उपयोगी है। यह संग्रह इसी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। इसमें पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के विशिष्ट अंश संकलित किये गये हैं।

आरम्भ की भूमिका में संसार की समस्त भाषाओं का वर्गीकरण, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं की व्युत्पत्ति तथा इन भाषाओं में निहित वाङ्मय का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

संग्रह के अन्त में दिये गये परिशिष्ट में इस संग्रह में संगृहीत भाषाओं के संक्षिप्त व्याकरण तथा कतिपय शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनके अर्थ हैं।

अध्येताओं की सुविधा के लिए मूल अंशों के साथ संस्कृत तथा हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। आशा है, यह संकलन पालि-प्राकृत-अपभ्रंश भाषा के अध्ययन में सहायक होगा।

पालि-प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओं के अप्रचलित होने के कारण इनका मुद्रण तथा प्रूफ-संशोधन दोनों ही दुष्कर हैं। इसी कारण पुस्तक के मुद्रण में विलम्ब हुआ है, अनेक प्रयत्न करने के बाद भी मुद्रण की कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं जिनके लिए विज्ञ पाठक क्षमा करेंगे।

इस संग्रह को प्रस्तुत करने में अनेक ग्रंथों की सहायता ली गयी है। उन ग्रंथ-कारों के प्रति संपादक अपना आभार प्रकट करते हैं।

इस संग्रह को प्रस्तुत करने की प्रेरणा पं० विद्यानिवासजी मिश्र, प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष, भाषाविज्ञान तथा आधुनिक भाषाएँ, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से मिली। वे समय-समय पर इसके संग्रह, अनुवाद आदि में सहायता एवं सुझाव देते रहे हैं। उन्होंने कृपापूर्वक प्राक्कथन लिखकर इस पुस्तक को महत्ता प्रदान की है, उनके प्रति आभार व्यक्त करना धृष्टता होगी।

श्री पं० राजकिशोरमणि त्रिपाठी तथा श्री पं० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी की प्रेरणा तथा सुझावों का परिणाम है कि ग्रंथ इस रूप में प्रस्तुत हो सका। हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विश्वविद्यालय प्रकाशन के अधिष्ठाता श्री पुरुषोत्तमदास मोदी के अदम्य उत्साह एवं सतत प्रेरणादायक प्रयत्नों का परिणाम है कि यह पुस्तक प्रकाश में आ सकी। इसके प्रकाशन में उन्हें जिन-जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है उनका ज्ञान हमें है। यदि मोदीजी का वश चलता और ज्ञानमण्डल लिमिटेड में, जहाँ यह पुस्तक मुद्रित हुई है, श्रमिक-विवाद न खड़ा हुआ होता तथा वाराणसी में ही इन भाषाओं के सुविज्ञ प्रूफ-संशोधक मिल गये होते तो गतवर्ष ही यह पुस्तक प्रकाशित हो गयी होती। अतः वे विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

इस संग्रह में हमारी ओर से भी त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। अध्येताओं तथा विद्वानों से निवेदन है कि वे इनकी जानकारी देने की कृपा करें, ताकि अगले संस्करण में अपेक्षित सुधार किये जा सकें।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी,
२०२५ विक्रमीय।

सम्पादकद्वय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राक्कथन

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का अध्ययन केवल इसलिए महत्त्व नहीं रखता है कि पालि में थेरवाद बौद्धसम्प्रदाय का वाङ्मय है तथा प्राकृत और अपभ्रंश में जैन-सम्प्रदाय के वाङ्मय हैं, बल्कि महत्त्व का यह कारण बहुत ही गौण है, वस्तुतः पालि, प्राकृत और अपभ्रंश समग्र भारतीय चिन्तन के बीच की कड़ियों के प्रमुख माध्यम हैं। इसलिए इनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

कहीं-कहीं तो जो कड़ियाँ लौकिक संस्कृत में उपलब्ध नहीं हैं, (केवल वैदिक संस्कृत में मिलती हैं) वे पालि आदि में ही मिलती हैं, उदाहरण के लिए आत्मनेपद अन्य पुरुष बहुवचन में सरेफ रूप *विज्जरे<विद्यरे; या रहने के अर्थ में 'क्षि' धातु का प्रयोग 'अच्छइ' के रूप में प्राकृत में।

भाषा की निरंतरता की दृष्टि से तो बहुत ही बहुमूल्य सामग्री इन भाषाओं में सुरक्षित है तथा किस प्रकार धीरे-धीरे आर्येतर परिवार की भाषाओं के निकट सम्पर्क से संरचना में, विशेष करके क्रिया-सङ्घटना में परिवर्तन हुए हैं, इसका क्रमिक इतिहास इन भाषाओं के अध्ययन के बिना नहीं चल सकता है। अपभ्रंश भाषा तो प्राचीन और आधुनिक भाषाओं के बीच की बहुत ही महत्त्वपूर्ण कड़ी है, इसी में आज की विविध भाषाओं का बीजरूप देखा जा सकता है। अपभ्रंश ने एक बार पुनः संस्कृत का आश्रय लेकर भाषा में लचीलेपन को महत्त्व दिया और इसका अनुसरण आधुनिक आर्यभाषाओं के इतिहास में आवश्यकतानुसार कई युगों में किया गया।

इस प्रकार पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का इतिहास केवल आर्यपरिवार की भाषाओं के क्रमिक विकास को ही समझने में सहायक नहीं होता अपितु द्रविड़, मुण्डा और किरात परिवार की भाषाओं से प्राप्त प्रभावों की ओर ध्यान आकृष्ट करता है और यह समझने में सहायक होता है कि विभिन्न परिवारों के प्रभावों के परस्पर सङ्घात के कारण आज भारत की समस्त भाषाओं में सङ्घटना की दृष्टि से एकरूपता है। धर्म और भाषा के अलावा सामाजिक परिस्थिति के ज्ञान की दृष्टि से भी बहुमूल्य सामग्री इन भाषाओं के वाङ्मय में निहित है। बुद्धोत्तर भारत के इतिहास को आकार देने में सर्वाधिक योगदान इन्हीं वाङ्मयों ने किया है; विशेष रूप से सामाजिक इतिहास का आकार देने में। पालि और प्राकृत दोनों वाङ्मय में अनेक व्यवसायों के सजीव चित्र हैं जो संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध नहीं हैं, एक प्रकार से संस्कृत वाङ्मय के पूरक के रूप में हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इन सबसे अधिक इन भाषाओं के महत्त्व का कारण इनकी लोकाश्रयी काव्य-परम्परा है। पालिभाषा में थेर और थेरीगाथाओं में भक्ति के सहज उद्गार हैं। प्राकृत में गाहा-सत्तसई और अन्य स्फुट मुक्तक रचनाओं में प्रकृति, लोक-जीवन और मानवीय प्रेम के अद्वितीय हृदयग्राही चित्रण मिलते हैं। इनसे प्रभावित होकर स्वयं संस्कृत में अमरुशतक, आर्यासप्तशती, गीतगोविन्द जैसी अनेक रससिद्ध रचनाएँ प्रणीत हुई हैं। कहा जाता है कि मध्ययुगीन वैष्णव-साहित्य का रससर्वस्व राधा नाम गाहासत्तसई की एक गाहा में आया है। इन गाहाओं में एकदम अछूते बिम्बों और उपमानों के प्रयोग के द्वारा अपूर्व चिन्तित अर्थों की अभिव्यञ्जना की गयी है, जिससे साहित्य में नयी प्राणवत्ता स्थापित हुई है। इसीलिए राजशेखर के युग में प्रत्येक संस्कारी व्यक्ति के लिए संस्कृत के साथ-साथ देशी भाषाओं का ज्ञान और इनकी कविताओं और गीतियों का अभ्यास सहृदय या कवि के लिए अपरिहार्य समझा जाता था। जो लोग भारतीय साहित्य के बारे में खण्ड-दृष्टि रखते हैं वे तो इस परम्परा को विद्रोह के रूप में स्थापित करना चाहते हैं, पर वास्तविकता यह है कि यह परम्परा पूरक है, विरोधी नहीं। कालिदास के युग तक में ही यह बात प्रतिष्ठित हो गयी थी कि—

द्विधाप्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं, वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन॥

शिव की वन्दना सरस्वती ने संस्कृत के माध्यम से और पार्वती की सुखग्राह्य प्राकृत के माध्यम से की। लोकगीतों का परम्परा का निश्चय ही इसमें संकेत मिलता है। भारतीय दृष्टि, अविभक्त दृष्टि कभी भी नहीं रही है। मुझे प्रसन्नता है कि प्रस्तुत संग्रह के सम्पादकों ने यह दृष्टि सामने रखी है। जो लोग संस्कृत के विरोध में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश को स्थापित करते हैं, वे लोग संस्कृत का उतना अहित नहीं करते जितना कि पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के अध्ययन का।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत सङ्कलन पाठ्य-पुस्तक के रूप में ही नहीं, बल्कि समस्त भारतीय वाङ्मय के अध्ययन की दृष्टि से भी उपयोगी सिद्ध होगा।

विद्यानिवास मिश्र

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषय-सूची

पृष्ठ

खण्ड एक : भूमिका १-५४

खण्ड दो : पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-संगहो १-२३२

पालिसंगहो

(१) बोधिसत्त्व जातकावली १-३८

१. रुरुजातकम् १
२. बावेरुजातकम् ८
३. जवसकुणजातकम् ११
४. सुप्पारकजातकम् १४
५. वानरिन्दजातकम् २४
६. सुंसुमारजातकम् २८
७. निग्रोधमिगजातकम् ३२

(२) बुद्धचरितं ३९-५९

१. मायादेविया सुपिनं ३९
२. गोतमस्स उप्पादो ४२
३. महाभिनिक्खमनं ४५
४. धम्मचक्कपवत्तनसुत्तं ५०
५. महापरिनिब्बानसुत्तं ५३

(३) बुद्धसासनं ६०-८०

१. सम्मावत्तना ६०
२. सम्मादिट्ठि ६६
३. धम्मपदसंगहो ६८
४. धनिय-सुत्तं ७४
५ पटिच्चसमुप्पादो ७९

(४) बुद्धसासनप्पसारं ८१-९९

१. महापजापतिगोतमीगाथा ८१
२. मालुक्यपुत्तगाथा ८३
३. लंकाविजयो ८५
४ अनत्तवादो ९३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

(१) अभिलेखीय प्राकृत — **१००-११५**

१. अशोकाभिलेखः — १००

२. गिरनारअभिलेखः — १०२

३. अशोकस्य भब्राभिलेखः — १०३

४. सोहगौराताम्रपत्रम् — १०६

५. हेलियोडोरस्य बेसनगराभिलेखः — १०७

६. खारवेलस्य हाथीगुम्फागुहाभिलेखः — १०८

७. वकनपतेः मथुराभिलेखः — ११०

८. नासिकगुहाभिलेखः — ११२

९. कीर्तिवर्मणः पत्रम् — ११४

(२) महाराष्ट्री प्राकृत — **११६-१३६**

१. गाहासत्तसई — ११६

२. रावणवहो — १२५

३. गउडवहो — १३२

४. णाणपंचमी कहाओ — १३५

(३) शौरसेनी प्राकृत — **१३७-१५४**

१. स्वप्नवासवदत्तम् — १३७

२. रत्नावली — १४४

३. उत्तररामचरितम् — १४८

४. कर्पूरमंजरी — १५०

(४) मागधी प्राकृत — **१५६-१६८**

१. मृच्छकटिकम् — १५६

२. अभिज्ञानशाकुन्तलम् — १६३

(५) अर्धमागधी प्राकृत — **१६९-१७७**

१. अहिंसा — १६९

२. महावीरजन्म — १७०

३. महावीरस्य परिव्रजनम् — १७२

४. उवासगदसाओ — १७५

(६) खोतानी प्राकृत — **१७८-१८१**

१. [illegible] — १७८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(७) मिश्रित प्राकृत १८२–२०१

१. मूलदेवकथा १८२

२. वसुदत्तकथा १८७

३. कक्कुकाभिलेखः १९४

५. वज्जालग्गं १९९

अपभ्रंश-संङ्ग्रहः

१. भविसयत्तकहा २०२

२. दोहाकोष २०४

३. पाहुडदोहा २०६

४. प्राकृत पैंङ्गलम् २०८

५. अपभ्रंशमुक्तकसंग्रहः २१६

६. सन्देशरासकम् २२०

७. कीर्तिलता २२४

८. पउमचरिउ २२८

खण्ड तीन : परिशिष्ट १-७४

क. पालि-व्याकरण १

ख. प्राकृत-व्याकरण २९

ग. अपभ्रंश-व्याकरण ४३

घ. शब्दों की व्युत्पत्ति तथा अर्थ ५१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका

'पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-संग्रह' पुस्तक में, जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, इन भाषाओं के कुछ प्रतिनिधि गद्यांश एवं पद्यांश संगृहीत हैं। वस्तुतः वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य के अध्ययन के बाद यदि इन भाषाओं तथा इनके साहित्य का अध्ययन न हो तो भारतीय-संस्कृति और भारतीय-भाषाओं का (प्रारम्भ से लेकर आज तक) सम्बन्ध जुटा हुआ नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्ध को जोड़ने के लिए भाषा-शास्त्र का अध्ययन, अन्य साधनों के साथ, महत्त्वपूर्ण साधन है। आजकल सौभाग्य से भाषाशास्त्र का अध्ययन, जिसका क्रम हजारों वर्ष पूर्व से ही इस देश में है, पर्याप्त प्रगति कर चुका है और करता जा रहा है। जहाँ प्राचीन भाषा-विज्ञान के पण्डितों ने प्रायः एक ही किसी भाषा की निरुक्ति, व्याकरण आदि समस्याओं पर गम्भीर विचार प्रस्तुत किये हैं, वहीं भाषा-शास्त्र के (कम-से-कम तुलनात्मक भाषाशास्त्र के) पण्डितों ने विभिन्न भाषाओं का आपस में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसी अध्ययन के प्रसंग में इन लोगों ने संसार की प्रायः समस्त जीवित भाषाओं के व्याकरण, गठन आदि को आधार मानकर वर्गीकरण (विभाजन) किया है।

संसार की भाषाएँ

भाषा, विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। संसार के कोने-कोने में निवास करनेवाले मनुष्य किसी-न-किसी भाषा के माध्यम से ही अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। मनुष्यों में जिस प्रकार भौगोलिक तथा ऐतिहासिक आदि कारणों से अनेक भेद पाये जाते हैं उसी प्रकार उनकी भाषाओं में भी भेद हैं। विद्वानों के मत से आजकल जीवित भाषाएँ प्रायः दो हजार से भी अधिक हैं। यद्यपि इनका वर्गीकरण अन्तिम रूप से हो गया है, ऐसा नहीं माना जा सकता, तथापि स्थूल रूप से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :—

१. भारोपीय परिवार (Indo-European Family)

(क) हिन्द-ईरानी भारत—ईरानी अथवा आर्य शाखा (Indo-Aryan)।

इसके निम्नलिखित समुदाय हैं :—

(i) भारतीय आर्य भाषा समुदाय।

(ii) ईरानी भाषा समुदाय।

(iii) दरद समुदाय।

(ख) आर्मेनीय शाखा (Armenian Branch)।

(ग) बाल्टो-स्लावोनिक शाखा (Balto-Slavonic Branch)।

इसके अन्तर्गत दो समुदाय हैं :—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(i) बाल्टिक समुदाय ।

(ii स्लाव स ुदाय ।

(घ) अल्बेनियन शाखा (Albanian Branch) ।

इन उपर्युक्त समुदायों को 'शतम' नाम से अभिहित किया जाता है ।

(ङ) ग्रीक या हेलेनिक शाखा (Greek or Hellenic Branch) ।

(च) इतालीय शाखा (Italic Branch) ।

(छ) केल्ती शाखा (Celt'e Branch) ।

(ज) जर्मनीय या ट्यूटानिक शाखा (Germenic or Tutonic Branch),

इन चारों को 'केण्टुम' शाखा कहा जाता है ।

२. सेमेटिक परिवार (Semetic Family) ।

३. तिब्बत-चीनी परिवार (Tibet-China Family) ।

४. युराल-अल्ताई परिवार (Ural-Altai Family) ।

५. द्राविड-परिवार (Dravadian Family) ।

६. मलय-पॉलीनेशियन ऑस्ट्रिक परिवार (Malay-Polynesian Austric Family) ।

इसके अन्तर्गत तीन शाखाएँ हैं—

(क) मलय शाखा ।

(ख) पॉलीनेशियन शाखा ।

(ग) कोल शाखा ।

७. अफ्रीका परिवार (Hemetic Family) ।

इसके अन्तर्गत दो शाखाएँ हैं—

(क) ईजिप्शियन शाखा ।

(ख) लीबियन शाखा ।

८. मध्य अफ्रीका भाषा-परिवार (Middle African Family) ।

९. बाण्टू परिवार (Bantu Family) ।

१०. अमेरिकी परिवार (American Family) ।

११. आस्ट्रेलिया परिवार (Australian Family) ।

१२. मिश्रित परिवार (Mixed Family) । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तीन भाषाओं को रखा जाता है—

(क) जार्जियन,

(ख) वास्क,

(ग) एट्रस्कन ।

इस वर्गीकरण में भारोपीय परिवार की भारत-ईरानी परिवार की उपशाखा के भारतीय आर्य-भाषा-भेद से तात्पर्य होने के कारण नीचे उसकी चर्चा की जाती है—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भारतीय आर्य-भाषा

इतिहास की दृष्टि से भारतीय आर्य-भाषाओं की तीन अवस्थाएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। यद्यपि ये अधोलिखित अवस्थाएँ रचना की दृष्टि से नहीं हैं, तथापि भाषा के विकास-क्रम को देखते हुए इन्हें मानना पड़ता है। अन्यथा रचनाएँ तो पालि-काल में भी संस्कृत की हुई हैं तथा संस्कृत-काल में पालि की।

(क) प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा-काल (प्रागैतिहासिक काल से ५०० ई० पूर्व तक) इसमें वैदिक-संस्कृत और लौकिक-संस्कृत आती हैं।

(ख) भारतीय आर्य-भाषा-काल (५०० ई० पूर्व से १००० ई० तक), इसमें अशोक के अभिलेखों की भाषा, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश आती हैं।

(ग) आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा-काल (१००० ई० से वर्तमान समय तक), इसमें आधुनिक हिन्दी, बंगला; गुजराती, मराठी, उड़िया, असमिया आदि आती हैं।

मध्यभारतीय आर्यभाषा—मध्यभारतीय आर्यभाषा की तीन अवस्थाएँ हैं—

(क) पालि एवं अभिलेखीय प्राकृत—इसका काल ई० पूर्व ५०० से प्रथम शताब्दी तक है।

(ख) साहित्यिक प्राकृत—साहित्यिक प्राकृत का काल दूसरी शती से पाँचवीं शती तक आता है। इसके अन्तर्गत शक, सातवाहन एवं कुषाण अभिलेखों की भाषा, निया प्राकृत, बौद्ध-संस्कृत एवं साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ गिनायी भी जा सकती हैं। इसके अन्तर्गत अपभ्रंश का प्रारम्भिक युग भी गिना जा सकता है।

(ग) तृतीय मध्यभारतीय आर्यभाषा का काल ६०० ई० से १००० ई० तक का कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत कृत्रिम साहित्यिक प्राकृत भाषाओं, अपभ्रंश एवं अवहट्ट भाषाओं की गिनती की जा सकती है।

पालिभाषा

पालि की व्युत्पत्ति—पालि शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत मिलते हैं। पालि शब्द से आजकल जिस अर्थ का बोध होता है उसी अर्थ का बोध तथा जिस भाषा को पालिभाषा कहते हैं, ये दोनों अपेक्षाकृत नवीन हैं। (क) पालि शब्द का प्रयोग चतुर्थ शताब्दी में होनेवाले आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं और उनके विसुद्धिमग्ग में मिलता है। बुद्धघोष ने 'बुद्धवचन' या मूल त्रिपिटक के रूप में तथा 'पाठ' या 'मूल त्रिपिटक के पाठ' के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग किया है। जहाँ कहीं उन्होंने पोराण-अट्ठकथा (प्राचीन-अर्थकथा) से भिन्नता दिखाने के लिए मूल-त्रिपिटिक के किसी अंश को संकेतित किया है वहाँ उन्होंने पालि शब्द से बुद्धवचन या त्रिपिटक को संकेतित किया है, जैसे—विसुद्धिमग्ग में 'इमानि ताव पालियं, अट्ठकथायं पन······(ये तो पालि में हैं, किन्तु अट्ठकथा में तो ········) आदि। इसी प्रकार चौथी शताब्दी की रचना 'दीपवंस' पाँचवीं, छठी शताब्दी की आचार्य धम्मपाल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की रचना 'परमत्थदीपिनी,' तेरहवीं शताब्दी की रचना 'चूळवंश' आदि में पालि शब्द का प्रयोग 'बुद्धवचन' एवं 'मूल त्रिपिटक' के अर्थ में किया गया है ।

(ख) महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'पालि' शब्द का विकास संस्कृत के 'पंक्ति' शब्द से माना है, इन्होंने इसका यह क्रम बताया है—पंक्ति > पन्ति > पत्ति > पल्लि > पालि ।

इस मत की आलोचना करते हुए भिक्षु जगदीश काश्यप ने इसमें मुख्यतः तीन कमियाँ दिखायी हैं—

१. पंक्ति के लिए लिखित ग्रन्थ का होना आवश्यक है । त्रिपिटक प्रथम शताब्दी ई० पूर्व से पहले लिखा नहीं गया था । अतः उस समय के लिए त्रिपिटक के उद्धरण के लिए 'पालि' या 'पंक्ति' शब्द इस अर्थ में नहीं प्रयुक्त हो सकता था ।

२. 'पालि' शब्द का अर्थ यदि 'पंक्ति' होता तो उस अवस्था में 'उदान पालि' जैसे प्रयोगों में 'उदान पंक्ति' ऐसा प्रयोग करने से कोई समझने योग्य अर्थ नहीं निकलता ।

३. 'पालि' शब्द का अर्थ यदि 'पंक्ति' होता तो अट्ठकथाओं आदि में कहीं भी उसका बहुवचन में भी प्रयोग दृष्टिगोचर होना चाहिए था, जो नहीं होता । अतः 'पालि' शब्द का 'पंक्ति' अर्थ उसके मौलिक स्वरूप तक हमें नहीं ले जा सकता ।

(ग) भिक्षु सिद्धार्थ ने 'पाळि' या 'पालि' शब्द का मूल संस्कृत 'पाठ' शब्द को माना है । उनका कहना है कि जब वेदपाठी ब्राह्मण बौद्ध हुए तो वेदपाठ शब्द परिचित होने के कारण बुद्ध-वचनों के लिए भी उन लोगों ने 'पाठ' शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया । पूर्वाभ्यास के कारण ही ऐसा हो सका था । बाद में वही 'पाठ' शब्द पाळ > पाळि > पालि हो गया । कुछ लोगों को यह उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इसे ऐतिहासिक रूप से ठीक होने के लिए यह आवश्यक है कि 'पाळ' शब्द का प्रयोग पालि-साहित्य में उपलब्ध हो । तभी उसके आधार पर 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति की स्थापना की जा सकती है, किन्तु भिक्षु सिद्धार्थ ने अपने निबन्ध में एक भी ऐसा उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया ।

(घ) भिक्षु जगदीश काश्यप ने अपने 'पालि महाव्याकरण' की 'वस्तुकथा' में यह सिद्ध किया है कि पालि शब्द का प्राचीनतम रूप 'परियाय' शब्द में मिलता है । परियाय शब्द त्रिपिटक में अनेक बार आया है, जैसे—'को नामो, अयं भन्ते, धम्म-परियायो ति' तथा 'भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो' आदि-आदि । ऐसे स्थलों में 'परियाय' शब्द का अर्थ बुद्धोपदेश है । परियाय से ही 'पलियाय' हो गया । अशोक के प्रसिद्ध भब्रु शिलालेख में 'पलियाय' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है । जैसे—इमानि भन्ते, धम्मपलियायानि···· एतानि भन्ते, धम्मपलियायानि इच्छामि ······ । पलियाय शब्द के पलि उपसर्ग का दीर्घ होकर बाद में 'पालियाय' शब्द बन गया । पलियाय शब्द का ही संक्षिप्त रूप बाद में 'पालि' होकर बुद्धवचन या मूल त्रिपिटक के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ड़) इन मतों के अतिरिक्त जर्मन विद्वान् डॉ० मैक्स वेलेसन ने 'पाटलि' या 'पाडलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) शब्द का ही संक्षिप्त रूप पालि है, ऐसा माना है।

(च) कुछ विद्वानों ने 'पल्लि' (गाँव) शब्द से पालि की उत्पत्ति बतायी है।

(छ) कुछ ने प्राकृत>पाकट>पाअड>पाअल>पालि इस प्रकार की व्युत्पत्ति बताने का प्रयत्न किया है।

(ज) कुछ लोगों ने तो 'प्रालेय' या 'प्रालेयक' (पड़ोसी) शब्द से पालि की व्युत्पत्ति बतायी है। वस्तुस्थिति यह है कि इस प्रकार के कपोलकल्पित मतों की कोई स्थिति नहीं मानी जा सकती।

(झ) अभिधानप्पदीपिका में जो पालि-भाषा का एकमात्र कोश ग्रन्थ है, पालि शब्द का अर्थ दिया गया है। पालि शब्द को 'तन्ति' (संस्कृत-तन्त्र) 'बुद्ध-वचन' और 'पंक्ति' का समानार्थवाची मानते हुए इसकी व्युत्पत्ति वहाँ की गयी है—"पालेति रक्खतीति पालि।" अर्थात् जो पालन करती है, रक्षा करती है, वह पालि है। अभिधानप्पदीपिका की यह व्युत्पत्ति सम्भवतः उस ऐतिहासिक तथ्य की तरफ संकेत करती है जिसका उल्लेख 'महावंस' में मिलता है कि "जब भिक्षुओं ने, जो समग्र त्रिपिटक और अट्ठकथाएँ कण्ठस्थ कर ले गये थे, एकत्र होकर जनता के कल्याण के लिए उन्हें लेखबद्ध किया था।"

(ञ) संस्कृतभाषा के पालि शब्द के पर्याय गिनाते हुए अमरकोशकार ने, 'कोणस्तु स्त्रियः पाल्यश्रिकोट्यः' (अम०, २।८।९३) लिखा है। अमरकोश के प्रसिद्ध टीकाकार भानुजी दीक्षित ने पालि शब्द की व्युत्पत्ति बतायी है—'पाल रक्षणे' धातु से 'अच् इः' (उ०,४।१३९) सूत्र से 'इ' प्रत्यय होकर पालि शब्द बना है। भानुजी दीक्षित से पूर्व अमरकोश के टीकाकार रायमुकुट ने 'पा रक्षणे' धातु से 'ऋतन्यञ्जि०' (उ०,४।२) सूत्र से बाहुलकात् 'आलि' प्रत्यय करके 'पालि' शब्द सिद्ध किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि पालि-भाषा के वैयाकरणों द्वारा स्वीकृत दोनों धातुओं से पालि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के वैयाकरणों एवं कोशकारों द्वारा पूर्वस्वीकृत है। "राजदन्तादिषु परम्" (पा०, २।२।३१), इस पाणिनीय सूत्र में राजदन्तादिगण में 'गोपालिधानपूलासम्' शब्द के पाठ से पालि शब्द का संस्कृत में व्यवहार अतिप्राचीन और सुप्रचलित है। गणपाठों की परम्परा पाणिनिपूर्व होने के कारण, कम-से-कम पाणिनि के पूर्व इसी अर्थ में इसके प्रचलन को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

ऊपर कहे गये सभी मतों को ध्यान में रखने पर इस सन्दर्भ में ऐसा सोच पाना सम्भव हो जाता है कि एक तरफ तो संस्कृत भाषा में 'रक्षा करनेवाला' अर्थ में पालि शब्द के प्रयोग का संस्कार और दूसरी ओर परियाय या पंक्ति या और किसी प्रामाणिक शब्द से निकला हुआ, 'बुद्ध-वचन, बुद्धोपदेश या इन अर्थोंवाला' पालि शब्द का संस्कार था। इन दोनों प्रकार के संस्कारों के सम्मिलन से जिस भाषा में बुद्ध-वचन सुरक्षित हों और जो भाषा प्रायः बुद्ध-वचनमय हो, उसका ही पालिभाषा यह नामकरण हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालिभाषा का प्रदेश—जिस प्रकार भोजपुरी, मैथिली, बंगाली, कन्नड़, तेलुगू आदि भाषाओं के नाम से ही किसी-न-किसी प्रदेश का संकेत मिलता है, उसी प्रकार 'पालि' शब्द से या इस शब्द की उपर्युक्त व्युत्पत्तियों से किसी भी प्रदेश के संकेत की सम्भावना नहीं प्रतीत होती। व्युत्पत्ति से मात्र इतना ज्ञात होता है कि इस भाषा के द्वारा या इस भाषा में बुद्धवचनों की रक्षा की गयी है और यही कारण है कि कुछ मनीषियों ने इसे मगध की भाषा माना है। यद्यपि मागधी भाषा की पालिभाषा से तुलना करने पर अनेक मौलिक भिन्नताएँ मिलती हैं।

जहाँ तक बुद्धवचनों की रक्षा का प्रश्न है, महायानियों की परम्परा के अनुसार 'मूल सर्वास्तिवाद' के ग्रन्थ संस्कृत में, 'महासांघिक' के प्राकृत में, 'महासम्मतीय' के अपभ्रंश में और स्थविर सम्प्रदाय के पैशाची में थे। हीनयानी लोग यह मानते हैं कि भगवान् बुद्ध ने मूलतः पालिभाषा में ही उपदेश दिये थे। श्रीलंका के भिक्षुओं ने इसी आधार पर मागधी भाषा को ही पालिभाषा समझा और यह कुछ हद तक स्वाभाविक ही है।

इस विवादग्रस्त प्रश्न पर अनेक विदेशी तथा भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने मत या सुझाव रखे हैं जो वस्तुतः विचारणीय हैं।

१. डॉ० ओल्डेनवर्ग के मत में पालिभाषा का आधार कलिंग की भाषा थी। इनका कहना है कि सिंहल में 'महिन्द' द्वारा बौद्धधर्म के प्रचार की बात ऐतिहासिक नहीं, अपितु भारत एवं सिंहल के अनेक वर्षों के सम्पर्क से सिंहल में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ होगा। यतः खारवेल के खण्डगिरि अभिलेख की भाषा पालिभाषा के बहुत समान है, अतः प्रतीत होता है कि कलिंग से लंका में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ और इस प्रकार कलिंग की भाषा पालि का आधार प्रतीत होती है।

२. वेस्टरगार्ड और कुह्न ने पालि को उज्जैन प्रदेश की बोली माना है। अशोक के गिरनार (गुजरात) अभिलेख की भाषा की पालि से समानता तथा राजकुमार 'महिन्द' (महेन्द्र) का जन्म उज्जैन में हुआ था, अतः उनकी मातृभाषा का ज्ञान, ये दो कारण इनके मत को पुष्ट करते हैं।

३. आर० ओ० फ्रैंक और स्टेनकोनो ने बड़े परिश्रम से पालिभाषा को विन्ध्यप्रदेश की भाषा सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

४. डॉ० ग्रियर्सन ने पालिभाषा में मागधी एवं पैशाची की अनेक विशेषताओं को देखकर पालिभाषा का आधार मागधी भाषा को माना है।

५. प्रो० रीज डेविड्स ने बुद्ध भगवान् के इस कथन पर कि वे 'कोसल खत्तिय' (कोशल क्षत्रिय) थे, अतः कोशल की बोली में ही उन्होंने उपदेश किये होंगे। उनके उपदेश यतः पालिभाषा में हैं अतः पालिभाषा एवं कोशलभाषा एक ही है, ऐसा सिद्ध किया है।

६. विंडिश और गायगर ने यह तो कहा है कि पालिभाषा एक साहित्यिक भाषा है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और यह सब जनपदों में समझी जाती थी, परन्तु इन लोगों ने इस पर कोई मत नहीं दिया कि वह साहित्यिक भाषा किस जनपद की भाषा पर आधृत है।

७. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने यह तो माना है कि त्रिपिटक मूलतः मागधी भाषा में ही लिखे गये थे, परन्तु सिंहल में जिन गुजराती प्रवासियों को प्रायः ढाई सौ वर्ष तक जो कण्ठस्थ करने का भार दिया गया था उसी बीच सम्भवतः मागधी की सारी विशेषताएँ लुप्त हो गयीं।

८. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है कि भारतवर्ष में मध्यदेश की बोली का ही सर्वदा विशेष प्रभाव रहा है। अतः पालिभाषा का इसे ही आधार मानना चाहिए। उन्होंने कहा है कि भगवान् बुद्ध के उपदेशों का सर्वप्रथम पूर्वी बोली में ही प्रणयन हुआ और बाद में उनका अनुवाद पालिभाषा में, जो मध्यदेश की प्राचीन भाषा पर आधृत एक साहित्यिक भाषा थी।

उपर्युक्त मतों को देखते हुए तीन ही तथ्य सामने आते हैं· पहला यह कि प्रत्यक्ष मागधी भाषा ही पालिभाषा है, दूसरा महिन्द के सम्बन्ध से उज्जैन की भाषा पालि-भाषा है तथा तीसरा पूर्वी बोली का साहित्यिक रूप पालिभाषा है। जहाँ तक पहले मत का सम्बन्ध है, तत्कालीन मगध में बोली जानेवाली भाषा में ही उपदेश दिये गये हों, यह सर्वांशतः बुद्धिगम्य नहीं प्रतीत होता। जहाँ तक दूसरे मत का सम्बन्ध है महिन्द ने अपनी पूरी धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर मूलरूप में यथास्थित बुद्ध-वचनों का ही उपदेश किया होगा, न कि उसमें अपनी भाषा भी मिला दी होगी। रही बात तीसरे मत की। सो तो, यह पर्याप्त सम्भव है कि एक तो स्वयं बुद्धवचन कुछ साहित्यिक भावभंगिमापूर्ण भाषा में हुए हों या जैसा कि डॉ० चाटुर्ज्या ने कहा, उनका अनुवाद इस भाषा में हुआ हो, और सबसे प्रबल बात यह है कि मध्यदेश की भाषा होने के कारण उससे प्रभावित भाषा में यह कार्य हुआ हो।

पालिभाषा में निहित वाङ्मय यद्यपि पालि वाङ्मय में साम्प्रदायिक ग्रन्थ, जैसे त्रिपिटक, साम्प्रदायिकेतर ग्रन्थ, जैसे मिलिन्दपञ्हो, दीपवंश आदि के अतिरिक्त वुत्तोदय जैसे छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ, कच्चायन व्याकरण आदि जैसे व्याकरण के ग्रन्थ अवश्य लिखे गये, तथापि इसमें संस्कृत वाङ्मय आदि अन्य वाङ्मयों की भाँति विभिन्न क्षेत्रों में सर्वांगपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण नहीं हुआ। वर्त्तमान पालि वाङ्मय का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जाता है—

१. चौरासी हजार धर्म स्कन्धों के रूप में इसका प्रथम वर्गीकरण हुआ है, किन्तु प्रयोग में इसका उपयोग नहीं देखा जाता।

२ दूसरा वर्गीकरण नव अङ्गों में किया गया है, जैसे—

१. सुत्त, २. गेय्य, ३. वेय्याकरण, ४. गाथा, ५. उदान, ६ इतिवुत्तक, ७. जातक, ८. अब्भुतधम्म, ९. वेदल्ल। 'सुत्त' का अर्थ सामान्यतः बुद्ध का उपदेश है। दीघनिकाय, सुत्तनिपात आदि में गद्य में रखे हुए भगवान् बुद्ध के उपदेश सुत्त हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गद्य-पद्यमिश्रित अंश 'गेय्य' कहलाते हैं। अभिधम्मपिटक तथा अन्य ऐसे ही अंशों में सन्निहित व्याख्यापरक साहित्य वेय्याकरण = व्याकरण = विवरण = विवेचन कहा जाता है। मात्र पद्य में रचित अंश 'गाथा' कहलाते हैं। भगवान् बुद्ध के मुख से निकले हुए भावमय प्रीति-उद्गारों को 'उदान' कहते हैं। 'ऐसा कहा गया' या 'ऐसा तथागत ने कहा' को 'इतिवुत्तक' कहते हैं। 'जातक' का अर्थ बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ हैं। उन सुत्तों को जिनमें अद्भुत वस्तुओं या योग-सम्बन्धी विभूतियों का निरूपण है, 'अब्भुतधम्म' कहते हैं। प्रश्न और उत्तर के रूप में लिखे गये ज्ञान पर आधृत या वेद-निःसृत उपदेशों को 'वेदल्ल' कहते हैं।

३. तीसरे प्रकार का वर्गीकरण वह है जिसके अनुसार सम्पूर्ण बुद्धवचनों को पाँच निकायों में बाँटा गया है। १. दीघनिकाय, २. मज्झिमनिकाय, ३. संयुक्तनिकाय, ४. अंगुत्तरनिकाय, ५. खुद्दकनिकाय।

४. चौथे प्रकार के वर्गीकरण के अनुसार पालि या पिटक-साहित्य और अनुपालि या अनुपिटक-साहित्य ये दो स्थूल विभाग किये गये हैं। पालि या पिटक-साहित्य के विकास का इतिहास बुद्ध-निर्वाण-काल से लेकर प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व तक है। अनुपालि या अनुपिटक-साहित्य के विकास का इतिहास प्रथम शताब्दी ई० पू० से वर्तमानकाल तक चला आ रहा है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि या पिटक-साहित्य

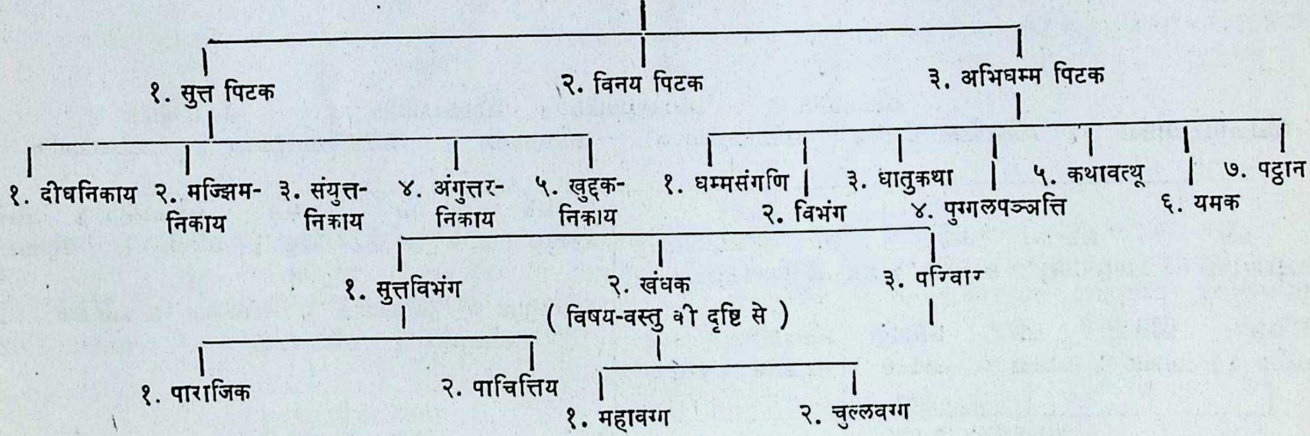

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दीघनिकाय

- १. सीलक्खन्ध-वग्ग
  - १. ब्रह्मजालसुत्त
  - २. सामञ्ञफल-सुत्त
  - ३. अम्बट्ठसुत्त
  - ४ सोणदण्डसुत्त
  - ५. कूटदन्तसुत्त
  - ६. महालिसुत्त
  - ७. जालियसुत्त
  - ८. कस्सपसीहनाद-सुत्त
  - ९. पोट्ठपादसुत्त
  - १०. सुभसुत्त
  - ११. केवट्ट सुत्त
  - १२. लोहिच्च सुत्त
  - १३. तेविज्ज सुत्त
- २. महावग्ग
  - १. महापदानसुत्त
  - २. महानिदानसुत्त
  - ३. महापरिनिब्बाणसुत्त
  - ४. महासुदस्सनसुत्त
  - ५. जनवसभसुत्त
  - ६. महागोविन्दसुत्त
  - ७. महासमयसुत्त
  - ८. सक्कपञ्हसुत्त
  - ९. महासतिपट्ठानसुत्त
  - १०. पायासि राजञ्ञसुत्त
- ३. पाथेय वा पाथिक-वग्ग
  - १. पाथिक सुत्त
  - २. उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त
  - ३. चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त
  - ४. अग्गञ्ञ सुत्त
  - ५. सम्पसाद-नियसुत्त
  - ६. पासादिक सुत्त
  - ७. लक्खण-सुत्त
  - ८. सिगालोवाद सुत्त
  - ९. आटाना-टियसुत्त
  - १०. संगीतिपरियाय सुत्त
  - ११. दसुत्तर-सुत्त

मज्झिमनिकाय

- १. मूलपरियाय-वग्ग
- २. सीहनाद-वग्ग
- ३. ओपम्म-वग्ग
- ४. महायमक-वग्ग
- ५. चूळयमक-वग्ग
- ६. गहपति-वग्ग
- ७. भिक्खु-वग्ग
- ८. परिब्बाजक-वग्ग
- ९. राज-वग्ग
- १०. ब्राह्मण-वग्ग
- ११. देवदह-वग्ग
- १२. अमुप्रद-वग्ग
- १३. सुञ्ञता-वग्ग
- १४. विभंग-वग्ग
- १५. सळायतन-वग्ग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. मूलपरियायवग्ग

१. मूलपरियाय-सुत्त, २. सब्बासव-सुत्त, ३. धम्मदायाद-सुत्त, ३. भयभेरव सुत्त, ५. अनंगण-सुत्त, ६. आकंखेय्य सुत्त, ७ वत्थूपम-सुत्त, ८. सल्लेख-सुत्त, ९. सम्मादिट्ठि-सूत्त, १०. सतिपट्ठान-सुत्त

२. सीहनादवग्ग

१. चूळसीहनाद-सुत्त, २. महासीहनाद-सुत्त, ३ महादुक्खक्खन्ध-सुत्त, ४. चूळदुक्खक्खन्ध-सुत्त, ५. अनुमान-सुत्त, ६. चेतोखिल-सुत्त, ७. वनपत्थ-सुत्त, ८. मधुपिण्डिक-सुत्त, ९. द्वेधावितक्क-सुत्त, १०. वितक्कसंठान-सुत्त

३. ओपम्मवग्ग

१. ककचूपम-सुत्त, २. अलगद्दूपम सुत्त, ३. वम्मिक सुत्त, ४. रथविनीत-सुत्त, ५. निवाप-सुत्त, ६. अरियपरियेसन-सुत्त, ७. चूलहत्थिपदो-सुत्त, ८. महाहत्थिपदोपम-सुत्त, ९. महासरीपम-सुत्त, १०. चूलसारोपम-सुत्त

४. महायमक-वग्ग

१. चूळगोसिंग-सुत्त, २. गहागोसिंग-सुत्त, ३. महागोपालक-सुत्त, ४. चूळगोपालक-सुत्त, ५. चूळसच्चक-सुत्त, ६. महासच्चक-सुत्त, ७. चूळतण्हासंखक-सुत्त, ८. महातण्हासंखय-सुत्त, ९. महा-अस्सपुर-सुत्त, १०. चूळअस्सपुर-सुत्त

५. चूलयमक-वग्ग

१ सालेय्यक-सुत्त, २. वेरञ्जक-सुत्त, ३. महावेदल्ल-सुत्त, ४. चूळवेदल्लक-सुत्त, ५. चूळधम्मसमादान-सुत्त, ६. महाधम्मसमादान-सुत्त, ७. वीमंसक-सुत्त, ८. कोसम्बिय-सुत्त, ९. ब्रह्मनिमंतणिक-सुत्त, १०. मारतज्ञनिय-सुत्त

६. गहपति-वग्ग

१. कन्दरक-सुत्त, २. अट्ठकनागर-सुत्त, ३. सेख-सुत्त, ४. पोंतलिया-सुत्त, ५. जीवक-सुत्त, ६. उपालि-सुत्त, ७. कुक्कुरवतिक-सुत्त, ८. अभयराजकुमार-सुत्त, ९ बहुवेदनीय-सुत्त, १०. अपण्णक-सुत्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७. भिक्खु-वग्ग

१. अम्बलट्ठिका-राहुलोवादसुत्त | ३. चूलमालुक्यसुत्त | ५ भद्दालि-सुत्त | ७. चातुम-सुत्त | ८. नळकपानक-सुत्त | १०. कीटागिरिसुत्त

२. महाराहुलोवाद-सुत्त | ४. महामालुक्य-सुत्त | ६ लटुकिकोपम-सुत्त | ९. गोलियानि-सुत्त

८. परिब्बाजक-वग्ग

१. तेविज्जवच्छगोत्त-सुत्त | ३. महावच्छ-गोत्त-सुत्त | ५. मागण्डिय-सुत्त | ७. महासकुलु-दायि-सुत्त | ९. चूलसकुलु-दायि-सुत्त

२. अग्गिवच्छ-गोत्त-सुत्त | ४. दीघनख-सुत्त | ६. सन्दक-सुत्त | ८. समण-मुण्डिकसुत्त | १०. बेखनस्स-सुत्त

९. राज-वग्ग

१. घटीका-सुत्त | ३. मखादेव-सुत्त | ४. मधुर-सुत्त | ६. अंगुलि-माल-सुत्त | ८. वाहितिक-सुत्त | १०. कण्णकत्थल-सुत्त

२. रट्ठपाल-सुत्त | ५. बोधिराजकुमार-सुत्त | ७. पियजातिक-सुत्त | ९. धम्मचेतिय-सुत्त

१०. ब्राह्मण-वग्ग

१. ब्रह्मायु-सुत्त | ३. अस्सलायन-सुत्त | ५ चङ्कीसुत्त | ७. धनंजानि-सुत्त | ८. वासेट्ठसुत्त | १०. संगारव-सुत्त

२. सेलसुत्त | ४. घोटमुखसुत्त | ६. एसुकारीसुत्त | ९. सुभसुत्त

११. देवदह-वग्ग

१. देवदह-सुत्त | ३. किन्ति-सुत्त | ५. सुनक्खत्त-सुत्त | ७. गणक-मोग्गल्लानसुत्त | ९. महापुण्णम-सुत्त

२. पञ्चत्तय-सुत्त | ४. समगाम-सुत्त | ६. आणञ्जसप्पाय-सुत्त | ८. गोपकमोग्गल्लानसुत्त | १०. चूलपुण्णम-सुत्त

१२. अनुपद-वग्ग

१. अनुपद-सुत्त | ३. सप्पुरिस-सुत्त | ५. वसुधातुक-सुत्त | ७. महाचत्तारीसक-सुत्त | ९. कायगताकति-सुत्त

२. छब्बिसोधन-सुत्त | ४. सेवितब्ब-असेवितब्ब-सुत्त | ६. इसिगिलि-सुत्त | ८. आनापान-सुत्त | १०. संखारुप्पत्ति-सुत्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१३. सुञ्ञतावग्ग

- १. चूल-सुञ्ञता-सुत्त
- २. महासुञ्ञता-सुत्त
- ३. अच्छरीयब्भुत-धम्मसुत्त
- ४. बक्कुल-सुत्त
- ५. दन्तभूमि-सुत्त
- ६. भूमिज-सुत्त
- ७. अनुरुद्ध-सुत्त
- ८. उपक्किलेस-सुत्त
- ९. बालपण्डित-सुत्त
- १०. देवदूत-सुत्त

१४. विभंग-वग्ग

- १. भद्देकरत्त-सुत्त
- २. आनन्द-भद्दे-करसुत्त
- ३. महाकच्चान-भद्दकरत्तसुत्त
- ४. लोमसकंगिय-भद्देकरसुत्तं
- ५. चूलकम्म-विभंगसुत्त
- ६. महाकम्म-विभंगसुत्त
- ७. सलायतन-विभंगसुत्त
- ८. उद्देसवि-भंगसुत्त
- ९. अरण-विभंगसुत्त
- १०. धातु-विभंगसुत्त
- ११. सच्च-विभंगसुत्त
- १२. दक्खिणा विभंगसुत्त

१५. सळायतन-वग्ग

- १. अनाथपिण्डिकोवादसुत्त
- २. छन्नोवादसुत्त
- ३ पुण्णोवादसुत्त
- ४. नन्दकोवादसुत्त
- ५. चूळराहुलोवादसुत्त
- ६. छछक्कसुत्त
- ७ महासलायतनिकसुत्त
- ८. नगरविन्देय्यसुत्त
- ९. पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्त
- १०. इन्द्रियभावनसुत्त

संयुत्त-निकाय

- १. सनाथवग्ग
- २. निदानवग्ग
- ३. खन्धवग्ग
- ४. स्ळायतनवग्ग
- ५. महावग्ग।

२. सगाथवग्ग

- १. देवता-संयुत्त
- २. देवपुत्तसंयुत्त
- ३. कोसलसंयुत्त
- ४. मारसंयुत्त
- ५. भिक्खुणी-संयुत्त
- ६. ब्रह्मसंयुत्त
- ७. ब्राह्मण-संयुत्त
- ८. वंगीससंयुत्त
- ९. वनसंयुत्त
- १०, वक्खसयुत्त
- ११. सक्क-संयुत्त

२. निदानवग्ग

- १. निदान-संयुत्त
- २ अभिसमय-संयुत्त
- ३. धातु-संयुत्त
- ४. अनमतग्ग संयुत्त
- ५ कस्सप-संयुत्त
- ६. लाभसक्कार-संयुत्त
- ७. राहुल-संयुत्त
- ८. लक्खणसंयुत्त
- ९. ओपम्म-संयुत्त
- १०. भिक्खु-संयुत्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३. खन्ध-वग्ग

१. खन्ध-संयुत्त, २. राध संयुत्त, ३. दिट्ठि-संयुत्त, ४. ओक्कन्तिक सयुत्त, ५. उप्पाद-संयुत्त, ६. किलेस संयुत्त, ७. सारि-पुत्तसंयुत्त, ८. नाग-संयुत्त, ९. सुप्पण-संयुत्त, १०. गन्धब्ब-कायसंयुत्त, ११. वलाह संयुत्त, १२. वच्छगोत्त-संयुत्त, १३ झान-सयुत्त

४. सलायतन वग्ग

१. सलायतन-संयुत्त, २. वेदना-संयुत्त, ३. मातुगाम-संयुत्त, ४. जम्बखादक-संयुत्त, ५. सामण्डक-संयुत्त, ६. मोग्गलान-संयुत्त, ७. चित्त संयुत्त-, ८. गामणि-संयुत्त, ९. असंखत-संयुत्त, १० अव्याकत संयुत्त

५. महावग्ग

१. मग्गसंयुत्त, २. बोज्झंग-संयुत्त, ३. सतिपट्ठान-संयुत्त, ४. इन्द्रिय-संयुत्त, ५. सम्मपधान-संयुत्त, ६. बल-संयुत्त, ७ इद्धिपाद-संयुत्त, ८. अनुरुद्ध-संयुत्त, ९. झान-संयुत्त, १० आना-पानसंयुत्त, ११. सोता-पत्तिसंयुत्त, १२. सच्चसंयुत्त

अंगुत्तर-निकाय

१. एक-निपात, २. दुक-निपात, ३. तिक-निपात, ४. चतुक्क-निपात, ५. पंचक निपात, ६. छक्क-निपात, ७ सत्तक निपात, ८. अट्ठक-निपात, ९. नवक-निपात, १०. दसक-निपात, ११. एकादसक-निपात

खुद्दक-निकाय

१. खुद्दकपाठ, २. धम्मपद, ३. उदान, ४. इतिवुत्तक, ५. सुत्तनिपात, ६. विमानवत्थु, ७. पेतवत्थु, ८. थेरगाथा, ९. थेरीगाथा, १०. जातक, ११. निद्देस, १२. पटिसम्भिदामग्ग, १३ अपदान, १४. बुद्धवंस, १५. चरियापाटिक

सुत्तपिटक— यद्यपि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय तक धम्म और विनय की ही प्रधानता रही है और उसी धम्म और विनय की शरण में बुद्ध भगवान् ने भिक्षुओं को छोड़ा भी था। फिर भी इतिहास, साहित्य एवं अन्य दृष्टियों से सुत्त-पिटक का कम महत्त्व नहीं है। इस पिटक में भगवान् बुद्ध के उपदेश निहित हैं।

'सुत्तपिटक' सुत्त और पिटक दो शब्दों से बना है। अतएव इन दो शब्दों का अर्थ जान लेना आवश्यक है। सुत्त का अर्थ सूत या धागा और पिटक का अर्थ पिटारी है। इस पिटक शब्द का अर्थ लाक्षणिक रूप में परम्परा समझा जाता था। इसी लाक्षणिक अर्थ को दृष्टि में रखकर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने पिटक का अर्थ 'वेद की परम्परा' या 'वचन-समूह' किया है। इस प्रकार इस लाक्षणिक प्रयोग द्वारा सुत्त-पिटक का अर्थ सूत्ररूपी बुद्धवचनों की परम्परा है। जिस प्रकार सूत के गोले को फेंक देने पर वह खुलता हुआ चला जाता है, उसी प्रकार बुद्धवचन सुत्त-पिटक में प्रकाशित होते हैं।

यद्यपि सुत्त-पिटक का वर्ण्य-विषय बुद्ध के उपदेश हैं, परन्तु इसमें इनके कुछ शिष्यों के उपदेश भी उपलब्ध होते हैं। प्रायः भगवान् बुद्ध जब शिष्यों को उपदेश देते-देते थक जाते थे, उस समय भगवान् सारिपुत्र, मौद्गलायन या आनन्द जैसे किसी शिष्य को उपदेश पूरा करने के लिए बुला लिया करते थे।

भगवान् बुद्ध एवं उनके शिष्यों के उपदेश के अतिरिक्त सुत्त-पिटक में छठी शताब्दी ई० पूर्व भारत के सामाजिक जीवन का पूरा परिचय भी मिलता है। बुद्ध के समकालीन श्रमणों, ब्राह्मणों और परिव्राजकों के जीवन और सिद्धान्तों के विवरण, गौतमबुद्ध के विषय में उनके मत और दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध, तत्कालीन उद्योग-धन्धे, मनोरंजन के साधन, कला और विज्ञान, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति, ब्राह्मणों के धार्मिक सिद्धान्त, जातिवाद, वर्णवाद, यज्ञवाद, भौगोलिक परिस्थितियाँ, ग्राम, नगर तथा पर्वत आदि का विवरण, कृषि और वाणिज्य, सामाजिक रीतियाँ, जीवन का नैतिक स्तर, स्त्रियों, भृत्यों की अवस्था आदि के विवरण इस पिटक मे भरे पड़े हैं।

सुत्तों के आकार के सम्बन्ध में कोई नियम दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। कुछ सुत्त बहुत लम्बे हैं, उन्हें इसी पिटक के उपविभाग 'दीघनिकाय' में संगृहीत कर दिया गया है। जो सुत्त मझले आकार के हैं, उन्हें 'मज्झिमनिकाय' खण्ड में संगृहीत कर दिया गया है। सुत्तपिटक में पाये जानेवाले कुछ छोटे तथा कुछ बड़े सुत्तों को एक उपविभाग में संगृहीत कर उसका नाम 'संयुत्तनिकाय' रख दिया गया है। छोटे-बड़े सभी प्रकार के सुत्तों का संग्रह होने के कारण संयुत्तनिकाय नाम सार्थक ही है।

जिस प्रकार आकार के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है, उसी प्रकार गद्यमय या पद्यमय होने का भी कोई निश्चित नियम नहीं है, इसमें जहाँ कुछ सुत्त सर्वथा गद्यमय हैं, कुछ बिल्कुल पद्यमय हैं, तो वहीं कुछ गद्यपद्य-मिश्रित भी हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जैसा कि हम अभी ऊपर कह आये हैं कि सुत्तपिटक के उपविभाग दीघनिकाय में लम्बे-लम्बे सूत्रों का संग्रह किया गया है। मज्झिमनिकाय में मध्यम आकार के सूत्रों का संग्रह उपलब्ध होता है। सुत्तपिटक में इस निकाय का बहुत बड़ा महत्त्व है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे 'बुद्धवचनामृत' कहा है।

संयुत्तनिकाय के प्रायः सभी सुत्त संक्षिप्त गद्यात्मक बुद्धप्रवचन के रूप में ही हैं। बुद्धकालीन भारतीय ग्राम-जीवन का इस निकाय में बहुत सुन्दर चित्रण मिलता है, साथ ही काव्यात्मक अंश भी उपलब्ध होते हैं।

बुद्धधर्म के स्वरूप का ज्ञान पूर्ववर्ती तीन निकायों में प्राप्त होता है, वही ज्ञान अंगुत्तरनिकाय का भी प्रतिपाद्य विषय है। केवल इसकी शैली में भिन्नता आ गयी है।

खुद्दकनिकाय, सुत्तपिटक का पाँचवाँ मुख्य भाग है। यह निकाय सुत्तों का संग्रह नहीं, अपितु छोटे-छोटे ग्रन्थों का स्वतन्त्र संग्रह है। इन ग्रन्थों की भाषा-शैली में समानता नहीं है। कुछ ग्रन्थ पद्यात्मक एवं कुछ ग्रन्थ गद्यपद्यमिश्रित हैं।

धम्मपद—धम्मपद खुद्दकनिकाय का दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें ४२३ गाथाएँ हैं जिनका २६ वर्गों में विभाजन है। ये गाथाएँ बौद्धों में प्रचलित साहित्य से एकत्र की गयी हैं। बौद्ध-साहित्य में धम्मपद का बहुत महत्त्व है। जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में गीता का कई दृष्टियों से महत्त्व है उसी प्रकार बौद्ध-साहित्य में धम्मपद का। धम्मपद अकेले एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें बौद्ध-दर्शन के प्रायः सभी प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन है। इसमें नैतिक सदाचार, दुःखमय संसार से छुटकारा पाने के उपाय, चार आर्यसत्य, आर्याष्टाङ्गिक मार्ग, निर्वाणप्राप्ति के उपाय आदि का विस्तृत एवं सुबोध वर्णन मिलता है। बौद्धों में इस ग्रन्थ का इतना अधिक महत्त्व है कि सिंहल में तो किसी भिक्षु की तब तक उपसम्पदा नहीं होती जब तक वह धम्मपद का पारायण नहीं कर लेता। सम्पूर्ण पालि-साहित्य में बुद्ध-उपदेशों का संग्रह जितना अच्छा धम्मपद में मिलता है उतना कहीं दूसरे स्थान पर एकत्र नहीं मिलता।

धम्मपद में, भारतीय संस्कृति में प्रचलित प्रायः सभी नैतिक आदर्श संगृहीत हैं। इसका संकेत डॉ० बी० सी० लाहा के 'हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर' में मिलता है। डॉ० लाहा ने धम्मपद के अनेक पदों की तुलना उपनिषद्, महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के अंशों से की है।

सुत्तनिपात—धम्मपद के समान ही सुत्तनिपात बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। हिन्दी जगत् में धम्मपद की भाँति सुत्तनिपात का प्रचार नहीं हो सका है। अशोक के बभ्रु शिलालेख में जो सात बुद्धोपदेशों के नाम दिये गये हैं उनमें से तीन सुत्तनिपात में ही मिल जाते हैं।

भाषा की दृष्टि से सुत्तनिपात की भाषा वैदिक भाषा के बहुत समीप है। इसमें ऐसे अनेक प्रयोग मिलेंगे जो लौकिक संस्कृत में छूट गये हैं, किन्तु उनका स्वरूप वैदिक प्रयोगों के समान है। न केवल भाषा की ही दृष्टि से, अपितु छन्दों की दृष्टि से भी यदि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विचार किया जाय तो सुत्तनिपात के अनेक छन्द वैदिक छन्दों के ही समान हैं। वैदिक छन्दों के समान ही इसमें गण का बन्धन भी नहीं है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से सुत्त-निपात को पांच वर्गों में विभक्त किया जाता है— १. उरगवग्ग, जिसमें १२ सुत्त हैं; २. चुल्लवग्ग, जिसमें १४ सुत्त हैं; ३. महावग्ग, जिसमें १२ सुत्त हैं; ४. अट्ठकवग्ग, जिसमें १६सुत्त हैं; ५. पारायणवग्ग, जिसमें १७ सुत्त हैं।

उरगवग्ग का दूसरा सुत्त धनियसुत्त है। इस सुत्त में सांसारिक सुख से सम्पन्न एक गृहस्थ और ध्यानसुख से सम्पन्न एक विरक्त के संवाद के माध्यम से दोनों सुखों की अत्यन्त सजीव एवं बोधगम्य तुलना की गयी है जिसमे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि सांसारिक सुख एक भूल-भूलैया है, वास्तविक नहीं। जिस विषय-भोग को संसारी जीव सुख का साधन मानता है, वही विषय-भोग वास्तव में उसके सभी दुःखों का कारण है।

थेरगाथा तथा थेरीगाथा—खुद्दकनिकाय के थेरगाथा और थेरीगाथा, ये दोनों ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनका महत्त्व इस दृष्टि से भी और बढ़ जाता है कि थेरगाथा में बुद्धकालीन २५५ भिक्षुओं के जीवन-संस्मरण हैं और थेरीगाथा में बुद्धकालीन ६३ भिक्षुणियों के जीवन-संस्मरण का संग्रह है। थेरगाथा २१ निपातों में विभक्त है, इसमें १२७९ गाथाएँ हैं। थेरीगाथा का विभाजन १६ निपातों में है, इनमें कुल मिलाकर ५२२ गाथाएँ हैं। थेरीगाथा, थेरगाथा की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। थेरगाथा में भिक्षुओं ने अन्तर्जगत् के अनुभवों पर अधिक बल दिया है जब कि थेरीगाथा में भिक्षुणियों ने वैयक्तिक जीवन, आत्मीयता एवं स्पष्टवादिता पर। भिक्षुणियों ने अपनी यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है तथा पुरुषों द्वारा किये गये दुर्व्यवहारों का भी वर्णन करने में संकोच नहीं किया है।

जातक--खुद्दकनिकाय का दसवाँ प्रसिद्ध एवं विशालकाय ग्रन्थ जातक है। इसमें भगवान् बुद्ध की बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व के जन्मों का वर्णन किया गया है। बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्वजन्मों में भगवान् बुद्ध बोधिसत्त्व कहलाते थे। बोधिसत्व का अर्थ बोधि (ज्ञान) के के लिए (प्रयत्नशील) सत्त्व (प्राणी) है। बुद्धत्व-प्राप्ति के जन्मों में भगवान् बुद्ध, बुद्धत्वप्राप्ति के लिए दान, शील, मैत्री, सत्य आदि दश पारमिताओं अथवा परिपूर्णताओं का अभ्यास करते थे और जीवों पर दया दिखाने के लिए अनेक बार अपने प्राणों का बलिदान देकर बुद्धत्व-प्राप्ति की योग्यता का सम्पादन करते थे। ये सारे कार्य बोधिसत्त्व के कर्त्तव्य के पालन के रूप में थे। उन-उन जन्मों में उन-उन कर्त्तव्यों के पालन की कथाएँ जातक में संगृहीत हैं।

जातक शब्द जन् (जनि प्रादुर्भावे) धातु के भूत-अर्थ अथवा भाव-अर्थ में क्त प्रत्यय (जन् + क्त (त) करने पर बना है। जब भूत-अर्थ में क्त प्रत्यय होगा, तो उसका अर्थ होगा—जात = भूत = कथा और जब भाव-अर्थ में क्त प्रत्यय होगा तब

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जात=जनि = जनन = जन्म । तात्पर्य यह है कि जातक का अर्थ पूर्वजन्म की कथाएँ या पूर्वजन्म होगा । बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भगवान् बुद्ध ने अपने सम्यग्ज्ञान से पूर्वजन्म के वृत्तान्तों का स्मरण किया और उन्हें भिक्षुओं से कहा, यही जातक कहलाते हैं । इन जातकों का संग्रह विक्रम से तीन सौ वर्ष पूर्व ही हो चुका था । यद्यपि इनकी संख्या निश्चित नहीं है तथापि लंका, बर्मा और थाईलैण्ड में प्रचलित परम्परा के अनुसार इनकी संख्या ५५० है । साथ ही यह भी सत्य है कि वर्तमान जातक में ५४७ या ५४८ जातक कथाएँ हैं । जातकट्ठवण्णनाकार ने जातकों के विषय को दृष्टि में रखकर इनका पाँच भागों में विभाजन किया है--१. पच्चुप्पनवत्थु, इसमें बुद्ध के वर्तमानकाल की कथाएँ हैं । २. अतीतवत्थु, इसमें बोधिसत्त्वावस्था में घटी भूतकालिक कथाएँ हैं । ३. गाथा, इसमें गाथाएँ हैं । ४. वेय्याकरण, इसमें गाथाओं का व्याख्यान है । ५. समोधान, इसमें अतीतवत्थु के पात्रों का बुद्ध के जीवनकाल के पात्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

जातकों का अध्ययन न केवल बौद्धधर्म की दृष्टि से तथा न केवल भाषिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है, अपितु बुद्ध के समय के भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक, व्यापारिक एवं लौकिक विश्वासों की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

विनयपिटक--बौद्धसंघ की दृष्टि से विनयपिटक का अत्यधिक महत्व है । भिक्षुसंघ ने सुत्तपिटक से अधिक ऊँचा स्थान विनयपिटक को दिया है, क्योंकि उसे ही बुद्धशासन की इति माना है । जब तक विनयपिटक अपने मूलरूप में अवस्थित रहे तभी तक बुद्धशासन जीवित रह सकता है । बौद्धसंघ की व्यवस्था, भिक्षु और भिक्षुणियों के नित्यनैमित्तिक कृत्य, उपसम्पदानियम, वर्षावास के नियम, भोजन, वस्त्र आदि सम्बन्धी नियम, संघभेद होने पर संघसामग्री सम्पादित करने के नियम आदि नियमसमूह विनय-पिटक में वर्णित हैं । इस दृष्टि से विनयपिटक को यदि बौद्धसंघ का संविधान कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी ।

विनयपिटक सुत्तविभंग, खन्धक एवं परिवार नामक तीन मोटे भागों में विभक्त है । सूत्तविभंग के दो भाग—पाराजिक, पाचित्तिय हैं । इनमें क्रमशः उन अपराधों का उल्लेख किया गया है जिनका दण्ड क्रमानुसार संघ से निष्कासन या किसी प्रकार का प्रायश्चित्त है । संख्या में ये अपराध २२७ हैं । ये सभी अपराध-सम्बन्धी नियम आठ वर्गों में विभक्त हैं ।

विनयपिटक का दूसरा भाग खन्धक है, इसके भी दो उपविभाग, महावग्ग और चुल्लवग्ग हैं । सुत्तविभंग में अपराधों का वर्णन है और खन्धक में विधिपूर्वक संघ में जीवन बिताने का । महावग्ग में दस खन्धक हैं । सम्बोधि-प्राप्ति से प्रथम संघ की स्थापना तक पूरा इतिहास भी दिया गया है । अनिरुद्ध, उपालि और आनन्द के संन्यास का वर्णन भी चुल्लवग्ग में है । चुल्लवग्ग के अन्त में प्रथम दो बौद्ध संगीतियों के विवरण हैं । वास्तव में न केवल भिक्षुसंघ के इतिहास की दृष्टि से ही, बल्कि छठी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

शताब्दी ई० पू० के भारतीय समाज की अवस्था को जानने के लिए भी महावग्ग और चुल्लवग्ग में पर्याप्त सामग्री है ।

अभिधम्मपिटक—अभिधम्मपिटक त्रिपिटक साहित्य का तीसरा मुख्य भाग है । वर्ण्य-विषय की दृष्टि से अभिधम्म का अर्थ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार से किया गया है । 'अभिधम्म' शब्द का प्रयोग 'अभिविनय' शब्द के साथ क्रमशः धम्म और विनय-सम्बन्धी गम्भीर उपदेश के अर्थ में सुत्तपिटक में हुआ है । ऐसा भान होता है कि बुद्धघोष ने इसी के आधार पर अभिधम्म का अर्थ 'उच्चतर धम्म' या 'विसेस धम्म' किया है ।

सुत्तपिटक में निहित बुद्धमन्तव्यों को ही अभिधम्मपिटक में अधिक विस्तार के साथ समझाया गया है । भिक्षु जगदीश काश्यप ने अपना मत अभिधम्मपिटक के विषय में व्यक्त करते हुए कहा है कि 'विभज्यवाद' जिस प्रकार सुत्तन्त का दर्शन है उसी प्रकार वह अभिधम्म का भी दर्शन है । 'विभज्यवाद' का अर्थ है, मानसिक और भौतिक जगत् की सम्पूर्ण अवस्थाओं का विश्लेषण कर चुकने पर भी उनमें 'अत्ता' का न मिलना । इसके लिए काश्यपजी ने 'रथ' का उदाहरण प्रस्तुत किया है । जिस प्रकार पहिये की, धुरी आदि भागों से अलग सत्ता नहीं है उसी प्रकार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार आदि पाँच स्कन्धों से भिन्न पुद्‌गल की कोई सत्ता नहीं है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिधम्मपिटक का मुख्य वर्ण्य-विषय-सुत्तन्त पर ही आधृत है । इसमें व्यक्ति के साथ बाह्य संसार के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए १२ आयतनों का वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त इसमें सुत्तन्त की भाँति ही स्कन्धों का भी वर्णन पाया जाता है । स्कन्धों के वर्णन में रूप, वेदना और संस्कार स्कन्धों के अङ्गों का भी वर्णन उपलब्ध होता है ।

अभिधम्मपिटक का पहला एवं सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'धम्मसंगणि' है । इसके अन्तर्गत मानसिक एवं भौतिक जगत् की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है । इसके संकलन की सबसे बड़ी विशेषता है, आभ्यन्तर एवं बाह्य जगत् की नैतिक व्याख्या । नैतिक व्याख्या का तात्पर्य है, कर्म के शुभ एवं अशुभ तथा इन दोनों से व्यतिरिक्त विपाकों के रूप में व्याख्या ।

इन सूक्ष्म विषयों के वर्णन के कारण ही धम्मसंगणि को सम्पूर्ण अभिधम्म साहित्य की प्रतिष्ठा कहा गया है ।

'विभंग' अभिधम्मपिटक का द्वितीय ग्रन्थ है । इसमें धम्मसंगणि के ही विस्तृत विश्लेषण को वर्ग-बद्ध किया गया है । अतः इसे धम्मसंगणि का पूरक ग्रन्थ कहा जा सकता है । विभंग का अर्थ है, विस्तृत रूप से विभाजन । इसी अर्थ में यह शब्द 'भद्देकरत्तसुत्तन्त' में प्रयुक्त किया गया है । विभंग की कथावस्तु १८ विभागों या विभंगों में विभक्त की गयी है जिनमें से प्रत्येक अपने आप में पूर्ण है ।

विभंग के बाद 'धातुकथा' का नाम आता है । स्कन्ध, आयतन एवं धातु ही धातुकथा के वर्ण्य-विषय हैं । इसी को ध्यान में रखकर महास्थविर ज्ञातिलोक ने कहा है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कि इसका नाम 'खन्ध-आयतन-धातुकथा' होना चाहिए। धातुकथा की सबसे बड़ी विशेषता है स्कन्ध, आयतन एवं धातुओं का सम्बन्ध धर्मों के साथ दिखलाना। इन धर्मों की संख्या मातिका के अनुसार १२५ है।

अभिधम्मपिटक के एक अंग के रूप में 'पुग्गलपञ्ञत्ति' का कम महत्त्व नहीं है। यह दो पदों से मिलकर बना है। वे पद हैं, पुग्गल (पुद्गल) और पञ्ञत्ति (प्रज्ञप्ति)। पुग्गल का अर्थ है व्यक्ति एवं पञ्ञत्ति का अर्थ है, ज्ञान। इस प्रकार पुग्गलपञ्ञत्ति का अर्थ हुआ—व्यक्तियो के सम्बन्ध में ज्ञान। इसका वर्ण्य-विषय नाना प्रकार का व्यक्ति है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में दस अध्याय हैं।

विषय की दृष्टि से अभिधम्मपिटक के एक अंग के रूप में 'कथावत्थु' अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। इस ग्रन्थ में कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। वे दार्शनिक सिद्धान्त किन-किन सम्प्रदायों से सम्बद्ध थे, इसका उल्लेख इसमें नहीं मिलता। कथावत्थु में २१६ शंका-समाधानों का उल्लेख मिलता है जो २३ अध्यायों में विभक्त हैं।

प्रश्नों के जोड़ों की प्रतिष्ठापना करने के रूप में अभिधम्मपिटक का 'यमक' एक ग्रन्थ है। इसमें प्रश्नों को जोड़ों के रूप में रखा गया है। प्रश्नों के अनुकूल और विपरीत स्वरूपों का जोड़ा बनाना इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक पाया जाता है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, अभिधम्म में प्रयुक्त शब्दावली की निश्चित व्याख्या। 'यमक' दस अध्यायों में विभक्त है। इसमें निर्दिष्ट विषय के साथ धर्मों के सम्बन्ध भी दिखाये गये हैं।

अभिधम्मपिटक में आकार एवं महत्त्व की दृष्टि से 'पट्ठान' का स्थान धम्मसंगणि के बाद ही है। इस पूरे ग्रन्थ में प्रतीत्यसमुत्पाद को समझाया गया है। प्रत्यय के दर्शन का विवेचन इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

अनुपिटक या अनुपालि साहित्य—प्रायः ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व ही अनेक संगीतियों द्वारा त्रिपिटक के रूप का निश्चय हो चुका था। चौथी, पाँचवीं शताब्दी में बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल ने उन पर अपनी प्रसिद्ध अट्ठकथाएँ लिखीं।

त्रिपिटक के रूप-निर्धारण एवं अट्ठकथाओं के निर्माण के बीच के काल में कुछ ऐसे साहित्य की रचना हुई जिसमें नेत्तिपकरण, पेटकोपदेस और मिलिन्दपञ्ह अधिक प्रसिद्ध हैं।

नेत्तिपकरण—नेत्तिपकरण का संक्षिप्त नाम नेत्ति भी है, इसे नेत्तिगन्ध (ग्रन्थ) भी कहते हैं। नेत्ति का अर्थ है, मार्गदर्शिका। नेत्तिपकरण का एक प्रकार से त्रिपिटक (बुद्ध-वचनों) से वही सम्बन्ध है जो यास्क-कृत निरुक्त का वेदों से। इसका उद्देश्य केवल त्रिपिटक के वचनों और उनके तात्पर्य-निर्णयसम्बन्धी नियमों या युक्तियों का शास्त्रीय विवेचन करना मात्र है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पेटकोपदेस—पेटकोपदेस का उद्देश्य नेत्तिपकरण के उद्देश्य से ही मिलता-जुलता है। नेत्तिपकरण में आयी हुई कुछ दुरूह बातों को यहाँ स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयत्न किया गया है। पेटकोपदेस में विषय का विन्यास प्रधानतः चार आर्यसत्यों को दृष्टि में रखकर किया गया है। नेत्तिपकरण और पेटकोपदेस दोनों के रचयिता महाकच्चान ही माने जाते हैं।

मिलिन्दपञ्ह—इस ग्रन्थ के मिलिन्दपञ्ह, मिलिन्दपञ्हो या मिलिन्दपञ्हा—ये तीन नाम मिलते हैं। यह ग्रन्थ अपने युग की सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना है। बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ को त्रिपिटक के समान ही आदरणीय मानकर अट्ठकथाओं में अनेक उद्धरण दिये हैं। मिलिन्द (ग्रीक राजा मिनैण्डर) और भदन्त नागसेन के संवाद के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया है। इस ग्रन्थ में वर्णित संवाद इतिहास-सिद्ध है। इन ग्रन्थ की विषय-वस्तु सात भागों या अध्यायों में विभक्त है। पहला बाहिरकथा, यह इस ग्रन्थ की भूमिका है। दूसरा लक्खण-पञ्हो, जिसमें भदन्त नागसेन ने अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्मवाद की संगति मिलाने का प्रयत्न किया है, जो बौद्धदर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तीसरा विमतिच्छेदन पञ्हो, जिसमें राजा के सन्देहों का, जो उसे अनेक छोटे-छोटे विषयों पर हुए थे, भदन्त नागसेन द्वारा निवारण किया गया है। चौथा मेण्डक-पञ्हो, जिसमें त्रिपिटक में परस्पर विरोधी प्रश्नों के निराकरण का विवरण है। यह परिच्छेद इस ग्रन्थ का सबसे लम्बा परिच्छेद है। पाँचवाँ अनुमानपञ्हो, जिसमें अनुमान के आधार पर अर्थात् भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म एवं धर्म के अंगरूपी कार्यों को देखकर भगवान् बुद्ध की सत्ता सिद्ध की गयी है। इसी प्रसंग में धम्मनगर (धर्मरूपी नगर) के सुन्दर सांगोपांग रूपक का वर्णन किया गया है। छठा धुतङ्गकथा जिसमें तेरह अवधूत-नियमों का विवेचन करते हुए नागसेन ने यह सिद्ध किया है कि एक गृहस्थ भी, जो सम्पूर्ण भौतिक प्रपञ्चों में फँसा हुआ है, शान्त निर्वाण-पद प्राप्त कर सकता है। सातवाँ ओपम्मकथा-पञ्हो, जिसमें उपमाओं द्वारा यह बतलाया गया है कि अर्हत्त्व का साक्षात्कार करने की इच्छा करनेवाले व्यक्ति को किस प्रकार नाना गुणों का सम्पादन करना चाहिए।

इन तीनों ग्रन्थों के अतिरिक्त 'दीपवंस' आदि कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे गये।

अट्ठकथाएँ—पालि-साहित्य में अट्ठकथा-साहित्य का आरम्भ चौथी-पाँचवीं शताब्दी से होता है। इस प्रकार बुद्ध-युग से लगभग एक हजार वर्ष बाद ये अट्ठकथाएँ लिखी गयीं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि तीन ही अट्ठकथाकार प्रसिद्ध हैं जिनमें बुद्धदत्त और बुद्धघोष समकालीन हैं।

बुद्धदत्त ने (१) उत्तर-विनिच्छय, (२) विनय-विनिच्छय, (३) अभिधम्मावतार, (४) रूपारूपविभाग और (५) मधुरत्थ-विलासिनी नाम की अट्ठकथाएँ लिखीं।

पालि-साहित्य में साहित्य और बौद्धदर्शन की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट आदर का पात्र यदि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कोई एक व्यक्ति है तो वह हैं बुद्धघोष। इन्होंने अकेले पालि-साहित्य की जितनी सेवा और साहित्यिक रचनाएँ कीं, उन्हें देखते हुए वस्तुतः आश्चर्य होता है कि एक ही व्यक्ति ने कैसे इतना महान् कार्य सम्पन्न किया। इन्होंने न केवल मूलग्रन्थों की टीकाएँ लिखीं अपितु अनेक मौलिक रचनाएँ भी कीं। सच पूछा जाय तो यह कहना पड़ता है कि बुद्धघोष ने बुद्ध-वचनों (त्रिपिटक) का दर्शन, जो साधारणतया दुर्गम एवं दुरूह था, सामने लाकर उपस्थित किया। बुद्धघोष की मुख्य रचनाएँ ये हैं—

१. विसुद्धिमग्ग—संयुत्त-मिकाय की दो गाथाओं की व्याख्या के रूप में एक मौलिक कृति।

२. समन्तपासादिका—विनयपिटक की अट्ठकथा।

३. कङ्खावितरिणी—पातिमोक्ख की अट्ठकथा।

४. सुमंगलविलासिनी—दीघनिकाय की अट्ठकथा।

५. पपञ्चसूदनी—मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा।

६. सारत्थपकासिनी—संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा।

७. मनोरथपूरणी—अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा।

८. परमत्थजोतिका - खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ और सुत्तनिपात की अट्ठकथा।

९. अट्ठसालिनी—धम्मसंगणि की अट्ठकथा।

१०. सम्मोहविनोदिनी—विभंग की अट्ठकथा।

११-१५. पञ्चप्पकरणट्ठकथा—धम्मसंगणि और विभंग को छोड़कर शेष पांच अभिधम्म-ग्रन्थों की अट्ठकथाएँ।

१६. जातकट्ठवण्णना—जातक की अट्ठकथा।

१७. धम्मपदट्ठकथा—धम्मपद की अट्ठकथा।

१८. ज्ञानोदय आदि अन्य ग्रन्थ जो प्राप्त नहीं होते।

तीसरे अट्ठकथाकार धम्मपाल हैं। वस्तुतः बुद्धदत्त और धम्मपाल आचार्य बुद्धघोष के ही कार्यों के पूरक के रूप में आते हैं। धम्मपाल की रचनाएँ अधोलिखित हैं—

१. परमत्थदीपनी—खुद्दकनिकाय के उन ग्रन्थों की अट्ठकथा है जिन पर बुद्धघोष ने अट्ठकथा नहीं लिखी। इनकी अट्ठकथाओं में थेरगाथा की अट्ठकथाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि यहाँ लेखक ने भगवान् बुद्ध के शिष्य भिक्षु-भिक्षुणियों की जीवनियों का वर्णन किया है।

२. नेत्तिपकरणट्ठकथा या नेत्तिपकरणस्स अत्थसंवण्णना।

३. नेत्तित्थकथाय टीका या लीनत्थवण्णना—उपर्युक्त नेत्तिपकरण-अट्ठकथा की टीका।

४ परमत्थमञ्जूसा या महाटीका—विसुद्धिमग्ग की अट्ठकथा।

५. लीनत्थपकासिनी—प्रथम चार निकायों की बुद्धघोषकृत अट्ठकथाओं की टीका।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६ जातकट्ठकथा की टीका।

७. बुद्धदत्त-कृत मधुरत्थबिलसनी की टीका।

इन तीनों के अतिरिक्त आनन्द, चुल्लधम्मपाल, उपसेन, महानाम आदि अट्ठकथाकार भी हैं, जिनको साहित्य-रचना की दृष्टि से उतना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। किन्तु अभिधम्मत्थसंगहकार आचार्य अनिरुद्ध भी अपनी रचना के कारण अतिप्रसिद्ध हैं। अभिधम्मत्थासंगह में चित्त, चैतसिक धर्मों के निरूपण में जिस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का परिचय ग्रन्थकार ने दिया है, वह न केवल दर्शन के विद्यार्थी के लिए, अपितु मनोविज्ञान के विद्यार्थी की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि अभिधम्मत्थसंगह में किये गये सूक्ष्म विश्लेषणों को स्पष्ट करने के लिए इस ग्रन्थ की अनेकानेक टीकाएँ, उपटीकाएँ लिखी गयीं।

बुद्धघोष की चलायी गयी परम्परा के आधार पर अनेक अट्ठकथाएँ, टीकाएँ भारतवर्ष, सिंहल और बर्मा देशों में लिखी गयीं और यह कार्य बुद्धघोष के युग से प्रायः आजतक किसी-न-किसी रूप में चलता आ रहा है। बुद्धघोषयुग में ही अट्ठकथाओं और व्याख्यापरक-साहित्य के अतिरिक्त वंश-सम्बन्धी-ग्रन्थ, काव्य और व्याकरण-सम्बन्धी ग्रन्थ भी पर्याप्त मात्रा में लिखे गये।

वंश-साहित्य—पालि-साहित्य में वंश-साहित्य की परम्परा एक प्रकार से बुद्धघोष के पहले से ही प्रारम्भ होकर उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक चलती आयी है। वंश-साहित्य के मुख्य ग्रन्थ ये हैं :—

१. दीपवँस, २. महावंस, ३. चूळवंश, ४. बुद्धघोसुप्पत्ति, ५. सद्धम्मसंगह, ६. महाबोधिवंस, ७. थूपवंस, ८. अत्तानगलुविहारवंस, ९. दाठावंस, १०. छकेसधातुवंस, ११. गन्धवंस और १२. समानवंस आदि।

यद्यपि जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में पुराणेतिहासों की रचना हुई है उसी प्रकार पालि-साहित्य में वंशों की रचना हुई है, तथापि वंशकारों ने भारतीय पुराणकारों की अपेक्षा कुछ अधिक ऐतिहासिक बुद्धि का परिचय दिया है। इन वंशों में निश्चय ही ऐतिहासिक सामग्री अधिक मात्रा में और अधिक स्पष्टरूप में मिलती है। वंश-साहित्य में प्रधानतः राजाओं की वंशावलियों का वर्णन है, यद्यपि महाभारत और पुराणों की तरह इनमें भी वंशावलियों के अतिरिक्त बहुत कुछ है।

काव्य—पालि-भाषा में रचित दर्शन-ग्रन्थों की तुलना में काव्य-ग्रन्थों की रचना अत्यन्त महत्त्वहीन है। संस्कृत भाषा में जो काव्य की परम्परा जिस विपुलता के साथ हजारों वर्षों तक चली और चलती आ रही है, उसकी तुलना में पालि-भाषा के काव्यों को देखने से निराश ही होना पड़ता है। सम्भवतः बौद्ध-दर्शन के, जो अधिकांशतः त्याग का ही उपदेश देता है, तीव्र प्रभाव से प्रभावित भिक्षु या गृहस्थ बौद्धकाव्य लिखने में उतने तत्पर न हो सके। यद्यपि त्रिपिटक आदि में काव्यतत्त्व नहीं मिलते, ऐसा नहीं कह सकते, तथापि वे तत्त्व एक हाथ-लगे की बात हैं। परिचय की दृष्टि से पालि-भाषा में उपलब्ध काव्य ये हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. अनागतवंस, २. तेलकटाहगाथा, ३. जिनालङ्कार, ४. जिनचरित, ५. पजमधु, ६. सद्धम्मोपायन, ७. पञ्चगतिदीपन और ८. लोकप्पदीपसार। यद्यपि पालि-भाषा के काव्यों में सर्वत्र नैतिक आदर्शवाद और नीरस इतिवृत्तात्मक शैली ही अपनायी गयी है तथापि कहीं-कहीं रसात्मकता का भी दर्शन होता ही है। उपर्युक्त काव्यों को विषय की दृष्टि से वर्णनात्मक काव्य-ग्रन्थ हम कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ काव्य—आख्यान-ग्रन्थ गद्य में भी हैं, जैसे—

१. रसवाहिनी, २. बुद्धालंकार, ३. सहस्सवत्थुप्पकरण, ४. राजाधिराजविलासिनी।

व्याकरण—पालि-भाषा में अन्य रचनाओं की तुलना में इस भाषा का व्याकरण बहुत बाद में रचा गया, जो स्वाभाविक है। यद्यपि बुद्धघोष की अट्ठकथा में 'इन्द्रिय' शब्द की दी गयी व्युत्पत्ति को देखकर विद्वानों का ऐसा मत है कि सम्भवतः बुद्धघोष के समक्ष कोई प्राचीन पालि-व्याकरण था, किन्तु बुद्धघोष द्वारा दी गयी व्युत्पत्ति की तुलना जब हम पाणिनि के सूत्र से (पा० ५।२।९३) करते हैं तो पाणिनि का प्रभाव स्पष्ट ज्ञात होता है। जो हो, वर्तमान समय में पालि-भाषा के जो व्याकरण उपलब्ध हैं, वे ये हैं—

१. कच्चान-व्याकरण, २. मोग्गलान-व्याकरण, तथा ३. सद्दनीति। इन व्याकरणों के उपकारी साहित्य भी लिखे गये। इन व्याकरणों, उपकारी-साहित्यों, टीकाओं, उपटीकाओं आदि पर संस्कृत-व्याकरणों का और उनमें भी पाणिनि-व्याकरण और कातन्त्र-व्याकरण का प्रभाव स्थान-स्थान पर मिलता है।

इसके परिणामस्वरूप पालि-भाषा की व्याकरणात्मक प्रकृति को समझने के लिए स्थान-स्थान पर संस्कृत भाषा की व्याकरणात्मक प्रकृति का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है। कहीं-कहीं तो 'यदि संस्कृत में ऐसा हो, तो पालि में ऐसा समझना' यह प्रवृत्ति दिखायी देती है और इस प्रकार पालिभाषा के व्याकरण को समझने के लिए संस्कृत भाषा के व्याकरण को समझने का एक अतिरिक्त बोझ आ जाने का भय उपस्थित हो जाता है। यह भय गायगर आदि आधुनिक वैयाकरणों को समझने में भी बना रहता है। वस्तुतः पालिभाषा को एक मुक्त तथा स्वतन्त्र इकाई मानकर व्याकरण लिखने का प्रयत्न नहीं हो पाया है।

कच्चान व्याकरण—उपलब्ध पालि-व्याकरणों में 'कच्चान-व्याकरण' या 'कच्चायन गन्ध' या 'सुसन्धिकप्प' सर्वप्राचीन और महत्त्वपूर्ण व्याकरण है। इस व्याकरण के रचयिता महाकच्चायन माने जाते हैं। ये महाकच्चायन बुद्ध के प्रमुख अस्सी शिष्यों में एक थे। इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी, विद्वानों ने माना है। इस व्याकरण में चार कप्प तथा २३ परिच्छेद हैं। सन्धिकप्प, नामकप्प, आख्यातकप्प तथा किब्बिधान-कप्प हैं। संज्ञाविधान सन्धिकप्प में ही अन्तर्भूत है। नामकप्प का विभाजन कण्डों (काण्डों) में हुआ है। इसी के अन्तर्गत कारक, समास और तद्धितकप्प भी हैं। उणादिकप्पको स्वतन्त्र होते हुए भी किब्बिधानकप्प के अन्तर्गत ही रखा गया है, जो उचित ही है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कच्चायन-सम्प्रदाय के कच्चायन-न्यास अथवा मुखमत्त-दीपनी, सुत्तनिद्देस, सम्बन्धचिन्ता, कारिका, सद्दत्थभेदचिन्ता, रूपसिद्धि, बालावतार, सद्दसारत्थजालिनी, कच्चायनभेद, कच्चायनसार, सद्दविन्दु, कच्चायनवण्णना, वाचकोपदेस, अभिनवचूलिनिरुत्ति, धातुमञ्जूसा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। कच्चायन-व्याकरण तथा उस पर उपलब्ध समस्त साहित्य पाणिनीय एवं कातन्त्र-व्याकरण एवं उनमें उपलब्ध साहित्य से पूर्णतः प्रभावित हैं।

मोग्गलान व्याकरण--मोग्गलान-व्याकरण भी प्रौढ़ता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें ८१७ सूत्र हैं; इसके साथ ही व्याकरणशास्त्र के आवश्यक अंग अर्थात् खिलपाठ जैसे धातुपाठ, गणपाठ, ण्वादिवृत्ति भी संकलित हैं। इन सूत्रों पर स्वयं मोग्गलान ने ही वृत्ति तथा पञ्जिका लिखी है। इसका रचनाकाल ११५३ ई० से ११८६ ई० माना जाता है। इस व्याकरण पर पाणिनीय, कातन्त्र तथा चान्द्र-व्याकरणों का पर्याप्त प्रभाव है।

इस सम्प्रदाय के पदसाधन, प्रयोगसिद्धि, मोग्गलानपञ्जिकापदीप आदि अन्य ग्रन्थ भी हैं।

सद्दनीति- श्रीलंका में संस्कृत व्याकरणों में सारस्वत-व्याकरण का अध्ययन मुख्यतः किया जाता है। वहाँ आज भी व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों के अध्ययन की परम्परा अक्षुण्ण है। श्रीलंका-निवासियों का पालि-व्याकरण की ओर झुकाव भी स्वाभाविक था। कहा जाता है कि बर्मा में रचे गए किसी उत्कृष्ट व्याकरण के सम्बन्ध में जब श्रीलंकनिवासियों ने सुना तो उनमें से कुछ बर्मा आये और देखा कि यहाँ पर सद्दनीति-व्याकरण की रचना हुई है और वह एक उत्कृष्ट पालि-भाषा का व्याकरण है, तो उन्हें आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता हुई तथा अपने को ही पूर्ण वैयाकरण मानने की उनकी धारणा भी महत्त्वहीन हो गयी। इस सद्दनीतिव्याकरण की रचना बर्मा देश में ११५४ ई० में हुई था। इसके रचयिता बर्मी भिक्षु अग्गवंस थे जो 'अग्गपण्डित तृतीय' भी कहलाते थे। यह सद्दनीति-व्याकरण यद्यपि मुख्यतः कच्चान-व्याकरण पर आधृत है, तथापि रचयिता ने संस्कृत-व्याकरणों का भी पर्याप्त आश्रय लिया है। निश्चय ही सद्दनीति एक पाण्डित्यपूर्ण व्याकरण है। यह व्याकरण 'पदमाला', 'धातुमाला' और 'सुत्तमाला' इन तीन भागों में विभक्त है। इसके प्रथम अठारह अध्याय 'चूळसद्दनीति' कहलाते हैं। इस प्रकार इसमें सत्ताईस अध्याय हैं।

इस व्याकरण के अनुसार हिंगुलबल जिनरतन ने धात्वत्थ-दीपनी नाम की एक पद्यबद्ध धातुसूची का संकलन किया है। जिनरतन भी बर्मी भिक्षु थे।

इन तीनों व्याकरणों के अतिरिक्त अन्य छोटे-मोटे पालि-व्याकरण भी लिखे गये और लिखे जा रहे हैं।

पालिकोश—पालि-साहित्य में मोग्गलानकृत 'अभिधानप्पदीपिका' एवं सद्धम्मकित्ति-कृत 'एकक्खरकोस' नाम के दो कोश-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। 'अभिधानप्पदीपिका'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरसिंह-कृत अमरकोश से पूर्णतः प्रभावित होने के कारण इसका भी काण्ड आदि में विभाजन पाया जाता है। वह कोश तीन काण्डों में विभक्त है —सग्गकण्ड (स्वर्गकाण्ड), भूकण्ड (भू-काण्ड), सामञ्ञकन्ड (श्रामण्यकाण्ड)।

दूसरा कोश 'एकक्खरकोस' है। संस्कृत-साहित्य में अनेक एकाक्षर कोश मिलते हैं। किसी संस्कृत एकाक्षर-कोश का यह पालि रूपान्तर है। स्वयं सद्धम्मकित्ति ने इसके अन्त में लिखा है "इति सद्धम्मकित्तिनाममहाथेरेन सक्कतभासातो परिवत्तेत्वा विरचित्तं एकक्खरकोसं नाम सद्दप्पकरणं परिसमत्तं।"

छन्दःशास्त्र—पालि-भाषा में 'वुत्तोदय' (वृत्तोदय) छन्दःशास्त्र का एकमात्र ग्रन्थ है। यह संस्कृत के 'वृत्तरत्नाकर' नामक छन्दोग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है। इसकी रचना सिंहली भिक्षु संघरक्खित ने की। इस पर 'वचनत्थजोतिका' नाम की एक टीका भी लिखी गयी। इसके अतिरिक्त 'छन्दोविचिति', 'कविसारप्पकरण', 'कविसारटीकानिस्सय' नामक एकाध और भी गन्थ हैं, जो अप्रसिद्ध हैं।

काव्यशास्त्र—संघरक्खित ने ही पालि काव्यशास्त्र पर 'सुबोधालङ्कार' नाम का एक ग्रन्थ लिखा है।

अभिलेखीय साहित्य—पालि-भाषा एवं उसके साहित्य का अध्ययन वस्तुतः तब तक पूर्ण नहीं माना जा सकता जब तक इस भाषा में निबद्ध विभिन्न कालों और इन कालों एवं देशविशेषों के अनुसार दिनानुदिन विकसित अभिलेखों का अध्ययन नहीं किया जाता। इस भाषा में ई० पूर्व तीसरी शताब्दी से ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी तक लिखे गये अभिलेख मिलते हैं। अशोक के शिलालेख कालक्रम के अनुसार प्रथम और बर्मा के राजा धम्मचेतिय के प्रसिद्ध कल्याणी अभिलेख उसकी अन्तिम सीमा को निश्चित करते हैं। अशोक के शिलालेख, सांची और भरहुत के अभिलेख, सारनाथ के कनिष्ककालीन अभिलेख, मौंगन (बर्मा) के दो स्वर्णपत्र लेख, पेगन के १४३२ ई० के अभिलेख तथा कल्याणी के अभिलेख सर्वप्रसिद्ध हैं। इनमें भी अशोक के शिलालेख सबसे महत्त्वपूर्ण और कालक्रम में सर्वप्रथम आते हैं।

प्राकृत भाषा

'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति—जैसा कि पालि-शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हम लोगों ने अनेक मतमतान्तर देखे हैं, प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अनेक मत पाये जाते हैं। फिर भी उस मत के पीछे दो स्पष्ट धारणाएँ हैं। पहली यह कि प्राकृत भाषा से ही संस्कृत-भाषा और दूसरी यह कि संस्कृत-भाषा से प्राकृत भाषा निकली है। इन धारणाओं के मूल में प्राकृत वैयाकरणों के 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' इस आशय के कथन ही हैं। संस्कृत का अर्थ संस्कार किया हुआ समझकर प्राकृत से संस्कृत, और प्रकृति का अर्थ संस्कृत है, उससे उद्भूत प्राकृत है; ऐसा मानकर संस्कृत से प्राकृत, ये दोनों मत प्रचलित हैं। हम लोगों में ऐसा विश्वास है कि जो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृति, भाषा, धर्म आदि जितने प्राचीन होंगे उतनी ही उसकी महत्ता होगी। सम्भवतः पहली धारणा इसी तरह के किसी विश्वास पर टिकी है। जो लोग प्राकृत से संस्कृत की उत्पत्ति मानते हैं उन लोगों की एक युक्ति यह है कि वैदिक साहित्य के अनेक प्रयोग प्राकृत प्रयोगों के अनुरूप हैं—यथा (क) प्राकृत में संयुक्त वर्णवाले कई स्थानों में एक व्यञ्जन का लोप होकर पूर्व के ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है — दुर्लभः > दूलहः; स्पर्श > फास. वैदिक-भाषा में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं—यथा, दुर्लभ > दूलभ (ऋग्वेद, ४-९-८), दुर्णाश (शुक्लयजुः प्रातिशाख्य, ३, ४३)।

(ख) संस्कृत व्यञ्जनान्त शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का प्राकृत में सर्वत्र लोप होता है—जैसे—तावत् > ताव, यशस् > जस, वैदिक-साहित्य में ऐसे प्रयोग देखे जाते हैं—जैसे—पश्चात् > पश्चा (अथर्वसंहिता, १०-४-११), उच्चात् > उच्चा (तैत्तिरीय संहिता, २-३-१४)।

(ग) प्राकृत में 'ध' का 'ह' हो जाता है, जैसे—बधिर > बहिर, व्याध > वाह। वैदिक-भाषा में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जैसे—प्रतिसंधाय > प्रतिसंहाय (गोपथब्राह्मण, २-४)। अतः वैदिक-भाषा और प्राकृत-भाषा इन दोनों की एक कोई मूलभाषा होनी चाहिए और इस प्रकार प्राकृत-भाषा का मूल संस्कृत नहीं है। इस पक्ष के समर्थन में यह भी कहा जाता है कि वैदिक-संस्कृत लौकिक-संस्कृत, इन दोनों का स्वरूप परिमार्जित है और जिस भाषा का परिमार्जन करके यह ऋषियों या शिष्टों की भाषा बनी, वह जन-साधारण द्वारा बोली जानेवाली भाषा प्राकृत थी। तात्पर्य यह है कि जैसे आजकल भी जन-साधारण द्वारा बोली जानेवाली भाषा तथा शिष्ट लोगों की साहित्यिक-भाषा दोनों साथ-साथ चलती हैं उसी प्रकार वैदिककाल में भी दो तरह की भाषाएँ रही होंगी। जो प्राकृत-जन (साधारण-जन) की भाषा थी, वही प्राकृत-भाषा है। अतः संस्कृत से प्राकृत-भाषा निकली, ऐसा कहना महत्त्वहीन है।

यहाँ विचारणीय यह है कि वैदिक-भाषा और प्राकृत-भाषा की अनुरूपता को देखकर जिस वैदिक-भाषा और प्राकृत-भाषा का समानान्तर होना और उन दोनों की मूलभाषा की कल्पना करना सिद्ध किया जा सकता है, उसी प्रकार उस अनुरूपता को देखकर प्राकृतभाषा का संस्कृत-भाषा से निकलना भी सिद्ध किया जा सकता है। दोनों ओर प्रमाण समान हैं। दूसरी बात यह है कि दो-चार अनुरूप शब्दों को देखकर ही किसी निश्चय पर पहुँचना न्याय्य नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक दूसरी युक्ति का प्रश्न है, कि साहित्यिक भाषा और साधारण बोल-चाल की भाषा दोनों साथ-साथ चलती हैं अतः प्राकृत स्वतन्त्र भाषा है, यह कहा जा सकता है कि वैदिक-भाषा के समय चलने वाली बोल-चाल की भाषा में रचित कोई साहित्य या कोई भी उसका चिह्न आजकल नहीं मिलता अतः उस समय की बोलचाल की भाषा ही इस साहित्यिक प्राकृत का मूल है, इसमें भी कोई निश्चायक प्रमाण नहीं। यह स्वयं में एक आश्चर्य की बात है कि जिस प्रकार लौकिक संस्कृत-साहित्य में (कम-से-कम नाटकों में) प्राकृत का उपयोग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किया गया और इतने विशाल वैदिक साहित्य में प्राकृत में रचना की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी गयी। अतः ऐसा लगता है कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत-भाषा से ही हुई है। यद्यपि एक सर्वथा विभाजक रेखा खींचकर संस्कृत से ही प्राकृत की उत्पत्ति मानने का हठ भी उक्त हठ के समान ही युक्तिसंगत नहीं। संस्कृत नाटकों में प्राकृत-भाषा का जो प्रयोग हुआ वह प्रायः अनपढ़ पात्रों द्वारा ही हुआ। अतः उन लोगों के संवाद में संस्कृत से उद्भूत शब्दों के साथ-साथ कुछ देशज शब्द भी यदि आ गये तो इससे किसी अन्य निश्चय की ओर जाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

संस्कृत-भाषा से ही प्राकृत-भाषा निःसृत है, इस मत का समर्थन स्वयं प्राकृत-भाषा के वैयाकरणों ने ही किया है, जैसे— १. 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्' (हेमचन्द्र), २. 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' (प्राकृतसर्वस्व), ३. 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्' (प्राकृतचन्द्रिका), ४. 'प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता' (षड्भाषाचन्द्रिका), ५. 'प्राकृतस्य तु स्वयमेव संस्कृतं योनिः' (प्राकृत-संजीवनी)।

हमारी समझ से किसी भाषा की विशेषताओं को हृदयंगम करनेवाले उस भाषा के वैयाकरण उस भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ कहें उसे बिना ननु-नच के स्वीकार कर लेना चाहिए। मनोरंजक बात तो यह है कि, प्राकृत से संस्कृत-भाषा निकली, इस मत को माननेवाले इस बात पर बहुत बल देते हैं कि संस्कृत (वैदिक या लौकिक) शिष्ट-जनों की भाषा थी, न कि सर्वसाधारण की भाषा। परन्तु तथ्य ठीक इसके विपरीत है। संस्कृत-भाषा कभी, जिस अर्थ में प्राकृत-भाषा को बोल-चाल की साधारण भाषा कहा जाता है, ठीक उसी अर्थ में व्यवहृत थी। स्वयं महाभाष्यकार पतंजलि ने, संस्कृत-भाषा सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा थी, इसे 'अजेर्व्यघञपोः' (वा०, २-४-५६) सूत्र के भाष्य में वैयाकरण और रथकार के प्रसंग को उठाकर सिद्ध किया है; जैसे—"एव हि कश्चिद् वैयाकरण आह—कोऽस्य रथस्य प्रवेता इति। सूत आह—अहमायुष्मन्, अस्य रथस्य प्राजिता इति। वैयाकरण आह- अपशब्द इति। सूत आह—प्राप्तिज्ञो देवानां प्रियः, न तु इष्टिज्ञः, इष्यत एतद्रूपमिति। वैयाकरण आह—अहो नु खल्वनेन दुरुक्तेन बाध्यामहे इति। सूत आह—"न खलु वेञः सूतः, सुवतेरेव सूतः। यदि सुवतेः कुत्सा प्रयोक्तव्या दुःसूतेनेति वक्तव्यम्।" इस प्रसंग से तथा साधारणजनों में झगड़े के समय प्रयुक्त दण्डादण्डि, केशाकेशि, मुष्टामुष्टि आदि प्रयोगों को देखकर यह विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत जनसाधारण के बोलचाल की भाषा थी और इस प्रकार के बोल-चाल की संस्कृत-भाषा से यदि प्राकृत-भाषा की उत्पत्ति हुई तो मैं समझता हूँ कि जो लोग जनसाधारण की भाषा को प्राकृत कहते हैं और उसी से इस प्राकृत-भाषा की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहनेवाले हैं, उन्हें भी संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होगी।

प्राकृत भाषाएँ—यों तो, एक भाषा से दूसरी भाषा को, कम-से-कम काल को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

दृष्टि से, विभक्त करनेवाली कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती तथापि पालि-भाषा युग की समाप्ति के ठीक बाद से ही प्राकृत-भाषाओं का विकास-क्रम माना जा सकता है। सच पूछा जाय तो पालि को प्राकृत की ही प्रथम अवस्था कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। प्राकृत-भाषा के विभिन्न रूपों को देखकर उन-उन (विशेष रूपों) को व्यक्त करने के लिए पृथक्-पृथक् नामकरण हुए हैं और उन नामकरणों के सम्बन्ध में मतभेद भी पाये जाते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे भेद सब मिलकर प्राकृतभाषा नहीं हैं। भरतमुनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में भाषाओं के परिचय के प्रसंग में सात प्रकार की प्राकृत-भाषाओं के नाम गिनाये हैं; जैसे--

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी।
बाह्लीका दाक्षिणात्याश्च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः ॥

—भरतनाट्यशास्त्र, १७।४८

अर्थात् मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीका, दाक्षिणात्या—ये सात प्राकृत-भाषाएँ हैं। चाहे इन भाषाओं का भाषाशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्व हो या न हो, किन्तु संस्कृत के नाटककारों ने अपने पात्रों के मुँह से विभिन्न बोलियाँ कहलवायी हैं, और प्राकृत-भाषा के वैयाकरणों ने इन भाषाओं का विवेचन प्रस्तुत किया है। प्राकृत-भाषा के वैयाकरणों में विस्तृत विवेचन करनेवालों में वररुचि का नाम सर्वप्रथम आता है। उनके अनुसार महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, ये चार प्राकृत-भाषाएँ हैं। यद्यपि वररुचि ने प्राकृत-प्रकाश के प्रथम आठ परिच्छेदों में ही केवल महाराष्ट्री का ही विवेचन प्रस्तुत किया है और इन्हीं परिच्छेदों पर टीकाकारों की टीकाएँ मिलती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वैयाकरणों ने महाराष्ट्री को प्रमुख और साहित्य की भाषा माना है।

प्राकृतभाषा के भेदों का ज्ञान करने के लिए हम इनका इस प्रकार भेद कर सकते हैं—

१. पालि, २. पैशाची, ३. चूलिका पैशाची, ४. अर्धमागधी, ५. जैनमहाराष्ट्री, ६. अशोकलिपि, ७. शौरसेनी, ८. मागधी, ९. महाराष्ट्री, १०. अपभ्रंश।

पालि—पालि के सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है।

पैशाची—ऐतिहासिकों का मत है कि गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृत में ही मूलतः 'बृहत्कथा' लिखी थी जो इस समय उपलब्ध नहीं है। वर्तमान समय में पैशाची भाषा के उदाहरण प्राकृत-प्रकाश, हेमचन्द्र का प्राकृत-व्याकरण, षड्भाषाचन्द्रिका, प्राकृत-सर्वस्व एवं संक्षिप्तसार आदि प्राकृत के व्याकरणों में, हेमचन्द्रकृत कुमारपालचरित तथा काव्यानुशासन में, मोहराजपराजय नामक नाटक में और दो-एक षड्भाषास्तोत्रों में मिलते हैं। यद्यपि भरतमुनि ने पैशाची का उल्लेख नहीं किया, तथापि उनके परवर्ती रुद्रट ने काव्यालंकार में, केशव मिश्र ने अलंकार-शेखर में पैशाची का उल्लेख किया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। वाग्भट्टालंकार में वाग्भट्ट ने संस्कृत-प्राकृतं तस्यापभ्रंशो भूतभाषितम्' (२-१) लिखकर पैशाची को 'भूतभाषित' कहा है। षड्भाषाचन्द्रिकाकार ने 'रक्ष पिशाचनीचेषु पैशाची द्वितयं भवेत्' पृष्ठ (३,३५) [राक्षस, पिशाच और नीच पात्रों के लिए पैशाची भाषा का प्रयोग बतलाया है।] कहा है।

प्राकृतसर्वस्व में मार्कण्डेय ने सिद्धान्त रूप में 'कैकयं शौरसेनं च पाञ्चालमिति च त्रिधा पैशाच्यः' कैकय पैशाची, शौरसेन पैशाची और पाञ्चाल पैशाची, इन तीन प्रकार की पैशाची भाषाओं का तीन देशों के आधार पर नामकरण किया है। मार्कण्डेय ने शौरसेन पैशाची और पाञ्चाल पैशाची का मूल कैकय पैशाची को माना है। ग्रियर्सन के मत में पिशाचभाषा-भाषी लोगों का आदिम वासस्थान उत्तर-पश्चिम पञ्जाब अथवा अफगानिस्तान का प्रान्त प्रदेश है और बाद में वहाँ से ही इसका अन्य देशों में विस्तार हुआ है। वररुचि ने शौरसेनी प्राकृत को ही प्राकृत-भाषा का मूल माना है ('प्रकृतिः शौरसेनी'—प्राकृत-प्रकाश १०-२)। प्राकृतवैयाकरणों के मत से शौरसेनी या संस्कृत भाषा पैशाची-भाषा का मूल है।

व्याकरण, नाटक और काव्यों से प्राप्त पैशाची-भाषा के उदाहरणों से इस भाषा का समय ई० की द्वितीय शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी तक माना जा सकता है। शौरसेनी भाषा और पैशाची-भाषा में बहुत बड़ा भेद न होने पर भी कुछ विभाजक भेद मिलते ही हैं, जैसे – ज्ञ, न्य और ण्य के स्थान में 'ञ्ञ' होता है। प्रज्ञा > पञ्ञा, कन्यका > कञ्ञका, ज्ञान > ञ्ञान, अभिमन्यु > अभिमञ्ञु, पुण्य > पुञ्ञ। ण, और न के स्थान में न हो जाता है, जैसे गुण > गुन, कनक > कनक। इसी तरह नाम-विभक्ति, आख्यात एवं कृदन्तों में भी कुछ अँगुलियों पर गिने जाने योग्य भेद मिलते हैं।

चूलिका पैशाची—यद्यपि पैशाची-भाषा का चूलिका-पैशाची, ऐसा भेद सभी वैयाकरणों और कोशकारों को अभीष्ट नहीं है तथा अलंकार ग्रन्थों में भी चूलिका पैशाची का उल्लेख नहीं मिलता और सच पूछिये तो चण्ड, वररुचि, क्रमदीस्वर और मार्कण्डेय प्रभृति वैयाकरणों ने पैशाची-भाषा के लक्षणों में ही इसे अन्तर्भूत किया है तथापि केवल आचार्य हेमचन्द्र ने और उन्हीं का पूरा-पूरा अनुसरण करनेवाले षड्भाषा-चन्द्रिकाकार पं० लक्ष्मीधर ने चूलिका पैशाची को पैशाची-भाषा से पृथक् माना है। पार्थक्य के अतिसंक्षिप्त अधोलिखित कुछ कारण दिये गये हैं—

१. वर्ग के तृतीय और चतुर्थ अक्षरों के स्थान में क्रमशः प्रथम और द्वितीय होता है—

यथा—नगर > नकर, व्याघ्र > वक्ख, राजा > राचा, निर्झर > निच्छर, तडाग > तटाक आदि।

२. 'र' के स्थान में वैकल्पिक 'ल' होता है— यथा–रुद्र > लुद्द या रुद्द आदि।

स्वयं आचार्य हेमचन्द्र भी अपने 'अभिधानचिन्तामणि' नामक संस्कृतकोश ग्रन्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के "भाषाः षट् संस्कृतादिकाः (काण्ड २।१९९)" इस वचन की 'संस्कृत—प्राकृत—मागधी-शौरसेनी-पिशाची—अपभ्रंशलक्षणाः" यह व्याख्या करते हुए चूलिका-पैशाची का अलग उल्लेख नहीं करते। वस्तुतः चूलिका पैशाची के उदाहरण हेमचन्द्रकृत 'कुमारपालचरित' और 'काव्यानुशासन' से तथा इनके अतिरिक्त 'हम्मीरमदमर्दन' नामक नाटक और दो-एक छोटे-छोटे षड्भाषास्तोत्रों से ही इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

अर्धमागधी--भगवान् महावीर ने अपने सम्पूर्ण धर्मोपदेश अर्धमागधी भाषा में दिये हैं। उनके समसामयिक गणधर श्री सुधर्मस्वामी ने अर्धमागधी भाषा में ही भगवान् के उपदेश के अनुसार आचारांग प्रभृति सूत्रग्रन्थों की रचना की थी। इन वर्तमान सूत्रों की भाषा में थोड़ी-बहुत जो विभिन्नता देखने में आती है उसका कारण स्पष्ट है। भगवान् महावीर के निर्वाण से करीब दो सौ वर्ष के बाद (ई० पू० ३१०) चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में बारह वर्षों का सुदीर्घ अकाल पड़ा। फलतः साधु लोगों को निर्वाह के लिए दक्षिण देश (समुद्र-तीरवर्ती प्रदेश) जाना पड़ा। वहाँ गये हुए साधुओं ने जैनधर्म के प्रचार के लिए वहाँ की भाषा पर अधिकार किया होगा और अविकृत भाषा से इनकी पहले की सीखी हुई भाषा भी अवश्य प्रभावित हुई होगी। उक्त घटना से करीब आठ सौ वर्षों के बाद वलभी (सौराष्ट्र) और मथुरा में जैन-ग्रन्थों को लिपिबद्ध करने के लिए मुनिसम्मेलन किये गये थे। सम्मेलन में देश के विभिन्न प्रदेशों से आये हुए मुनियों की भाषा का प्रभाव स्पष्ट है।

अर्धमागधी को ही ऋषिभाषिता या आर्षभाषा कहते हैं। प्राकृत व्याकरण में आचार्य हेमचन्द्र ने आर्य-प्राकृत के जो लक्षण-उदाहरण बताये हैं उनसे और 'अत एत्सौ पुंसि मागध्याम्' (हेमचन्द्र प्रा०, ४।२८७, सूत्र की व्याख्या में जो "यद्यपि पोराणमद्धमागह-भासानि ययं हवइ सुत्तं" इत्यादिना "आर्षस्य अर्धमागधभाषानियतत्वमाम्नायि वृद्धैस्त-दपि प्रायोऽस्यैव विधानात्, न वक्ष्यमाणलक्षणस्य" यह कहकर उद्धृत "कयरे आगच्छइ, से तारिसे जिइन्दिए" यह उदाहरण दिया है, उससे अर्धमागधी को ही आर्यभाषा भी कहते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है।

डॉ० जैकोबी ने प्राचीन जैन-सूत्रों की भाषा को प्राचीन महाराष्ट्री कहकर जैन महाराष्ट्री नाम दिया है। किन्तु डॉ० पिशल ने इसका सप्रमाण खण्डन कर सिद्ध किया है कि आर्ष और अर्ध-मागधी एक हैं।

सातवीं शताब्दी के ग्रन्थकार श्रीजिनदासगणिमहत्तर ने अर्धमागध शब्द की व्याख्या के प्रसंग में निशीथचूर्णि ग्रन्थ में) 'मगहद्धविसयभासानिबद्धं अद्धमागहं' अर्थात् मगध देश के अर्ध प्रदेश की भाषा में निबद्ध होने के कारण प्राचीन सूत्र अर्धमागध कहा जाता है, ऐसा कहा है। यतः नाटकीय अर्धमागधी में मागधी-भाषा के अधिकांश लक्षण मिलते हैं, अतः कुछ लोगों ने अर्धमागधी शब्द की व्युत्पत्ति 'अर्धे मागध्याः' ऐसा मानकर मागधी से अर्धमागधी की उत्पत्ति मानी, जो विद्वानों को मान्य नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्धमागधी के उत्पत्तिस्थल के सम्बन्ध में ग्रियर्सन ने प्राकृत-भाषाओं के भौगोलिक विवरण में यह स्थिर किया है कि जैन अर्धमागधी मध्यदेश (शूरसेन) और मगध के मध्यवर्ती देश (अयोध्या) की भाषा थी। इसी से आधुनिक पूर्वी हिन्दी उत्पन्न हुई है।

आर० जी० भण्डारकर अर्धमागधी का उत्पत्तिसमय ईसा की दूसरी शताब्दी मानते हैं। इसके पूर्व कोई भी साहित्यिक प्राकृत भाषा की रचना नहीं मिलती। डॉ० सुनीति-कुमार चटर्जी ने इसका समय तृतीय शताब्दी माना है। डॉ० ल्यूडर्स ने प्रथम शताब्दी तथा डॉ० जैकोबी ने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का अन्तिम भाग और ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी का प्रथम भाग इसका समय माना है। त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित भासनाटकचक्र के तथा अश्वघोषकृत नाटकों के जो अंश डॉ० ल्यूडर्स ने प्रकाशित किये हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी के पूर्व ही अर्धमागधी में साहित्य-रचना का सामर्थ्य आ गया था।

जैन-महाराष्ट्री--प्रायः श्वेताम्बर जैनों के रचे हुए ग्रन्थों की प्राकृत-भाषा को जैन-महाराष्ट्री भाषा कहते हैं। इसमें तीर्थंकर और प्राचीन मुनियों की चरित्र-कथाएँ, दर्शन, तर्क, ज्योतिष, भूगोल, स्तुति आदि विषयों का विशाल साहित्य है। प्राकृत के प्राचीन वैयाकरणों ने तो जैन-महाराष्ट्री को स्पष्टतः पृथक् भाषा नहीं माना, किन्तु आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने व्याकरण, काव्य और नाटक-ग्रन्थों की महाराष्ट्री भाषा से श्वेताम्बर जैनों के ग्रन्थों की भाषा में कुछ विभिन्नताओं को देखकर इसे जैन-महाराष्ट्री कहा है। जैन-महाराष्ट्री में कुछ प्राचीन ग्रन्थ हैं, जैसे—पयन्ना-ग्रन्थ, पउमचरिउ, उपदेशमाला आदि।

अशोक-लिपि—सम्राट् अशोक ने अपने धर्म के उपदेशों को देश के विभिन्न स्थानों में शिलाओं पर खुदवाकर लगवाये। ये सब शिलालेख उस समय प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रादेशिक भाषाओं में रचित हैं।

शौरसेनी--संस्कृत नाटकों में प्राकृत गद्यांश सामान्यरूप से शौरसेनी प्राकृत में लिखे गये हैं। अश्वघोष, भास, कालिदास के नाटकों और इसके बाद के अनेक नाटकों में शौरसेनी भाषा के उदाहरण मिलते हैं। शौरसेनी भाषा के लक्षण और उदाहरण वररुचि, हेमचन्द्र, क्रमदीश्वर, लक्ष्मीधर और मार्कण्डेय आदि वैयाकरणों ने दिये हैं। दण्डी, रुद्रट और वाग्भट्ट आदि आलंकारिकों ने तथा भरतमुनि ने शौरसेनी भाषा का उल्लेख किया है। इस भाषा की उत्पत्ति शूरसेन देश अर्थात् मथुरा प्रदेश में हुई है। वररुचि ने अपने व्याकरण में संस्कृत से शौरसेनी भाषा को निःसृत माना है। शौरसेनी भाषा का भी समय ईसवी प्रथम या द्वितीय शताब्दी माना जाता है।

मागधी—अशोक-साम्राज्य के उत्तर और पूर्वभागों के खालसी (कालसी), मिरट, लौरिया, सहसराम, बाराबार, रामगढ़, धौलि और जौगड़ आदि स्थानों के अशोक शिलालेखों में मागधी-प्राकृत के सर्वप्राचीन निदर्शन पाये जाते हैं। अश्वघोष

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के नाटकों के खण्डित अंशों में, भास एवं कालिदास के नाटकों में, तथा मृच्छकटिक-प्रकरण में मागधी भाषा के उदाहरण मिलते हैं। वररुचि, चण्ड, हेमचन्द्र आदि प्रायः समस्त प्राकृत वैयाकरणों ने मागधी भाषा के लक्षण और उदाहरण दिये हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में मागधी भाषा का उल्लेख है—"मागधी तु नरेन्द्राणामन्त पुरनिवासिनाम्" (नाट्यशास्त्र, १७।५०) तथा "सुरङ्गाखनकादीनां शुण्डकाराश्वरक्षिणाम् । व्यसने नायकानां स्यादात्मरक्षासु मागधी" (नाट्यशास्त्र, १७।५६) अर्थात् राजा के अन्तःपुर में रहनेवाले, सुरंग-खोदनेवाले, कलवार, अश्वपालक आदि पात्रों के लिए तथा विपत्ति में नायक के लिए भी मागधी भाषा का प्रयोग निर्दिष्ट है। मार्कण्डेय ने "राक्षसभिक्षुक्षपण-कचेटाद्या मागधीं प्राहुः" अर्थात् नाट्यशास्त्र में गिनाये गये पात्रों के अतिरिक्त भिक्षु, क्षपणक आदि अन्य लोग भी मागधी भाषा का व्यवहार करें, ऐसा माना है।

मागधी, मगध देश की भाषा रही। यद्यपि मगध देश के बाहर भी अशोक के शिलालेखों में यह भाषा पायी जाती है, परन्तु इसमें मागधी भाषा का उस समय राजभाषा होना ही कारण प्रतीत होता है। वररुचि ने "प्रकृतिः शौरसेनी" (प्राकृत प्र०, ११-२) और इन्हीं का अनुसरण करनेवाले मार्कण्डेय ने "मागधी शौरसेनीतः" (प्राकृत सर्वस्व, पृष्ठ १०१) शौरसेनी से ही मागधी की उत्पत्ति बतायी है। मागधी के शांकारी, चाण्डाली और शाबरी, ये तीन प्रकार मिलते हैं।

महाराष्ट्री--प्राकृत-काव्य और गीति की भाषा महाराष्ट्री कही जाती है। सेतु-बन्ध, गाथासप्तशती, गउडवहो; कुमारपालचरित प्रभृति ग्रन्थों में इस भाषा के उदाहरण मिलते हैं। बाद के नाटकों में, गद्य में शौरसेनी बोलनेवाले पात्रों के लिए भी संगीत या पद्य महाराष्ट्री भाषा में ही रचे गये तथा कालिदास और उनके बाद के सभी नाटकों में पद्य के लिए महाराष्ट्री भाषा का प्रयोग, इस भाषा की प्रसिद्धि का द्योतक है।

चण्ड और आचार्य हेमचन्द्र ने यद्यपि महाराष्ट्री का नाम-निर्देश नहीं किया है, तथापि क्रमशः आर्ष-प्राकृत तथा साधारण प्राकृत नाम से ही इसके लक्षण-उदाहरण दिये हैं। वररुचि, क्रमदीश्वर, त्रिविक्रम, लक्ष्मीधर, मार्कण्डेय आदि वैयाकरणों ने महाराष्ट्री का मुख्य रूप से विवरण दिया है और शौरसेनी, मागधी आदि वैयाकरणों ने महाराष्ट्री के सात भेद भी बतलाये हैं। भरतमुनि ने 'दाक्षिणात्या' प्राकृत-भाषा का भेद सम्भवतः महाराष्ट्री के लिए ही कहा है। दण्डी ने महाराष्ट्री को सर्वोत्कृष्ट भाषा बतलाया है।

"महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम् ॥"

(—काव्यादर्श, १।३४)

महाराष्ट्री का उत्कर्ष देखकर ही महाराष्ट्री के अर्थ में प्राकृत शब्द का प्रयोग होने लगा। दण्डी के बाद रुद्रट, वाग्भट्ट आदि आलंकारिकों ने ऐसा ही किया है।

दण्डी ने महाराष्ट्र देश से ही महाराष्ट्री भाषा की उत्पत्ति मानी है। ग्रियर्सन ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

महाराष्ट्री प्राकृत से ही मराठी भाषा की उत्पत्ति मानी है। डॉ० हार्नले मानते हैं कि महाराष्ट्री का अर्थ विशाल राष्ट्र की भाषा है। विशाल राष्ट्र के अन्तर्गत राजपूताना तथा मध्यप्रदेश आदि आते हैं। किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है।

महाराष्ट्री भाषा का समय विद्वानों ने सामान्यतः ईसा की प्रथम शताब्दी माना है। अवन्ती और वाह्लीकी, ये दोनों भाषाएँ महाराष्ट्री भाषा में ही अन्तर्भूत हैं।

अपभ्रंश—अपभ्रंश भाषा का वर्णन अपभ्रंश खण्ड में किया जायेगा।

प्राकृत भाषा का साहित्य—जिस प्रकार संस्कृत भाषा में वैदिक-धर्म से सम्बद्ध धर्म, दर्शन, काव्य, व्याकरण आदि लिखे गये तथा पालि-भाषा में बौद्ध-धर्म से सम्बद्ध; उसी प्रकार जैन-धर्म से सम्बद्ध प्रायः समस्त साहित्य और स्वभावतः उसके उपकारक व्याकरण, काव्य आदि प्राकृत-भाषा में लिखे गये। प्राकृत-भाषा के प्रायः समस्त भेदों के सम्बन्ध में ऊपर विचार हो चुका है। उसी प्रसंग में कहा गया है कि भगवान् महावीर ने अर्धमागधी में धर्मोपदेश किया था।

जैन-आगम--(ई० पूर्व ५ वीं शताब्दी से ई०.की पाँचवीं शती तक) जैन-परम्परा के अनुसार (भद्रबाहुकृत आवश्यकनिर्युक्ति, ९२)

"अत्यं भासइ अरहा,सुत्तं गथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हिमट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तेइ ॥'

अर्हत् भगवान् ने आगमों के अर्थ कहे, गणधरों ने (उसी के आधार पर) भलीभाँति सूत्रों की रचना की आगमों की। संख्या ४६ हैं।

अंग--१ आयारांग, २. सूयगडांग, ३. ठाणांग, ४ समवायांग, ५. वियाहपण्णत्ति (भगवती), ६ नायाधम्मकहाओ, ७. उवासगदसाओ, ८. अतगडदसाओ, ९. अणुत्तरोववाइयदसाओ, १०. पण्हवागरणाइं, ११. विवगसूय और १२. दिट्ठिवाय (विच्छिन्न) ये बारह अंग हैं।

उपांग--१. ओववाइय, २. रायपसेणइय, ३. जीवाभिगम, ४. पन्नवणा, ५. सूरियपण्णत्ति, ६, जंबूदीवपण्णत्ति, ७ चंदपण्णत्ति ८. निरयावलियाओ, ९. कप्पवडंसियाओ, १०. पुप्फियाओ, ११. पुप्फचूलियाओ, और १२. वण्हिदसायो--ये बारह उपांग हैं।

पइन्ना--१. चउसरण, २, आउरपच्चाक्खाण, ३. कहापच्चक्खाण, ४. भत्तपयिण्णा, ५. तंदुलवेयालिय, ६. संथारग, ७. गच्छायार, ८. गणिविज्जा, ९. देविन्दत्थव, १०. मरणसमाही-ये दस पइन्ना हैं।

छेयसुत्त– १. निसीह, २. महानिसीह, ३. ववहार, ४. दसासुयक्खंध (आयारदसाओ), ५. कप्प (बृहत्कल्प) और ६. पंचकप्प (अथवा जीयकप्प) ये छह छेयसुत्त हैं।

मूलसुत्त—१. उत्तरज्झयण, २. दसवेयालिस, ३. आवस्सय, ४. पिंडनिज्जुत्ति (अथवा ओहनिज्जुत्ति)—ये चार मूलसुत्त हैं।

इनके अतिरिक्त देववाचककृत नन्दी और आर्यरक्षितकृत अनुयोगद्वार दो और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

आगम ग्रंथ हैं जिनकी गणना एक साथ ही होती है और जो अपेक्षाकृत अर्वाचीन माने जाते हैं।

गणधरों द्वारा संगृहीत जैन-आगमों की यह भाषा अपने वर्तमान रूप में हमें महावीर-निर्माण के लगभग एक हज़ार वर्ष बाद उपलब्ध होती है। इस एक हजार वर्ष के लम्बे समय में स्वभावतः अनेक आगमों के अनेक अंश लुप्त एवं नष्ट-भ्रष्ट हो गये, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि वर्तमान आगमों का कम महत्त्व है। इस विशालकाय साहित्य में प्राचीनतम जैन-परम्पराएँ, अनुश्रुतियाँ, लोक-कथाएँ, तत्कालीन रीति-रिवाज, धर्मोपदेश की पद्धतियाँ, आचार-विचार, संयम-पालन की विधियाँ आदि बहुविध विषय उल्लिखित हैं, जिनके अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अवस्थाओं पर प्रकाश पड़ता है। इतना ही नहीं, जैन-धर्म के विकास की कुछ त्रुटित शृङ्खलाएँ भी इनके आधार पर जोड़ी जा सकती हैं।

आगम-व्याख्या-साहित्य--(ई० दूसरी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक)

जैसा कि विश्व के समस्त विशिष्ट एवं प्रामाणिक धार्मिक मूलग्रंथों के सम्बन्ध में देखा जाता है कि परवर्ती आचार्यों ने उन पर टीकाएँ, उपटीकाएँ एवं उन सिद्धान्तों के प्रतिपादक मूलग्रंथों को लिखकर धर्म की विस्तृत व्याख्या एवं उसके दार्शनिक स्वरूप को निश्चित करते-करते एक सुदीर्घ साहित्य की रचनाएँ प्रस्तुत कर दी हैं, वैसे ही जैन-आगम-ग्रंथों पर बाद के आचार्यों ने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, विवरण, विवृति, वृत्ति, दीपिका, अवचूरि, अवचूर्णी, विवेचन, व्याख्या, छाया, अक्षरार्थ-पञ्जिका, टब्बा, भाषाटीका, वचनिका आदि विपुल व्याख्यात्मक साहित्य लिखा है। प्राकृत-साहित्य के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से इस व्याख्यापरक साहित्य में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि तथा कतिपय टीकाएँ प्राकृतभाषाबद्ध होने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। इन चार व्याख्यात्मक ग्रन्थों को आगमों के साथ मिला देने से यह पञ्चाङ्गी साहित्य कहा जाता है। इस पञ्चाङ्गी साहित्य के अध्ययन से प्राकृत साहित्य के क्रमिक विकास को समझने में पर्याप्त सुविधा होती है।

निज्जुत्ति (निर्युक्ति) :—पूरे व्याख्यात्मक ग्रन्थों में निर्युक्ति का बड़ा महत्व है। हरिभद्र ने दशवैकालिक-वृत्ति में, "निर्युक्तानामेव सूत्रर्थानां युक्तिः = परिपाट्या योजनम्" (पृष्ठ ४)। अर्थात् सूत्रप्रतिपादित अर्थों को एक पद्धतिविशेष में कहना 'निर्युक्ति' कहलाता है। आगम-ग्रंथों पर आर्याछन्द में प्राकृतगाथाओं में लिखा हुआ संक्षिप्त विवेचन 'निर्युक्ति' के नाम से कहा जाता है। इसमें विषय का प्रतिपादन करने के लिए अनेक कथानकों, उदाहरणों और दृष्टान्तों का उपयोग किया गया है। निर्युक्ति में भी इतना सांकेतिक और संक्षिप्त वर्णन होता है कि इस पर भाष्य और टीकाएँ आवश्यक हो जाती हैं। मुख्य निर्युक्तियाँ अधोलिखित हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१) भद्रबाहुसूरि कृत आचारांगसूत्र पर निर्युक्ति, जिसमें ३५६ गाथाएँ हैं।

(२) इन्द्रभूति गणधर-कृत सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, जिसमें २०५ गाथाएँ हैं।

(३) भद्रबाहुकृत सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति। यह निर्युक्ति आजकल अनुपलब्ध है।

(४) भद्रबाहु ने बृहत्कल्प और व्यवहारसूत्र के ऊपर निर्युक्ति लिखी है। इन्होंने निशीथनिर्युक्ति भी लिखी, जो आचारांगसूत्र का ही एक अध्ययन होने से आचारांग-निर्युक्ति में समाविष्ट हो गयी है।

(५) दशाश्रुतस्कन्ध पर अत्यन्त लघूकाय दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति लिखी गयी है।

(६) भद्रबाहु ने उत्तराध्ययनसूत्र पर उत्तराध्ययननिर्युक्ति की रचना की है, जिसमें ५५९ गाथाएँ हैं।

(७) भद्रबाहु ने आवश्यक-सूत्र में प्रतिपादित छह आवश्यकों की विस्तृत एवं विवेचनात्मक आवस्यकनिर्युक्ति लिखी है। इस पर माणिक्यशेखरसूरि ने दीपिका लिखी है।

(८) दशवैकालिक पर भद्रबाहुकृत निर्युक्ति है. जिसमें ३७१ गाथाएँ हैं। इसमें अनेक लौकिक और धार्मिक कथानकों तथा सूक्तियों द्वारा सूत्रार्थ का स्पष्टीकरण किया गया है।

(९) चतुर्दश पूर्वधारी भद्राबाहुकृत संसत्तनिज्जुत्ति, जिसमें ६४ गाथाएँ हैं। यह निर्युक्ति किसी आगम-ग्रन्थ पर न लिखी जाकर स्वतन्त्र निर्युक्ति है।

(१०) गोविन्दकृत गोविंन्दणिज्जुत्ति, जिसे दर्शन-प्रभावक शास्त्र कहा गया है। यह भी एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। आजकल यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है।

(११) बट्टेकर ने आराधनाणिज्जुत्ति नामक निर्युक्ति-ग्रंथ लिखा है। इस निर्युक्ति के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

भाष्य-साहित्य—भाष्य-ग्रन्थ की निर्युक्तियों की भाँति प्राकृतगाथाओं में संक्षिप्त शैली में लिखे गये हैं। भाष्यों की भाषा, निर्युक्तियों के समान मुख्यरूप से अर्धमागधी ही है तथापि यत्र-तत्र मागधी और शौरसेनी के भी प्रयोग देखे जाते हैं। भाष्य का मुख्य छन्द आर्या है। भाष्यों का समय सामान्यतः ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना जा सकता है। भाष्यों में प्राचीन अनुश्रुतियाँ, लौकिक-कथाएँ, प्राचीन आचार-विचार की विधियाँ आदि प्रतिपादित हैं। निशीथ भाष्य, व्यवहार भाष्य, बृहत्कल्प

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भाष्य, जीतकल्प भाष्य, उत्तराध्ययन-भाष्य, आवश्यक-भाष्य, देशवैकालिक-भाष्य, पिण्डनिर्युक्ति-भाष्य और ओघनिर्युक्ति-भाष्य आदि प्रमुख भाष्य हैं।

चूर्णी-साहित्य—निर्युक्ति और भाष्य-साहित्य की भाँति ही चूर्णियों का स्थान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनकी भाषा प्राकृतमात्र नहीं है, अपितु अनेकत्र संस्कृत-मिश्रित प्राकृत भी है। चूर्णियाँ गद्य में लिखी गयी हैं। चूर्णियों में प्राकृत की लौकिक, धार्मिक अनेक कथाएँ, प्राकृत-भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति तथा संस्कृत एवं प्राकृत के अनेक पद्यों के उद्धरण दिये गये हैं। इनमें निशीथ की विशेषचूर्णी तथा आवश्यकचूर्णी विशेष महत्व की हैं। इनमें जैन-पुरातत्व से सम्बन्ध रखनेवाली विपुल सामग्री, देश-देश के रीति-रिवाज, मेले, त्योहार, दुष्काल, चोर, लुटेरे, सार्थवाह, व्यापार के मार्ग, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि विषयों का वर्णन है। लोककथा और भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह साहित्य अत्यन्त उपयोगी है। इनका समय ईसा की छठी शताब्दी के आसपास माना जाता है। निम्नलिखित आगमों पर चूर्णियाँ उपलब्ध हैं—

(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) व्याख्या-प्रज्ञप्ति, (४) कल्प, (५) व्यवहार-निशीथ, (६) पंचकल्प, (७) दशाश्रुतस्कन्ध, (८) जीतकल्प, (९) जीवाभिगम, (१०) जम्बूद्वीपपरिज्ञप्ति, (११) उत्तराध्ययन, (१२) आवश्यक, (१३) दशवैकालिक, (१४) नन्दी और (१५) अनुयोगद्वार।

टीका-साहित्य—आगमसिद्धान्त को समझने के लिए व्याख्यात्मक टीकाएँ संस्कृत में लिखी गयीं। यद्यपि कुछ टीकाओं का कथा-सम्बन्धी अंश प्राकृत में भी उद्धृत किया गया है। ऐसा लगता है कि आगमों की अन्तिम वलभी-वाचना के पूर्व ही आगमों पर टीकाएँ लिखी जाने लगी थीं। विक्रम की तीसरी शताब्दी के आचार्य अगस्त्य सिंह ने अपनी दशवैकालिकचूर्णी में अनेक स्थलों पर इन प्राचीन टीकाओं की ओर संकेत किया है। टीकाकारों में हरिभद्रसूरि (ई० ७०५ से ७७५) का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। टीका-साहित्य के निर्माण के कारण ही प्राकृत-भाषा का कथा-साहित्य, चरित-साहित्य, धार्मिक-साहित्य और शास्त्रीय-साहित्य उत्तरोत्तर विकसित एवं समृद्ध हो गया है।

दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार आगम—इस सम्प्रदाय के अनुसार आगमों के दो भेद हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आगम

- अंगबाह्य (१४ भेद)
  - सामायिक (१)
  - चतुर्विंशतिस्तव (२)
  - वन्दना (३)
  - प्रतिक्रमण (४)
  - वैनयिक (५)
  - कृतिकर्म (६)
  - दशवैकालिक (७)
  - उत्तराध्ययन (८)
  - कल्पव्यवहार (९)
  - कल्पाकल्प (१०)
  - महाकल्प (११)
  - पुण्डरीक (१२)
  - महापुण्डरीक (१३)
  - निषिद्धिका (णिसिहित) (१४)
- अंगप्रविष्ट (१२ भेद)
  - आचार (१)
  - सूत्रकृत (२)
  - स्थान (३)
  - समवाय (४)
  - व्याख्याप्रज्ञप्ति (५)
  - नाथधर्मकथा (६)
  - उपासकाध्ययन (७)
  - अन्तःकृद्दशा (८)
  - अणुत्तरोपपातिक दशा (९)
  - प्रश्नव्याकरण (१०)
  - विपाकसूत्र (११)
  - दृष्टिवाद (१२)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दृष्टिवाद के पांच अधिकार

- परिकर्म (१) — ५ भेद
  - चन्द्रप्रज्ञप्ति (१)
  - सूर्यप्रज्ञप्ति (२
  - जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (३)
  - द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (४)
  - व्याख्याप्रज्ञप्ति (५)
- सूत्र (२)
- प्रथमानुयोग (३)
- पूर्वगत (४)
- चूलिका (५)

सूत्र अधिकार में

- जीव तथा त्रैराशिकवाद
- नियतिवाद
- विज्ञानवाद
- शब्दवाद
- प्रधानवाद
- द्रव्यवाद और
- पुरुषवाद

का वर्णन है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथमानुयोग में पुराणों का उपदेश है।

पूर्वगत अधिकार मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का कथन है। इनकी संख्या १४ है।

चूलिका

जलगता　स्थलगता　मायागता　रूपगता　आकाशगता

दिगम्बर-परम्परा के अनुसार द्वादशांग आगम का उच्छेद हो गया है, केवल दृष्टिवाद का कुछ अंश बाकी बचा है, जो षट्खंडागम के रूप में वर्तमान है। दिगम्बर सम्प्रदाय में आगमों को चार भागों में भी बाँटा गया है—

(१) प्रथमानुयोग—प्रथमानुयोग के अन्तर्गत रविषेणकृत पद्मपुराण, जिनसेन-कृत हरिवंशपुराण एवं आदिपुराण तथा गुणभद्रकृत उत्तरपुराण का परिगणन किया जाता है।

(२) करणानुयोग—इस विभाग के अन्तर्गत सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति तथा जयधवला का समावेश होता है।

(३) द्रव्यानुयोग—द्रव्यानुयोग में कुन्दकुन्द की रचनाएँ (प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय आदि), उपस्वामि का तत्त्वार्थसूत्र एवं उसकी टीकाएँ एवं समन्तभद्र की आप्तमीमांसा आदि ग्रन्थ आते है।

(४) चरणानुयोग—इस विभाजन में वट्टकेर मूलाचार और त्रिवर्णाचार के रत्नकरण्डश्रावकाचार का अन्तर्भाव होता है।

षट्खंडागम दिगम्बर सम्प्रदाय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विपुलकाय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ, उपटीकाएँ रची गयी हैं। षट्खंडागम के छः खण्ड हैं, जिनके नाम अधोलिखित हैं—

(१) जीवट्ठाण, (२) खुदाबन्ध, (क्षुल्लकबन्ध), (३) बन्धस्वामित्वविचय, (४) वेदना, (५) वर्गणा और (६) महाबन्ध।

भूतबलि ने पुष्पदन्तरचित सूत्रों को मिलाकर पाँच खण्डों के छः हजार सूत्र रचने के बाद महाबन्ध की तीन हजार श्लोकप्रमाण की रचना की। महाबन्ध को ही महाधवल के नाम से कहा जाता है।

कसायपाहुड (कषाय-प्राभृत,) तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति), लोक-विभाग, पञ्चास्तिकाय-प्रवचनसार-समयसार, नियमसार, रयणसार, अस्टपाहुड, बारसअणुवेक्खा, भगवती आराधना आदि अनेक ग्रन्थरत्न इस समय की निर्मिति हैं।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक जैन विद्वानों ने जैन-तत्त्वज्ञान, आचार-विचार, क्रियाकाण्ड, तीर्थ, पट्टावलि, ऐतिहासिक प्रबन्ध आदि पर आगमों की परम्परा को आधार मानकर प्राकृत-भाषा में स्वतन्त्र रूप से विपुल साहित्य की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

रचना की है। यह साहित्य अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित और युक्तिसंगत है। इस काल के प्रकरणग्रन्थ तो संक्षिप्त होते हुए भी उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ऊपर दिगम्बर-सम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थों का परिचय दिया गया है; यहाँ श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थों के नाम दिये जाते हैं, जैसे—विशेषावश्यक, प्रवचनसारोद्धार आदि सामान्य ग्रन्थ, सम्मइपयरण (सम्मत्ति प्रकरण), उत्सुत्रखंडन, धम्मसंगहणी (धर्म संग्रहणी) आदि दार्शनिक खण्डन-मण्डन के ग्रन्थ, जीवसमास, विशेषणवती, विंशतिविंशिका आदि सिद्धान्त के ग्रन्थ, कम्मपयडि (कर्मप्रकृति), पंचसंगह (पंचसंग्रह) आदि कर्म-सिद्धान्त के ग्रन्थ, सावयपण्णत्ति (श्रावक प्रज्ञप्ति), सावयधम्मविहि (श्रावक-धर्मविधि) आदि श्रावकाचार के ग्रंथ, जीव-विचार-प्रकरण, नवतत्वगाथा-प्रकरण आदि प्रकरण-ग्रंथ, सामाचारी के ग्रंथ, विधिमार्गप्रपा आदि क्रियाकाण्ड के ग्रंथ, तीर्थसम्बन्धी विविध तीर्थकल्प, पट्टावलियाँ तथा प्रबन्ध-ग्रंथ आदि।

प्राकृत में कथा-साहित्य ईसा की चौथी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक प्राकृत-कथा-साहित्य का निर्माण हुआ। यों तो वेदकाल से आजतक विभिन्न भाषाओं में कथा-साहित्य का भण्डार भरा पड़ा है। इस कथासाहित्य का विस्तार प्राचीन जैन-आगमों और उनकी व्याख्याओं में देखने को मिलता है। इस प्राकृत-कथा-साहित्य मे आकर्षक प्रेमाख्यान, विविध वर्णन, सामान्य-जीवन का चित्रण, मन्त्रशास्त्र का वर्णन आदि विविध सामग्री है। इन कथाओं की भाषा को हरमन जैकोबी आदि विद्वानों ने महाराष्ट्री-प्राकृत नाम दिया है, किन्तु देखने में यह भी आता है कि अनेकत्र प्रकरण-के-प्रकरण संस्कृत अथवा अपभ्रंश में भी ये लिखी गयी हैं।

कथा-साहित्य के कुछ प्रमुख ग्रंथ ये हैं—

(१) तरंगवइकहा, (२) तरंगलोला, (३) वसुदेवहिंडी, (४) समराइच्चकहा, (५) धुत्तक्खाण, (६) कुवलयमाला, (७) णाणपंचमीकहा, (८) अक्खाण मणिकोस, (९) कहारयण कोष, (१०) नम्मयासुंदरीकहा, (११) कुमारवाल पडिवोह, (१२) प्राइअकहा-संगह, (१३) मलयसुंदरीकहा, (१४) सिरिवालकहा, (१५) महीवालकहा, आदि।

इनके अतिरिक्त उवएसमाला, उवएसपद, धर्मोपदेसमालाविवरण, सीलोवएसमाला, संवेगरंगसाला, उवएसरयणायर आदि औपदेशिक कथाएँ भी हैं!

प्राकृत में चरित्र-साहित्य - पुराण-ग्रंथों, रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराण आदि की शैली पर जैन-विद्वानों ने अपने सम्प्रदाय के अनुसार राम, कृष्ण और तीर्थंकर आदि महापुरुषों के जीवन-चरित्र लिखे हैं। तरेसठ शलाकापुरुषों के चरित्र में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव, और नौ प्रतिवासुदेवों के चरितों का समावेश किया गया है। चरितों का निर्माण ई० की चौथी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक हुआ है। कुछ प्रमुख-प्रमुख चरित-काव्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) पउमचरिअ, (२) जंबूचरिअ, (३) सुरसुंदरीचरिअ, (४) पासनाहचरिअ, (५) महावीरचरिअ, (६) सुपासनाहचरिअ, (७) सुदंसणाचरिअ, (८) कण्हचरिअ आदि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चरित्र-ग्रंथों के साथ-साथ स्तोत्र एवं स्तुति-साहित्य भी प्राकृत में पर्याप्त मात्रा में रचे गये। इनमें धनपाल का ऋषभपंचाशिका और वीरथुई, नन्दिषेण का अजियसंतिथव, धर्मवर्द्धन का पासजिनथव, जिनवल्लभ का संतिनाहथव, जिनप्रभसूरि का पासनाहलहुथव आदि अनेक प्रसिद्ध स्तोत्र-साहित्य ग्रंथ हैं।

प्राकृत में काव्य-साहित्य—(ईसवी सन् की पहली शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक) संस्कृत महाकाव्यों की शैली पर ही प्रायः प्राकृत-भाषा में काव्य-साहित्य की रचना हुई है। इस काव्य-साहित्य के सृजन का प्रारम्भ ईसा की पहली शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार का साहित्य धार्मिक उपदेशों एवं धार्मिक चरितों से सम्बद्ध न होकर एक स्वतन्त्र रचना है। सरसता की दृष्टि से प्राकृत-काव्यों का विशेष महत्व है। इसमें श्रृंगार-रस को विशेष स्थान मिला है। प्रायः इस युग में मुक्तक-काव्यों की रचना हुई, जिनका कोई पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता तथा जो एक ही पद्य में पाठक को चमत्कृत कर देने की क्षमता रखते हैं। इन काव्यों में गीतात्मकता का पुट होने से गेय तत्व का भी समावेश है।

गाहासत्तसई—यह श्रृंगाररसप्रधान एक मुक्तक-काव्य है, जिसे सप्तशतक के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इसके रचयिता के सम्बन्ध में मतभेद है। इस ग्रन्थ में अनेक कवियों एवं कवियित्रियों की रचनाओं का संकलन किया गया है। वैसे आजकल, जैसा कि इसके प्रत्येक शतक की समाप्ति पर लिखा गया है, यह रचना हाल के नाम से प्रसिद्ध है। श्रृंगाररसप्रधान होने के कारण इस कृति में नायक-नायिकाओं के वर्णन-प्रसंग में साध्वी, कुलटा, पतिव्रता, वेश्या, स्वकीया, परकीया, चंचला आदि स्त्रियों की मनःस्थितियों का सरस एवं मनोरम चित्रण है।

वज्जालग्ग—गाहासत्तसई की भाँति ही यह भी किसी एक कवि की कृति नहीं है। इसमें अनेक कवियों द्वारा रचे गये प्राकृतपद्यों का संकलन किया गया है। जिनके संकलनकर्त्ता श्वेताम्बरमुनि जयवल्लभ हैं। इस ग्रंथ में ७९५ गाथाएँ हैं, जो सज्जन, दुर्जन, दैव, दारिद्र्य, गज, सिंह, भ्रमर, सुरत, प्रेम, आदि ९५ प्रकरणों में विभक्त हैं। इसके समस्त पद्य सुभाषित हैं, जो आर्याछन्द में धर्म, अर्थ एवं काम का निरूपण करते हैं।

सेतुबन्ध (रावणवहो)—सेतुबन्ध प्राकृत-भाषा में लिखा गया सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। इसका दूसरा नाम दसमुहवह भी है। इस काव्य में १५ आश्वास हैं, जिनमें वानरसेना के प्रस्थान से रावणवध तक की रामकथा का वर्णन है। इसके रचयिता महाकवि प्रवरसेन हैं। ये प्रवरसेन कौन हैं, इनके बारे में विद्वानों में मतभेद है। इस काव्य में यमक, अनुप्रास और श्लेष की प्रमुखता है!

गउडवहो—वप्पइराअ (वाक्पतिराज)—कृत गउडवहो लौकिक चरित्र के आधार पर लिखा हुआ प्रबन्ध-काव्य है। यह काव्य यशोवर्मा की प्रशंसा में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिखा गया है । इसमें १२०९ गाथाएँ हैं । इस ग्रंथ का विभाजन कुलकों में हुआ है ।

लीलावई—कोऊहल नामक ब्राह्मण ने अपनी पत्नी के आग्रह पर 'मरहट्ठ देसिभाषा' में लीलावई नामक काव्य की रचना की है । इस कथा में देवलोक और मानवलोक के पात्र होने के कारण इसे दिव्य-मानुषी-कथा कहा गया है । इस काव्य-ग्रंथ में प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और सिंहलदेश की राजकुमारी लीलावती की प्रेमकथा का वर्णन है । इसमें अनुष्टुप् छन्द में लिखी गयी १८०० गाथाएँ हैं । यह आठवीं शताब्दी की रचना है ।

कुमारवालचरिय—कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रकृत इस ग्रंथ का नाम द्व्याश्रय-काव्य भी है । इस महाकाव्य के दो विभाग हैं । इस ग्रंथ में सोलंकी वंश के मूलराज से जैनधर्म के उपासक कुमारपाल तक के इतिहास का २० सर्गों में वर्णन किया गया है इस काव्य उद्देश्य काव्य के द्वारा व्याकरण की शिक्षा देनी है ।

कंसवहो—विष्णुभक्त, केरलनिवासी रामपाणिवादकृत यह खण्डकाव्य चार सर्गों में विभक्त है । इसमें २३३ पद्यों में कंसवध का वर्णन है । इस ग्रंथ की रचना श्रीमद्भागवत के आधार पर की गयी है । इसकी भाषा महाराष्ट्री है, परन्तु कहीं-कहीं पर शौरसेनी के रूप भी पाये जाते हैं । इसकी रचना १७०७ से १७७५ ई० के बीच की मानी जाती है ।

इन मुख्य काव्यों के अतिरिक्त गाथासहस्री, कामदत्ता महुमहविअअ, हरिविजय, रावणविजय, विसमबाणलीला, सिरिचिंधकव्व, सोरिचरित, भृंगसन्देस, उसाणिरुद्ध आदि अन्य काव्य-ग्रन्थ भी पाये जाते हैं ।

संस्कृत नाटकों में प्राकृत—प्राकृत-भाषा में रचे गये काव्यों के अतिरिक्त ई० की प्रथम शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक लिखे गये संस्कृत-नाटकों में धीरोदात्त तथा धीरप्रशान्त नायक राजपत्नी, गणिका और श्रोत्रिय ब्राह्मण आदि के लिए संस्कृत-भाषा तथा श्रमण, तपस्वी, भिक्षु, चक्रधर भागवत, तापस, स्त्री, नीच जाति के पात्र और नपुंसक आदि के लिए प्राकृत बोलने का नियम होने के कारण अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास, श्रीहर्ष, भवभूति, विशाखदत्त, भट्टनारायण, सोमदेव आदि नाटककारों के नाटकों में प्रायः प्राकृत-भाषा के सभी भेदों का उपयोग किया गया है । विशुद्ध प्राकृत-भाषा में लिखे कर्पूरमंजरी, विलासवती, चन्दलेहा, अनन्त सुन्दरी और सिंगारमञ्जरी, इन पांच सट्टकों में से विलासवती को छोड़कर अवशिष्ट चार सट्टक उपलब्ध हैं । नाट्यशास्त्र के टीकाकर अभिनवगुप्त ने (ई० की १०वीं शताब्दी) सट्टक को नाटिका के समान बताया है । हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में कहा है कि सट्टक की रचना एक ही भाषा में होनी चाहिए । नाटिका की भांति संस्कृत और प्राकृत में नहीं । सट्टकों में राजशेखर की (ई० ९०० ; कर्पूरमञ्जरी नामक सट्टक अत्यन्त महत्वपूर्ण है । राजशेखर ने संस्कृतबन्ध को परुष और प्राकृत-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बन्ध को सुकुमार बताया है। कर्पूरमञ्जरी में सत्रह छन्दों में १४४ गाथाएँ हैं। इसकी भाषा शौरसेनी है।

प्राकृत व्याकरण--प्राकृत के वैयाकरणों में चंड (ईसवी सन् तीसरी-चौथी शताब्दी), वररुचि, (ई० ७वीं शताब्दी) और हेमचन्द्र (ई० ११वीं शती) मुख्य माने जाते हैं। उपलब्ध प्राकृत व्याकरणों में वररुचि का प्राकृत-प्रकाश सबसे प्राचीन है। इस व्याकरण पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं। इस व्याकरण का दक्षिण में भी पर्याप्त प्रचार था। इस ग्रंथ में १२ परिच्छेद हैं। इनमें नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री-प्राकृत, दसवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी तथा बारहवें में शौरसेनी के लक्षण बताये गये हैं।

लंकेश्वर ने प्राकृत-कामधेनु अथवा प्राकृतलंकेश्वररावण व्याकरण-ग्रंथ की रचना की है।

क्रमदीश्वर ने संक्षिप्तसार नामक संस्कृतव्याकरण लिखा है, जिसके प्राकृतपाद नाम के आठवें अध्याय में प्राकृत-व्याकरण लिखा गया है। यह वररुचि का अनुगमन है।

बङ्गाल के निवासी पुरुषोत्तम ने १२वीं शताब्दी में प्राकृतानुशासन नाम का ग्रंथ लिखा। इसमें २० अध्याय हैं। इस व्याकरण में शौरसेनी, प्राच्या, आवन्ती, मागधी और यहाँ तक कि शाकारी, चाण्डाली, शबरी और टक्कदेशी भाषा के नियम बताये गये हैं।

बङ्गाल के निवासी रामशर्मा तर्कवागीश भट्टाचार्य ने प्राकृत-कल्पतरु नामक प्राकृत व्याकरण लिखा है। यह व्याकरण पुरुषोत्तम के प्राकृतानुशासन का एक विस्तृत अनुगमन है।

उड़ीसा के रहनेवाले मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व नाम का प्राकृत-व्याकरण लिखा है। यह व्याकरण अपने से पूर्वाचार्यों के समस्त व्याकरणों को देखकर प्राकृत के प्रायः समस्त भेदों का विवेचन करता है और महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी के साथ ही प्राकृत की अन्य बोलियों के सम्यग् ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी व्याकरण है।

आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्धहेमशब्दानुशासन नाम का एक संस्कृत-व्याकरण लिखा, जिसके आठवें अध्याय में प्राकृत-व्याकरण है। स्वयं हेमचन्द्र ने इस पर सोपज्ञ-वृत्ति लिखी है तथा इस पर अन्य भी अनेक टीकाएँ मिलती हैं।

इन व्याकरणों के अतिरिक्त त्रिविक्रम का प्राकृत-शब्दानुशासन, सिद्धराज का प्राकृत रूपान्तर, लक्ष्मीधर की षड्भाषाचन्द्रिका, अप्पयदीक्षित का प्राकृतमणिदीप, पं० रघुनाथ कवि का प्राकृतानन्द आदि व्याकरण भारतीय विद्वानों द्वारा तथा "डे प्राकृत डियालेक्टो लिबिदुओ" आदि योरोपीय विद्वानों द्वारा लिखे गये अनेक प्राकृत-व्याकरण हैं।

छन्दोग्रन्थ—प्राकृत-भाषा में अन्य ग्रंथों की भाँति छन्दःशास्त्र के भी अनेक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे गये। इनमें विरहांक का वृत्तजातिसमुच्चय नामक ग्रन्थ पद्यात्मक प्राकृत-भाषा में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में छह नियम दिये गये हैं, जिनमें प्राकृत के समस्त छन्दों के नाम, उनके प्रकार आदि बताये गये हैं तथा मात्राछन्द और वर्णछन्द के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

प्रोफेसर वेलणकर ने विरहांक का समय ई० की छठी और आठवीं शताब्दी के बीच का काल माना है। इसके अतिरिक्त नन्दिताढ्य-कृत गाथालक्षण, रत्नशेखरसूरिकृत छन्दः-कोश (१४ वीं शताब्दी का द्वितीयार्ध), प्राकृतपैंगल (११०० ई० के बाद), महाकवि स्वयम्भूकृत छन्दोग्रन्थ तथा छन्दःशास्त्र के ग्रन्थों की टीकाओं में उद्धृत कविदर्पण, छन्दःकन्दली आदि छन्दोग्रन्थ हैं।

प्राकृत में कोश-ग्रन्थ—जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य एवं पालि-साहित्य में अन्य ग्रन्थों की रचना के साथ कोशग्रन्थों की रचना हुई वैसे ही प्राकृत-भाषा में भी कोशग्रन्थों की रचना हुई है। ये कोश-ग्रन्थ प्रायः संस्कृत के कोश-ग्रन्थ अमरकोश पर ही आधृत हैं।

प्राकृत में धनपालकृत पाइयलच्छीनाममाला नाम का अकेला कोशग्रन्थ उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ की रचना अपनी छोटी बहन सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिए ९७२ ई० में धनपाल ने धारानगरी में की थी।

हेमचन्द्रसूरि ने अपनी रयणावलि (रत्नावली) नाम की देशीनाममाला में धनपाल, देवराज, गोपाल, द्रोण, शीलांक आदि कोशकारों का उल्लेख किया है तथा उनके उद्धरण भी दिये हैं, जिससे पता चलता है कि धनपाल के अतिरिक्त भी अन्य कोशकार हो चुके हैं। ये उल्लिखित ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

प्राकृत में अलंकार-ग्रन्थ--सम्पूर्ण प्राकृत-भाषा के साहित्य में स्वतन्त्र रूप से अलंकार-ग्रन्थों का प्रणयन नहीं हुआ है। संस्कृत-भाषा में लिखे गये अलंकार-ग्रन्थों में ही रस, दोष, गुण, रीति आदि के लक्षणों को बताने के बाद उसके उदाहरण प्राकृत-भाषा में लिखे गये काव्य-ग्रन्थों से भी दिये गये हैं तथा उन्हें उक्त अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों की कसौटी पर निखारा गया है।

दण्डी के काव्यादर्श, रुद्रट के काव्यालंकार, आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक, धनञ्जय के दशरूपक, भोजराज के सरस्वती-कंठाभरण, रुय्यक के अलंकारसर्वस्व, मम्मट के काव्य-प्रकाश, हेमचन्द्र के काव्यानुशासन, विश्वनाथ के साहित्यदर्पण, पण्डितराज जगन्नाथ के रसगंगाधर आदि ग्रन्थों में रस, दोष, गुण आदि प्रकरणों में प्राकृत-काव्यों से पदों के उद्धरण दिये गये हैं।

प्राकृत-साहित्य में विविध विषय--ईसा की प्रथम शताब्दी से प्रायः चौदहवीं शताब्दी तक उपर्युक्त आगमीय एवं पौराणिक प्राकृत-ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, हस्तरेखा, मन्त्र, वैद्यक आदि विविध विषयों के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थशास्त्र—प्राचीन जैन-ग्रन्थों में अर्थशास्त्र का नाम लेकर प्राकृत-गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं, अतः प्रतीत होता है कि प्राकृत-भाषा में अर्थशास्त्र का कोई ग्रन्थ था। हरिभद्रसूरि ने धूर्ताख्यान में खण्डपाणा का नाम अर्थशास्त्र के निर्माता के रूप में लिया है।

राजनीति—देवीदासकृत राजनीति की एक पुस्तक है, जो अभी अप्रकाशित है।

निमित्तशास्त्र - प्राचीन जैन-ग्रन्थों में मंखलिगोशाल, आर्यकालक, भद्रबाहु, धरसेन आदि के नाम निमित्तशास्त्र के वेत्ता के रूप में उद्धृत किये गये हैं। इनके अतिरिक्त, जयपाहुड, चूड़ामणिसार, निमित्तपाहुड़, 'अङ्गविज्जा, जोणिपाहुड, वट्टमाणविज्जाकप्प, जोतिससार, विवाहपडल, लग्गसुद्धि, दिनसुद्धि, जोइसहीर, करलक्खण, रिष्टसमुच्च, रत्न-परीक्षा, द्रव्यपरीक्षा, धातूत्पत्ति, वस्तुसार आदि ग्रन्थ हैं।

प्राकृत-शिलालेख—प्राकृत के शिलालेखों में राजा खारवेल का हाथीगुम्फा का शिलालेख अत्यन्त प्राचीन है और इसीलिए इसकी भाषा पालि से अधिक मिलती-जुलती सी है। इसका समय ईसापुर्व प्रथम शताब्दी है। इसकी लिपि ब्राह्मी है।

नासिक का शिलालेख—ई० सन् १४९ में नासिक में उत्कीर्ण किया गया वासिष्ठी-पुत्र पुलमावि का नासिक-गुफा का एक दूसरा शिलालेख भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अपभ्रंश भाषा

अपभ्रंश-साहित्य— लक्षश्लोकात्मक-संग्रह ग्रंथ के, जो दुर्भाग्यवश अनुपलब्ध है, रचयिता व्याडि के मत का उल्लेख भर्तृहरि ने अपनी प्रख्यात पुस्तक वाक्यपदीय में किया है—

"शब्दसंस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम्॥"

वार्तिक—शब्दप्रकृतिरपभ्रंश इति संग्रहकारो नाप्रकृतिरपभ्रंशः स्वतन्त्रः कश्चिद्विद्यते सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृतिः। प्रसिद्धेस्तु रूढितामापद्यमाना स्वातन्त्र्यमेव केचिदपभ्रंशा लभन्ते। तत्र गौरिति प्रयोक्तव्ये अशक्त्या प्रमादिभिर्वा गाव्यादयस्तत्प्रकृत-योपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते।" भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, प्रथमकाण्ड, कारिका १४८।

लाहौर संस्करण।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है कि—"एकस्यैव शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः। तद्यथा-गौरित्यस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः" एक ही शब्द के प्रयोक्ताओं के भेद से अनेक अपभ्रंश-शब्द पाये जाते हैं, जैसे—गौ शब्द के लिए गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि।

प्राकृत-व्याकरण (८-२-१७४) के रचयिता हेमचन्द्र ने "गोणादयः गोः, गोणी, गावी, गावः, गावीओ तथा चण्ड ने प्राकृतलक्षण (२. १६) में "गोगावि:" लिखा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। इन सब प्रसंगों से ऐसा प्रतीत होता है कि पतंजलि और उनके पूर्ववर्ती आचार्यों के मत से शिष्टसम्मत संस्कृतभाषा के विकृत या अपभ्रष्ट शब्दों के रूपों को अपभ्रंश कहते थे।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में (१७.२-३) लिखा है कि प्राकृत तीन प्रकार की होती है—

एतदेव विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्॥
त्रिविधं तच्च विज्ञेयं नाट्ययोगे समासतः।
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमथापि च॥

(१) जिसमें, संस्कृत के समान शब्दों का प्रयोग हो,
(२) वह, जिसमें संस्कृत से अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग हो, और
(३) वह जिसमें देशी-भाषा के शब्दों का प्रयोग हो।

कहने का तात्पर्य यह है कि भरत के अनुसार तत्सम, विभ्रष्ट या तद्भव और देशी तीन—प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है। जिसे पतंजलि ने अपभ्रंश कहा, उसे ही ये विभ्रष्ट कहते हैं। इन उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर ही भरत ने मागधी, अवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका, दाक्षिणात्या इन सात भाषाओं को तथा इनके अतिरिक्त शकाराभीरादि की भाषाओं को विभाषाएँ कहा है—

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी।
वाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषाः प्रकीर्त्तिताः॥
शकाराभीरचाण्डालशबरद्रमिलान्ध्रजाः।
(शबराभीरचाण्डालशबरद्रविथोद्रजाः)
हीना वनेचराणां च विभाषा नाटके स्मृताः॥

भरतनाट्यशास्त्र, १७.४९–५०

ईसा की सप्तम शताब्दी के आलंकारिक आचार्य दण्डी ने समस्त वाङ्मय को ही संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र, इन चार भागों में विभक्त किया है—

तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रञ्चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्॥

काव्यादर्श १, ३२।

इसके अतिरिक्त वलभी के धरसेन द्वितीय का दानपत्र, ९वीं शताब्दी में रचित रुद्रट के काव्यालंकार, लगभग दसवीं शताब्दी में रचित पुष्पदन्त के महापुराण, इसी समय में रचित राजशेखर की काव्यमीमांसा आदि ग्रन्थों में और मम्मट (११वीं शताब्दी), वाग्भट्ट (१२वीं शताब्दी), हेमचन्द्र, गुणचन्द्र तथा रामचन्द्र (१२ वीं शताब्दी) और अमरचन्द्र (१३वीं शताब्दी) आदि आचार्यों ने संस्कृत और प्राकृत की भाँति ही अपभ्रंश को भी साहित्यिक-भाषा स्वीकार किया है। भाषाशास्त्र के विद्वानों ने अपभ्रंश-साहित्य का प्रारम्भ ५०० या ६०० ई० से माना है, किन्तु 'ललितविस्तर' और महा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यान बौद्ध-ग्रन्थों की संस्कृत-गाथा में भी अपभ्रंशरूप मिलते हैं। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् तारानाथ ने लिखा है कि बौद्धों के सम्मितीय सम्प्रदाय के त्रिपिटक के संस्करण पालि, संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश में भी हुए।

संग्रहकार व्याडि एवं पतञ्जलि आदि आचार्यों की चर्चाओं से १०वीं, ११वीं शताब्दी आलंकारिकों, वैयाकरणों आदि तक के वर्णनों पर ध्यान देने से ऐसा निश्चय होता है कि अपभ्रंश-भाषा और उसका साहित्य भारतीय वाङ्मय का अभिन्न अङ्ग ही नहीं बन गया, अपितु लोगों को संस्कृत एवं प्राकृत आदि की तुलना में अपभ्रंश-भाषा में निबद्ध विपुल-साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक मिठास का अनुभव होने लगा। विद्यापति ने लिखा है--

"सक्कय वाणी वहुअ न भावई, पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तँ तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥"

बात भी ठीक है कि जिस भाषा का सम्बन्ध जन-साधारण से विच्छिन्न हो जाता है कि उसकी अपेक्षा देशी-वचन सुपरिचित होने के कारण रसबोध कराने में अधिक सफल होते हैं।

संयोग की बात थी कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अपभ्रंश-साहित्य की विशालता का ज्ञान हमें नहीं था और यही कारण है कि इसकी विशेषताओं से भी स्वभावतः हम परिचित नहीं थे। यद्यपि यह नहीं माना जा सकता कि आज भी अपभ्रंश भाषा का साहित्य समग्ररूप में हमारे सामने आ गया है, तथापि जितना भी साहित्य कुछ योरोपीय एवं भारतीय विद्वानों के स्तुत्य-प्रयत्नों से उपलब्ध हुआ है उसके आधार पर इसकी विपुलता का ज्ञान होता ही है। अपभ्रंश-भाषा के अपभ्रंश, अवहंस, अपभ्रष्ट अवहट्ट, विभ्रष्ट आदि अनेक नाम मिलते हैं। मार्कण्डेय ने नागर,, उपनागर और व्राचड़ के अतिरिक्त सत्ताईस भेदों की चर्चा अपने 'प्राकृत-सर्वस्व' में की है। अपभ्रंश-भाषा का विकास प्राकृतों से हुआ है, ऐसा माना जाता है। शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी प्राकृत से मागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत से महाराष्ट्री अपभ्रंश आदि का विकास हुआ।

अधिकांश अपभ्रंश साहित्य की रचना विदर्भ, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मिथिला और मगध में हुई और प्राकृतों के नाम उन-उन प्रदेशों के आधार पर हैं, अतः अपभ्रंशों के नाम उन-उन प्रदेशो पर आधृत हैं। कुछ विद्वानों ने पूरे देश के पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी, चार भेद मानकर अपभ्रंश-भाषा के भी चार भेद किये हैं—

(१) पूर्वी-प्रान्तों का अपभ्रंश-साहित्य—इसमें सिद्धों और विद्यापति की रचनाओं की गणना की जाती है।

(२) पश्चिमी प्रान्तों का अपभ्रंश-साहित्य इसमें स्वयम्भू, जोगिन्दु, धनपाल, हेमचन्द्र, अब्दुर्रहमान आदि कवियों की रचनाएँ आती हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) उत्तरी-प्रदेशों का अपभ्रंश-साहित्य—इसमें नाथ-सम्प्रदायवालों के अपभ्रंश-पदों की गणना कीं जाती है।

(४) दक्षिणी या महाराष्ट्र-प्रदेश का अपभ्रंश साहित्य—इसमें पुष्पदन्त और मुनि कनकामर आदि की रचनाओं की गणना की जाती है।

कुछ विद्वानों ने उत्तरी-भेद को न मानकर तीन ही भेद माने हैं तथा कुछ ने केवल पूर्वी और पश्चिमी दो ही भेद माने हैं।

कुछ विद्वानों ने जैन-अपभ्रंश-साहित्य और ब्राह्मणों, बौद्धों एवं मुसलमानों द्वारा-रचित अपभ्रंश-साहित्य को जैनेतर-अपभ्रंश-साहित्य, ये दो भेद माने हैं।

साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश-साहित्य का एक और विभाजन, प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य तथा प्रबन्धकाव्य में भी महाकाव्य और खण्डकाव्य, इस प्रकार के विभाजन स्वीकृत हुए हैं।

महाकाव्य—महाकाव्यों के रूप में महाकाव्यों की परम्परा संस्कृत-साहित्य से ही मिलती है। संस्कृत के महाकाव्यों का जो यह सुदीर्घ परिनिष्ठित एवं सुसम्बद्ध रूप सामने है, उसकी पृष्ठभूमि में इनके उपजीव्य महाभारत एवं रामायण तथा स्वयं संस्कृत-भाषा का अपना महत्त्व है। संस्कृत-महाकाव्यों के विषय, शैली आदि को ध्यान में रखते हुए प्राकृत-भाषा में भी महाकाव्यों की परम्परा चली अवश्य; किन्तु इनमें कुछ स्वतन्त्र-रूप से भी परम्परा बन पायी, ऐसा इनके अध्ययन से प्रतीत होता है। संस्कृत तथा प्राकृत-भाषा में निबद्ध इन महाकाव्यों की परम्परा में ही अपभ्रंश-भाषा में भी अनेक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य लिखे गये। इन अपभ्रंश महाकाव्यों के पीछे इतनी बड़ी परम्परा होने पर भी इन महाकाव्यों ने जो धार्मिक प्रचार और धार्मिक आचार्यों के वर्णन को विषय बनाया, इससे इनमें वह काव्य-सौन्दर्य तो नहीं ही आ पाया, अपितु विषय की एकरूपता की आवृत्ति के कारण इनमें कुछ नीरसता-सी, एकतानता-सी प्रतीत होने लगी। यह भी सम्भव है कि जैनेतर महाकवियों ने कुछ ऐसे महाकाव्य रचे हों जो संस्कृत एवं प्राकृत-भाषा के महाकाव्यों की तुलना में रखे जा सकें, किन्तु उसी के साथ यह भी सम्भव है कि उनकी सुरक्षा न हो सकी हो, कारण यह है कि प्राकृत और अपभ्रंश के प्रायः सब ग्रन्थ जैन-सम्प्रदाय के मठों, मन्दिरों एवं उन-उन आचार्यों के पास ही सुरक्षित मिले हैं। जो महाकाव्य उपलब्ध होते हैं उनमें कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जैसे—

पउमचरिउ—जैनाचार्यों में रविषेणाचार्य ने संस्कृत में पद्मपुराण और प्राकृत-भाषा में विमलसूरि ने पउमचरिय तथा अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू ने पउमचरिउ अपने सिद्धान्तों के अनुसार रामचरित को आधार मानकर लिखा। पउमचरिउ पाँच काण्डों में विभक्त है—विद्याधर काण्ड, अयोध्याकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तर-काण्ड। पहले काण्ड में बीस, दूसरे में बाइस, तीसरे में चौदह, चौथे में इक्कीस

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और पाँचवें में तेरह, इस प्रकार कुल नब्बे सन्धियाँ हैं। स्वयम्भू का यह महाकाव्य रविषेण की कथा से भरपूर प्रभावित हुआ है।

रिट्ठणेमि-चरिउ या हरिवंश-पुराण—स्वयम्भू के नाम से महाकाव्य की भी रचना मानी जाती है। यद्यपि यह पूरी रचना इसी महाकवि द्वारा हुई है, यह मतभेद-ग्रस्त है।

महापुराण या तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार—इसके रचयिता प्रसिद्ध महाकवि पुष्पदन्त हैं। पुष्पदन्त पण्डितराज जगन्नाथ की तरह स्वाभिमानी थे। इन्होंने अपने को कव्वपिसल्ल, अभिमानमेरु, कविकुलतिलक, काव्यरत्नाकर, सरस्वतीनिलय आदि उपाधियों से विभूषित किया है। विद्वानों ने पुष्पदन्त का समय ईसा की दसवीं शताब्दी माना है।

महापुराण तीन खण्डों में विभक्त है—प्रथम खण्ड को आदि-पुराण, द्वितीय खण्ड को उत्तरपुराण का प्रथमार्ध तथा तृतीय खण्ड को उत्तर-पुराण का द्वितीयार्ध कहते हैं। तीनों खण्डों में १०२ सन्धियाँ हैं। प्रथम खण्ड में प्रथम तीर्थङ्कर और प्रथम चक्रवर्ती भरत के जीवन का वर्णन है। द्वितीय खण्ड में बीस-बीस तीर्थङ्करों, आठ बलदेवों, आठ वासुदेवों, आठ प्रति-वासुदेवों और दस चक्रवर्तियों का और अन्तिम प्रायः १२ सन्धियों में जैन-सम्प्रदायानुसार रामायण की कथा का वर्णन है।

तृतीय खण्ड में ८१ से १०२ तक सन्धियाँ हैं। ८१ से ९२ तक मुख्यरूप से महाभारत की कथा है, जिसे कवि ने हरिवंशपुराण भी कहा है। अवशिष्ट भाग में पार्श्वनाथ, महावीर, जम्बूस्वामी, प्रीतिंकर की कथाएँ हैं तथा अन्तिम सन्धि में महावीर के निर्वाण का वर्णन है।

इन महाकाव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त धनपालकृत भविसयत्तकहा, धवलकीर्तिकृत हरिवंश-पुरुष, चन्दबरदायीकृत पृथ्वीराज रासो, रइधूकृत पद्मपुराण या बलभद्रपुराण, यशःकीर्तिकृत पाण्डवपुराण एवं हरिवंशपुराण तथा श्रुतिकीर्तिकृत हरिवंशपुराण आदि अपभ्रंश-महाकाव्य उपलब्ध होते हैं।

खण्ड काव्य—यह प्रायः साहित्य के विद्यार्थियों को विदित ही है कि महाकाव्यों में किसी एक महान् ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन के समस्त अंगों का काव्यीय तत्त्वों से परिपूर्ण सरस शैली में वर्णन किया जाता है और खण्डकाव्यों में वैसे चरित्रों के किसी एक पक्ष का वर्णन होता है। अपभ्रंश के महाकाव्यों का ऊपर दिग्दर्शन हो चुका है, अब इस भाषा में लिखे गये खण्डकाव्यों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। अपभ्रंश के खण्डकाव्यों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ खण्डकाव्य धार्मिक भावनाओं के प्रेरित होकर लिखे गये हैं और कुछ में लौकिक जीवन से सम्बद्ध घटनाओं को अंकित किया गया है। अन्तिम श्रेणी के खण्डकाव्यों में स्पष्ट दो धाराएँ हैं जिनमें कुछ में ऐतिहासिक तथ्य पाये जाते हैं और कुछ में इतिहास को गौण माना गया है। जहाँ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तक धार्मिक खण्डकाव्यों का प्रश्न है, धार्मिक भावनाओं की प्रबलता और उनके उभार की सजावट स्वभावतः काव्यीय तत्त्व या तो अपने पूरे रूप में निखर नहीं पाये हैं या बहुत हद तक दब-से गये हैं। धार्मिक खण्डकाव्यों में पुष्पदन्त द्वारा रचित 'णाय-कुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें नौ सन्धियाँ हैं। इस खण्डकाव्य को सरस्वती-वन्दना से प्रारम्भ कर, इसमें राजगृह के राजा श्रेणिक के पूछने पर तीर्थंकर महावीर द्वारा श्री पंचमीव्रत के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

जसहर चरिउ—जैन-साहित्य में यशोधर की कथा बहुत प्रसिद्ध है। पुष्पदन्त ने चार सन्धियों में उसी यशोधर के चरित्र का वर्णन इस खण्डकाव्य में किया है। पुष्पदन्त के पूर्व अनेक जैन महाकवियों ने यशोधर का वर्णन किया है। इस कवि ने संसार की क्षणभंगुरता और अस्थिरता के वर्णन के द्वारा निर्वेदभाव की तीव्र व्यञ्जना की है।

इन धार्मिक खण्डकाव्यों के अतिरिक्त अपभ्रंश-भाषा में जम्बुसामिचरिउ, नयनन्दी-कृत सुदंसणचरिउ (सुदर्शन चरित्र) एवं सकलविधिनिवानकाव्य, मुनि कानकामरकृत करकंडचरिउ, दिव्यदृष्टिवाहिलकृत पउमसिरीचरिउ, पद्मकीर्तिकृत पासचरिउ (पार्श्व-पुराण), श्रीधर कवि-कृत पासणाह चरिउ, सुकमाल चरिउ और भविसयत्त चरिउ, देवसेनगणिकृत सुलोचनाचरिउ, पज्जुण्णचरिउ (पद्म चरित), हरिभद्रकृत सनत्कुमार-चरित (नेमिनाथ चरित), लाखूकृत जिणदत्तचरित, लखमदेवकृत णेमिणाहचरिउ, यशःकीर्तिकृत चन्दप्पहचरिउ, रइधूकृत सुकौशलचरिउ एवं सन्मतिनाथचरिउ, भगवती-दासकृत मृगांकलेखाचरिउ आदि छोटे-बड़े धार्मिक खण्डकाव्य उपलब्ध होते हैं।

सन्देशरासक—इस खण्डकाव्य में लौकिक प्रेम-भावना की अभिव्यञ्जना है। इसमें तीन प्रक्रम एवं २२३ पद हैं। इस खण्डकाव्य के रचयिता अद्दहमाण (अब्दुर्रह-मान) जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, एक मुसलमान कवि हैं। इस काव्य का अपना महत्त्व है। कवि के पिता तन्तुवाय मीरसेन थे। डॉ० कत्रे ने कवि का समय ईसा की ग्यारहवीं और चौदहवीं के बीच माना है। श्री अगरचन्द नाहटा ने ग्रंथ की रचना वि० सं० १४०० के आसपास मानी है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ग्यारहवीं शती इसका समय निर्धारित किता है।

सन्देशरासक एक सन्देश-काव्य है। यह तीन भागों में विभक्त है। वे भाग प्रक्रम कहे गये हैं। प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना रूप में है, द्वितीय प्रक्रम से वास्तविक कथा प्ररम्भ होती है और तृतीय प्रक्रम में षड्ऋतु-वर्णन है। इस काव्य में विविध छन्दों एवं अलं-कारों के निर्वाह को देखने से, इस ग्रंथ की महत्ता स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

कीर्तिलता—विद्यापति द्वारा रचित यह एक ऐतिहासिक चरितकाव्य है। कवि ने अपने प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह के यश का वर्णन किया है। वास्तविक बात यह है कि अपभ्रंश में इस शैली पर लिखा गया यही एकमात्र काव्य मिलता है। कीर्तिलता में चार पल्लव (भाग) हैं। विद्यापति ने इसकी रचना २० वर्ष की ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अवस्था में की थी। विद्यापति का समय १३५० ई० से १४४७ ई० तक अर्थात् १५ वीं शती के मध्य तक माना जाता है।

अपभ्रंश-मुक्तककाव्य—अपभ्रंश-साहित्य में प्रबन्ध-काव्यों के अतिरिक्त जैन-धर्म-सम्बन्धी जो रचनाएँ आध्यात्मिक और आधिभौतिक दो रूपों में मिलती हैं और बौद्ध-सिद्धों की वज्रयान एवं सहजयान सम्बन्धी जो सिद्धान्तप्रतिपादक एवं खण्डन-मण्डनात्मक दो प्रकार की मिलती हैं, वे मुक्तक रचनाएँ हैं। इनके साथ ही कुछ अन्य प्रकार की मुक्तक रचनाएँ भी हैं, जिनमें प्रेम, शृंगार, वीर-भावादि सम्बन्धी विविध पद आते हैं और इसीलिए इसे विशुद्ध साहित्यिक मुक्तक रचनाएँ कहा जा सकता है।

जहाँ तक आध्यात्मिक रचनाओं का प्रश्न है, इनमें जैन-धर्म के स्वरूप के प्रतिपादन के साथ किसी प्रकार की संकीर्णता, कट्टरता और अन्य धर्मों के प्रति विद्वेष-भावना की गन्ध नहीं है। इनके लेखकों ने बाह्य आचार, कर्मकलाप, तीर्थ-यात्रा आदि को गौण बताया और आन्तरिक शुद्धि एवं सदाचार पर ही बल दिया है। इस प्रकार के ग्रंथों में योगीन्द्राचार्य या योगीन्दु द्वारा लिखित परमप्प्यासु (परमात्मप्रकाश) एवं योगसार प्रसिद्ध मुक्तक-काव्य-ग्रंथ हैं। मुनि रामसिंहकृत पाहुडदोहा, सुप्रभाचार्यकृत वैराग्यसार, मुनिमहचन्द द्वारा रचित दीहापाहुड आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

आधिभौतिक रचनाओं में सर्वसाधारण के लिए नीति, सदाचार सम्बन्धी धर्मोपदेशों का प्रतिपादन किया गया है, जैसे—देवसेनद्वारा रचित सावयधम्मदोहा, जिनदत्तसूरिकृत उपदेश-रसायहरास तथा कालस्वरूप-कुलक, जयदेवमुनिकृत भावनासन्धिप्रकरण, सोमप्रभाचार्यकृत द्वादशभावना, महेश्वरसूरिकृत संयममंजरी, भट्टारक विनयचन्द्रमुनि द्वारा रचित चूनड़ी आदि प्रसिद्ध आधिभौतिक मुक्तक काव्यग्रन्थ हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जैन-सम्प्रदाय के कवियों के अतिरिक्त कुछ बौद्ध-सम्प्रदाय के—वज्रयानी और सहजयानी—सिद्धों ने मुक्तक-काव्य की रचनाएँ कीं। यद्यपि इन पूरे मुक्तकों का प्रकाशन नहीं हो पाया है तथापि इस क्षेत्र में अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों ने स्तुत्य प्रयत्न किया है। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री "हाजार बजरे पुराण बांगला भाषाय बौद्धगान ओ दोहा" नाम से इनकी रचनाओं का संग्रह बंगीय साहित्य-परिषद्, कलकत्ता से सन् १९१६ में प्रकाशित करवाया था। और भी अनेक प्रयत्न हुए। राहुलजी ने 'पुरातत्त्व निबन्धावली' में 'वज्रयान और ८४ सिद्ध' नामक लेख द्वारा उनकी विचारधारा पर प्रकाश डाला। इन सिद्धों की रचनाएँ दो प्रकार की मिलती हैं। कुछ धर्म के सिद्धान्त, मत, तत्त्व आदि का प्रतिपादक हैं और कुछ में तन्त्र-मन्त्र आदि कर्मकाण्डों का खण्डन है।

चौरासी सिद्धों में सरह, शबर, लूई, दारिका, कण्हपा और शान्ति आदि मुख्य सिद्ध हुए हैं। इन लोगों में से अधिकांश की रचनाएँ दोहाकोश संग्रह में संगृहीत हैं और डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने 'जर्नल ऑव दी डिपार्टमेण्ट्स ऑव लेटर्स' भाग २८ और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३० में प्रकाशित सिद्धों के दोहों और गानों को तिब्बती अनुवाद के आधार पर संशोधित रूप में 'मैटीरियल्स फॉर ए क्रिटिकल एडीशन ऑव दी ओल्ड बेंगाली चर्या पदस्' नाम से प्रस्तुत किया।

इसी मुक्तक-काव्य-परम्परा में वे भी मुक्तक पद्य आते हैं जो संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रंथों में यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। अलंकार, व्याकरण और छन्दों के ग्रंथों में नियमों और उदाहरणों के रूप में ये मुक्तक-पद्य प्रस्तुत किये गये हैं। इन पद्यों का वर्ण्य-विषय प्रायः जनसाधारण के जीवन से सम्बद्ध घटनाएँ एवं दृश्य हैं। मुख्यरूप से कालिदास के विक्रमोर्वशीय' नाटक के चतुर्थ अंक, हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' के आठवें अध्याय 'छन्दोनुशासन' और प्राकृत-द्वयाश्रय काव्य, सोमप्रभाचार्यकृत 'कुमारपाल-प्रतिबोध', मेरुतुङ्गाचार्यकृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि', राजशेखर सूरिकृत 'प्रबन्धकोश', 'प्राकृतपैङ्गलम्' तथा 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह में ये मुक्तक-पद्य मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त संस्कृत के कुछ लक्षण ग्रंथों में जैसे—आनन्दवर्धनकृत 'ध्वन्यालोक', रुद्रटकृत 'काव्यालंकार', भोजकृत 'सरस्वती कण्ठाभरण', धनञ्जयकृत 'दशरूपक' आदि में भी कुछ अपभ्रंश पद्य मिलते हैं।

उपर्युक्त मुक्तक-काव्यों के अतिरिक्त अपभ्रंश-भाषा में निबद्ध कुछ रूपक भी पाये जाते हैं, जैसे—जीवमनःकरणसंल्लापकथा। यह सोमप्रभाचार्यकृत प्राकृत-प्रधान 'कुमारपाल-प्रतिबोध' का अपभ्रंशात्मक अंश है। इसके अतिरिक्त हरदेवकृत 'मयण पराजयचरिउ', बुच्चराय-कृत 'मयणजुज्झ' आदि रूपक ग्रंथ अपभ्रंश भाषा में उपलब्ध होते हैं।

जिस प्रकार संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं में कथा-साहित्य देखा जाता है, उसी प्रकार जैनाचार्यों ने अपभ्रंश-भाषा में, और न केवल अपभ्रंश-भाषा में अपितु अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रचुर मात्रा में कथाओं की रचना की है। यद्यपि विषय की दृष्टि से इन कथाओं का मुख्य उद्देश्य जैन-धर्म का प्रचार रहा है, तथापि इनमें कुतूहल, इतिहास, विनोद, हास्य आदि की भी कमी नहीं है। उदाहरणार्थ हरिषेणकृत 'धम्मपरिक्खा' श्रीचन्द्रकविकृत 'कथाकोष' एवं 'रत्नकरण्ड-शास्त्र', सोमप्रभाचार्यकृत 'कुमारपालप्रतिबोध' के अन्तर्गत 'स्थूलिभद्रकथा', अमरकीर्तिकृत 'छक्कम्मोवएस', कविलक्खणकृत 'अणुवयरयणपईउ' इत्यादि।

स्फुट-साहित्य—कतिपय रासो ग्रंथ प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह में संगृहीत हैं। प्रो० हीरालाल जैन और प्रो० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये आदि विद्वानों का मत है कि ये ग्रंथ अपभ्रंश-भाषा में ही लिखे गये हैं। इन्हें प्राचीन गुजराती कहना इन लोगों की दृष्टि से समुचित नहीं। इनके अतिरिक्त चर्चरी, स्तोत्र, फाग, चतुष्पदिका आदि साहित्यिक विशेष भंगिमाओं में रचित छोटी-मोटी अनेक कृतियाँ मिलती हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत-प्राकृत साहित्यों की भाँति अपभ्रंश-साहित्य में भी पद्यात्मक रचना ही अधिक मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु अपभ्रंश के कुछ ग्रंथों में अपभ्रंश-भाषा में निबद्ध गद्यसाहित्य भी भाषा-विज्ञान की दृष्टि से या साहित्य की दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं है। उदाहरणार्थ उद्योतनसूरिकृत 'कुवलयमाला-कथा', 'जगत्सुन्दरीप्रयोग-माला' नामक वैद्यक ग्रन्थ, विद्यापतिरचित 'कीर्तिलता', माणिक्यचन्द्रसूरिकृत 'पृथ्वीचन्द्रचरित्र' उक्ति-व्यक्ति-विवृति' आदि ग्रन्थों में अपभ्रंश-भाषा में निबद्ध गद्य-साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध होता है।

इति शम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि-संगहो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि-संगहो

१

बोधिसत्त्व-जातकावली

ससजातकम्

अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो ससयोनियं निब्बत्तित्वा अरञ्ञे वसति। तस्स पन अरञ्ञस्स एकतो पब्बतपादो, एकतो नदी, एकतो पच्चन्तगामको। अपरे पि'स्स तयो सहाया अहेसुं—मक्कटो, सिंगालो, उद्दो ति। ते चत्तारो पि पण्डिता एकतो वसन्ता अत्तनो अत्तनो गोचरट्ठाने गोचरं गहेत्वा, सायण्हसमये एकतो सन्निपतन्ति। ससपण्डितो 'दानं दातब्बं, सीलं रक्खितब्बं, उपोसथकम्मं कातब्बं'ति तिण्णं जनानं ओवादवसेन धम्मं देसेति। ते तस्स ओवादं सम्पटिच्छित्वा अत्तनो अत्तनो निवासगुम्बं पविसित्वा वसन्ति। एवं काले गच्छन्ते एकदिवसं बोधिसत्तो आकासं ओलोकेत्वा चन्दं दिस्वा 'स्वे उपोसथदिवसो' ति ञत्वा इतरे तयो आह— 'स्वे उपोसथो, तुम्हे तयो पि जना सीलं समादियित्वा उपोसथिका होथ, सीले पतिट्ठाय दिन्नदानं महप्फलं होति, तस्मा याचके सम्पत्ते तुम्हेहि खादितब्बाहारतो दत्वा खादेय्याथा' ति। ते 'साधू' ति सम्पटिच्छित्वा अत्तनो वसनट्ठानेसु वसित्वा पुनदिवसे तेसु उद्दो पातो व 'गोचरं परियेसिस्सामी'ति निक्खमित्वा गङ्गातीरं गतो। अथेको बालिसिको सत्त रोहितमच्छे उद्धरित्वा वल्लिया आवुणित्वा नेत्वा गङ्गातीरे बालिकाय पटिच्छादेत्वा मच्छे गण्हन्तो अधो गङ्गं भस्सि। उद्दो मच्छगन्धं घायित्वा वालिकं वियूहित्वा मच्छे दिस्वा नीहरित्वा 'अत्थि नु खो इमेसं सामिको'ति तिक्खत्तुं घोसेत्वा सामिकं अपस्सन्तो वल्लियं डसित्वा अत्तनो वसनगुम्बे ठपेत्वा 'वेलायं एव खादिस्सामी'ति अत्तनो सीलं आवज्जन्तो निपज्जि। सिंगालो'पि निक्खमित्वा गोचरं परियेसन्तो एकस्स खेत्तगोपकस्स कुटियं द्वे मंससूलानि एकं गोधं एकञ्च दधिवारकं दिस्वा 'अत्थि नु खो एकस्स सामिको' ति तिक्खत्तुं घोसेत्वा सामिकं अदिस्वा दधिवारकस्स उग्गहणरज्जुकं गीवाय पवेसेत्वा मंससूले च गोजञ्च मुखेन डसित्वा नेत्वा अत्तनो सयनगुम्बे ठपेत्वा 'वेलायमेव खादिस्सामी'ति अत्तनो सीलं आवज्जन्तो निपज्जि। मक्कटो पि वनसण्डं पविसित्वा अम्बपिंडि आहरित्वा वसनगुम्बे ठपेत्वा 'वेलायमेव खादिस्सामी'ति अत्तनो सीलं आवज्जन्तो निपज्जि। बोधि-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सत्तो पन 'वेलायमेव निक्खमित्वा दब्बतिणानि खादिस्सामी'ति अत्तनो गुम्बे येव निपन्नो चिन्तेसि--मम सन्तिकं आगतानं याचकानं तिणानि दातुं न सक्का, तिलतण्डुलादयो पि मय्हं न'त्थि, सचे मे सन्तिकं याचको आगच्छिस्सति अत्तनो सरीरमंसं दस्यामीति। तस्य सीलतेजेन सक्कस्स पण्डुकम्बलसिलासनं उण्हाकारं दस्सेसि। सो आवज्जमानो इमं कारणं दिस्वा। ससराजं वीमंसिस्सामी'ति पठमं उद्दस्स वसनट्टानं गन्त्वा ब्राह्मण वेसेन अट्ठासि; ब्राह्मण, किमत्थं ठितोसीति वुत्ते पण्डित, सचे किञ्चि आहारं लभेय्यं उपसथिको हुत्वा समणधम्मं करेय्यं' ति। सो 'साधु दस्सामि ते आहारं' ति तेन सद्धि सल्लपन्तो पठमं गाथमाह--

सत्त मे रोहिता मच्छा उदका थलमुब्भता।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वसा'ति॥

ब्राह्मणो 'पातो व ताव होतु, पच्छा जानिस्सामी'ति सिगालस्य सन्तिकं गतो; तेनापि किमत्थं ठितोसी'ति वुत्ते तथेवाह। सिगालो 'साधु दस्सामी'ति तेन सद्धि सल्लपन्तो दुतियं गाथमाह--

दुस्सं मे खेत्तपालस्स रत्तिभत्तं अपाभत्तं।
मंससूला च द्वे गोधा एकञ्च दधिवारकं।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि, एतं भुत्वा वने वसा'ति॥

ब्राह्मणे 'पातो व ताव होतु, पच्छा जानिस्सामी'ति मक्कटस्स सन्तिकं गतो; तेनापि किमत्थं ठितो'सीति वुत्ते तथेवाह। मक्कटो 'साधु दस्सामीति तेन सद्धि सल्लपन्तो ततियं गाथमाह--

अम्बपक्कोदकं सीतं सीतच्छायं मनोरमं।
इदं ब्राह्मण में अत्थि एतं भुत्वा वने वसा'ति॥

ब्राह्मणो 'पातो व ताव होतु, पच्छा जानिस्सामी'ति ससपण्डितस्स सन्तिकं गतो; तेनापि किमत्थं ठितो'सीति वुत्ते तथेवाह। तं सुत्वा बोधिसत्तो सोमनस्सप्पत्तो ब्राह्मग, सुट्ठु ते कतं आहारत्थाय मम सन्तिकं आगच्छन्तेन, अज्जाहं मया अदिन्नपुब्बं दानं दस्सामि, त्वं पन सीलवा पाणातिपातं न करिस्ससि; गच्छ तात, दारूनि संकड्ढित्वा अङ्गारे कत्वा मय्हं आरोचेहि; अहं अत्तानं परिच्चजित्वा अङ्गारगब्भे पतिस्सामि, मम सरीरे पक्के त्वं मंसं खादित्वा समणधम्मं करेय्यासी'ति तेन सद्धि सल्लपन्तो चतुत्थं गाथमाह--

न ससस्स तिला अत्थि न मुग्गा नापि तण्डुला।
इमिना अग्गिना पक्कं ममं भुत्वा वने वसा'ति॥

सक्को तस्स कथं सुत्वा अत्तनो आनुभावेन एकं अङ्गाररासिं मापेत्वा बोधिसत्तस्स आरोचेसि। सो दब्बतिणसयनतो उट्ठाय तत्थ गन्त्वा 'सचे मे लोमन्तरेसु पाणका अत्थि ते मा मरिंसू'ति वत्वा तिक्खत्तुं सरीरं विधूनित्वा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सकसरीरं दानमुखे दत्वा लङ्घित्वा पदुमपुञ्जे राजहंसो विय पमुदितचित्तो अङ्गाररासिम्हि पति। सो पन अग्गि बोधिसत्तस्स सरीरे लोमकूपमत्तं पि उण्हं कातुं नासक्खि, हिमगब्भं पविट्ठो विय अहोसि। अथ सक्कं आमन्तेत्वा 'ब्राह्मण, तया कतो अग्गि अतिसीतलो, मम सरीरे लोमकूपमत्तं पि उण्हं कातुं न सक्कोति किं नाम एतं' ति आह। 'पण्डित, नाहं ब्राह्मणो, सक्को अहमस्मि, तव वीमंसनत्थाय आगतो' ति। 'सक्क, त्वं ताव तिट्ठ, सकलो पि चे लोकसन्निवासो मं दानेन वीमंसेय्य, नेव मे अदातुकामतं पस्सेय्या' ति बोधिसत्तो सीहनादं नदि। अथ नं सक्को 'ससपण्डित, तव गुणो सकलकप्पं पाकटो होतू' ति पब्बतं पीळेत्वा पब्बतरसं आदाय चन्दमण्डले ससलक्खणं आलिखित्वा बोधिसत्तं आमन्तेत्वा तस्मिं वनसण्डे तस्मिं येव वनगुम्बे तरुणदब्बतिणपिट्ठे निपज्जापेत्वा अत्तनो देवट्ठानमेव गतो। ते पि चत्तारो पण्डिता सम्मोदमाना सीलं पूरेत्वा उपोसथकम्मं कत्वा यथाकम्मं गता।

संस्कृत अनुवाद

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वः शशयोन्यां निर्वृत्य अरण्ये वसति। तस्य पुनः अरण्यस्यैकतः पर्वतपादः एकतः नदी एकतः प्रत्यन्तग्रामकः। अपरेऽप्यस्य त्रयः सहायाः अभूवन् मर्कटः शृगालः उद्र इति। ते चत्वारोऽपि पण्डिताः एकतः वसन्तः आत्मनः आत्मनः गोचरस्थाने गोचरं गृहीत्वा सायाह्नसमये एकतः सन्निपतन्ति। शशपण्डितः दानं दातव्यं, शीलं रक्षितव्यमुपवसथकर्म कर्तव्यमिति त्रीन् जनान् अववादवशेन धर्मं दिशति। ते तस्याववादं सम्प्रतीष्यात्मनः आत्मनः निवासनगुल्मं प्रविश्य वसन्ति। एवं काले गच्छति एकस्मिन् दिवसे बोधिसत्त्वः आकाशमवलोक्य चन्द्रं दृष्ट्वा श्वः उपवसथदिवस इति ज्ञात्वा इतरान् त्रीन् आह–'श्वः उपवसथः यूयम् त्रयोऽपि जनाः शीलं समादायोपवसथिकाः भवत, शीले प्रतिष्ठाय दत्तदानं महाफलं भवति। तस्माद् याचके सम्प्राप्ते युष्माभिः खादिष्याहारतः दत्वा खादेत।' ते 'साधु' इति सम्प्रतीष्यात्मनः वसनस्थानेषूषित्वा पुनर्दिवसे तेषूद्रः प्रातरेव गोचरं पर्येषिष्यामि इति निष्क्रम्य गङ्गातीरं गतः। अथैक बाडिशिकः सप्त रोहितमत्स्यानुद्धृत्य वल्ल्याप्य नीत्वा गङ्गातीरे बालुकायां प्रतिच्छाद्य मत्स्यान् गृह्णन्तोऽधो गङ्गायामभाङ्क्षीत्। उद्रः मत्स्यगन्धं घ्रात्वा बालुकां व्यूह्य मत्स्यान् दृष्ट्वा निर्हृत्य अस्ति ननु खलु एतेषां स्वामिक इति त्रिःकृत्वं घोषयित्वा स्वामिकमपश्यन् वल्ल्यां दृष्ट्वा आत्मनो वसनगुल्मे स्थापयित्वा वेलायामेव खादिष्यामीति आत्मनः शीलमावर्जयन् न्यपादि। शृगालोऽपि निष्क्रम्य गोचरं परीष्यन् एकस्य क्षेत्रगोपकस्य कुट्यां द्वौ मांसशूल्यौ एकां गोधामेकञ्च दधिवारकं दृष्ट्वास्ति ननु खल्वेतस्य स्वामिक इति त्रिःकृत्वं घोषयित्वा स्वामिकमदृष्ट्वा दधिवारकस्य उद्ग्राहरज्जुकं ग्रीवायां प्रवेश्य मांसशूलञ्च गोधाञ्च मुखेन नीत्वात्मनः शयनगुल्मे स्थापयित्वा वेलायामेव खादिष्यामीति आत्मनः शीलमावर्जयन् न्यपादि। मर्कटोऽपि वनषण्डं प्रविश्याम्रपिण्डमाहार्य वसनगुल्मे स्थापयित्वा वेलाया-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मेव खादिष्यामि इत्यात्मनः शीलमावर्जयन् न्यपादि । बोधिसत्त्वः पुनः वेलायामेव दर्भतृणानि खादिष्यामीत्यात्मनो गुल्मे एव निपन्नः अचीचिन्तत्—ममान्तिकमागतेभ्यः याचकेभ्यः तृणानि दातुं न शक्यम्, तिलतण्डुलादयोऽपि मम न सन्ति, चेत् ममांतिकं याचकः आगमिष्यत्यात्मनः शरीरमांसं दास्यामीति । तस्य शीलतेजसा शक्रस्य पांडुकम्बलशिलासनमुष्णाकारमदर्शि । स आवर्जयन् इदं कारणं दृष्ट्वा शशराजं मीमांसिष्ये इति प्रथममुद्रस्य वसनस्थानं गत्वा ब्राह्मणवेशेनास्थात्, 'ब्राह्मण ! किमर्थं स्थितोऽसि' इत्युक्ते 'पण्डित ! चेद् आहारं लभे (अलप्स्यम्) उपवसथिको भूत्वा श्रमणधर्मं कुर्याम् (अकरिष्यम्)' इति । स 'साधु' दास्यामि ते आहारमिति तेन सध्रीङ् संल्लपन् प्रथमां गाथामाह—

सप्त मे रोहिताः मत्स्याः उदकात् स्थलमुद्धृताः ।
इदं ब्राह्मण ! मे अस्ति एतद् भुक्त्वा वने वस इति ॥

ब्राह्मणः 'प्रातरेव तावद् भवतु, पश्चाद् ज्ञास्यामी'ति शृगालस्यान्तिकं गतः, तेनापि किमर्थं स्थितोऽसीत्युक्ते तथैवाह । शृगालः 'साधु' दास्यामीति तेन सध्रीङ् संल्लपन् द्वितीयां गाथामाह—

दूष्यं मे क्षेत्रपालस्य रात्रिभक्तमपाभृतम् ।
मांसशूलाश्च द्वे गोधे एकश्च दधिवारकम् ।
इदं ब्राह्मण ! मे अस्त्येतद् भुक्त्वा वने वस इति ॥

ब्राह्मणः 'प्रातरेव तावद् भवतु, पश्चाद् ज्ञास्यामी'ति मर्कटस्यान्तिकं गतः, तेनापि किमर्थं स्थितोऽसीत्युक्ते तथैवाह । मर्कटः 'साधु' दास्यामीति तेन सध्रीङ् संल्लपन् तृतीयां गाथामाह—

आम्रपक्वोदकं शीतं शीतच्छायं मनोरमम् ।
इदं ब्राह्मण ! मे अस्तीदं भुक्त्वा वने वस इति ॥

ब्राह्मणः 'प्रातरेव तावद् भवतु, पश्चाद् ज्ञास्यामी'ति शशपण्डितस्यान्तिकं गतः, तेनापि किमर्थं स्थितोऽसीत्युक्ते तथैवाह— तच्छ्रुत्वा बोधिसत्त्वः सौमनस्यप्राप्तः (प्राप्त सौमनस्य) 'ब्राह्मण ! सुष्ठु त्वया कृतमाहारार्थाय ममान्तिकमागच्छता, अद्याहं ममादत्तपूर्वं दानं दास्यामि, त्वं पुनः शीलवान्, प्राणातिपातं न करिष्यसि, गच्छ, तात ! दारूणि संकर्ष्याङ्गारे कृत्वा म्ह्यामारोचय, अहमात्मानं परित्यज्याङ्गारगर्भे पतिष्यामि, मम शरीरे पक्वे सति त्वं मांसं खादित्वा श्रमणधर्मं करिष्यसी' ति तेन सध्रीङ्संल्लपन् चतुर्थीं गाथामाह—

न शशस्य तिलाः सन्ति न मुद्गाः नापि तण्डुलाः ।
अनेनाग्निना पक्वं मम भुक्त्वा वने वस इति ॥

शक्रः तस्य कथां श्रुत्वात्मनोऽनुभावेनैकमङ्गारराशिं मापयित्वा बोधिसत्त्वमाह्वयत् । स दर्भतृणशयनतः उत्थाय तत्र गत्वा चेन्मे लोमान्तरेषु प्राणकाः सन्ति ते मा मृषत इत्युक्त्वा त्रिःकृत्वं शरीरं विधूय स्वकशरीरं दानमुखं कृत्वा लङ्घयित्वा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

पद्मपुञ्जे राजहंस इव प्रमुदितचित्तः अङ्गाररराशौ पतित्वा स पुनरग्निः बोधिसत्वस्य शरीरे लोमकूपमात्रमप्युष्णं कर्तुं नाशकत् । हिमगर्भं प्रविष्ट इव अभूत । अथ शक्रमामन्त्र्य 'ब्राह्मण ! त्वया कृतोऽग्निः अतिशीतलः । मम शरीरे रोमकूपमात्रमपि उष्णं कर्तुं न शक्नोति किं नाम एतदित्याह । 'पण्डित ! नाहं ब्राह्मणः शक्रोऽहमस्मि तव मीमांसनार्थायागत इति । 'शक्र ! त्वं तावत् तिष्ठ सकलोऽपि चेत् लोकसन्निवासः मां दानेन मीमांसेथाः नैव मे अदातुकामतां पश्येरिति' बोधिसत्वः सिंहनादमनादीत् । अथ नूनं शक्रः 'शशपण्डित ! तव गुणः सकलकल्पं प्रकटः भवत्विति पर्वतं पीडयित्वा पर्वतरसमादाय चन्द्रमण्डले शशलक्षणमालिख्य बोधिसत्वमामन्त्र्य तस्मिन् वनषण्डे तस्मिन्नेव वनगुल्मे तरुणदर्भतृणपृष्ठे निपद्यात्मनो देवस्थानमेव गतः । तेऽपि चत्वारः पण्डिताः सम्मोदमानाः शीलं पूरयित्वोपवसथकर्म कृत्वा यथाकर्म गताः ।

हिन्दी अनुवाद

अतीतकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के शासनकाल में बोधिसत्व शशयोनि में उत्पन्न होकर अरण्य में निवास करते थे। उस जंगल के एक ओर पर्वत, एक ओर नदी तथा एक ओर गाँव था। बन्दर, शृगाल तथा उद्र इनके सहायक हुए। वे चारों पण्डित एक स्थान पर रहते हुए भी अपने-अपने शिकार करने के स्थल से शिकार (जीव) लेकर सायंकाल एक स्थान पर एकत्र होते थे। दान देना चाहिए, शील की रक्षा करनी चाहिए, उपवसथ-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार की धर्म की शिक्षा शश-पण्डित तीनों जीवों को दिया करते थे। वे उनके उपदेश को स्वीकार कर अपने-अपने रहने की झुरमुटों में प्रविष्ट हो निवास करते थे। इस प्रकार समय बीतने पर एक दिन बोधिसत्त्व ने आकाश में चन्द्रमा को देखकर कल उपवसथ दिन है, ऐसा जानकर अन्य तीनों से कहा — कल उपवसथ है, तुम तीनों भी शील धारण कर उपवसथ करनेवाले बनो। शील में प्रतिष्ठित होकर दिया गया दान महाफलवाला होता है। इसलिए याचकों के उपस्थित होने पर आप लोग भोज्यपदार्थ को देकर खायें।' उन लोगों ने 'साधु' ऐसा स्वीकार कर अपने-अपने निवासस्थान पर निवास किया। दूसरे दिन उद्र प्रातःकाल ही 'गोचर का अन्वेषण करूँगा' ऐसा सोचकर निकलकर गङ्गातीर पर चला गया। कोई (व्यक्ति) सात रोहू मछलियों को निकालकर, वल्ली से पकड़कर, गङ्गा के किनारे बालू में छिपाकर, (अन्य) मछलियों को पकड़ता हुआ गङ्गा में घँस गया। उद्र ने मत्स्य-गन्ध को सूँघकर, बालू को हटाकर मछलियों को देखा, (उन्हें) निकालकर 'इनका कोई स्वामी है' ऐसा तीन बार घोषित कर स्वामी को न देखता हुआ वल्ली में दबाकर अपने निवास के झुरमुट में स्थापित कर 'समय पर ही खाऊँगा' ऐसा सोचकर अपने शील का आवर्जन (सेवा) करता हुआ पड़ गया। शृगाल भी निकलकर एक क्षेत्र-रक्षक की कुटी में दो मांसशूल, एक गोह तथा एक तक्रभाण्ड को देखकर 'इसका (कोई) स्वामी है' इस प्रकार तीन-तीन बार घोषणा करके स्वामी को न देखकर तक्रभाण्ड को लेकर अपने शयनगृह में स्थापित कर 'समय पर ही खाऊँगा' ऐसा अपने शील का आवर्जन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करता हुआ पड़ गया। बन्दर भी वनखण्ड में प्रविष्ट हो आम्रपिण्ड को लेकर निवास-स्थान पर स्थापित कर 'समय पर ही खाऊँगा' ऐसा अपने शील का आवर्जन करता हुआ पड़ गया। बोधिसत्त्व, 'उपवसथ-वेला में कुशतृणों को ही खाऊँगा' ऐसा निश्चय कर अपने झुरमुट में पड़े हुए ही सोचने लगे—'अपने पास आये हुए याचकों को कुशतृणों को नहीं दिया जा सकता है, (पुनः) मेरे पास तिल-तण्डुल आदि भी नहीं हैं, (अतः) यदि मेरे पास याचक आयेगा तो अपने शरीर के मांस को दे दूँगा, उनके शील के तेज से इन्द्र ने अपने पाण्डुकम्बल शिलासन को प्रतप्त देखा। वह इस कारण को देखकर 'शशराज की मीमांसा करूँगा' ऐसा सोचकर पहले उद्र के निवासस्थान पर ब्राह्मण-वेश में जाकर स्थित हो गया। 'हे ब्राह्मण, किसलिए स्थित हो' ऐसा कहने पर (ब्राह्मण ने कहा) 'पण्डित ! यदि कुछ आहार पा जाऊँ तो उपवसथिक होकर श्रमण-धर्म का पालन करूँ।' उसने 'साधु' कहकर 'तुम्हें आहार दूँगा' (ऐसा स्वीकार कर) उसके साथ संल्लाप करता हुआ पहली गाथा कही—

'जल से निकालकर स्थल पर रखी गयी मेरे पास सात रोहू मछलियाँ हैं। हे ब्राह्मण ! यही मेरे पास हैं, इसको खाकर वन में निवास करो।'

'अच्छा, बाद में ज्ञान प्राप्त करूँगा' ऐसा सोचकर ब्राह्मण प्रातः ही शृगाल के पास गये—उसके भी 'किस लिए स्थित हो' ऐसा कहने पर इसी प्रकार कहा। सियार ने, 'साधु, दूँगा' ऐसा कहकर उसके साथ संल्लाप करता हुआ दूसरी गाथा कही—

'ब्राह्मण, मेरे पास क्षेत्रपाल के वस्त्र, रात्रि का भोजन मांसशूल, दो गोह तथा एक तक्रभाण्ड, जिन्हें चुरा लाया गया है, इन्हें खाकर आप वन में निवास करें।'

'अच्छा, बाद में जानकारी प्राप्त करूँगा' ऐसा सोचकर ब्राह्मण प्रातः ही मर्कट के पास गया, 'किसलिए स्थित हो' ऐसा उसके भी कहने पर (उसने) उसी प्रकार कहा। 'साधु, दूँगा' ऐसा सोचकर, मर्कट ने उसके साथ संल्लाप करता हुआ, तीसरी गाथा कही—

'हे ब्राह्मण ! मनोरम, शीतल छायावाले (वृक्ष), शीतल जल तथा पका हुआ आम यही मेरे पास है। इसे खाकर वन में निवास करो।' अच्छा, 'बाद में जानूँगा' ऐसा सोचकर ब्राह्मण प्रातः ही शशपंडित के पास गया, 'किसलिए स्थित हो' ऐसा उसके कहने पर उसी प्रकार कहा। उसे सुनकर प्रसन्न हो बोधिसत्त्व ने (कहा)—'हे ब्राह्मण ! आहार के लिए यहाँ आकर तुमने ठीक किया, आज मैं अपने पहले न दिये गये दान को दूँगा, तुम शीलवान् हो, मुकरोगे नहीं। हे तात ! जाओ लकड़ी को खींचकर अग्नि में डालकर मुझे बताओ, मैं अपने (प्राणों) को छोड़कर अग्नि के बीच गिर जाऊँगा। मेरे शरीर के पक जाने पर तुम मांस को खाकर श्रमणधर्म करना, ऐसा सोचकर उसके साथ संल्लाप करता हुआ चौथी गाथा कही—

शश के पास न तिल हैं, न तण्डुल ही हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अग्नि में पके हुए (मेरे इस मांस) को खाकर वन में निवास करो।'

शक्र ने उस कथा को सुनकर अपने अनुभाव से एक अङ्गार-राशि को लाकर बोधिसत्त्व से कहा। वह दर्भतृण-शयन से उठकर वहाँ जाकर, 'यदि रोमों के बीच मेरे प्राण रह जायँगे तो वे नहीं मरेंगे' ऐसा कहकर, तीन बार शरीर को हिलाकर अपने शरीर को दान के लिए देकर, लांघकर पद्मसमूह के बीच राजहंस की भाँति, प्रसन्नचित्त हो अङ्गार-राशि में गिर गया। वह अग्नि बोधिसत्त्व के शरीर के रोमकूपों को भी उष्ण करने में समर्थ नहीं हुआ, ऐसा मालूम पड़ने लगा कि हिम के भीतर घुसे हों। वे शक्र का सम्बोधन कर बोले, 'हे ब्राह्मण ! तुम्हारी लगायी हुई आग अत्यन्त शीतल है, मेरे शरीर में रोम-कूप तक को भी गरम नहीं कर सकती। इन (प्राणों) का क्या !—
'हे पण्डित ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं शक्र हूँ, तुम्हारी मीमांसा के लिए यहाँ आया था।'
'हे इन्द्र; तुम तब तक रुको, (तुम) सकल लोक के निवासस्थान हो, यदि मेरी मीमांसा दान के द्वारा करना चाहते हो तो मुझे कुछ भी देने में संकोच नहीं है, ऐसा जानो।' इस प्रकार बोधिसत्त्व ने सिंहनाद किया (स्पष्ट कहा)।

तदनन्तर हे शश-पण्डित ! तुम्हारा गुण सम्पूर्ण कल्पों में प्रकट होवे, ऐसा कह-कर पर्वत को निचोड़कर पर्वत-रस को लेकर चन्द्रमण्डल में शशलक्षण को लिखकर बोधिसत्त्व को आमंत्रित कर उस वनखण्ड में उसी वन के झुरमुट में बढ़े हुए दर्भ-तृणपृष्ठ पर गिरकर अपने देवस्थान को ही चले गये। चारों पण्डित भी प्रसन्न हुए तथा शील को पूर्ण करके, उपवसथ-कर्म करके यथाकर्म चले गये।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बावेरुजातकम्

अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्तो रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मोरयोनियं निब्बत्तित्वा बुद्धि अन्वाय सोभग्गप्पत्तो अरञ्ञे विचरि। तदा एकच्चे वाणिजा दिसाकाकं गहेत्वा नावाय बावेरुरट्ठं अगमंसु। तस्मिं किर काले बावेरुरट्ठे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रट्ठवासिनो तं कूपग्गे निसिन्नं दिस्वा पस्सथि'मस्स छविवण्णं गलपरियोसानं मुखतुण्डकं मणिगुळसदिसानि अक्खीनति। काकं एव पसंसित्वा ते वाणिजके आहंसु, 'इमं अय्यो सकुणं अम्हाकं देथ, अम्हाकं हि इमिना अत्थो, तुम्हे अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथा' ति। 'तेन हि मूलेन गण्हथा'ति। 'कहापणेन नो देथा'ति। 'न देमा'ति। अनुपुब्बेन वड्ढेत्वा 'सतेन देथा'ति वुत्ते 'अम्हाकं एस बहूपकारो, तुम्हेहि पन सद्धि मेत्ती होतू' ति कहापणसतं गहेत्वा अदंसु। ते तं गहेत्वा सुवण्णपञ्जरे पक्खिपित्वा नानप्पकारेन मच्छमंसेन चे'व फलाफलेन च पटिजग्गिंस। अञ्ञेसं सकुणानं अविज्जमानट्ठाने दसहि असद्धम्मेहि समन्नागतो काको लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि। पुनवारे ते वाणिजा एकं मयूरराजानं गहेत्वा यथा अच्छरासद्देन वस्सति पाणिप्पहारसद्देन नच्चति एवं सिक्खापेत्वा बावेरुरट्ठं अगमंसु। सो महाजने सन्निपतिते नावाय धुरे ठत्वा पक्खे विधूनित्वा मधुररस्सरं निच्छारेत्वा नच्चि। मनुस्सा तं दिस्वा सोमनस्सजाता—'एतं अय्यो सोभग्गप्पत्तं सुसिक्खितसकुणराजानं अम्हाकं देथा' ति आहंसु। 'अम्हेहि पठमं काको आनीतो, तं गण्हित्थ' इदानि एतं मोरराजानं आनायिम्ह, एतम्पि याचथ। तुम्हाकं रट्ठे सकुणं नाम गहेत्वा आगन्तुं न सक्का' ति। 'होतु अय्यो, अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथ, इमं नो देथा' ति मूलं वड्ढेत्वा सहस्सेन गण्हिंसु। अथ नं सत्तरतनविचित्ते पञ्जरे ठपेत्वा मच्छमंसफलाफलेहि चे'व मधुलाजासक्खरापानकादीहि च पटिजग्गिंसु। मयूरराजा लाभग्गयसग्गपत्तो जातो। तस्सागतकालतो पट्ठाय काकस्स लाभसक्कारो परिहायि, कोचि नं आलोकितुं पि न इच्छि। काको खादनीयभोजनीयं अलभमानो 'काका'ति वस्सन्तो गन्त्वा उक्कारभूमियं ओतरि।

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुभाणिनो।
काकं तत्थ अपूजेसुं मंसेन च फलेन च॥
यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा।
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ॥
याव नु'प्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभंकरो।
ताव अञ्ञे अपूजेसुं पुथू समणब्राह्मणे॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्मं अदेसयि।
अथ लाभो च सक्कारो तित्थियानं अहायथा' ति ॥

संस्कृत अनुवाद

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वः मयूरयोन्यां निर्वृत्य बुद्धिमन्वित्य सौभाग्यप्राप्तःअरण्ये व्यचारीत्। तदैकतया: वणिजः दिक्काकं गृहीत्वा नावा बावेरुराष्ट्रमगमन्। तस्मिन् किल काले बावेरुराष्ट्रे शकुनाः नाम न सन्ति। आगताः राष्ट्रवासिनः तं कूपाग्रे निषण्णं दृष्ट्वा 'पश्यतास्य छविवर्णं गलपर्यवसानं मुखतुण्डकं मणिगुलकसदृशेऽक्षिणीति काकमेवं प्रशस्य ते वणिजः अवोचन्— 'इदमार्यः शकुनमस्मभ्यं ददातु। अस्माकं ह्यनेनार्थः यूयमात्मनः राष्ट्रे अन्यम् लप्स्यध्वे ; तेन हि मूल्येन गृह्णीत इति। कार्षापणेन नो दत्तेति। न दद्म इति। आनुपूर्व्येण वर्धयित्वा शतेन दत्तेत्युक्तेऽस्माकमेष बहूपकारः। युष्माभिः पुनः सार्धं मैत्री भवत्विति' कार्षापणशतं गृहीत्वादुः। ते तं गृहीत्वा सुवर्णपञ्जरे प्रक्षिप्य नानाप्रकारेण मत्स्यमांसेन चैव फलाफलेन च प्रत्यग्रहीषुः। अन्येषां शकुनानामविद्यमानस्थाने दशभिरसद्धर्मैः समन्वागतः काकः लाभाग्रयशोग्रप्राप्तोऽभूत्। पुनर्वारं ते वणिजः एकं मयूरराजं गृहीत्वा यथाक्षरशब्देन वाश्यते, पाणिप्रहारशब्देन नृत्यत्येवं शिक्षयित्वा बावेरुराष्ट्रमगमन्। स महाजने सन्निपतिते, नावा धुरि स्थित्वा पक्षौ विधूय मधुरस्वरं निस्सार्य अनर्तीत्। मनुष्याः तं दृष्ट्वा सौमनस्यजाताः—'एनमार्याः! प्राप्त-सौभाग्यं सुशिक्षितं शकुनराजमस्मभ्यं दत्तेत्यबोचन्। अस्माभिः प्रथमं काकः अनीतः तमग्रहीष्टेदानीमेतं मयूरराजमानैषिष्म एनमपि याचथ। युष्माकं राष्ट्रे शकुनं नाम गृहीत्वागन्तुं न शक्यम्। भवत्वार्यः आत्मनः राष्ट्रे अन्यं लप्स्यसे, इमं नो ददातु।' मूल्यं वर्धयित्वा सहस्रेणाग्रहीषुः। अथैनं सप्तरत्नविचित्रे पञ्जरे स्थापयित्वा मत्स्य-मांसफलाफलैश्चैव मधुलाजाशर्करापानकादिभिश्च प्रत्यग्रहीषुः। मयूरराजः लाभाग्र-यशोग्रप्राप्तो जातः। तस्यागतकालतः प्रस्थाय काकस्य लाभसत्कारः पर्यहायि। कश्चिदप्येनमवलोकयितुमपि नैषीत्। काकः खादनीयं भोजनीयमलभमानः काकेति वाश्यमानो गत्वोत्करभूमौ अवातरीत्।

अदर्शनेन मयूरस्य शिखिनो मञ्जुभाषिणः।
काकं तत्रापूपुजन् मांसेन च फलेन च ॥
यदा च स्वरसम्पन्नः मयूरो बावेरुमागमत्।
अथ लाभश्च सत्कारो वायसस्याहायि ॥
यावन्नोत्पद्यते बुद्धो धर्मराजः प्रभाकरः।
तावदन्येऽपूज्यन्त पृथक् श्रमणब्राह्मणाः ॥
यदा च स्वरसम्पन्नः बुद्धो धर्ममदिक्षत्।
अथ लाभश्च सत्कारः तैर्थिकानामहायि ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी अनुवाद

अतीत काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के शासन-काल में बोधिसत्व मयूरयोनि में निवृत्त होकर, बुद्धि तथा सौभाग्य प्राप्तकर जंगल में विचरण कर रहे थे। कुछ बनिये दिशा-काक को लेकर नाव से बावेरुराष्ट्र गये। उस समय बावेरुराष्ट्र में कोई पक्षी नहीं था। आते-जाते हुए राष्ट्रवासी, कूपं पर बैठे हुए उसको देखकर 'इसके वर्णछवि, गले तक फैले हुए चोंच एवं मणि के सदृश आँखों को देखो।' इस प्रकार काक की प्रशंसा कर उन लोगों ने बनियों से कहा—'हे आर्य, इस पक्षी को हमलोगों को दे दें। हमलोगों को इससे तात्पर्य है। आंप लोग अपने राष्ट्र में दूसरा प्राप्त कर लीजियेगा। इसलिए मूल्य ले लीजिये। एक कार्षापण में इसे हमें दे दीजिये। 'नहीं देंगे।' (इस प्रकार) क्रमशः (मूल्य) बढ़ाकर (कहा) सौ (कार्षापण) में दे दीजिये। हमलोगों का यह बहुत उपकार होगा तथा आपलोगों के साथ मित्रता हो जायगी।' सौ कार्षापण लेकर (उसे) दे दिया। वे उसे लेकर सुवर्ण-पञ्जर में डालकर नाना प्रकार के मत्स्यमांस, फलाफल द्वारा उसका सत्कार करने लगे। अन्य पक्षियों के अभाव में दश असद्धर्मों से युक्त कौआ लाभ एवं यश प्राप्त करने लगा। दूसरे दिन वे बनिये एक मयूर-राजको 'जिससे अक्षर कहने पर बोले, हथेली के प्रहार के शब्द से नृत्य करे' ऐसा सिखाकर बावेरुराष्ट्र लाये। वह महाजनों के एकत्र होने पर नाव की धुरी पर स्थित हो पंखों को फैलाकर, मधुर स्वर निकालकर नाचने लगा। उसे देखकर मनुष्य प्रसन्न हो गये। 'आर्य! सौभाग्यशाली सुशिक्षित इस पक्षिराज को हमें दे दें',' ऐसा कहा। 'हम पहले कौआ लाये, उसे ले लिया, इस समय मयूरराज को लाये इसको भी माँग रहे हो। आप लोगों के राष्ट्र में पक्षी लेकर नहीं आया जा सकता।' 'हे आर्य! अपने राष्ट्र में दूसरा (पक्षी) प्राप्त कर लीजियेगा, इसे हमें दे दें।' (इस प्रकार) मूल्य बढ़ाकर हजार (कार्षापण) से ले लिया। इसे सात रत्नों से बने विचित्र पिंजरे में स्थापित करके मत्स्यमांस, फलाफल, मधु, शक्कर, पानक आदि से इसका सत्कार करने लगे। मयूरराज लाभ एवं यश प्राप्त करने लगे। उसके आने के समय से कौए का लाभ एवं सत्कार बन्द हो गया। कोई इसे देखना भी नहीं चाहता था कौआ भोजन आदि न प्राप्त करता हुआ 'काँव-काँव' ऐसा कहता हुआ जाकर उच्चार (शौचालय) भूमि में उतर गया।

मञ्जुभाषी मयूर के अदर्शन से मांस एवं फल द्वारा कौआ पूजा जाता था। जब स्वरसम्पन्न मयूर बावेरु आया तब कौए का लाभ-सत्कार त्याग दिया गया। जब तक धर्मराज प्रभाकर बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए तब तक अन्य श्रमण ब्राह्मण पूजे जाते थे। जब स्वर-सम्पन्न बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया तब तैर्थिकों का लाभ-सत्कार त्याग दिया गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जवसकुणजातकम्

अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो हिमवन्तप्पदेसे रुक्खकोट्टकसकुणो हुत्वा निब्बत्ति। अथेकस्स सीहस्स मंसं खादन्तस्स अट्ठि गले लग्गि, गलो उद्धुमाथि, गोचरं गण्हितुं न सक्कोति, खरा वेदना वत्तन्ति। अथ नं सो सकुणो, गोचरपसुतो दिस्वा साखाय निलीनो 'किन्ते दुक्खं' ति पुच्छि। सो तं अत्थं आचिक्खि। 'अहं ते सम्म एतं अट्ठिं अपनेय्यं, भयेन पन ते मुखं पविसितुं न विसहामि, खादेय्यासि पि मं' ति। 'मा भायि सम्म, नाहं तं खादामि जीवितं मे देही' ति। सो 'साधू' ति तं पस्सेन निपज्जापेत्वा 'को जानाति किं पे'स करिस्सती'ति चिन्तेत्वा यथा मुखं पिदहितुं न सक्कोति तथा तस्स अधरोट्ठे च उत्तरोट्ठे च दण्डकं ठपेत्वा मुखं पविसित्वा अट्ठिकोटिं तुण्डेन गहरि। अट्ठि पतित्वा गतं। सो अट्ठि पातेत्वा सीहस्स मुखतो निक्खमन्तो दण्डकं तुण्डेन पहरित्वा पातेन्तो निक्खमित्वा साखग्गे निलीयि। सीहो नीरोगो हुत्वा एकदिवसं वनमहिसं वधित्वा खादति। सकुणो 'वीमंसिस्सामि नं' ति तस्स उपरिभागे साखाय निलीयित्वा तेन सद्धिं सल्लपन्तो पठमं गाथमाह—

> अकरम्हसे ते किच्चं यं बलं अहुवम्हसे।
> मिगराज नमो त्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे॥

तं सुत्वा सीहो दुतियं गाथमाह--

> मम लोहितभक्खस्स निच्चं लुद्दानि कुब्बतो।
> दन्तान्तरगतो सन्तो तं बहुं यं हि जीवसीति॥

तं सुत्वा सकुणो इतरा द्वे गाथा अभासि--

> अकतञ्ञुं अकत्तारं कत्तस्स अप्पतिकारकं।
> यस्मिं कतञ्ञुता न'त्थि निरत्था तस्संसेवना॥
> यस्स सम्मुखचिण्णन मित्तधम्मो न लब्भति।
> अनुसुय्यं अनक्कोसं सणिकं तम्हा अपक्कमे'ति॥

एवं वत्वा सो सकुणो पक्कामि।

संस्कृत अनुवाद

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्वः हिमवत्प्रदेशे वृक्षकोष्ठकशकुनो भूत्वा न्यवर्त्तिष्ठ। अथैकस्य सिंहस्य मांसं खादतोऽस्थि गलेऽलगीत्, गलमुद्ध्मायि गोचरं ग्रहीतुं न शक्नोति, खराः वेदनाः वर्तन्ते। अथैनं स शकुनः गोचरप्रसृतः दृष्ट्वा शाखायां निलीनः 'किन्ते दुःखमि' त्यप्राक्षीत्। स तदर्थमाख्यत्। अहम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तव सौम्य ! एतदरस्यपनयेयं, भयेन पुनः ते मुखं प्रवेष्टुं न विषहे, खादेः अपि मामिति। मा भैषीः सौम्य ! नाहं त्वां खादामि। जीवितं मे देहीति। साधु, इति तं पार्श्वेन निपाद्य कः जानाति किमपि स करिष्यतीति चिन्तयित्वा यथा मुखं पिदधातुं न शक्नोति तथा तस्याधरोष्ठे चोत्तरोष्ठे च दण्डकं स्थापयित्वा मुखं प्रविश्यास्थिकोटिं तुण्डेनापाहार्षीत्। अस्थि पतित्वा गतम्। स अस्थि पातयित्वा सिंहस्य मुखतो निष्क्रम्य दण्डकं तुण्डेन प्रहृत्य पातयन् निष्क्रम्य शाखाग्रे न्यलेष्ट। सिंहो नीरोगो भूत्वैकदिवसे वनमहिषं हत्वा खादति। शकुनो, मीमांसिष्ये एनमिति तस्योपरिभागे शाखायां निलीय तेन सार्द्धं संल्लपन् प्रथमां गाथामाह—

अकार्ष्म ते कृत्यं यद्बलमभूवम्।
मृगराज ! नमस्तेऽस्तु–अपि किञ्चिद् लभामहे ॥

तच्छ्रुत्वा सिंहः द्वितीयां गाथामाह—

मम लोहितभक्ष्यस्य नित्यं रुद्राणि कुर्वतः।
दन्तान्तर्गतः सन् तद् बहु यद्धि जीवसि ॥

तच्छ्रुत्वा शकुनः इतरे द्वे गाथे अभाषिष्ट—

अकृतज्ञमकर्त्तारं कृतस्याप्रतिकारकम्।
यस्मिन् कृतज्ञता नास्ति निरर्था तस्य सेवना ॥
यस्य सम्मुखचीर्णेन मित्रधर्मो न लभ्यते।
अनसूयमनाक्रोशं शनकैः तस्मादपक्रमेद् इति ॥

एवमुक्त्वा स शकुनः प्राक्रमीत्।

हिन्दी अनुवाद

भूतकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के शासन-काल में बोधिसत्त्व हिमवत्प्रदेश में वृक्षकोट्टक के शकुन होकर उत्पन्न हुए। कभी मांस को खाते हुए (किसी) सिंह के गले में अस्थि लग गयी, गला रुँध गया, (वह) जीवों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो रहा था, (उसे) तीव्र वेदना उत्पन्न हो रही थी। जीवों से हटे हुए उसे देखकर शाखाओं के बीच में छिपे हुए उस शकुन ने पूछा—'क्या कष्ट है ?' उसने वह बात कही। 'मैं तुम्हारी इस हड्डी को निकालूंगा, परन्तु भय के कारण तुम्हारे मुख में प्रविष्ट होने की हिम्मत नहीं कर रहा हूँ, मुझको भी खा लोगे।' 'हे सौम्य ! डरो मत, मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। मुझे जीवन दो।' अच्छा, ऐसा कहकर समीप से उसे जानकर, कौन जानता है, वह कुछ भी कर देगा, ऐसा सोचकर, जिससे कि वह मुख न बन्द कर सके, उसके अधर एवं ओष्ठ पर दण्ड रखकर मुख में प्रविष्ट हो उसने अस्थि के अग्र-भाग को तुण्ड से गिरा दिया। अस्थि गिर गयी। अस्थि को गिराकर, डण्डे को चोंच से गिराकर सिंह के मुख से निकलकर शाखा में वह छिप गया। सिंह नीरोग होकर एक दिन वनमहिष को मारकर खा रहा था। इससे मीमांसा करूँगा, ऐसा सोचकर वृक्ष की शाखा पर छिपकर शकुन ने उसके साथ संल्लप करते हुए प्रथम गाथा कही—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'शक्ति के अनुकूल मैंने तेरा कार्य किया। हे मृगराज! तुम्हें नमस्कार है—क्या (मैं भी) कुछ प्राप्त करूँ?' वह सुनकर सिंह ने द्वितीय गाथा कही—

'रक्तपान करनेवाले एवं भयंकर कर्म करनेवाले मेरे दाँतों के भीतर आनेवाला जो जी पाये वही बहुत है।' यह सुनकर शकुन ने अन्य दो गाथाएँ कहीं—

'अकृतज्ञ, अकर्ता एवं किये हुए का प्रतीकार करनेवाले जिस व्यक्ति में कृतज्ञता नहीं है, उसकी सेवा करना व्यर्थ है। स्पष्ट चरितवाले को जिस (उपकृत व्यक्ति) से मित्रधर्म की प्राप्ति (निर्वाह) (की आशा) न हो उससे असूयारहित और आक्रोशरहित धीरे से दूर हट जाना चाहिए।

यह कहकर वह शकुन चला गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुप्पारकजातकम्

अतीते भरुरट्ठे भरुराजा नाम रज्जं कारेसि। भरुकच्छं नाम पट्टनगामो आहोसि। तदा बोधिसत्तो भरुकच्छे निय्यामकजेट्ठस्स पुत्तो हुत्वा निब्बत्ति पासादिको सुवण्णवण्णो। सुप्पारककुमारो ति'स्स नामं करिंसु। सो महन्तेन परिवारेन बड्ढन्तो सोळसवस्सकाले येव निय्यामकसिप्पे निप्फत्ति पत्त्वा अपरभागे पितु अच्चयेन निय्यामकजेट्ठको हुत्वा निय्यामककम्मं अकासि। पण्डितो ञाणसम्पन्नो अहोसि, तेन आरूळ्हनावाय व्यापत्ति नाम न'त्थि। तस्स अपरभागे लोणजलपहटानि द्वे पि चक्खूनि नस्सिंसु। सो ततो पट्ठाय निय्यामकजेट्ठको हुत्वापि निय्यामककम्मं अकत्वा 'राजानं निस्साय जीविस्सामी'ति राजानं उपसंकमि। अथ नं राजा अग्घापनियकम्मे ठपेसि। ततो पट्ठाय रञ्ञो हत्थिरतनं अस्सरतनं मुत्तसारमणिसारादीनि अग्घापेति। अथेकदिवसं रञ्ञो मङ्गलहत्थी भविस्सतीति काळपासाणकूटवण्णं एकं वारणं आनेसुं। तं दिस्वा राजा 'पण्डितस्स दस्सेथा' ति आह। अथ नं तस्स सन्तिकं नयिंसु। सो हत्थेन तस्स सरीरं परिमद्दित्वा नायं मङ्गलहत्थी भवितुं अनुच्छविको, पच्छावामनकधातुको एस, एतं हि माता विजायमाना अंसेन पटिच्छितुं नासक्खि। तस्मा भूमियं पतित्वा पच्छिमपादेहि वामनकधातुको जातो' ति आह। हत्थिं गहेत्वा आगते पुच्छिंसु। ते 'सच्चं पण्डितो कथेती' ति वदिंसु। तं कारणं राजा सुत्वा तुट्ठो तस्स अट्ठ कहापणे दापेसि। पुनेकदिवसं। रञ्ञो मङ्गल'स्सो भविस्सतीति एकं अस्सं आनयिंसु। तम्पि राजा पण्डितस्स सन्तिकं पेसेसि। सो हत्थेन परामसित्वा 'अयं मङ्गल'स्सो भवितुं न युत्तो, एतस्स हि जातदिवसे येव माता मरि, तस्मा मातुखीरं अलभन्तो न सम्मा वड्ढितो' ति आह। सा'पि'स्स कथा सच्चा'व अहोसि। तम्पि सुत्वा राजा तुस्सित्वा अट्ठे'व कहापणे दापेसि। अथे'कदिवसं 'मङ्गलरथो भविस्सती'ति रथं आहरिंसु। तम्पि राजा तस्स सन्तिकं पेसेसि। सो तं हत्थेन परामसित्वा 'अयं रथो सुसिररुक्खेन कतो, तस्मा रञ्ञो नानुच्छविको' ति आह। सापि'स्स कथा सच्चा'व अहोसि। राजा तम्पि सुत्वा अट्ठे'व कहापणे दापेसि। अथ'स्स कम्बलरतनं महग्घं आनयिंसु। तम्पि तस्से'व पेसेसि। सो हत्थेन परामसित्वा 'इमस्स मूसिकच्छिन्नं एकं ठानं अत्थीति आह। सोधेन्ता तं दिस्वा रञ्ञो आरोचेसुं। राजा तुस्सित्वा अट्ठेव कहापणे दापेसि सो चिन्तेसि— अयं राजा एवरूपानि पि अच्छरियानि दस्वा अट्ठे'व कहापणे दापेसि, इमस्स दायो नहापितदायो, नहापितस्स जातको भविस्सति, किंमे एवरूपेन राजुपट्ठानेन 'अत्तनो वसनट्ठानमेव गमिस्सामी'ति सो भरुकच्छपट्टनमेव पच्चागमि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तस्मिं तत्थ वसन्ते वाणिजा नावं सज्जेत्वा 'कं निय्यामकं करिस्सामा' ति मन्तेन्ता 'सुप्पारकपण्डितेन आरूळ्हनावा न व्यापज्जति, एस पण्डितो उपाय-कुसलो, अन्धो समानो पि सुप्पारकपण्डितो' व उत्तमो' ति तं उपसंकमित्वा 'निय्यामको नो होही' ति वत्वा, तात, अहं अन्धो, कथं निय्यामककम्मं करिस्सामीति वुत्ते 'सामि, अन्धापि तुम्हे येव अम्हाकं उत्तमो' ति पुनप्पुन याचियमानो 'साधु तात, तुम्हेहि आरोचितसञ्ञाय निय्यामको भविस्सामी' ति तेसं नावं अभिरूहि। ते नावाय महासमुद्दं पक्खन्दिसु। नावा सत्त दिवसानि निरुपद्दवा अगमासि, ततो अकालवातं उप्पज्जि, नावा चत्तारो मासे पकतिसमुद्दपिट्ठे विचरित्वा खुरमालसमुद्दं नाम पत्ता, तत्थ मच्छा मनुस्ससमानसरीरा खुरनासा उदके उम्मुज्जनिमुज्जं करोन्ति। वणिजा ते दिस्वा महासत्तं तस्स समुद्दस्स नामं पुच्छन्ता पठमं गाथमाहंसु—

उमुज्जन्ति निमुज्जन्ति मनुस्सा खुरनासिका।
सुप्पारकं तं पुच्छाम समुद्दो कतमो अयं' ति॥

एवं तेहि पुट्ठो महासत्तो अत्तनो निय्यामकसुत्तेन संसन्देत्वा दुतियं गाथमाह—

भरुकच्छा पयातानं वाणिजानं धनेसिनं।
नावाय विप्पनट्ठाय खुरमालीति वुच्चती' ति॥

तस्मि पन समुद्दे वजिरं उपज्जति। महासत्तो 'स चा' हं अयं वजिरसमुद्दो' ति एवं एतेसं कथेस्सामि लोभेन बहुं वजिरं गण्हित्वा नावं ओसीदापेस्सन्ती' ति तेसं अनाचिक्खित्वा' व नावं लग्गापेत्वा उपायेने' कं योत्तं गहेत्वा मच्छगहणनियामेन जालं खिपापेत्वा वजिरसारं उद्धरित्वा नावाय पक्खिपित्वा अञ्ञं अप्पग्घभण्डं छड्डापेसि। नावा तं समुद्दं अतिक्कमित्वा परतो अग्गिमालं नाम गता। सो पज्जलितअग्गिक्खन्धो विय मज्झन्तिकसुरियो विय च ओभासं मुञ्चन्तो अट्ठासि। वणिजा।

यथा अग्गीव सुरियो'व समुद्दो पतिदिस्सति।
सुप्पारकं तं पुच्छाम समुद्दो कतमो अयं' ति॥

गाथाय तं पुच्छिसु। महसत्ता पि तेसं अनन्तरगाथाय कथेसि—भरुकच्छा पयातानं—पे—अग्गिमालीति वुच्चतीति॥ तस्मि पन समुद्दे सुवण्णं उस्सन्नं अहोसि। महसत्तो पुरिमनयेनेव ततो पि सुवण्णं गाहापेत्वा नावाय पक्खिपि। नावा तम्पि समुद्दं अतिक्कमित्वा खीरं विय दधि विय च ओभासन्तं दधिमालं नाम समुद्दं पापुणी। वाणिजा

'यथा दधिं व खीरं व समुद्दो पतिदिस्सति—पे—'गाथाय तस्स नामं पुच्छिसु। महासत्तो अनन्तरगाथाय आचिक्खि—

'भरुकच्छा पायातानं·पे·दधिमालीति वुच्चती'ति॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अस्मि पन समुद्दे रजतं उस्सान्नं। सो तम्पि उपायेन गाहापेत्वा नावाय पक्खिपापेसि। नावा तम्पि समुद्दं अतिक्कमित्वा नीलकुसतिणं विय सम्पन्न सस्सं इव च ओभासमानं नीलवण्णं कुसमालं नाम समुद्दं पापुणि। वाणिजा

'यथा कुसो' व सस्सो' व समुद्दो पतिदिस्सति—पे—'

गाथाय तस्य पि नामं पुच्छिसु। सो अनन्तरगाथाय आचिक्खि—

'भरुकच्छा पयातानं—पे—कुसमालीति वुच्चती'ति ॥

तस्मि पन समुद्दे नीलमणिरतनं उस्सन्नं अहोसि। सो तम्पि उपायेन गाहापेत्वा नावाय पक्खिपापेसि। नावा तम्पि समुद्दं अतिक्कमित्वा नलवनं विय च वेळुवनं विय च खायमानं नलमालं नाम समुद्दं पापुणि। वाणिजा

'यथा नलो व वेलूं व समुद्दो पतिदिस्सति—पे—'

गाथाय तस्स पि नामं पुच्छिसु। महासत्तो अनन्तरगाथाय कथेसि—

'भरुकच्छा पयातानं—पे—नलमालीति वुच्चती'ति ॥ अस्मि पन समुद्दे वंसरागवेळुरियं उस्सन्नं, सो तम्पि गाहापेत्वा नावाय पक्खिपापेसि। वाणिजा नलमालि अतिक्कमन्ता बळवामुखसमुद्दं नाम पस्सिसु। तत्थ उदकं कड्ढित्वा कड्ढित्वा सब्बतोभागेन उग्गच्छति। तस्मि सब्बतोभागेन उग्गतोदकं सब्बतोभागेन छिन्नतटमहासोब्भो विय पञ्ञायति, ऊमिया उग्गताय एकतो पपातसदिसं होति, भयजननो सद्दो उप्पज्जति सोतानि भिन्दन्तो विय हदयं फालेन्तो विय। तं दिस्वा वाणिजा भीततसिता

'महाभयो भिसनको सद्दो सुय्यत'मानुसो।

यथा सोब्भो पपातो च समुद्दो पतिदिस्सति—पे—'

गाथाय तस्स नामं पुच्छिसु।

'भरुकच्छा पयातानं—पे—वळभामुखीति वुच्चती'ति ॥

बोधिसत्तो अनन्तरगाथाय तस्स नामं आचिक्खित्वा ताता, इमं वलभामुखं समुद्दं पत्ता निवत्तितं समत्था नावा नाम न'त्थि। अयं सम्पत्तनावं निमुज्जापेत्वा विनासं पापेतीति आह। तञ्च नावं सत्तमनुस्ससतानि अभिरुहिंसु, ते सब्बे मरणभयभीता एकप्पहारेनेव अविचिम्हि पच्चमाना सत्ता विय अतिकरुणसरं मुच्चिसु। महासत्तो 'ठपेत्वा मं अञ्ञो एतेसं सोत्थिभावं कातुं समत्थो नाम न'त्थि, सच्चकिरियाय तेसं सोत्थिं करिस्सामीति चिन्तेत्वा ते आमन्तेत्वा ताता, मं खिप्पं गन्धोदकेन नहापेत्वा अहतवत्थानि नियासापेत्वा पुण्णपातिं सज्जेत्वा नावाय धुरे ठपेथा'ति। ते वेगेन तथा करिंसु। महासत्तो उभोहि हत्थेहि पुण्णपातिं गहेत्वा नावाय धुरे ठितो सच्चकिरियं करोन्तो ओसान गाथमाह—

यतो सराभि अत्तानं यतो पत्तो'स्मि विञ्ञुतं।
नाभिजानामि संचिच्च एकपाणम्पि हिंसितं।
एतेन सच्चवज्जेन सोत्थिं नावा निवत्ततु'ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चत्तारो मासे विदेसं पक्खन्ना नावा निवत्तित्वा इद्धिमा विय इद्धानुभावेन एकदिवसेने' व खरुकच्छपट्टनं अगमासि, गन्त्वा च पन थलेपि अट्ठूसभमत्तं ठानं पक्खंदित्वा नाविकस्स घरद्वारे अट्ठासि। महासत्तो तेसं वाणिजानं सुवण्ण-रजतमणिप्पवालवजिरानि भाजेत्वा अदासि, 'एत्तकेहि वो रतनेहि अलं, मा पुन समुद्दं पविसित्था' ति च तेसं ओवादं दत्वा यावजीवं दानादीनि पुञ्ञानि कत्वा देवपुरं पूरेसि।

संस्कृत अनुवाद

अतीते भरुराष्ट्रे भरुराज इति नाम राज्यमकार्षीत्। भरुकच्छमिति नामा पत्तनग्रामः अभूत्। तदा बोधिसत्वः भरुकच्छे निर्यामकज्येष्ठस्य पुत्रो भूत्वा न्यवर्तिष्ट प्रासादिकः सुवर्णवर्णः। शूर्पारककुमार इत्यस्य नामाकार्षुः। स महता परिवारेण वर्ध-मानः षोडशवर्षकाले एव निर्यामकशिल्पे निष्पत्तिं प्राप्यापरभागे पितुरत्ययेन निर्यामक-ज्येष्ठको भूत्वा निर्यामककर्माकार्षीत्। पण्डितः ज्ञानसम्पन्नोऽभूत। तेन आरूढनावि (सति) व्यापत्तिः नाम नास्ति। तस्यापरभागे लवणजलप्रहते द्वे अपि चक्षुष्यनशताम्। स ततः प्रस्थाय निर्यामकज्येष्ठको भूत्वापि निर्यामककर्माकृत्वा राजानं निःश्रित्य जीविष्यामीति राजानमुपसमक्रमीत्। अथैनं राजार्घापणीयकर्मण्यतिष्ठिपत्। ततः प्रस्थाय राज्ञः हस्तिरत्नमश्वरत्नं मुक्तासारमणिसारादीन्यर्घापयति। अथैकदिवसे राज्ञः मङ्गलहस्ती भविष्यतीति कालपाषाणकूटवर्णमेकं वारणमानैषुः। तं दृष्ट्वा राजा 'पण्डितं दर्शयत' इत्याह। अथैनं तस्यान्तिकमनैषुः। स हस्तेन तस्य शरीरं परिमृष्य नायं मङ्गलहस्ती भवितुमानुच्छविकः, पश्चाद् वामनकधातुक एष, एतं हि माता विजायमानांसेन प्रतीक्षितुं नाशकत्। तस्माद् भूमौ पतित्वा पश्चिमपादैः वामनकधातुकः जात इत्याह। हस्तिनं गृहीत्वागतानप्राक्षुः— ते 'सत्यं पण्डितः कथयती'त्यवादिषुः। तत्कारणं राजा श्रुत्वा तुष्टः तस्मायष्टौ कार्षापणानदीदपत्। पुनरेकदिवसे राज्ञः मङ्ग-लाश्व भविष्यतीति एकमश्वमानैषिषुः। तमपि राजा पण्डितस्यान्तिकं प्रैषिषत्। स हस्तेन परामृश्यायं मङ्गलाश्वः भवितुं न युक्तः। एतस्य हि जातदिवसे एव माता मरिष्ट, तस्मात् मातुः क्षीरमलभमानः न सम्यग् वर्द्धित इत्याह। साप्यस्य कथा सत्यैवाभूत्। तामपि श्रुत्वा राजा सतुष्ट्वाष्टावेव कार्षापणानदीदपत्। अथैकदिवसे मङ्गलरथः भविष्यतीति रथमाहार्षिषुः। तमपि राजा तस्य अन्तिकं प्रैषीत्। स तं हस्तेन परामृश्यायं रथः सुषिरवृक्षेण कृतः, तस्मात् राज्ञः नानुच्छविक इत्याह। साप्यस्य कथा सत्यैवा-भूत्। राजा तामपि श्रुत्वाष्टावेव कार्षापणानदीदपत्। अथास्य कम्बलरत्नं महार्घ-मानैषुः। तमपि तस्यैव प्रैषीत्। स हस्तेन परामृश्य अस्य मूषिकच्छिन्नमेकं स्थान-मस्तीत्याह। शोधयन्तः त दृष्ट्वा राजानमारूरुचन्। राजा तुष्टाष्टावेव कार्षापणान् अदीदपत्। सोऽचिचिन्तत्—अयं राजैवंरूपाण्यप्याश्चर्याणि दृष्ट्वाष्टावेव कार्षापणा-नदीदपत्। अस्य दायः स्नापितदायः। स्नापितस्य दायो भविष्यतीति किं मे एव रूपेण राजोपस्थानेनं, आत्मनो वासस्थानमेव गमिष्यामीति स भरुकच्छपत्तनमेव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रत्यागमत्। तस्मिन् तत्र वसति वणिजः नाव सज्जयित्वा कं निर्यामिकं करिष्याम इति मंत्रयन्तः शूर्पारकपण्डितेन आरूढ़ा नावो न व्यापद्यन्ते, एष पण्डितः उपाय-कुशलः, अन्धः समानोऽपि पण्डितशूर्पारक एवोत्तमः इति। तमुपसंक्रम्य निर्यामिको नो भवेत्युक्त्वा, तात, अहमन्धः कथं निर्यामिककर्म करिष्यामीत्युक्ते स्वामिन्! अन्धोऽपि त्वमेवास्माकमुत्तमः इति। पुनः पुनः याच्यमानः साधु तात! युष्माभिः आरोचितसंज्ञया निर्यामकः भविष्यामीति तेषां नावम् अभ्यरुहत् ते नावा महासमुद्रं प्रास्कन्दिषुः। नौः सप्त दिवसानि निरुपद्रवा अगमत्।

ततोऽकालवातः उदपादि, नावा चतुरो मासान् प्रकृतिसमुद्रपृष्ठे विचर्य क्षुरमाल-समुद्रं नाम प्राप्ताः, तत्र मत्स्याः मनुष्यसमानशरीराः क्षुरनासिकाः उदके उन्मज्जन-निमज्जने कुर्वन्ति। वणिजः तान् दृष्ट्वा महासत्त्वं तस्य समुद्रस्य नाम पृच्छन्तः प्रथमां गाथामवोचन्—

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति मनुष्याः क्षुरनासिकाः।
शूर्पारक! त्वां पृच्छामः समुद्रः कतमोऽयमिति॥

एवं तैः पृष्टः महासत्त्वः आत्मनः निर्यामकसूत्रेण संस्यन्द्य द्वितीयां गाथामाह—

भरुकच्छात्प्रयातानां वणिजां धनैषिणाम्।
नावः विप्रणष्टाय क्षुरमालीत्युच्यते इति॥

तस्मिन् पुनः समुद्रे वज्रमुत्पद्यते। महासत्त्वः चेदहमयं वज्रसमुद्रः इत्येवमेतेषां कथयिष्यामि लोभेन बहूनि वज्राणि गृहीत्वा नावमवसादयिष्यन्तीति तेषामनाख्या-यैव नावं लागयित्वोपायेनैकं योक्त्रं गृहीत्वा मत्स्यग्रहणनियमेन जालं क्षिप्त्वा वज्रसारमुद्धृत्य नावि प्रक्षिप्यान्यमल्पार्घं भाण्डमचच्छर्दत्। नावा तं समुद्रमतिक्रम्य परतोऽग्निमालं नाम गताः। स प्रज्वलिताग्निस्कन्ध इव मध्याह्निकसूर्य इव चावभासं मुञ्चन्नस्थात्। वणिजः—

यथाग्निरिव सूर्य इव समुद्रः प्रतिदृश्यते।
शूर्पारकं त्वां पृच्छामः समुद्रः कतमोऽयम्॥ इति

गाथया तमप्राक्षुः। महासत्त्वोऽपि तेषामनन्तरगाथया अचकथत् 'भरुकच्छात् प्रयातानां—अग्निमालीत्युच्यते'। तस्मिन् पुनः समुद्रे सुवर्णमुत्सन्नमभूत्। महासत्त्वः पूर्वनयेनैव ततोऽपि सुवर्णं ग्राहयित्वा नावि प्राक्षैप्सीत्। नावा तमपि समुद्रमति-क्रम्य क्षीरमिव दधि इवावभासमानं दधिमालं नाम समुद्रं प्रापन्। वणिजः—

'यथा दधीव क्षीरमिव समुद्रः प्रतिदृश्यते……'आदिगाथया तस्य नामाप्राक्षुः। महासत्त्वः अनन्तरगाथयाख्यत्—

'भरुकच्छात् प्रयातानां…… दधिमालीत्युच्यते' इति।

अस्मिन् पुनः समुद्रे रजतमुत्सन्नम्। स तदप्युपायेन ग्राहयित्वा प्राचिक्षिपत्। नावा तमपि समुद्रमतिक्रम्य नीलकुशतृणमिव सम्पन्नशस्यमिव चावभासमानं नीलवर्णं कुसुमालं नाम समुद्रं प्रापन्। वणिजः—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यथा कुश इव शस्यमिव समुद्र। प्रतिदृश्यते.........' गाथाया तस्यापि नामाप्राक्षुः। स अनन्तरगाथयाख्यत्—

'भरुकच्छात् प्रयातानां... ....कुसुमालीत्युच्यते'।

तस्मिन् पुनः समुद्रे नीलमणिरत्नमुत्सन्नमभूत्। स तदप्युपायेन ग्राहयित्वा नावि प्राचिक्षिपत्। नावा तमपि समुद्रमतिक्रम्य नलवनमिव च वेणुवनमिव च ख्यायमानं नलमालं नाम समुद्रं प्रापन्। वणिजः—

'यथा नल इव वेणुरिव समुद्रः प्रतिदृश्यते'.......गाथया तस्यापि नामाप्राक्षुः। महासत्त्वोऽनन्तरगाथया अचकथत्—

'भरुकच्छातप्रयातानां—नलमालीत्युच्यते' इति।

तस्मिन् पुनः समुद्रे वंशरागवैदूर्यम् उत्सन्नं, स तदपि ग्राहयित्वा नावि प्राचिक्षिपत्। वणिजः नलमालिमतिक्रमन्तः वडवामुखसमुद्रं नाम अद्राक्षिषुः, तत्रोदकं कृष्ट्वा कृष्ट्वा सर्वतोभागेनोद्गच्छति, तस्मिन् सर्वतोभागेनोद्गतोदकं सर्वतोभागेन छिन्नतटमहाश्वभ्र इव प्रज्ञायते, ऊर्म्यामुद्गतायामेकतः प्रपातसदृशं भवति, भयजननः शब्दोत्पद्यते श्रोत्राणि भिन्दन्निव, हृदयं स्फालयन्निव तं दृष्ट्वा वणिजः भीतत्रस्ताः—

'महाभयो भीषणकः शब्दः श्रूयतेऽमानुषः

यथा श्वभ्रः प्रपातश्च समुद्रः प्रतिदृश्यते.........'गाथया तस्य नामाप्राक्षुः।

'भरुकच्छातप्रयातानां.......वडवामुख इत्युच्यते' इति। बोधिसत्त्वोऽनन्तरगाथया तस्य नामाख्याय ताताः! इमं वडवामुखं समुद्रं प्राप्ताः निर्वाततुं समर्था नौः नाम नास्ति। अयं सम्प्राप्तनावं निमज्जय्य विनाशं प्रापयतीत्याह। तां च नावं सप्तमनुष्यशतानि अभ्यरुक्षन्। ते सर्वे मरणभयभीतैकप्रहारेणैवावीच्यां पच्यमानानि सत्त्वानि इवातिकरुणस्वरममुमुञ्चन्। महासत्त्वः स्थापयित्वा मदन्यः एतेषां स्वस्तिभावं कर्तुं समर्थः नाम नास्ति। सत्क्रियया तेषां स्वस्ति करिष्यामीति चिन्तयित्वा तानामन्त्य ताताः! माम् क्षिप्रं गन्धोदकेन स्नापयित्वाहतवस्त्राणि निवास्य पूर्णपात्रीं सज्जयित्वा नावः धुर्यस्थापयत इति। ते वेगेन तथाकार्षुः। महासत्त्वः उभाभ्यां हस्ताभ्यां पूर्णपात्रीं गृहीत्वा नावः धुरिस्थितः सत्क्रियां कुर्वन्नवसानगाथामाह—

यतः स्मराम्यात्मानं यतः प्राप्तोऽस्मि विज्ञताम्,
नाभिजानामि सञ्चित्य एकप्राणमपि हिंसितम्।
एतेन सत्यवचेन स्वस्ति नावे निवर्ततामिति॥

चतुरो मासान् विदेशं प्रस्कन्दन्तः नावा निवृत्यर्द्धिमान् इव, ऋद्ध्यानुभावेनैकदिवसेनैव भरुकच्छपत्तनमगमत्, गत्वा च पुनः स्थलेऽप्यष्टवृषभमात्रं स्थानं प्रस्कन्द्य नाविकस्य गृहद्वारेऽस्थात्। महासत्त्वः तेषां वणिजां स्वर्णरजतमणिप्रवालवज्राणि भाजयित्वादात्। एतावत्कैः वः रत्नैरलं मा पुनः समुद्रं प्रविशेत इति च तेभ्योऽववादं दत्वा यावज्जीवं दानादीनि पुण्यानि कृत्वा देवपुरमपूपुरयत्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी अनुवाद

भूतकाल में भरुराष्ट्र में भरुराजा राज्य करते थे। भरुकच्छ नाम का पत्तन-ग्राम था। उस समय बोधिसत्त्व भरुकच्छ में ज्येष्ठ नियामक के पुत्र होकर, प्रसन्नचित्त, सुवर्ण वर्णवाले रहे। इनका नाम शूर्पारक कुमार रखा गया। वे महान् परिवार के साथ बढ़ते हुए सोलह वर्ष की अवस्था में ही नियामक शिल्प में निष्पत्ति (कुशलता) को प्राप्तकर पिता की मृत्यु के उपरान्त नियामक होकर नियामक-कर्म करने लगे। (वे) पण्डित एवं ज्ञानसम्पन्न हो गये। उनके नाव पर बैठ जाने पर कोई विपत्ति नहीं पड़ती थी। किसी समय नमकीन (खारे) जल से आहत होकर उनकी दोनों आँखें नष्ट हो गयीं। वे, तभी से, ज्येष्ठ नियामक होते हुए भी नियामक-कर्म न करते हुए 'राजा का आश्रय लेकर जीऊँगा' ऐसा विचारकर, राजा के पास गये। तदनन्तर राजा ने इन्हें मूल्य लगाने के कार्य में बैठा दिया (लगा दिया)। तभी से (वे) राजा के हस्तिरत्न, अश्वरत्न, मुक्ता, मणि आदि का मूल्य लगाया करते थे। तदनन्तर एक दिन (यह) राजा का मङ्गलहस्ती होगा, ऐसा विचारकर काले पत्थर के अग्रभाग के समान काले एक हाथी को (लोग) लाये। उसे देखकर राजा ने कहा—'प्रण्डित को दिखलाओ।' तदनन्तर इसे उसके पास (वे) ले गये। उस (नियामक) ने उसके शरीर को हाथ से मलकर कहा—'यह मङ्गल हाथी होने के योग्य नहीं है। पीछे यह बौने शरीरवाला है, इसको उत्पन्न करती हुई (इसकी) माता कन्धे से सँभाल नहीं सकी, इसलिए पृथ्वी पर गिरकर पिछले पैरों से यह बौने शरीरवाला हो गया।' हाथी को लेकर आये हुए (लोगों) से (लोगों ने) पूछा। पण्डित सत्य कह रहे हैं (यह) उन लोगों ने कहा। उस कारण को सुनकर, प्रसन्न हो राजा ने उसे आठ कार्षापण दिये। पुनः एक दिन, राजा का यह मङ्गलअश्व होगा, ऐसा सोचकर (लोग) एक अश्व लाये। उसको भी राजा ने पण्डित के पास भेज दिया। उसने हाथ से छूकर कहा—'यह मङ्गलअश्व होने योग्य नहीं है। इसके उत्पन्न होने के दिन ही इसकी माता मर गयी। इसलिए माता के दूध को न प्राप्त करता हुआ यह भलीभाँति बढ़ा नहीं है।' इसकी यह कथा भी सत्य हुई। इसको भी सुनकर सन्तुष्ट होकर राजा ने आठ कार्षापण ही उसे दिये। तत्पश्चात् एक दिन, 'यह मङ्गलरथ होगा' यह सोचकर (लोग) रथ लाये। राजा ने उसको भी उसी के पास भेजा। उसने उसे हाथ से छूकर कहा—'यह रथ सुसिर (सच्छिद्र) वृक्ष से बना है, इसलिए यह राजा के योग्य नहीं है।' इसकी यह कथा भी सत्य ही हुई। राजा ने उसको भी सुनकर उसे आठ कार्षापण ही दिये। तदनन्तर उसके पास बहुमूल्य कम्बलरत्न लाया गया। उसे भी उसी के पास भेजा। उसने हाथ से छूकर कहा—'एक स्थान पर मूषक ने काट लिया है।' शोधन करते हुए (शोधकर्त्ताओं ने) उसे देखकर राजा से कहा। सन्तुष्ट होकर राजा ने उसे आठ कार्षापण ही दिये। वह सोचने लगा—"इस राजा ने इस प्रकार के आश्चर्यों को देखकर भी आठ ही कार्षापण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

दिये। इसका वंश नापितवंश है। नापितवंश ही होगा (अतः) मुझे इस प्रकार के राजा के पास रहने से क्या (लाभ), अपने निवास-स्थान पर ही जाऊँगा" ऐसा सोचकर, वह भरुकच्छ नगर ही चला गया। उसके वहाँ रहने पर बनियों ने नाव सजाकर 'किसको नियामक बनाया जाय' इस प्रकार मन्त्रणा करते हुए (सोचा)—'शूर्पारक पण्डित के रहने पर नाव पर कोई विपत्ति नहीं आयेगी, (क्योंकि) यह पण्डित अन्धा होते हुए भी उपाय-कुशल है, (अतः) शूर्पारक पण्डित ही उत्तम हैं' ऐसा सोचकर इनके पास जाकर (कहा)—'(आप) मेरे नियामक बन जायँ।' ऐसा कहने पर, 'तात! मैं अन्धा हूँ, कैसे नियामक-कर्म करूँगा'? ऐसा उसके कहने पर (उन्होंने कहा)—'हे स्वामी, अन्धे भी आप हम लोगों के लिए उत्तम हैं।' इस प्रकार बारबार प्रार्थना किये जाने पर (उसने कहा)—'हे तात! ठीक है। आप लोगों द्वारा संज्ञा (संकेत) दिये जाने पर मैं नियामक होऊँगा (हो सकूँगा)।' (ऐसा सोचकर) उनकी नाव पर बैठ गये।

वे नाव से महासमुद्र में चले। नाव सात दिन तक निरुपद्रव चलती रही।

तदनन्तर अकाल वायु उत्पन्न हो गयी। नाव चार महीने तक समुद्र में विचरण करके क्षुरमाल नामक समुद्र में गयी, वहाँ मनुष्यों के समान शरीरवाली एवं क्षुरे के समान नाकवाली मछलियाँ जल में उन्मज्जन-निमज्जन (डूब-उतरा) कर रही थीं। बनियों ने महासत्त्व से उस समुद्र का नाम पूछते हुए पहली गाथा कही—

क्षुरे की तरह नाकवाले मनुष्य (जहाँ) उन्मज्जन-निमज्जन (डूब-उतरा) कर रहे हैं, हे शूर्पारक! तुमसे (हम लोग) पूछते हैं (कि) यह कौन-सा समुद्र है?

इस प्रकार उन लोगों के पूछे जाने पर महासत्त्व ने अपने नियामक-सूत्र से पता लगाकर दूसरी गाथा कही—

भरुकच्छ से प्रयाण किये हुए धन के लोभी बनियों के नाव के नाश के लिए क्षुरमाली (नाम का समुद्र) कहा जाता है।

उस समुद्र में वज्र उत्पन्न होता था। यह वज्र-समुद्र है, यदि मैं इसे इनसे कहूँगा (तो) लोभवश बहुत वज्र लेकर नाव को डुबा देंगे। ऐसा सोचकर, बिना उनसे कहे ही महासत्त्व ने नाव को लगाकर, उपाय द्वारा रस्सी को पकड़कर, मछली पकड़ने की विधि से जाल को फेंककर, वज्र निकालकर, नाव में डालकर, अन्य अल्प मूल्यवाले पात्रों को छोड़ दिया। उस समुद्र को पारकर नाव अग्निमाल (समुद्र) में गयी। वह जलते हुए अग्नि-खण्ड की भाँति तथा मध्याह्नकालीन सूर्य की भाँति तेज छोड़ रहा था। बनियों ने गाथा द्वारा पूछा—

'हे शूर्पारक! अग्नि एवं सूर्य की भाँति दिखायी देनेवाला यह कौन-सा समुद्र है, यह मैं तुमसे पूछता हूँ।' महासत्त्व ने भी एक दूसरी गाथा द्वारा कहा—'भरुकच्छ से प्रयाण किये हुए''''अग्निमाली समुद्र कहा जाता है।' उस समुद्र में सुवर्ण भरा था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पूर्वनियम के द्वारा ही उससे भी सुवर्ण ग्रहण कर महासत्त्व ने नाव में रख लिया। नाव के द्वारा उस समुद्र को भी पारकर दूध एवं दही की भाँति अवभासित होनेवाले दधि-माल नामक समुद्र को प्राप्त किया। बनियों ने गाथा द्वारा उसके नाम को पूछा—'दही एवं दूध की भाँति दिखायी देनेवाला यह कौन-सा समुद्र है····आदि।'

दूसरी गाथा द्वारा महासत्त्व ने कहा—'भरुकच्छ से प्रयाण किये हुए····दधिमाली नाम का समुद्र कहा जाता है।' इस समुद्र में रजत भरा था। उसको भी उसने उपाय द्वारा ग्रहण कर नाव में डाल लिया। नाव द्वारा उस समुद्र को भी पारकर नील, कुश, तृण की भाँति, अनाज (पौधों) से सम्पन्न की भाँति अवभासित होनेवाले नील-वर्ण-वाले कुसुममाल नामक समुद्र को प्राप्त किया। बनियों ने गाथा द्वारा पूछा—

'कुश और शस्य की भाँति दिखायी देनेवाला यह कौन-सा समुद्र है········।' उसने दूसरी गाथा द्वारा कहा—'भरुकच्छ से प्रयाण किये हुए····कुसुमाली नाम का समुद्र कहा जाता है।'

उस समुद्र में नीलमणि रत्न भरा था। उसने उसको भी उपाय से ग्रहणकर नाव में डाल लिया। नाव द्वारा उस समुद्र को भी पारकर नलवन एवं वेणुवन की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले नलमाल नामक समुद्र को प्राप्त किया। बनियों ने गाथा द्वारा उसका भी नाम पूछा—नल की तरह, वेणु की तरह दिखायी देनेवाला यह कौन-सा समुद्र है? महासत्त्व ने दूसरी गाथा द्वारा कहा—'भरुकच्छ से प्रयाण किये हुए····नलमाली नाम का समुद्र कहा जाता है।'

इस समुद्र में वंश-राग वैदूर्य भरा था, उसने उसे लेकर नाव में डाल दिया। बनियों ने नलमाल का अतिक्रमण करके वडवामुख नामक समुद्र को देखा—'उसमें जल सभी ओर से खींच-खींचकर ऊपर की ओर उठता था। सभी ओर से उठा हुआ जल, सभी ओर से कटे हुए तटवाले महागर्त की तरह प्रतीत होता है। लहरों से ऊपर उठने के कारण एक तरफ झरने के समान है। कानों को छेदता हुआ, हृदय को विदीर्ण करता हुआ भय उत्पन्न करनेवाला शब्द उत्पन्न होता है।' उसे देखकर भय से डरे हुए बनियों ने गाथा द्वारा उसका नाम पूछा—

महाभयानक, भीषण एवं अमानुष शब्द सुनाई दे रहा है।
गर्त और प्रपात के सदृश यह समुद्र दिखायी दे रहा है।

भरुकच्छ से प्रयाण किये हुए········वडवामुख कहा जाता है। बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा से उसके नाम को कहा—'हे तात! यह बडवामुख नाम का समुद्र है, (यहाँ से) नाव लौटने में समर्थ नहीं है। यह इस नाव को डुबोकर विनाश को प्राप्त करायेगा।' उस नाव में बैठे हुए सभी प्राणी मरण के भय से डरकर पकाये जाते हुए प्राणी की तरह एक प्रहार में अत्यन्त करुण रुदन करने लगे। रोककर महासत्त्व ने सोचा—मेरे अतिरिक्त इनका कल्याण करने में दूसरा कोई समर्थ नहीं है। सत्क्रिया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

द्वारा इनका कल्याण करूँगा—ऐसा सोचकर उन्हें आमन्त्रितकर (कहा)—'हे तात ! शीघ्र ही मुझे गन्धोदक से स्नान कराकर, स्वच्छ वस्त्रों को पहनाकर, पूर्णपात्र सजाकर नाव की धुरी पर स्थापित कर दें।' उन्होंने शीघ्रतापूर्वक वैसा किया। महासत्त्व ने दोनों हाथों से पूर्णमात्र को ग्रहणकर नाव की धुरी पर स्थित हो सत्क्रिया करते हुए अवसान गाथा को कहा—

जिसके कारण अपने को स्मरण करता हूँ तथा जिससे विज्ञता को प्राप्त हुआ हूँ। विचार करने पर भी किसी प्राणी को मरा हुआ नहीं जानता हूँ।

इस सत्य वचन द्वारा नाव का कुशल (स्वस्ति) हो।

चार महीने तक विदेश में घूमते हुए नाव से निवृत्त होकर, ऋद्धिमान की तरह समृद्धि के साथ एक ही दिन में (वे) भरुकच्छ नगर पहुँच गये। स्थल पर जाकर, आठ बैल के बराबर स्थान खोजकर नाविक के दरवाजे पर स्थित हो गये। महासत्त्व ने उन बनियों को स्वर्ण, रजत, मणि, मूंगा, वज्र आदि बाँटकर दे दिया। आप लोगों के लिए इतना ही रत्न पर्याप्त है, पुनः समुद्र में प्रवेश न कीजियेगा। इस प्रकार उन्हें अववाद (शिक्षा) देकर जीवनभर दान आदि पुण्यों को करके देवपुर को भर दिया (स्वर्ग चले गये)।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वानरिन्दजातकम्

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो कपियोनियं निब्बत्तित्वा बुद्धिं अन्वाय अस्सपोतप्पमाणो थामसम्पन्नो एकचरो हुत्वा नदी तीरे विहरति। तस्सा पन नदिया वेमज्झे एको दीपको नानप्पकारेहि अम्बपनसादीहि फलरुक्खेहि सम्पन्नो। बोधिसत्तो नागबलो थामसम्पन्नो नदिया ओरिमतीरतो उप्पतित्वा दीपकस्स ओरतो नदीमज्झे एको पिट्ठिपासाणो अत्थि तस्मिं निपतति, ततो उप्पतित्वा तस्मिं दीपके पतति। तत्थ नानप्पकारानि फलानि खादित्वा सायं तेनेव उपायेन पच्चागन्त्वा अत्तनो वसनट्ठाने वसित्वा पुनदिवसे पि तथेव करोति। इमिना नियमेन तत्थ वासं कप्पेति। तस्मिं पन काले एको कुम्भीलो सपजापतिको तस्सा नदिया वसति। तस्स सा भरिया बोधिसत्तं अपरापरं गच्छन्तं दिस्वा बोधिसत्तस्स हृदयमंसे दोहळं उप्पादेत्वा कुम्भीलं आह—'मय्हं खो अय्य, इमस्स वामरिन्दस्स हृदयमंसे दोहळो उप्पन्नो'ति। कुम्भीलो 'साधु होति, लच्छसी'ति वत्वा 'अज्ज तं सायं दीपकतो आगच्छन्तमेव गण्हिस्सामी'ति गन्त्वा पिट्ठिपासाणे निपज्जि। बोधिसत्तो दिवसं चरित्वा सायण्हसमये दीपके ठितो'ह पासाणं आलोकेत्वा 'अयं पासाणो इदानि उच्चतरो खायति, किन्तु कारणं, तिं चिन्तेसि। तस्स किर उदकप्पमाणं च पासाणप्पमाणं च सुववत्थापितमेव। तेनस्स एतदहोसि—'अज्ज इमिस्सा नदिया उदकं नेव हायति न वड्ढति, अथ च पनायं पासाणो महा हुत्वा पञ्ञायति, कच्चि नु खो एत्थ मय्हं गहणत्थाय कुम्भीलो निपन्नो' ति। सो 'वीमंसामि ताव नं'ति तत्थेव ठत्वा पासानेन सद्धिं कथेन्तो विय 'भो पासाण' ति वत्वा पटिवचनं अलभन्तो यावततियं 'पासाणा' ति आह। 'पासाणो किं पटिवचनं न दस्सतो' ति पन पि तं वानरो 'किं भो पासाण, अज्ज मय्हं पटिवचनं न देसी' ति आह। कुम्भीलो 'अद्धा अञ्ञेसु दिवसेसु अयं पासाणो वानरिन्दस्स पटिवचनं अदासि' दस्सामि दानिस्स पटिवचनं' ति चिन्तेत्वा 'किं भो वानरिन्दा' ति आह। 'को'सि त्वं' ति। 'असं कुम्भीलो' ति। 'किमत्थं एत्थ निपन्नो'सी' ति। 'तव हृदयमंसं पत्थयमानो'ति। बोधिसत्तो चिन्तेसि—'अञ्ञो मे गमनमग्गो नत्थि, अज्ज मया एस कुम्भीलो वञ्चेतब्बो' ति। अथ नं एवमाह—'सम्म कुम्भील, अहं अत्तानं तुय्हं परिच्चजिस्सामि, त्वं मुखं विवरित्वा मं तव सन्तिकं आगतकाले गण्हाही'ति। कुम्भीलानं हि मुखविवटे अक्खीनि निमीलन्ति। सो तं कारणं असल्लक्खेत्वा मुखं विवरि। अथस्स अक्खीनि पिथीयिंसु। सो मुखं विवरित्वा अक्खीनि निमीलेत्वा निपज्जि। बोधिसत्तो तथाभावं ञत्वा दीपका उप्पतितो गन्त्वा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुम्भीलस्स मत्थकं अक्कमित्वा ततो उप्पतितो विज्जुल्लता विय विज्जोतमानो परतीरे अट्ठासि। कुम्भीलो तं अच्छरियं दिस्वा 'इमिना वानरिन्देन अति-अच्छेरकं कतं'ति चिन्तेत्वा 'भो वानरिन्द इमस्मिं लोके चतूहि धम्मेहि समन्नागतो पुग्गलो पच्चाभित्ते अभिभवति, ते सब्बे पि तुय्हं अब्भन्तरे अत्थि मञ्ञे'ति वत्वा इमं गाथामाह—

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द यथा तव।
सच्चं धम्मो धीती चागो दिट्ठं सो अतिवट्टतीति॥

एवं कुम्भीलो बोधिसत्तं पसंसित्वा अत्तनो वसनट्ठानं गतो।

संस्कृत अनुवाद

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वः कपियोन्यां निर्वृत्य बुद्धिमन्वित्य अश्वपोतप्रमाणः स्थामसम्पन्नः एकचरो भूत्वा नदीतीरे विहरति। तस्याः पुनर्नद्याः विमध्ये एको द्वीपको नानाप्रकारैः आम्रपनसादिभिः फलवृक्षैः सम्पन्नः। बोधिसत्त्वो नागबलः स्थामसम्पन्नः नद्याः अवरतीरतः उत्पत्य द्वीपकस्य अवरतः नदी-मध्ये एकः पृष्टिपाषाणः अस्ति तस्मिन् निपतति, ततः उत्पत्य तस्मिन् द्वीपके पतति। तत्र नानाप्रकाराणि फलानि खादित्वा सायं तेनैवोपायेन प्रत्यागत्य आत्मनो वसन-स्थाने उषित्वा पुनर्दिवसेऽपि तथैव करोति। अमुना नियमेन तत्र वासं कल्पयति। तस्मिन् पुनः काले एकः कुम्भीलः सप्रजापतिकः तस्यां नद्यां वसति। तस्य सा भार्या बोधिसत्त्वं अपरापरं गच्छन्तं दृष्ट्वा बोधिसत्त्वस्य हृदयमांसे दोहदमुत्पाद्य कुम्भील-माह—'मम खलु आर्य! अस्य वानरेन्द्रस्य हृदयमांसे दोहद उत्पन्नः' इति। कुम्भीलः 'साधु भवति, लप्स्यसे' इत्युक्त्वा 'अद्य तं सायं द्वीपकतः आगच्छन्तमेव ग्रहीष्यामि' इति गत्वा पृष्टिपाषाणे न्यपतत्। बोधिसत्त्वो दिवसं चरित्वा सायाह्नसमये द्वीपस्थित एव पाषाणमवलोक्य 'अयं पाषाणः इदानीमुच्चतरः ख्यायते, किन्नु कारणम् इत्यचिचिन्तत्। तस्य किल उदकप्रमाणं च सुव्यवस्थापितमेव। तेनास्य एतदभूत 'अद्य अस्याः नद्या उदकं नैव हीयते न वर्धते, अथ च पुनरयं पाषाणो महान् भूत्वा प्रज्ञायते, कश्चिन्नु खल्वत्र मम ग्रहणार्थाय कुम्भीलो निपन्नः, इति स 'विमृशामि तावदेनम्' इति तत्रैव स्थित्वा पाषाणेन सार्द्धं कथयन्निव 'भो पाषाण!' इत्युक्त्वा प्रतिवचनं अलभमानः यावत्तृतीयं 'पाषाण' इत्याह 'पाषाण किं प्रतिवचनं न ददासि' इति पुनरपि तं वानरः 'किं भोः पाषाण! अद्य मह्यं प्रतिवचनं न ददासि' इत्याह। कुम्भीलो 'अद्धा अन्येषु दिवसेषु अयं पाषाणो वानरेन्द्रस्य प्रतिवचनमदात्। दास्यामि इदानीमस्य प्रतिवचनम्' इति चिन्तयित्वा 'किं भो वानरेन्द्र', इत्याह। 'कोऽसि त्वं' इति। 'अहं कुम्भीलः' इति। 'किमर्थं अत्र निपन्नोऽसि' इति 'तव हृदयमांसं प्रार्थयमानः' इति। बोधिसत्त्वः अचिचिन्तत् 'अन्यो मे गमनमार्गो नास्ति, अद्य मया एष कुम्भीलो वञ्चयितव्यः' इति। अथैनमेवमाह—'सौम्य कुम्भील! अहमात्मानं ते परित्यक्ष्यामि त्वं मुखं विवृत्य मां तवान्तिकं आगतकाले गृहाण' इति। कुम्भीलानां हि मुखे विवृते अक्षिणी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निमीलतः । स तत्कारणं असंलक्ष्य मुखं व्यवारीत् । अथास्य अक्षिणी न्यधायिषाताम् । स मुखं विवृत्य अक्षिणी निमील्य न्यपादि । बोधिसत्त्वः तथाभावं ज्ञात्वा द्वीपकादुत्पतितो गत्वा कुम्भीलस्य मस्तकमाक्रम्य तत उत्पतितो विद्युल्लतेव विद्योतमानः परतीरे अस्थात् । कुम्भीलस्तदाश्चर्यं दृष्ट्वा 'अनेन वानरेन्द्रेण अत्याश्चर्यं कृतं, इति चिन्तयित्वा 'भो वानरेन्द्र ! अस्मिन् लोके चतुर्भिर्धर्मैः समन्वागतः पुद्गलः प्रत्यमित्राणि अभिभवति । ते सर्वेऽपि तवाभ्यन्तरे सन्ति मन्ये' इत्युक्त्वा इमां गाथामाह —

यस्यैते चत्वारो धर्माः वानरेन्द्र ! यथा तव ।
सत्यं धर्मो धृतिस्त्यागः दृष्टं सोऽतिवर्तते ।। इति ।।

एवं कुम्भीलो बोधिसत्त्वं प्रशस्य आत्मनो वासस्थानं गतः ।

हिन्दी अनुवाद

भूतकाल में ब्रह्मदत्त के शासन-काल में वाराणसी में बोधिसत्त्व, कपियोनि में उत्पन्न होकर तथा बुद्धि से युक्ति हो, अश्वपोत की तरह लम्बे-चौड़े, स्थाम (शौर्य) सम्पन्न हो अकेले नदी के किनारे विचरण करते थे। उस नदी के बीच में नाना प्रकार के आम्र, कटहल आदि फल के वृक्षों से सम्पन्न एक द्वीप था । नाग (हाथी) के समान शक्ति से सम्पन्न स्थाम (शौर्य) सम्पन्न बोधिसत्त्व नदी के दूसरे तीर से कूदकर नदी के बीच में द्वीप के दूसरी ओर स्थित पृष्टिपाषाण पर गिरते थे । वहाँ नाना प्रकार के फलों को खाकर सायंकाल उसी उपाय से लौटकर अपने निवास-स्थान पर रहकर दूसरे दिन भी वैसा ही करते थे । इस नियम से वहाँ रहते थे । उसी समय अपने परिवार के साथ एक कुम्भील उस नदी में रहता था । उसकी पत्नी ने बोधिसत्त्व को इस पार से उस पार जाते हुए देखकर बोधिसत्त्व के हृदय के मांस में दोहद उत्पन्न कर कुम्भील से कहा—'हे आर्य ! वानर के हृदय के मांस में दोहद उत्पन्न हो गया है ।' 'बहुत ठीक, प्राप्त करोगी । आज सायंकाल द्वीप से आते हुए ही उसको पकड़ूँगा' ऐसा सोचकर, जाकर कुम्भील पृष्टिपाषाण पर कूद गया । बोधिसत्त्व दिनभर चरकर सायंकाल द्वीप पर बैठे हुए ही पाषाण को देखकर 'यह पाषाण इस समय ऊँचा हो गया है, क्या कारण है' सोचने लगे । उसका जल-प्रमाण (निशान) पहले की भाँति ही व्यवस्थित था । उसके मन में ऐसा हुआ—'आज इस नदी का जल न कम हुआ है, न बढ़ा ही है, फिर भी यह पाषाण बढ़ा दिखायी दे रहा है । यहाँ कोई कुम्भील मुझे पकड़ने के लिए पड़ा हुआ है । इसकी मैं मीमांसा (परीक्षा) करता हूँ ।' इस प्रकार उसने वहीं स्थित होकर पाषाण को कहा—'हे पाषाण !' इस प्रकार कहकर प्रत्युत्तर न प्राप्त करता हुआ तीसरी बार भी 'हे पाषाण,' ऐसा कहा । 'हे पाषाण ! प्रत्युत्तर क्यों नहीं दे रहे हो ।' 'हे पाषाण, मुझे क्यों आज प्रत्युत्तर नहीं दे रहे हो' इस प्रकार वानर ने पुनः पुनः उससे कहा । अन्य दिन यह पाषाण वानरेन्द्र को प्रत्युत्तर देता था, इसलिए इनको प्रत्युत्तर मैं दूँगा, ऐसा सोचकर 'क्या है वानरेन्द्र ! ऐसा कुम्भील ने कहा । 'तुम कौन हो' ? 'मैं कुम्भील हूँ ।'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'किसलिए यहाँ पड़े हो ?'- 'तुम्हारे हृदय के मांस की प्राप्ति के लिए ।' बोधिसत्त्व सोचने लगे—मेरे गमन का दूसरा कोई मार्ग नहीं है । आज मुझे इस कुम्भील को ठगना चाहिए । उससे इस प्रकार कहा—'सौम्य कुम्भील ! मैं अपने को तुम्हें दे दूँगा । तुम मुख खोलकर अपने पास आने के समय (मुझे) पकड़ लेना ।' मुख खोलने पर कुम्भीलों की आँखें बन्द हो जाती हैं । उसने इस कारण को बिना देखे ही मुख खोल लिया । उसकी आँख बन्द हो गयी । वह मुख खोलकर आँख मूंदकर पड़ गया । बोधिसत्त्व उस भाव को जानकर द्वीप से कूदकर कुम्भील के मस्तक पर आक्रमण (चढ़) करके वहाँ से कूदकर विद्युल्लता की भाँति द्योतित होते हुए दूसरे तीर पर स्थित हो गये । कुम्भील ने उस आश्चर्य को देखकर, इस वानरेन्द्र ने बड़ा आश्चर्य किया, ऐसा सोचकर—'हे वानरेन्द्र ! इस संसार में चार धर्मों से युक्त पुद्‌गल (जीव) शत्रुओं को अभिभूत करता है । वे सभी तुम्हारे अन्दर हैं यह मानता हूँ'—इस गाथा को कहा—

'हे वानरेन्द्र ! तुम्हारी तरह जिसके अन्दर ये चारों धर्म—सत्य, धर्म, धैर्य एवं त्याग हैं, वह अपने शत्रु को अभिभूत करता है ।'

इस प्रकार कुम्भील, बोधिसत्त्व की प्रशंसा करके अपने-निवास-स्थान पर चला गया ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुंसुमारजातकम्

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते हिमवन्तप्पदेसे बोधिसत्तो कपियोनियं निब्बत्तित्वा नागबलो थामसम्पन्नो महाशरीरो सोभग्गप्पत्तो हुत्वा गङ्गानिवत्तने अरञ्ञायतने वासं कप्पेसि। तदा गङ्गाय एको सुंसुमारो वसि। अथस्स भरिया बोधिसत्तस्स सरीरं दिस्वा तस्स हृदयमंसे दोहळं उप्पादेत्वा सुंसुमारं आह 'अहं सामि, एतस्स कपिराजस्स हृदयमंसं खादितुकामा'ति! भद्दे, मयं जलगोचरा, एस थलगोचरो, किं ति तं गण्हितुं सक्खिस्सामा'ति। 'येन तेन उपायेन गण्ह, सचे न लभिस्सामि मरिस्सामी-ति। तेन हि मा भायि, अत्थेको उपायो ति खादापेस्सामि तं तस्स हृदयमंसं ति सुंसुमारि समस्सासेत्वा बोधिसत्तस्स गङ्गाय पानीयं पिवित्वा गङ्गातीरे निसिन्नकाले सन्तिकं गन्त्वा एवमाह—'बानरिन्द, इमस्मिं पदेसे कसटफलानि खादन्तो किं त्वं चिण्णट्ठाने येव चरसि, पारगङ्गाय अम्बलकुजादीनं मधुरफलानं अन्तो नत्थि, किं ते तत्थ गन्त्वा फलाफलं खादितुं न वट्टती'ति 'कुम्भीलराज, गङ्गा महोदिका वित्तिण्णा, कथं तत्थ गमिस्सामी'ति। 'सचे गच्छसि अहं तं मम पिट्ठि आरोपेत्वा नेस्सामी' ति। सो तं सद्दहित्वा 'साधू'ति सम्पटिच्छित्वा तेन हि 'एहि, पिट्ठि मे अभिरूहा'ति च वुत्ते तं अभिरूहि। सुंसुमारो थोकं नेत्वा उदके ओसिदापेसि। बोधिसत्तो 'सम्म' उदके मं ओसीदापेसि, किं नु खो एतं' ति आह। 'नाहं तं धम्मे सुधम्मताय गहेत्वा गच्छामि, भरियाय पन मे तव हृदयमंसे दोहळो उप्पनो, तं अहं तव हृदयं खादापेतुकामो'ति। 'सम्म, कथेन्तेन ते सुंदरं कतं, सचे हि अम्हाकं उदरे हृदयं भवेय्य साखग्गेसु चरन्तानं चुण्णविचुण्णं भवेय्या' ति। 'कहं पन तुम्हे ठपेथा' ति बोधिसत्तो अविदूरे एकं उदुम्बरं पक्कफलपिण्डिसम्पन्नं दस्सेन्तो 'पस्सेतानि अम्हाकं हृदयानि एकस्मिं उदुम्बरे ओलम्बन्ती' ति। 'सचे मे हृदयं दस्ससि अहं तं न मारेस्सामी'ति। तेन हि 'एत्थ नेहि मं, अहं ते रुक्खे ओलम्बंतं दस्सामी' ति। सो तं आदाय तत्थ अगमासि। बोधिसत्तो तस्स पिट्ठितो उप्पतित्वा उदुम्बररुक्खे निसीदित्वा 'सम्म बालसुंसुमार, इमेसं सत्तानं हृदयं नाम रुक्खग्गे होतीति सञ्ञी अहोसि, बालो सि, अहं तं वञ्चेसि, तव फलाफलं तवेव होतु। सरीरमेव पन ते महन्तं, पञ्ञा पन नत्थी' ति वत्वा इममत्थं पकासेन्तो इमा गाथा अवोच—

अलं एतेहि अम्बेहि जम्बूहि पनसेहि च।
यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्बरो॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महती बत ते बोन्दि न च पञ्ञा तदूपिका।
सुंसुमार, वञ्चितो'सि गच्छ दानि यथासुखं ति ।।

सुंसुमारो सहस्सं पराजितो विय दुक्खो दुम्मनो पज्झायन्तो अत्तनो निवेसनट्ठानमेव गतो।

संस्कृत अनुवाद

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति हिमवत्प्रदेशे बोधिसत्वः कपियोन्यां निर्वृत्य नागबलः स्थामसम्पन्नः महाशरीरः प्राप्तसौभाग्यः भूत्वा गङ्गानिवर्तने अरण्यायतने वासमचिक्लिपत्। तदा गङ्गायामेकः शिशुमारोऽवात्सीत्। अथास्य भार्या बोधिसत्त्वस्य शरीरं दृष्ट्वा हृदयमांसे दोहदमुत्पाद्य शिशुमारमाह—'अहं स्वामिन्! एतस्य कपिराजस्य हृदयमांसं खादितुकामा' इति। 'भद्रे, वयं जलगोचराः, एष स्थलगोचरः, किमिति तं ग्रहीतुं शक्ष्यामः ?' इति। 'येन केनोपायेन गृहाण, चेन्न लप्स्ये मरिष्यामि' इति। 'तेन हि मा भैषीः, अस्त्येक उपायः, खादयिष्यामि त्वां तस्य हृदयमांसम्' इति शिशुमारीं समाश्वास्य बोधिसत्वस्य गङ्गायाः पानीयं पीत्वा गंगातीरे निषण्णकाले अन्तिकं गत्वा एवमाह—'वानरेन्द्र! अस्मिन्प्रदेशे कष्टफलानि खादन् किं त्वं जीर्णस्थान एव चरसि। पारेगंगायां आम्रलकुचादीनां मधुरफलानामन्तो नास्ति, किं ते तत्र गत्वा फलाफलं खादितुं न वर्तते' इति। 'कुम्भीलराज! गंगा महोदका विस्तीर्णा, कथं तत्र गमिष्यामि' इति। 'चेद् गच्छसि अहं त्वां मम पृष्ठमारोप्य नेष्यामि', इति। स तं श्रद्धया साध्विति संप्रतीष्य तेन हि 'एहि पृष्ठं मे अभिरोह' इति प्रोक्ते तमभ्यरुक्षत्। शिशुमारः स्तोकं नीत्वा उदके अवासदत्। बोधिसत्वः 'सौम्य! उदके मामवसादयसि, किं नु खलु एतद्' इत्याह। 'नाहं त्वां धर्मे सुधर्मतया, गृहीत्वा गच्छामि, भार्यायाः पुनर्मे तव हृदयमांसे दोहद उत्पन्नः, तामहं तव हृदयं खादयितुकाम' इति। 'सौम्य'! कथयता त्वया सुन्दरं कृतं, चेद् ह्यस्माकं उदरे हृदयं भवेत् शाखाग्रेषु चरतां चूर्णविचूर्णं भवेत्' इति। 'कुत्र पुनः यूयं स्थापयथ' इति। बोधिसत्वः अविदूरे एकमुदुम्बरं पक्वफलपिण्डिसञ्छन्नं दर्शयन् 'पश्यैतानि अस्माकं हृदयानि एकस्मिन्, उदुम्बरे अवलम्बन्ते' इति। 'चेन्मे हृदयं दास्यसि अहं त्वां न मारयिष्यामि' इति। तेन हि अत्र 'नय मां, अहं ते वृक्षे अवलम्बमानं दास्यामि' इति। स तमादाय तत्रागमत् बोधिसत्त्वस्तस्य पृष्ठतः उत्पत्य उदुम्बरवृक्षे निषद्य 'सौम्य, बालशिशुमार! एतेषां सत्त्वानां हृदयनाम वृक्षाग्रे भवतीति संज्ञी अभूः। बालोऽसि, अहं त्वामवावञ्चम्। तव फलाफलं तवैव भवतु। शरीरमेव पुनस्ते महत्, प्रज्ञा पुनर्नास्ति' इत्युक्त्वा इममर्थं प्रकाशयन् इमां गाथामवोचत्—

अलमेतैराम्रैः जम्बुभिः पनसैश्च।
यानि पारं समुद्रस्य वरं मम उदुम्बरः ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महती बत ते काया न च प्रज्ञा तद्रूपिका ।
शिशुमार ! वञ्चितोऽसि गच्छेदानीं यथासुखम् ।। इति ।।

शिशुमारः सहस्रं पराजित इव दुःखी दुर्मना प्रध्यायन् आत्मनो निवासस्थानमेव गतः ।

हिन्दी अनुवाद

अतीतकाल में ब्रह्मदत्त के शासन-काल में वाराणसी में हिमवत्प्रदेश में बोधिसत्त्व ने कपि-योनि में उत्पन्न होकर हाथी की तरह बली, स्थूल, महाशरीर से युक्त हो, सौभाग्य-सम्पन्न हो, गंगा के तट पर जंगल में अपना निवासस्थान बनाया । उस समय गंगा में एक शिशुमार रहता था । उसकी पत्नी ने बोधिसत्व के शरीर को देखकर उसके हृदय के मांस में अपना दोहद उत्पन्न कर शिशुमार से कहा—'हे स्वामी ! मैं इस वानरराज के हृदय के मांस को खाना चाहती हूँ' । 'कल्याणि, हमलोग जल-गोचर हैं, यह स्थल-गोचर है, इसको पकड़ने में हमलोग कैसे समर्थ हो सकते हैं ?' जिस किसी उपाय से पकड़िये, यदि प्राप्त नहीं करूँगी (मैं) मर जाऊँगी ।' शिशुमारी को आश्वस्त कर, गंगा का पानी पीकर, बोधिसत्व के गंगा के तट पर बैठने के समय (बोधिसत्त्व के) समीप जाकर (शिशुमार ने) इस प्रकार कहा—'हे वानरेन्द्र ! इस स्थान पर कष्ट (कसैले) फलों को खाते हुए तुम क्यों इस दुर्गम स्थान में विचरण करते हो ! गंगा के उस पार आम, लीची आदि मधुर फलों का कोई अन्त नहीं है । वहाँ जाकर क्या फलाफल को आप नहीं खा सकते ?' 'हे कुम्भीलराज ! गंगा अधिक जल-वाली एवं अत्यधिक विस्तीर्ण है, कैसे वहाँ जाऊँगा' ? 'यदि जाओ तो मैं तुम्हें पीठ पर बैठाकर ले चलूँगा ।' उसके श्रद्धापूर्वक 'साधु' कहकर, विश्वास प्रकट करने पर 'इसलिए आओ मेरी पीठ पर चढ़ जाओ' । इस प्रकार उसके (शिशुमार के) कहने पर; उस पर चढ़ गया । जल में थोड़ी दूर ले जाकर शिशुमार विषण्ण होने लगा । 'सौम्य ! तुम मुझे जल में दुःखी कर रहे हो । यह क्या है?' इस प्रकार बोधिसत्त्व ने कहा । 'धर्म में सुधर्मता के कारण मैं तुम्हें नहीं ले जा रहा हूँ, मेरी पत्नी का तुम्हारे हृदय के मांस में दोहद उत्पन्न हो गया है, वह तुम्हारे हृदय को खाना चाहती है ।' 'सौम्य ! कहकर तुमने बहुत सुन्दर किया । यदि मेरे उदर में हृदय होता तो शाखाओं के अग्र-भाग पर विचरण करते समय चूर्ण-चूर्ण हो गया होता' । 'तुम उसे कहाँ रखते हो', बोधिसत्त्व ने समीप ही पके हुए फलों के पिण्ड से सम्पन्न एक उदुम्बर को दिखलाते हुए कहा—'यह मेरा हृदय इस उदुम्बर पर लटक रहा है ।' 'यदि मुझे हृदय दे दोगे तो मैं तुम्हें नहीं मारूँगा ।' 'मुझे यहाँ लाओ, मैं तुम्हें वृक्ष पर लटकते हुए (हृदय) को दे दूँगा ।' वह उसे लेकर वहाँ गया । बोधिसत्त्व ने उसके पीछे से उछलकर उदुम्बर वृक्ष पर बैठकर (कहा)—'सौम्य ! बाल-शिशुमार ! हृदय वृक्ष के अग्र-भाग पर रहता है, यह मैंने (अभी) जाना है । तुम मूढ़ हो, मैंने तुम्हें ठग लिया । तुम्हारा फलाफल तुम्हारे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिए ही हो। (केवल) तुम्हारा शरीर ही महान् है, बुद्धि नहीं है।' यह कहकर इस अर्थ को प्रकाशित करती हुई इस गाथा को कहा—

समुद्र के पार जो ये आम्र, जम्बूफल, कटहल हैं, वे व्यर्थ हैं। मेरा उदुम्बर ही श्रेष्ठ है। तुम्हारा शरीर बड़ा है, परन्तु बुद्धि तद्रूप नहीं है। हे शिशुमार! तुम ठग लिये गये हो। इस समय सुखपूर्वक जाओ।

शिशुमार अत्यधिक पराजित की भाँति दुःखी, खिन्न एवं अभिभूत होता हुआ अपने निवास-स्थान पर ही चला गया।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निग्रोधमिगजातकम्

अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मिगयोनियं पटिसन्धिं गण्हि। सो मातुकुच्छितो निक्खमन्तो सुवण्णवण्णो अहोसि अक्खीनि च'स्स मणिगुळसदिसानि अहेसुं सिङ्गानि रजतवण्णानि, मुखं रत्तकम्बलपुञ्जवण्णं, हत्थापादपरियन्ता लाखापरिकम्मकता विय, वालधी चमरस्स विय अहोसि, सरीरं, पुन'स्स महन्तं अस्सपोतकप्पमाणं अहोसि। सो पञ्चसतमिगपरिवारो अरञ्ञे वासं कप्पेसि नामेन निग्रोधमिगराजा नाम। अविदूरे पन'स्स अञ्ञोपि पञ्चसतमिगपरिवारो साखमिगो नाम वसति, सोपि सुवण्णवण्णो'व अहोसि। तेन समयेन वाराणसिराजा मिगवधपसुत्तो होति, विना मंसेन न भुञ्जति, मनुस्सानं कम्मच्छेदं कत्वा सब्बे नेगमजानपद सन्निपातेत्वा देवसिकं मिगवं गच्छति। मनुस्सा चिन्तेसुं—अयं राजा अम्हाकं कम्मच्छेदं करोति यन्नून मयं उय्याने मिगानं निवापं वपित्वा पानियं सम्पादेत्वा बहुमिगे उय्याने पवेसेत्वा द्वारं बन्धित्वा निय्यादेमा'ति। ते सब्बे उय्याने निवापतिनं रोपेत्वा उदकं सम्पादेत्वा द्वारं योजापेत्वा नागरे आदाय मुग्गरादिनानाबुधहत्था अरञ्ञं पविसित्वा मिगे परियेसमाना मज्झे ठिते मिगे गण्हिस्सामा' ति योजनमत्तं ठानं परिक्खिपित्वा संखिपमाना निग्रोधमिग-साखामिगानं वसनट्ठानं मज्झे कत्वा परिक्खिपिसु। अय तं मिगगणं दिस्वा रुक्खगुम्बादयो च भूमिं मुग्गरेहि पहरन्ता मिगण्णं गहनट्ठानतो नीहरित्वा असिसत्तिधनुआदानि आबुधानि उग्गिरित्वा महानादं नदन्ता तं मिगगणं उय्यानं पवेसेत्वा द्वारं पिधाय राजानं उपसंकमित्वा—'देव, निबद्धं मिगवं गच्छन्ता अम्हाकं कम्मं न नासेथ, अम्हेहि अरञ्ञतो मिगे आनेत्वा तुम्हाकं उय्यानं पूरितं, इतो पट्ठाय तेसं मंसं खादथा'ति राजानं आपुच्छित्वा पक्कमिंसु। राजा तेसं वचनं सुत्वा उय्यानं गन्त्वा मिगे ओलोकेन्तो द्वे सुवण्ण-मिगे दिस्वा तेसं अभयं अदासि। ततो पट्ठाय पन कदाचि सयं गन्त्वा एक-मिगं विज्झित्वा आनेति, कदाचि'स्स भत्तकारको गन्त्वा विज्झित्वा आहरति। मिगा धनुं दिस्वा'व मरणभयेन तज्जिता पलायन्ति, द्वे तयो पहारे लभित्वा किलमन्ति पि गिलानापि होन्ति मरणं पि पापुणन्ति। मिगगणं तं पवत्तिं बोधिसत्तस्स आरोचेसि। सो साखं पक्कोसापेत्वा आह—'सम्म बहू मिगा नस्सन्ति एकंसेन मरितब्बे सति इतो पट्ठाय गा कण्डेन मिगे बिज्झन्तु, धम्मगण्डिकट्ठाने मिगानं वारो होतु एकदिवसं मम परिसाय वारो पापु-णातु, एकदिवसं तव परिसाय वारो पापुणातु, वारप्पत्तो मिगो धम्म-गण्डिकाय सीसं ठपेत्वा निपज्जतु, एवं सन्ते मिगा वणिता न भविस्स-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न्ती'ति। 'सो साधू'ति सम्पटिच्छि। ततो पठ्टाय वारप्पत्तो व मिगो गन्त्वा धम्मगण्डिकाय गीवं ठपेत्वा निपज्जति, भत्तकारको आगन्त्वा तत्थ निपन्नकं एव गहेत्वा गच्छति। अथेकदिवसं साखमिगस्स परिसाय एकस्सा गब्भिणी-मिगिया वारो पापुणि। सा साखं उपसङ्कमित्वा-'सामि अहं अपि गब्भिणी' पुत्तकं विजायित्वा द्वे जना वारं गमिस्साम, मय्हं वारं अतिक्कमेही'ति आह। सो 'न सक्का तव वारं अञ्ञेसं पातेतुं, त्वं एव तुय्हं पुत्तं जनिस्ससि, गच्छाही'ति आह। सा तस्य सन्तिका अनुग्गहं अलभमाना बोधिसत्तं उपसङ्कमित्वा तं अत्थं आरोचेसि। सो तस्सा वचनं सुत्वा 'होतु गच्छ त्वं, अहं ते वारं अतिक्कमेस्सामी'ति सयं गन्त्वा धम्मगण्डिकाय सोसं कत्वा निपज्जि। भत्तकारो तं दिस्वा 'लद्धाभयो मिगराजा गण्डिकाय निपन्नो, किं नु कारणं'ति वेगेन गन्त्वा रञ्ञो आरोचेसि। राजा तावदेव रथं आरुय्ह महन्तेन परिवारेन आगन्त्वा बोधिसत्तं दिस्वा आह--'सम्म मिगराज, ननु मया तुय्हं अभयं दिन्नं, कस्मा त्वं इध निपन्नो'ति। "महाराज, गब्भिणी मिगी आगन्त्वा 'मम वारं अञ्ञस्स पापेही'ति आह, न सक्का खो पन मया एकस्स मरणदुक्खं अञ्ञस्स उपरि पक्खिपितुं, स्वाहं अत्तनो जीवितं तस्सा दत्वा तस्सा सन्तकं मरणं गहेत्वा इध निपन्नो, मा अञ्ञं किञ्चि किञ्चि आसंकित्थ महाराजा" ति। राजा आह—सामि सुवण्णवण्णमिगराज, मया तादिसो खन्तिमेत्तानुद्दयसम्पन्नो मनुस्सेसु पि न दिठ्ठपुब्बो, तेन ते पसन्नोस्मि, उठ्ठेहि, तुय्हं च तस्सा च अभयं दम्मी'ति। 'द्वीहि अभये लद्धे सेसा किं करिस्सन्ति, नरिन्दा'ति? 'अवसेसानं पि अभयं दम्मि सामी'ति। 'महाराज, एवं पि उय्याने येव मिगा अभयं लभिस्सन्ति, सेसा किं करिस्सन्ती'ति? एतेसं पि अभयं दम्मि सामी'ति। 'महाराज, मिगा ताव अभयं लभन्तु, अञ्ञे चतुप्पदा द्विजगणा च किं करिस्सन्ती'ति? 'एतेसं पि अभयं दम्मि सामी'ति। 'महाराज, चतुप्पदा ताव अभयं लभन्तु, द्विजगणा ताव अभयं लभिस्सन्ति, उदके वसन्ता मच्छा किं करिस्सन्ती'ति? एतेसं पि अभयं दम्मि सामी'ति। एवं महासत्तो राजानं सब्बसत्तानं अभयं याचित्वा उठ्ठाय राजानं पञ्चसु सीलेसु पतिट्ठापेत्वा 'धम्मं चर महाराज, मातापितूसु पुत्तधीतासु ब्राह्मण-गहपतिकेसु नेगम-जानपदेसु धम्मं चरन्तो समं चरन्तो कायस्स भेदा सुगतिं सग्गं लोकं गमिस्ससी'ति रञ्ञो ओवादं दत्वा मिगगणपरिवुतो अरञ्ञं पाविसि। सापि खो मिगधेनु पुप्फकण्णिक-प्पदिसं पुत्तं विजायि। सो कीळमानो साखमिगस्स सन्तिकं गच्छति। अथ नं माता तस्स सन्तिके गच्छन्तं दिस्वा 'पुत्त इतो पठ्ठाय मा एतस्स सन्तिकं गच्छ, निग्रोधस्सेव सन्तिकं गच्छेय्यासी'ति ओवदन्ती इमं गाथं आह--

निग्रोधं एव सेवेय्य, न साखं उपसेवसे।
निग्रोधस्मिं मतं याचे साखस्मिं जीवितं ति॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ततो पट्टाय च पन अभयलद्धका मिगा मनुस्सानं सस्सानि खादन्ति। मनुस्सा 'लद्धाभया इमे मिगा'ति पहरितुं वा पलापेतुं वा न विसहन्ति। ते राजाङ्गने सन्निपतित्वा रञ्ञो तं अत्थं आरोचेसुं। राजा 'मया पसन्नेन निग्रोधमिगवरस्स वरो दिन्नो, अहं रज्जं जहेय्यं न च तं पटिञ्ञं, गच्छथ, न कोचि मम विजिते मिगे पहरितुं लभती'ति। निग्रोधमिगो तं पवत्तिं सुत्वा मिगगणं सन्निपातेत्वा 'इतो पट्ठाय परेसं सस्सं खादितुं न लभथा'ति मिगे वारेत्वा मनुस्सानं आरोचापेसि—'इतो पट्ठाय सस्सकारकमनुस्सा सस्सरक्खनत्थं वतिं मा करोन्तु, खेत्तं पन आविज्झित्वा पण्णसञ्ञं बन्धन्तू'ति। ततो पट्ठाय किर खेत्तेसु पण्णबन्धनसञ्ञं अतिक्कमकमिगो नाम नत्थि, अयं किर तेसं बोधिसत्ततो लद्धओवादो। एवं मिगगणं ओवदित्वा बोधिसत्तो यावतायुकं ठत्वा सद्धिं मिगेहि यथाकम्मं गतो। राजापि बोधिसत्तस्स ओवादे ठत्वा पुञ्ञानि कत्वा यथाकम्मं गतो।

संस्कृत अनुवाद

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वः मृगयोन्यां प्रतिसन्धिमग्रहीत्। स मातृकुक्षितः निष्क्रामन् सुवर्णवर्णोऽभूत्, अक्षिणी चास्य मणिगुलसदृशेऽभूताम्, शृङ्गाणि रजतवर्णानि, मुखं रक्तकम्बलपुञ्जवर्णम्, हस्ताः पादपर्यन्ताः लाक्षापरिकर्मकृता इव, बालधिश्चामरस्येवाभूत् (चामर इवाभूत)। शरीरं पुनः अस्य महदश्वपोतकप्रमाणमभूत्। स पञ्चशतमृगपरिवारः अरण्ये वासमवक्लृप्त नाम्ना न्यग्रोधमृगराजो नाम। अविदूरे पुनरस्यान्योऽपि पञ्चशतमृगपरिवारः शाखामृगो नाम वसति। सोऽपि सुवर्णवर्ण एवाभूत्। तेन समयेन वाराणसीराजो मृगवधप्रसृतो भवति, विना मांसेन न भुनक्ति, मनुष्याणां कर्मच्छेदं कृत्वा सर्वान् नैगमजानपदान् सन्निपात्य दैवसिकीं मृगयां गच्छति। मनुष्याः अचिचिन्तन्—अयं राजास्माकं कर्मच्छेदं करोति यन्नूनमस्माकमुद्याने मृगाणां निवापमुप्त्वा पानीयं सम्पाद्य बहुमृगानुद्याने प्रवेश्य द्वारं बद्ध्वा निर्यायाम इति। ते सर्वे उद्याने निवापतृणमवरोप्योदकं सम्पाद्य द्वारं योजयित्वा नागरान् आदाय मुद्गरादिनानायुधहस्ता अरण्यं प्रविश्य मृगान् पर्येष्यन्तो मध्ये स्थितान् मृगान् ग्रहीष्याम इति योजनमात्रं स्थानं परिक्षिप्य संक्षिपन्तः न्यग्रोधमृगशाखामृगयोः वसनस्थानं मध्ये कृत्वा पर्यक्षैप्सुः। अथ तं मृगगणं दृष्ट्वा वृक्षगुल्मादींश्च भूमिं मुद्गरैः प्रहरन्तः मृगगणं ग्रहणस्थानतः निर्हृत्यासि-धनुरादीन्यायुधान्युद्गीर्य महानादं नदन्तः तं मृगगणमुद्यानं प्रवेश्य द्वारं पिधाय राजानमुपसङ्क्रम्य—देव! निर्बन्धं मृगयां गच्छन्तः अस्माकं कर्म न नाशयेत् अस्माभिररण्यतः मृगानानीय तवोद्यानं पूरितम्, इतः प्रस्थाय तेषां मांसानि खादयेतेति राजानमपृष्ट्वा प्राक्रमिषुः। राजा तेषां वचनं श्रुत्वोद्यानं गत्वा मृगानवलोकयन् द्वौ सुवर्णमृगौ दृष्ट्वा ताभ्यामभयमदात्। ततः प्रस्थाय पुनः कदाचित् स्वयम् गत्वैकमृगं वेधयित्वानयति, कदाचिदस्य भक्तकारको गत्वा वेधयित्वा हरति॥ मृगाः धनुः दृष्ट्वैव मरणभयेन त्यक्त्वा पलायन्ते, द्वौ त्रयो वा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रहारान् लब्ध्वा क्लाम्यन्त्यपि ग्लाना अपि भवन्ति मरणमपि प्राप्नुवन्ति। मृगगणः तां प्रवृत्तिं बोधिसत्त्वायारूरुचत्। स शाखामृगं प्राक्रुश्याह—सौम्य ! बहवः मृगाः नश्यन्त्येकांशेन मारयितव्ये सति, इतः प्रस्थाय मा काण्डेन मृगान् विध्यन्तु, धर्मगण्डिकास्थाने मृगाणां वारो भवतु, एकदिवसं मम परिषदः वारः प्राप्नोतु, एकदिवसं तव परिषदो वारः प्राप्नोतु, वारप्राप्तः मृगः धर्मगण्डिकायां शीर्षं स्थापयित्वा निपद्यतामेवं सति मृगाः व्रणिताः न भविष्यन्तीति। स साध्विति सम्प्रत्यैषीत्। ततः प्रस्थाय वारप्राप्त एव मृगः गत्वा धर्मगण्डिकायां ग्रीवां स्थापयित्वा निपद्यते। भक्तकारकः आगत्य तत्र निपन्नकमेव गृहीत्वा गच्छति। अथैकदिवसं शाखामृगस्य परिषदः एकस्या गर्भिणीमृग्याः वारः प्राप्नोत्। सा शाखामृगमुपसङ्क्रम्य-स्वामिन् ! अहमपि गर्भिणी, पुत्रकं विजाय्य द्वौ जनौ वारं गमिष्यावः आवयोः वारमतिक्रमस्वेत्याह। सः—न शक्यं तव वारमन्येषां प्रापयितुम्, त्वमेव तव पुत्रं जनयिष्यसि गच्छेत्याह। सा तस्यान्तिकादनुग्रहमलभमाना बोधिसत्त्वमुपसङ्क्रम्य तमर्थमारूरुचत्। स तस्याः वचनं श्रुत्वा-भवतु, गच्छ त्वमहं ते वारमतिक्रामयिष्ये इति स्वयं गत्वा धर्मगण्डिकायां शीर्षं कृत्वा न्यपादि। भक्तकारः तं दृष्ट्वा-लब्धाभयः मृगराजः गण्डिकायां निपन्नः, किन्नु कारणमिति वेगेन गत्वा राज्ञ आरूरुचत्। राजा तावदेव रथमारुह्य महता परिवारेणागत्य बोधिसत्त्वं दृष्ट्वाह—सौम्य मृगराज ! ननु मया तुभ्यमभयं दत्तं कस्मात्त्वमिह निपन्न इति ? महाराज, गर्भिणी मृग्यागत्य 'मम वारमन्यस्य प्रापय' इत्याह, न शक्यं खलु पुनः मयैकस्य मरणदुःखमन्यस्योपरि प्रक्षेप्तुम्, सोऽहमात्मनः जीवितं तस्यै दत्त्वा तस्या अन्तिकं मरणं गृहीत्वा इह निपन्नः; मा अन्यत्किञ्चिदाशङ्कस्व महाराजेति। राजाह—स्वामिन्, सुवर्णवर्णमृगराज ! मया तादृशः क्षान्तिमैत्रानुदयसम्पन्नः मनुष्येष्वपि न दृष्टपूर्वः, तेन ते प्रसन्नोऽस्मि, उत्तिष्ठ तुभ्यं च तस्यै चाभयं ददामीति। द्वाभ्यामभये लब्धे शेषाः किं करिष्यन्ति नरेन्द्र इति ? अवशेषेभ्योऽप्यभयं ददामि स्वामिन्निति। महाराज ! एवमप्युद्याने एव मृगाः अभयं लप्स्यन्ते, शेषाः किं करिष्यन्तीति ? एतेभ्योऽप्यभयं ददामि स्वामिन्निति। महाराज ! मृगास्तावदभयं लभेरन्, अन्ये चतुष्पदाः द्विजगणाश्च किं करिष्यन्तीति ? एतेभ्योऽप्यभय ददामि स्वामिन्निति। महाराज ! चतुष्पदास्तावदभयं लभेरन्, द्विजगणाः तावदभयं लप्स्यन्ते, उदके वसन्तो मत्स्याः किं करिष्यन्तीति ? एतेभ्योऽप्यभयं ददामि स्वामिन्निति। एवं महासत्त्वः राजानं सर्वसत्त्वानामभयं याचयित्वोत्थाय राजानं पञ्चसु शीलेषु प्रतिष्ठाप्य, धर्मं चर महाराज ! मातापित्रोः पुत्रदुहित्रोः ब्राह्मणगृहपत्योः नैगमजानपदेषु धर्मं चरन् समं चरन् कायस्य भेदात् सुगतिं स्वर्गलोकं गमिष्यतीति राज्ञेऽववादं दत्त्वा मृगगणपरिवृतः अरण्ये प्राविक्षत्। सापि खलु मृगधेनुः पुष्पकर्णिकसदृशं पुत्रं व्यजीजनत्। स क्रीडन् शाखामृगस्यान्तिकं गच्छति। अथैनं माता तस्यान्तिके गच्छन्तं दृष्ट्वा 'पुत्र ! इतः प्रस्थाय मा एतस्यान्तिकं गच्छ, न्यग्रोधस्यैवान्तिकं गच्छेः' इत्यवदन्तीमां गाथामाह—

न्यग्रोधमेव सेवेत न शाखमुपसेवसे।
न्यग्रोधे मतं याचे शाखे जीवितमिति ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ततः प्रस्थाय च पुनरभयलब्धका मृगाः मनुष्याणां शस्यानि खादन्ति। मनुष्याः लब्धाभया इमे मृगाः इति प्रहर्तुं वा पलायितुं वा न विषहन्ते। ते राजाङ्गणे सन्निपत्य राज्ञः तदर्थमारूरुचन्। राजा-मया प्रसन्नेन न्यग्रोधमृगवराय वरो दत्तः, अहं राज्यं जह्यां न च प्रतिज्ञाम्, गच्छत, न कश्चित् मम विजितान् मृगान् प्रहर्तुं लभते इति। न्यग्रोधमृगः तां प्रवृत्तिं श्रुत्वा मृगगणं सन्निपात्येनः प्रस्थाय परेषां शस्यं खादितुं न लप्स्यध्वमिति मृगान् वारयित्वा मनुष्यान् अरूरुचत्—इतः प्रस्थाय शस्यकारकमनुष्याः शस्यरक्षणार्थं वृत्तिं मा कुर्वन्तु, क्षेत्रं पुनः आविध्य पर्णसंज्ञां बध्नन्त्विति। ततः प्रस्थाय किल क्षेत्रेषु पर्णबन्धनसंज्ञामतिक्रामकमृगो नाम नास्ति, अयं किल तेषां बोधिसत्त्वतः लब्धोऽववादः। एवं मृगगणमवोध्य बोधिसत्त्वः यावदायुष्कं स्थित्वा सध्रीङ्मृगैः यथाकर्म गतः। राजापि बोधिसत्त्वस्याववादे स्थित्वा पुण्यानि कृत्वा यथाकर्म गतः।

हिन्दी अनुवाद

अतीत काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के शासनकाल में बोधिसत्त्व ने मृगयोनि में जन्म लिया। वह माता की कुक्षि से निकलते समय सुवर्ण वर्ण का था। इसकी आँखें मणि के समान, सींग चाँदी के वर्ण के समान, मुख लालकमल के समूह के वर्ण के समान, हाथ-पैर लाक्षा से बनाये हुए के समान, पूँछ चँवर की तरह थी और इसका शरीर विशाल बछेड़ा (घोड़े का बच्चा) के प्रमाण का था।

उस न्यग्रोधमृगराज नामक सुवर्णमृग ने पांच सौ मृग-परिवार के साथ जंगल में अपना निवास बनाया। इसके समीप ही शाखामृग नाम का अन्य मृग भी पांच सौ मृगपरिवार के साथ रहता था। वह भी सुवर्ण-वर्ण सदृश ही था। उस समय वाराणसी का राजा मृगवध में लगा हुआ था, वह बिना मांस के नहीं खाता था। मनुष्यों के काम छुड़वा करके सभी निगम जनपदवासियों को एकत्र कर प्रतिदिन शिकार के लिए जाता था। मनुष्यों ने सोचा—यह राजा नित्य हम लोगों के कार्यों को रुकवाता रहता है इसलिए निश्चय ही मृगों के लिए बीज बोकर पानी डालकर बहुत-से मृगों को उद्यान में प्रविष्ट कराकर द्वार को बन्द कर (हम लोग) निकल जायँ। ऐसा सोचकर सभी ने उद्यान में बोये गये तृणों को रोपकर, जल देकर, द्वार लगाकर, नगरवासियों को लेकर, मुद्गर आदि आयुधों को हाथ में लेकर अरण्य में प्रविष्ट हो मृगों को ढूंढ़ते हुए 'मध्य में स्थित मृगों को पकड़ेंगे' ऐसा सोचकर एक योजन स्थान घेरकर, एकत्र करते हुए न्यग्रोधमृग और शाखामृग के निवासस्थान को मध्य में रखकर तदनन्तर उन मृगों को घेर लिया। मृगगणों को देखकर वृक्ष-गुल्म आदि तथा भूमि पर मुद्गर द्वारा प्रहार करते हुए मृगगण को ग्रहणस्थान से निकालकर, तलवार, शक्ति, धनुष आदि आयुधों को उठाकर महानाद करते हुए उस मृगगण को उद्यान में प्रविष्ट कराकर दरवाजा बन्द कर राजा के पास जाकर कहा—'हे देव ! स्वेच्छया मृगया के लिए जाते हुए आप हम लोगों के दैनिक कार्य न नष्ट करें, अतः जंगल से मृगों को लाकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आपके उद्यान को पूर्ण कर दिया है, आज से आप उनका मांस खायें'। इस प्रकार कहकर, बिना राजा से पूछे ही चले गये। उनके वचनों को सुनकर उद्यान में जाकर मृगों को देखते हुए दो सुवर्णमृगों को देखकर उनको अभयदान दिया। तब से राजा कभी स्वयं जाकर एक मृग मारकर लाते, कभी उसके भात बनानेवाले जाकर मारकर ले आते थे। कुछ मृग धनुष को देखकर ही मृत्यु के भय से (उस स्थान को) छोड़कर भाग जाते थे, दो-तीन प्रहारों को पाकर दुःखी होते थे, डर जाते थे तथा मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते थे! मृगगण ने यह प्रवृत्ति अन्त में बोधिसत्व से कही। उसने शाखामृग को बुलाकर कहा—सौम्य! एकबारगी मार देने पर बहुत-से मृग नष्ट हो जाते हैं, (अतः) आज से काण्ड से मृगों को न मारें, धर्मगण्डिकास्थान पर मृगों का एक दिन (निश्चित) हो जाय, एक दिन मेरे परिषद् के मृग का वार प्राप्त हो, और एक दिन आपकी परिषद् के मृग का। वारवाला मृग धर्मगण्डिका पर सिर रखकर पड़ जाये, ऐसा होने पर सब मृग घायल नहीं होंगे। उसने 'साधु' ऐसा कहकर उन्हें भेज दिया। तभी से अपना वार आने पर ही एक मृग जाकर धर्मगण्डिका पर गर्दन रख करके पड़ जाता था, भोजन बनानेवाला आकर वहाँ पड़े हुए को पकड़कर ले जाता था।

एक दिन शाखामृग के परिषद् की एक गर्भिणी मृगी की बारी आयी। उसने शाखामृग के पास जाकर कहा, 'हे स्वामिन्! मैं अभी गर्भिणी हूँ, पुत्र उत्पन्न कर हम दोनों लोग बारी के दिन जायँगे, इसलिए आज हम लोगों की बारी का अतिक्रमण कर दें।' उसने 'तुम्हारी बारी अन्यों को नहीं प्राप्त करायी जा सकती है, तुम्हीं अपने पुत्र को उत्पन्न करोगी, जाओ' ऐसा कहा। उसने उससे अनुग्रह न मिलने पर बोधिसत्त्व के पास जाकर निवेदन किया। उसने उसके वचन को सुनकर, 'अच्छा जाओ, मैं तुम्हारे वार का अतिक्रमण कराऊँगा', ऐसा कहकर स्वयं जाकर धर्मगण्डिका पर शिर करके पड़ गया। रसोइये ने उसे देखकर 'निर्भय मृगराज गण्डिका पर पड़ा हुआ है, क्या कारण है?' ऐसा सोचकर शीघ्र जाकर राजा से कहा। राजा ने उसी समय रथ पर चढ़कर महान् परिवार के साथ आकर बोधिसत्त्व को देखकर कहा—'सौम्य मृगराज! मैंने तुम्हें अभयदान दिया है तो भी आप यहाँ क्यों पड़े हुए हैं।' "हे महाराज! 'मेरी बारी अन्य को प्राप्त कराओ', ऐसा एक गर्भिणी मृगी ने आकर मुझसे कहा, एक के मरण के दुःख को दूसरे के ऊपर नहीं फेंका जा सकता है, (अंतः) मैं अपने जीवन को उसे देकर उसके मरण को स्वयं स्वीकार कर यहाँ पड़ा हुआ हूँ। हे महाराज! आप अन्य किसी बात की आशङ्का न करें।" राजा ने कहा—'स्वामिन्! हे सुवर्णवर्ण मृगराज! मैंने इसके पूर्व ऐसी क्षमा, मैत्री और दया से युक्त (किसी को) मनुष्यों में भी नहीं देखा था, इसलिए तुम पर प्रसन्न हूँ, उठो, उस मृगी को तथा तुम्हें अभयदान देता हूँ।' "दोनों के अभय प्राप्त कर लेने पर हे नरेन्द्र! शेष क्या करेंगे?" हे स्वामी, अवशिष्टों को भी अभयदान दूँगा। हे महाराज! इस प्रकार उद्यान में ही मृग अभयप्राप्त करेंगे, शेष क्या करेंगे? हे स्वामी! इन्हें भी अभयदान दूँगा। ह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाराज ! मृगों ने तो अभयदान प्राप्त कर लिया, तो भी अन्य चतुष्पद एवं पक्षिगण क्या करेंगे ? हे स्वामी ! उन्हें भी अभयदान दूँगा। हे महाराज ! चतुष्पदों ने अभय प्राप्त कर लिया, पक्षिगण भी अभय प्राप्त कर लेंगे, (लेकिन) जल में निवास करनेवाली मछलियाँ क्या करेंगी ? हे स्वामी ! उनको भी अभयदान दूँगा। इस प्रकार महासत्त्व ने राजा से सभी सत्त्वों के लिए अभयदान माँगकर उठकर राजा को पाँच शीलों में प्रतिष्ठापित कर, 'हे महाराज ! आप धर्म का आचरण करें, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, ब्राह्मण-गृहपति एवं निगम तथा जनपदवासियों में धर्म का आचरण करते हुए, समान व्यवहार करते हुए शरीरपात के अनन्तर सुगतिवाले स्वर्ग-लोक को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार राजा को निर्देश देकर मृगगणों से घिरे हुए, अरण्य में प्रवेश किया। उस मृग-धेनु ने भी पुष्पकर्णिक की भाँति पुत्र को उत्पन्न किया। वह कभी खेलता-खेलता शाखामृग के पास पहुँच गया। उसके पास जाते हुए (पुत्र) को देखकर माता ने,— हे पुत्र ! यहाँ से इसके पास मत जाया करो, न्यग्रोध के पास ही जाया करो; इस प्रकार कहते हुए यह गाथा कही—

न्याग्रोध की ही सेवा करनी चाहिए शाखा (मृग) की नहीं। (मैं तुमसे) माँगती (चाहती) हूँ कि न्यग्रोध से मत (राय) ग्रहण करो और शाखामृग से जीवन (इस के साथ जीवन) निर्वाह करो।

इस घटना के बाद वे निर्भय मृग मनुष्यों के अन्न (खेती) को खाने लगे। मनुष्यों ने सोचा—ये मृग निर्भय हैं, इनको मारा या भगाया नहीं जा सकता। अन्त में उन्होंने राजा के आँगन में एकत्र हो यह बात कही। राजा ने कहा—प्रसन्न होकर मैंने न्यग्रोधमृगराज को वर दे दिया हैं, मैं राज्य छोड़ सकता हूँ (किन्तु) प्रतिज्ञा नहीं। न्यग्रोधमृग ने उस बातचीत को सुनकर मृगगणों को एकत्र कर, 'आज से तुम दूसरों के खेत को मत खाओ' इस प्रकार मृगों को मनाकर मनुष्यों से कहा—आज से खेती करनेवाले मनुष्य खेत की रखवाली न करें। खेत को बाँधकर पत्तियों का निशान बाँध दें। तभी से मृग पत्ते के बँधे निशान का अतिक्रमण नहीं करते। यह निर्देश इन्हें बोधिसत्त्व से प्राप्त हुआ। इस प्रकार मृतगण से कहकर बोधिसत्त्व मृगों के साथ अपनी आयुभर जीकर यथाकर्म (दूसरी योनि में) चले गये। राजा भी बोधि-सत्त्व के अववाद में स्थित रहकर पुण्यसम्पादन कर यथाकर्म (दूसरी योनि में) चले गये (अपने कर्म के अनुसार सद्गति को प्राप्त हुए)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि-संगहो

२

बुद्धचरितं

मायादेविया सुपिनं

तदा किर कपिलवत्थुनगरे आसाळ्हीनक्खत्तं घुट्ठं अहोसि। महाजनो नक्खत्तं कीळेति। महामायादेवी पुरे पुण्णमाय सत्तमदिवसतो पट्ठाय विगत-सुरापानं मालागन्धविभूतिसम्पन्नं नक्खत्तकीळं अनुभवमाना सत्तमदिवसे पातो व उट्ठाय गन्धोदकेन नहायित्वा चत्तारि सतसहस्सानि विस्सज्जेत्वा महादानं दत्वा सब्बालंकारविभूसिता वरभोजनं भुञ्जित्वा उपोसथङ्गानि अधिट्ठाय अलंकतपटियत्तं सिरिगब्भं पविसित्वा सिरिसयने निपन्ना निद्दं ओक्कममाना इद सुपिनं अदस्स--चत्तारो किर नं महाराजानो सयनेनेव सद्धिं उक्खिपित्वा हिमवन्तं नेत्वा सट्ठियोजनिके मनोसिलातले सत्तयोज-निकस्स महासालरुक्खस्स हेट्ठा ठपेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। अथ नेसं देवियो आगन्त्वा देविं अनोतत्तदहं नेत्वा मानुसमलहरणत्थं नहापेत्वा दिब्बवत्थं निवासापेत्वा गन्धेहि विलिम्पापेत्वा दिब्बपुप्फानि पिलन्धापेत्वा--ततो अविदूरे रजतपब्बतो, तस्स अन्तो कनकविमानं अत्थि--तत्थ पाचीनसीसकं दिब्बसयनं पञ्ञापेत्वा निपज्जापेसुं। अथ बोधिसत्तो सेतवरवारणो हुत्वा--ततो अविदूरे एको सुवण्णपब्बतो--तत्थ चरित्वा ततो ओरुय्ह रजतपब्बतं अभिरुहित्वा उत्तरदिसतो आगम्म रजतदामवण्णाय सोण्डाय सेतपदुमं गहेत्वा कोञ्चनादं नदित्वा कनकविमानं पविसित्वा मातुसयनं तिक्खत्तुं पदक्खिणं कत्वा दक्खिणपस्सं ताळेत्वा कुच्छिं पविट्ठसदिसो अहोसि। एवं उत्तरासाळ्हनक्खत्तेन पटिसन्धिं गण्हि। पुनदिवसे पबुद्धा देवी तं सुपिनं रञ्ञो आरोचेसि। राजा चतुसट्ठिमत्ते ब्राह्मणपामोक्खे पक्कोसापेत्वा हरितयवुपत्थाय लाजादीहि कतमङ्गलसक्काराय भूमिया महारहानि आसनानि पञ्ञापेत्वा तत्थ निसिन्नानं ब्राह्मणानं सप्पिमधुसक्कराभिसङ्खतस्स वरपाय-सस्स सुवण्णरजतपातियो पूरेत्वा सुवण्णरजतपातीहि येव पटिकुज्जेत्वा अदासि, अञ्ञेहि च अहतवत्थकपिलगाविदानादीहि ते सन्तप्पेसि। अथ तेसं सब्बकामेहि सन्तप्पितानं सुपिनं आरोचेत्वा--'किं भविस्सती'ति पुच्छि। ब्राह्मणा आहंसु--'मा चिन्तयि महाराज, देविया ते कुच्छिम्हि गब्भो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पतिट्ठितो, सो च खो पुरिसगब्भो न इत्थिगब्भो, पुत्तो ते भविस्सति, सो सचे अगारं अज्झावसिस्सति राजा भविस्सति चक्कवत्ती, सचे अगारा निक्खम्म पब्बजिस्सति बुद्धो भविस्सति लोके विवट्टच्छदो' ति।

—निदानकथा जातक

संस्कृत अनुवाद

तदा किल कपिलवस्तुनगरे आषाढनक्षत्रं घुष्टमासीत्। महाजनो नक्षत्रं क्रीडति। महामायादेवी पुरः पूर्णिमायाः सप्तमदिवसतः प्रस्थाय विगतसुरापानां मालागन्ध-विभूतिसम्पन्नां नक्षत्रक्रीडामनुभवन्ती सप्तमदिवसे प्रातरेवोत्थाय गन्धोदकेन स्नात्वा चत्वारि शत सहस्राणि विसृज्य महादानं दत्त्वा सर्वालङ्कारविभूषिता वर-भोजनं भुङ्क्त्वोपवसथाङ्गान्यधिष्ठायालङ्कृतपर्याप्तं श्रीगर्भं प्रविश्य श्रीशयने निपन्ना निद्रामवक्रममाणेमं स्वप्नमद्राक्षीत्—चत्वारः किल नूनं महाराजाः शयनेनैव सम्रीड्ङ्गुत्क्षिप्य हिमवन्तं नीत्वा षष्टियोजनिके मनःशिलातले सप्तयोजनिकस्य महाशालवृक्षस्याधस्तात् स्थापयित्वैकस्मिन्नन्तेऽस्थुः। अथ निशायां देव्यः आगत्य देवीमनवतप्तह्रदं नीत्वा मानुषमलहरणार्थं स्नापयित्वा दिव्यवस्त्रं निवास्य गन्धैः विलिप्य दिव्यपुष्पाणि पिनाह्य ततोऽविदूरे रजतपर्वतः तस्यान्ते कनकविमानमस्ति तत्र प्राचीनशीर्षकं दिव्यशयनं प्रज्ञाप्य न्यपादिषत्। अथ बोधिसत्त्वः श्वेतवरवारणो भूत्वा—ततोऽविदूरे एकः सुवर्णपर्वतः तत्र चरित्वा ततोऽवरुह्य रजतपर्वतमभिरुह्योत्तरदिशातः आगत्य रजतदामवर्णया शुण्डया श्वेतपद्मं गृहीत्वा क्रौञ्चनादं नदित्वा कनकविमानं प्रविश्य मातुःशयनं त्रिः कृत्वः प्रदक्षिणां कृत्वा दक्षिणपार्श्वं ताडयित्वा कुक्षिं प्रविष्ट-सदृशोऽभूत्। एवमुत्तराषाढनक्षत्रेण प्रतिसन्धिमग्रहीत्। पुनः दिवसे प्रबुद्धा देवी तत्स्वप्नं राजानमारुरुचत्। राजा चतुष्षष्टिमात्रान् ब्राह्मणप्रमुखान् प्राकुश्य हरितयवानुप-स्थाय लाजादिभिः कृतमङ्गलसत्कारायां भूमौ महार्हाण्यासनानि प्रज्ञाप्य तत्र निषण्णेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सर्पिमधुशर्कराभिः संस्कृतस्य वरपायसस्य सुवर्णरजतपात्रीः पूरयित्वा सुवर्णरजतपात्रीभिरेव प्रतिकुज्यादाद्, अन्यैश्चाहतवस्त्रकपिलगोदानादिभिस्तान् सम-तीतृपत्। अथ तेषां सर्वकामैः सन्तर्पितानां स्वप्नमारोच्य—किं भविष्यतीत्यप्राक्षीत्। ब्राह्मणाः अवोचन्—मा चिन्तय महाराज, देव्यास्ते कुक्ष्यां गर्भः प्रतिष्ठितः, स च खलु पुरुषगर्भः, न स्त्रीगर्भः, पुत्रस्ते भविष्यति चेदागारमध्यावत्स्यति राजा भविष्यति चक्रवर्ती, चेदागारात् निष्क्रम्य प्रव्रजिष्यति बुद्धो भविष्यति लोके विवर्तच्छद इति।

हिन्दी अनुवाद

उस समय कपिलवस्तु नगर में आषाढ़ नक्षत्र था। महाजन लोग (बड़े लोग) नक्षत्रक्रीड़ा कर रहे थे। पूर्णिमा से सात दिन पूर्व से ही सुरापान को छोड़कर माला, सुगन्धि आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न हो, नक्षत्रक्रीड़ा का अनुभव करती हुई, सातवें दिन प्रातःकाल ही उठकर सुगन्धि-जल से स्नान कर, चार सौ हजार मुद्रा विसर्जित कर महादान देकर सम्पूर्ण अलंकारों से विभूषित होकर पवित्र भोजन करके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्रीगर्भ में प्रवेश कर श्रीशयन पर निद्रामग्न महामाया देवी ने यह स्वप्न देखा—चार महाराजा उसको पलङ्ग के साथ ही उठाकर हिमवान् पर्वत पर ले जाकर, साठ योजन लम्बे मनःशिलातल पर सात योजनवाले महाशाल वृक्ष के नीचे रखकर एक तरफ बैठ गये। तदनन्तर इनकी देवियों ने आकर, देवी को अनवतप्त ह्रद (तालाब) में ले जाकर मानुषसुलभ मल को हटाने के लिए स्नान कराकर, दिव्य वस्त्र पहनाकर सुगन्धित पदार्थों का लेपकर, दिव्य पुष्पों को पहनाकर उस ह्रद के समीप ही रजत पर्वत के नीचे कनकविमान के पूर्वी कोण में दिव्य शयन (आसन) लगा दिया। तब बोधिसत्त्व श्रेष्ठ श्वेत हाथी बनकर समीपस्थ एक सुवर्ण पर्वत से नीचे उतरकर, पास के रजत पर्वत पर चढ़कर, उत्तर दिशा से आकर, रजत की रस्सी के वर्णवाली सूँड़ से श्वेतकमल को ग्रहण कर, क्रौञ्चनाद करके कनकविमान में प्रविष्ट हो, माता के शयन की तीन बार प्रदक्षिणा कर, दाहिने पार्श्वभाग को आहत कर कुक्षि में प्रविष्ट की भाँति हो गये। इस प्रकार उन्होंने उत्तराषाढ़ नक्षत्र से ही प्रतिसन्धि प्राप्त की। दूसरे दिन प्रातः जगकर देवी ने उस स्वप्न को राजा से निवेदित किया। राजा ने चौंसठ प्रमुख ब्राह्मणों को बुलाकर उनका हरित यव तथा लाजा आदि मंगल सत्कार से युक्त भूमि पर बहूमूल्य आसनों को बिछाकर, उन पर बैठे हुए उन ब्राह्मणों को घी, मधु, शक्कर आदि से सुसंस्कृत खीर से सुवर्ण एवं रजत की थालियों को पूर्ण कर सुवर्ण एवं रजत की थालियों से ही ढँककर दे दिया तथा अन्य नूतन वस्त्र, कपिला गौ आदि के दान से उन्हें सन्तुष्ट किया।

तदनन्तर सम्पूर्ण कामनाओं से सन्तुष्ट उन ब्राह्मणों से देवी का वह स्वप्न सुनाकर 'क्या होगा' ऐसा पूछा। ब्राह्मणों ने कहा—हे महाराज! आप चिन्ता न करें, आपकी देवी की कुक्षि में गर्भ प्रतिष्ठित हो गया है; वह पुरुषगर्भ है, स्त्रीगर्भ नहीं। आपको पुत्र होगा। यदि वह घर पर रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा तथा यदि घर से निकल कर प्रव्रज्या धारण करेगा तो संसार में अज्ञान के आवरण से रहित बुद्ध होगा।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गोतमस्स उप्पादो

महामाया देवी पत्तेन तेलं विय दसमासे कुच्छिया बोधिसत्तं परिहरित्वा परिपुण्णगब्भा ञातिघरं गन्तुकामा सुद्धोदनमहाराजस्स आरोचेसि-'इच्छाम-हं देव कुलसन्तकं देवदहनगरं गन्तुं' ति । राजा 'साधू'ति सम्पटिच्छित्वा कपिलवत्थुतो याव देवदहनगरा मग्गं समं कारेत्वा कदलिपुण्णघटधजपताका-दीहि अलंकारापेत्वा देविं सोवण्णसिविकाय निसीदापेत्वा अमच्चसहस्सेन उक्खिपापेत्वा महन्तेन परिवारेन पेसेसि । द्विन्नं पन नगरानं अन्तरे उभय-नगरवासीनम्पि लुम्बिनीवनं नाम मङ्गलसालवनं अत्थि । तस्मि समये मूलतो पट्ठाय याव अग्गसाखा सब्बं एकफालिफुल्लं अहोसी, साखन्तरेहि चेव पुप्फन्तरेहि च पञ्चवण्णभमरगणा नानप्पकारा च सकुनसङ्घा मधुरस्सरेन विकूजन्ता विचरन्ति । सकलं लुम्बिनीवनं चित्तलतावनसदिसं महानुभावस्स रञ्ञो सुसज्जित-आपानमण्डलं विय अहोसि । देविया तं दिस्वा सालवनकीळं कीळितुकामता उदपादि । अमच्चा देविं गहेत्वा सालवनं पविसिंसु । सा मङ्गलसालमूलं गन्त्वा सालसाखायं गण्हितुकामा अहोसि । सालसाखा सुसेदितवेत्तग्गं विय ओनमित्वा देविया हत्थपथं उपगञ्छि । सा हत्थं पसारेत्वा साखं अग्गहेसि । तावदेव चस्सा कम्मजवाता चलिंसु । अथस्सा साणिं परिक्खिपित्वा महाजनो पटिक्कमि । सालसाखं गहेत्वा तिट्ठमानाय एव चस्सा गब्भवुट्ठानं अहोसि । तं खणं येव चत्तारो पि सुद्धचित्ता महाब्रह्मानो सुवण्णजालं आदाय सम्पत्ता, तेन सुवण्णजालेन बोधि-सत्तं सम्पटिच्छित्वा मातुपुरितो ठपेत्वा—'अत्तमना देवि होहि, महेसक्खो ते पुत्तो उप्पन्नो'ति आहंसु । यथा पन अञ्ञे सत्ता मातुकुच्छितो निक्खमन्ता पटिक्कूलेन आसुचिना मक्खिता निक्खमन्ति न एवं बोधिसत्तो । बोधिसत्तो पन धम्मासनतो ओतरन्तो धम्मकथिको विय निस्सेणितो ओतरन्तो पुरिसो विय च द्वे च हत्थे द्वे च पादे पसारेत्वा ठितको मातुकुच्छिसम्भवेन केनचि असुचिना अमक्खितो सुद्धो विसदो कासिकवत्थे निक्खित्तमणिरतनं विय जोतन्तो मातुकुच्छितो निक्खमि । एवं सन्तेपि बोधिसत्तस्स च बोधिसत्त-मातुया च सक्कारत्थं आकासतो द्वे उदकधारा निक्खमित्वा बोधिसत्तस्स च मातु च'स्स सरीरे उतुं गाहापेसुं ।

—निदानकथा जातक

संस्कृत अनुवाद

महामायादेवी पात्रेण तैलमिव दशमासान् कुक्षेः बोधिसत्त्वं परिहृत्य परिपूर्णगर्भा ज्ञातिगृहं गन्तुकामा शुद्धोदनमहाराजमारूरुचत्—इच्छाम्यहं देव ! कुलसत्ताकं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(कुलसम्बन्धि) देवदहनगरं गन्तुमिति। राजा 'साधु' इति सम्प्रतीष्य कपिलवस्तुतः यावद्देवदहनगरस्य मार्गं समं कारयित्वा कदलीपूर्णघटध्वजपताकादिभिरलङ्कृत्य देवीं सौवर्णशिविकायां निषाद्यामात्यसहस्रेणोत्क्षेत्य महता परिवारेण प्रैषिषत्। द्वयोः पुनः नगरयोरन्तरे उभयनगरवासिनामपि लुम्बिनीवनं नाम मङ्गलशालवनमस्ति। तस्मिन् समये मूलतः प्रस्थाय यावदग्रशाखां सर्वमेकफलितफुल्लमभूत्। शाखान्तरेभ्यश्चैव पुष्पान्तरेभ्यश्च पञ्चवर्णभ्रमरगणाः नानाप्रकाराश्च शकुनिसङ्घाः मधुरस्वरेण विकूजन्तः विचरन्ति। सकलं लुम्बिनीवनं चित्रलतावनसदृशं महानुभावस्य राज्ञः सुसज्जितापानमण्डलमिवाभूत्। देव्याः तद्दृष्ट्वा शालवनक्रीडां क्रीडितुकामतोदपादि। अमात्या देवीं गृहीत्वा शालवनं प्राविक्षन्। सा मङ्गलशालमूलं गत्वा शालशाखां गृहीतुकामाभूत्। शालशाखा सुस्वेदितवेत्राग्रमिवावनम्य देव्याः हस्तपथमुपागमत्। सा हस्तं प्रसार्य शाखामग्रहीत् तावदेवास्याः कर्मजवाता अचालिषुः। अथास्याः शाणीं परिक्षिप्य महाजनः प्रत्यक्रमीत्। शालशाखां गृहीत्वा तिष्ठन्त्या एव चास्याः गर्भोत्थानमभूत्। तत्क्षणमेव चत्वारोऽपि शुद्धचित्ताः महाब्रह्माणः सुवर्णजालमादाय सम्प्राप्ताः, तेन सुवर्णजालेन बोधिसत्त्वं सम्प्रतीष्य मातरं पुरतः स्थापयित्वा—आप्तमनस्का देवि! भव, महेशाक्षस्ते पुत्र उत्पन्न इत्याहुः। यथा पुनः अन्ये सत्त्वाः मातुः कुक्षितः निष्क्राम्यन्तः प्रतिकूलेनाशुचिना म्रक्षिताः निष्क्राम्यन्ति नैवं बोधिसत्त्वः। बोधिसत्त्वः पुनः धर्मासनत अवतरन् धर्मकथित इव निःश्रेणितः अवतरन् पुरुष इव च द्वौ हस्तौ द्वौ च पादौ प्रसार्य स्थितकः मातृकुक्षिसम्भवेन केनचिदशुचिना अम्रक्षितः शुद्धः विशदः काशिकवस्त्रे निक्षिप्तमणिरत्नमिव द्योतमानः मातृकुक्षितः निरक्रमीत्। एवं सत्यपि बोधिसत्त्वस्य च बोधिसत्त्वमातुश्च सत्कारार्थमाकाशतः द्वे उदकधारे निष्क्रम्य बोधिसत्त्वस्य च मातुश्चास्य शरीरे ऋतुमग्रहिष्टाम्।

हिन्दी अनुवाद

महामाया देवी ने पात्र से तैल की भाँति दसवें महीने में बोधिसत्व को कुक्षि से छोड़कर (गर्भ के कुछ शिथिल होने पर) पूर्ण गर्भवाली होकर भाई-बन्धुओं के घर जाने की इच्छा से युक्त हो महाराज शुद्धोदन से निवेदन किया—हे देव! मैं अपने कुल के लोगों के निवासस्थान देवदहनगर जाना चाहती हूँ। 'अच्छा', ऐसा कहकर राजा ने कपिलवस्तु से देवदेहनगर तक मार्ग को समतल करवाकर कदली, पूर्णघट, ध्वज एवं पताका आदि से अलंकृत कर देवी को सुवर्णमयी पालकी (शिविका) में बैठाकर हजार अमात्यों से युक्त एक बहुत बड़े परिवार के साथ भेजा। दोनों नगरों के बीच दोनों ही नगरवासियों का उपभोग्य लुम्बिनी वन नाम का मङ्गलशालवन है। उस समय वह वन वृक्ष की जड़ से अग्र भाग तक सभी तरह से फूला-फला था। शाखाओं और फूलों पर पाँच वर्णवाले भ्रमरसमूह, नाना प्रकार के पक्षिसमुदाय मधुर-स्वर से कूजन करते हुए विचरण कर रहे थे। सम्पूर्ण लुम्बिनी वन महानुभाव राजा के सुसज्जित आपानमण्डल की भाँति, चित्रलता वन के सदृश हो गया था। उसको देखकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देवी के मन में शालवन की क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। अतः मन्त्रिगण देवी को लेकर शालवन में प्रविष्ट हुए। वह मङ्गलशालवन में जाकर शाखा को पकड़ने की इच्छा करने लगीं। शालवृक्ष की शाखा हरे तथा कोमल बेंत के अग्रभाग की तरह झुककर देवी के हाथ में आ गयी। उसने हाथ फैलाकर शालशाखा को पकड़ लिया। उसी समय उसके उदर में प्रसव-वायु चलने लगी। तब उसके चारों ओर वस्त्र का घेरा डालकर महाजन हट गये। शालशाखा को पकड़कर बैठते हुए ही इसका गर्भोत्थान (प्रसव) हुआ। उसी क्षण चारों शुद्धचित्त महाब्रह्मा सुवर्ण-जाल को लेकर उपस्थित हो गये। उस सुवर्ण-जाल से बोधिसत्त्व को ढककर माता के आगे रखकर—हे देवि! आप घबराएँ नहीं, आपको राजचिह्नयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहा। जिस प्रकार अन्य जीव माता की कुक्षि से निकलते हुए प्रतिकूल अपवित्र (तत्त्व) से लिपे हुए निकलते हैं, उस तरह बोधिसत्त्व नहीं हुए। बोधिसत्त्व धर्म के आसन से उतरते हुए धर्मोपदेशक की भाँति बिना किसी श्रेणी से अवतरित होते हुए पुरुष की भाँति दो हाथों और दो पैरों को फैलाकर स्थित, माता की कुक्षि से उत्पन्न होते समय किसी अपवित्र तत्त्व से रहित शुद्ध, विशद तथा काशिक (रेशमी) वस्त्रों में रखे गये मणिरत्न की भाँति शोभित होते हुए माता की कुक्षि से निकले। ऐसा होने पर भी बोधिसत्त्व एवं उनकी माता के सत्कार के लिए आकाश से दो जल-धाराओं ने निकलकर बोधिसत्त्व एवं उनकी माता के शरीर के ऋतुजन्य (प्रसवजन्य लौकिक) मल को धो डाला।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाभिनिक्खमनं

तस्मिं समये 'राहुलमाता पुत्तं विजाता' ति सुत्वा सुद्धोदनमहाराजा 'पुत्तस्स मे तुट्ठिं निवेदेथा'ति सासनं पहिणि। बोधिसत्तो तं सुत्वा 'राहुलो जातो, बन्धनं जातं' ति आह। राजा 'किं मे पुत्तो अवचा' ति पुच्छित्वा तं वचनं सुत्वा 'इतो पट्ठाय मे नत्तु राहुलकुमारो त्वेव नामं होतू' ति। बोधिसत्तो पि खो रथवरं आरुय्ह महन्तेन यसेन अतिमनोरमेन सिरिसोभग्गेन नगरं पाविसि। तस्मिं समये किसागोतमी नाम खत्तियकञ्ञा उपरिपासादवरतलगता नगरं पदक्खिणं कुरुमानस्स बोधिसत्तस्स रूपसिरिं दिस्वा पीतिसोमनस्सजाता इमं उदानं उदानेसि—

> 'निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता।
> निब्बुता नून सा नारी, यस्सायं ईदिसो पती'ति ॥

बोधिसत्तो तं सुत्वा चिन्तेसि—'अयं एवं आह—एवरूपं अत्तभावं पस्सन्तिया मातुहदयं निब्बायति, पितुहदयं निब्बायति, पजापतिहदयं निब्बायति। कस्मिं नु खो निब्बुते हदयं निब्बुतं नाम होती' ति ? अथस्स किलेसेसु विरत्तमानसस्स एतदहोसि—'रागग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, दोसग्गिम्हि, मोहग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, मानदिट्ठि-आदिसु सब्बकिलेसदरथेसु निब्बुतेसु निब्बुतं नाम होति, अयं मे सुस्सवनं सावेसि, अहं हि निब्बानं गवेसन्तो चरामि। अज्जेव मया घरावासं छड्डेत्वा निक्खम्म पब्बजित्वा निब्बानं गवेसितुं वट्टति। अयं इमिस्सा आचरियभागो होतू' ति कण्ठतो ओमुञ्चित्वा किसागोतमिया सतसहस्सग्घनकं मुत्ताहारं पेसेसि। सा 'सिद्धत्थकुमारो मयि पटिबद्धचित्तो हुत्वा पण्णाकारं पेसेती' ति सोमनस्सजाता अहोसि। बोधिसत्ता पि महन्तेन सिरिसोभग्गेन अत्तनो पासादं अभिरुहित्वा सिरिसयने निपज्जि। तावदेव नं सब्बालङ्कारपटिमण्डिता नच्चगीतादिसु सुसिक्खिता देवकञ्ञा विय रूपप्पत्ता इत्थियो नानातुरियानि गहेत्वा सम्परिवारयित्वा अभिरमापेन्तियो नच्चगीतवादितानि पयोजयिंसु। बोधिसत्तो किलेसेसु विरत्तचित्तताय नच्चादिसु अनभिरतो मुहुत्तं निद्दं ओक्कमि। तापि इत्थियो 'यस्सत्थाय मयं नच्चादीनि पयोजयाम सो निद्दं उपगतो, इदानि किमत्थं किलमामा' ति गहितगहितानि तुरियानि अज्झोत्थरित्वा निपज्जिंसु। गन्धतेलप्पदीपा झायन्ति। बोधिसत्तो पबुज्झित्वा सयनपिट्ठे पल्लङ्केन निसिन्नो अदस्स-ता इत्थियो तुरियभण्डानि अवत्थरित्वा निद्दायन्तियो एकच्चा पग्घरितखेळा लालाकिलिन्नगता, एकच्चा दन्ते खादन्तियो, एकच्चा काकच्छन्तियो, एकच्चा विप्पलपन्तियो, एकच्च विवटमुखा, एकच्चा अपगतवत्था पकट-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बीभच्छसम्बाधट्ठाना। सो तासं तं विप्पकारं दिस्वा भिय्योसोमत्ताय कामेसु विरतो अहोसि। तस्स अलंकतपरियत्तं सक्कभवनसदिसं पि तं महातलं विप्पविद्धनानाकुणपभरितं आमकसुसानं विय उपट्ठासि। तयो भवा आदित्त-गेहसदिसा विय खायिंसु। 'उपद्दुत्तं वत भो, उपस्सट्ठं वत भो' उदानं पवत्ति। अतिविय पब्बज्जाय चित्तं नामि। सो 'अज्जेव मया महाभिनिक्खमनं निक्खमितुं वट्टति' ति सयना उट्ठाय द्वारसमीपं गन्त्वा—'को एत्था' ति आह। उम्मारे सीसं कत्वा निपन्नो छन्नो 'अहं अय्यपुत्त छन्नो' ति आह। अहं अज्ज महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो, एकं मे अस्सं कप्पेही'ति। सो 'साधु देवा'ति अरसभण्डकं गहेत्वा अस्ससालं गन्त्वा गन्धतेलप्पदीपेसु जलन्तेसु सुमनपट्टवितानस्स हेट्ठा रमणीये भूमिभागे ठितं कन्थकं अस्सराजानं दिस्वा 'अज्ज मया इमं एव कप्पेतुं वट्टती'ति कन्थकं कप्पेसि। सो कप्पियमानो व अञ्ञासि—'अयं कप्पना अतिगाळ्हा, अञ्ञेसु दिवसेसु उय्यानकीळादि-गमने कप्पना विय न होति, मय्हं अय्यपुत्तो महाभिनिक्खमनं निक्खमितु-कामो भविस्सती'ति। ततो तुट्ठमानसो महाहसितं हसि। सो सद्दो सकल-नगरं पत्थरित्वा गच्छेय्य, देवता पन तं सद्दं निरुम्भित्वा न कस्सचि सोतुं अदंसु। बोधिसत्तो पि खो छन्नं पेसेत्वा व 'पुत्तं ताव पस्सिस्सामी' ति चिन्तेत्वा निसिन्नपल्लङ्कतो वुट्ठाय राहुलमाताय वसनट्ठानं गन्त्वा गब्भद्वारं विवरि। तस्मिं खणे अन्तोगब्भे गन्धतेलप्पदीपो झायति। राहुलमाता सुमन-मल्लिकादीनं पुप्फानं अम्मणमत्तेन अभिप्पकिण्णसयने पुत्तस्स मत्थके हत्थं ठपेत्वा निद्दायति। बोधिसत्तो उम्मारे पादं ठपेत्वा ठितको व ओलोकेत्वा—'स चाहं देविया हत्थं अपनेत्वा मम पुत्तं गण्हिस्सामि देवी पबुज्झिस्सति, एवं मे गमनन्तरायो भविस्सति, बुद्धो हुत्वा व आगन्त्वा पस्सिस्सामी' ति पासाद-तलतो ओतरि।

—निदानकथा जातक

संस्कृत अनुवाद

तस्मिन् समये राहुलमाता पुत्रं व्यजायतेति श्रुत्वा शुद्धोदनमहाराजः—पुत्रस्य मे तुष्टिं निवेदयतेति शासनं प्रैषीत्। बोधिसत्त्वः तच्छ्रुत्वा 'राहुलो जातः, बन्धनं जातम्' इत्याह। राजा—किं मे पुत्रः अवोचदिति पृष्ट्वा तद्वचनं श्रुत्वा 'इतः प्रस्थाय मे नप्तुः राहुलकुमारस्त्वेव नाम भवत्विति। बोधिसत्त्वोऽपि खलु रथवरमारुह्य महता यशसातिमनोरमेण श्रीसौभाग्येन नगरं प्राविक्षत। तस्मिन् समये कृशागोतमी नाम क्षत्रियकन्योपरिप्रासादवरतलगता नगरं प्रदक्षिणां कुर्वतः बोधिसत्त्वस्य रूपश्रियं दृष्ट्वा प्रीतिसौमनस्यजातेदमुदानमब्रवीत्—

'निर्वृता नूनं सा माता, निर्वृतः नूनं स पिता।
निर्वृता नूनं सा नारी [illegible] पतिः ॥ इति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बोधिसत्त्वः तच्छ्रुत्वाचिचिन्तत्-इयमेवमाह-एवं रूपमात्मभावं पश्यन्त्या मातुर्हृदयं निर्वायते, पितुर्हृदयं निर्वायते, प्रजापतिहृदयं निर्वायते। कस्मिन्नुखलु निर्वृत्ते हृदयं निर्वृत्तं नाम भवतीति। अथास्य क्लेशेषु विरक्तमानसस्यैतदभूत्—रागाग्नौ निर्वृत्ते निर्वृत्तं नाम भवति; दोषाग्नौ, मोहाग्नौ निर्वृत्तं नाम भवति, मानदृष्ट्यादिषु सर्वक्लेशादिषु निर्वृत्तेषु निर्वृत्तं नाम भवतीदं मे सुश्रवणमशृश्रवद्, अह हि निर्वाणं गवेषयन् चरामि। अद्यैव मया गृहावासं छर्दयित्वा निष्क्रम्य प्रव्रज्य निर्वाणं गवेषितुं वर्त्तते। अयमस्या आचार्यभागः भवत्विति कण्ठतः अवमुच्य कृशागौतम्यै शतसहस्रार्घणकं मुक्ताहारं प्रैषिषत्। सा 'सिद्धार्थकुमारो मयि प्रतिबद्धचितो भूत्वा पण्यकारं प्रैषिषत्' इति सौमनस्यजाताभूत्। बोधिसत्त्वोऽपि महता श्रीसौभाग्येनात्मनः प्रासादमभिरुह्य श्रीशयने न्यपादि। तावदेव नूनं सर्वालङ्कारप्रतिमण्डिताः नृत्यगीतादिषु सुशिक्षिताः देवकन्या इव प्राप्तरूपाः स्त्रियः नानातूर्याणि गृहीत्वा सम्प्रवार्याभिरमयन्त्यो नृत्यगीतवादित्राणि प्रायूयुजन्। बोधिसत्त्वः क्लेशेषु विरक्तचित्ततया नृत्यादिष्वनभिरतः मुहूर्त्तं निद्रामवाक्रमीत्। ता अपि स्त्रियः 'यस्यार्थं वयं नृत्यादीन् प्रयोजयामः स निद्रामुपगतः, इदानीं किमर्थं क्लाम्यामः' इति गृहीतगृहीतानि तूर्याण्यध्यवस्तीर्यं न्यपाविषत। गन्धतैलप्रदीपा ध्यायन्ति। बोधिसत्त्वः प्रबुध्य शयनपृष्ठे पर्यंकेण निषण्णः अद्राक्षीत्—ताः स्त्रियः तूर्यभाण्डानि अवस्तीर्य निद्रायमाणाः एकत्याः प्रक्षरितक्ष्वेडाः क्लिन्नगात्राः एकत्याः दन्तान् खादन्त्यः एकत्याः काकथ्यमानाः एकत्याः विप्रलपन्त्यः एकत्याः विवृतमुखाः एकत्या अपगतवस्त्राः प्रकटबीभत्ससंबाधस्थानाः। स तासां विप्रकारं दृष्ट्वा भूयः सुमात्रता कामेषु विरक्तोऽभूत्। तस्या पर्याप्तालङ्कृतं शक्रभवनसदृशमपि तद् महातलं विप्रवृद्धनानाकुणपभृदामकश्मशानमिवोपास्थात्। त्रयो भवाः आदीप्तगेहसदृशा इव ज्वलिताः। उपद्रुतं बत भो, उपसृष्टं बत भो' इत्यवदानं प्रावर्ति। अतीव प्रव्रज्यायै चित्तमनंसीत्। सः 'अद्यैव मया महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुं वर्त्तते' इति शयनादुत्थाय द्वारसमीपं गत्वा 'कोऽत्र' इत्याह। उम्मारे शीर्षं कृत्वा निपन्नश्छन्दः—'अहमार्यपुत्र ! छन्दः' इत्याह।

'अहमद्य महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुकामः, एकं मेऽश्व कल्पय' इति। स 'साधु देव !' इत्यश्वभाण्डकं गृहीत्वाश्वशालां गत्वा गन्धतैलप्रदीपेषु ज्वलत्सु सुमनःपट्टवितानस्याधस्तात् रमणीये भूमिभागे स्थितं कन्थकमश्वराजं दृष्ट्वा—अद्यायमेव मया कल्पनीयो वर्त्तते' इति कन्थकमक्लृप्त। स कल्पयन्नेवाज्ञासीत्—इयं कल्पनातिगाढा, अन्येषु दिवसेषूद्यानक्रीडादिगमने कल्पनैव न भवति, अस्माकमार्यपुत्रो महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुकामः भविष्यतीति, ततः तुष्टमानसः महाहसितमहासीत्। स शब्दः सकलनगरं प्रस्तीर्य गच्छेत्, देवताः पुनस्तं शब्दं निरुध्य न कश्चित् श्रोतुमबुः। बोधिसत्त्वोऽपि खलु छन्दं प्रेष्यैव पुत्रं तावद्द्रक्ष्यामीति चिन्तयित्वा निषण्णपर्यङ्कतः उत्थाय राहुलमातुः वसनस्थानं गत्वा गर्भद्वारं व्यवीवरत्। तस्मिन् क्षणे अन्तर्गर्भे गन्धतैलप्रदीपः ध्यायति। राहुलमाता सुमनोमल्लिकादीनां पुष्पाणामर्मणमात्रेणाभिप्रकीर्णशयने पुत्रस्य मस्तके हस्तं स्थापयित्वा निद्रायते स्म। बोधिसत्त्व उम्मारे पादं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थापयित्वा स्थित एवावलोक्य 'चेदहं देव्याः हस्तमपनीय स्वपुत्रं ग्रहीष्यामि देवी प्रबोत्स्यते, एवं मम गमनान्तरायो भविष्यति, बुद्धो भूत्वैवागम्य द्रक्ष्यामि' इति प्रासादतलतोऽवातरीत् ।

हिन्दी अनुवाद

उस समय 'राहुल की माता ने पुत्र उत्पन्न किया है'– यह सुनकर महाराज शुद्धोदन ने आदेश दिया कि मेरे पुत्र को यह शुभ समाचार सुनाओ । बोधिसत्त्व ने यह सुनकर 'राहुल उत्पन्न हुआ, बन्धन उत्पन्न हुआ' ऐसा कहा । 'मेरे पुत्र ने क्या कहा' यह पूछकर उसके वचन को सुनकर राजा ने कहा—आज से मेरे नाती (नप्ता) का नाम राहुलकुमार ही हो । बोधिसत्त्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ़कर महान् यश से सम्पन्न होकर अत्यन्त मनोरम श्री-सौभाग्य से युक्त होकर नगर में प्रविष्ट हुए । उस समय प्रासाद के बरामदे पर खड़ी हुई कृशागौतमी नाम की क्षत्रिय-कन्या ने नगर की प्रदक्षिणा करते हुए बोधिसत्त्व के रूप एवं शोभा को देखकर प्रसन्न होकर इस गाथा को कहा—

'वह माता निर्वृत्त (सफल) हो गयी, वह पिता निर्वृत्त हो गया (जिसका ऐसा पुत्र है) तथा वह स्त्री निर्वृत्त हो गयी जिसका ऐसा पति है ।'

बोधिसत्त्व यह सुनकर सोचने लगे—इसने ऐसा कहा कि इस प्रकार के रूप एवं सौमनस्य को देखते हुए माता का हृदय निर्वृत्त हो जाता है, पिता का हृदय निर्वृत्त हो जाता है, प्रजापति (नारी) का हृदय निर्वृत्त हो जाता है, तो किसके निर्वृत्त होने पर हृदय निर्वृत्त होता है ? क्लेशों से विरक्त होनेवाले इनके (मन में) ऐसा हुआ—रागाग्नि के निर्वृत्त होने पर (हृदय) निर्वृत्त होता है; दोषाग्नि, मोहाग्नि के निर्वृत्त होने पर(हृदय) निर्वृत्त होता है, मान दृष्टि आदि सम्पूर्ण क्लेशों के निर्वृत्त होने पर (हृदय) निर्वृत्त होता है, ऐसा मुझे सुश्रवण सुनायी दिया । अब मैं निर्वाण की गवेषणा के लिए चलता हूँ । आज ही मुझे घर का निवास छोड़कर (घर से) निकलकर प्रव्रज्या धारण कर निर्वाण की गवेषणा करनी है । 'यह इसका आचार्यभाग हो'—ऐसा (विचार कर) सैकड़ों हजार मुद्राओं से खरीदने योग्य बहुमूल्य मुक्ताहार को कृशा-गोतमी के पास भेज दिया । 'मेरे प्रति बद्धचित्त होकर ही सिद्धार्थकुमार ने इसे भेजा है'—यह सोचकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो गयी । बोधिसत्त्व भी महान् श्रीसौभाग्य से सम्पन्न होकर अपने प्रासाद पर चढ़कर श्रीशयन पर लेट गये । तब तक वहाँ सम्पूर्ण अलङ्कारों से सुशोभित नृत्य-गीत आदि में सुशिक्षित देवकन्याओं की भाँति सौन्दर्य-सम्पन्न स्त्रियाँ नाना प्रकार के तूर्यों को लेकर (उन्हें) खोलकर अभिरमण करती हुई नृत्य, गीत और वाद्यों का प्रयोग करने लगीं । बोधिसत्त्व ने क्लेशों से विरक्तचित होने के कारण, नृत्य आदि में अभिरमण न करते हुए क्षणभर में निद्रा प्राप्त कर ली । 'जिसके लिए हम लोग नृत्य आदि का आयोजन कर रही हैं वही सो गया, (अतः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस समय क्यों कष्ट सहा जाय।' इस प्रकार वे स्त्रियाँ भी ग्रहण किये गये अपने तूर्य को एक तरफ रखकर सो गयीं। गन्धतैलप्रदीप बुझ गये। जागकर शयनपृष्ठ के, पर्यङ्क पर बैठे हुए बोधिसत्त्व ने देखा (कि) वे स्त्रियाँ तूर्यपात्रों को एक तरफ रखकर सो रही हैं, कुछ पसीने से लथ-पथ होने के कारण क्लिन्न हो गयी हैं, कुछ दाँतों को पीस रही हैं, कुछ बड़बड़ा रही हैं, कुछ विलाप कर रही हैं, कुछ मुँह खोले पड़ी हैं, तथा कुछ के वस्त्र हट जाने के कारण कई अङ्ग स्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं। वे उनकी ऐसी निकृष्ट अवस्था को देखकर पुनः काम से विरक्त हो गये। उन्हें अत्यन्त अलंकृत इन्द्र के भवन के सदृश अपना महल सड़े हुए नाना प्रकार के शवों तथा कच्चे मांस से युक्त श्मशान की भाँति दिखायी पड़ने लगा। उन्हें तीनों लोक जलते हुए घर के समान मालूम होने लगे। उनके मुख से अचानक निकल पड़ा कि 'अरे यहाँ से भाग चला जाय, निकल चला जाय।' उनका मन प्रव्रज्या की ओर अत्यधिक अवनमित हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण के लिए प्रयास करना चाहिए' (ऐसा) उन्होंने सोचा। ऐसा विचार कर वे पलंग से उठ दरवाजे के पास जाकर बोले—'यहाँ कौन है?' देहली पर सिर रखे सोये हुए छन्द ने कहा—'मैं हूँ आर्यपुत्र!'। 'मैं आज महाभिनिष्क्रमण के लिए निष्कमण करना चाहता हूँ, मेरे लिए एक अश्व सजाओ।' 'ठीक है महाराज'—ऐसा कहकर उसने अश्वालङ्करण लेकर अश्वागार में जाकर गन्धतैलप्रदीप के जलते रहने पर सुमनपट्ट वितान के नीचे रमणीय भूमिप्रदेश में स्थित अश्वराट् कन्थक को देखकर 'मुझे आज इसे ही सजाना है' (ऐसा सोचकर) कन्थक को सजाया। कन्थक ने सजते हुए ही समझ लिया कि 'यह सजावट विचित्र है, अत्यन्त गाढ़ है, उद्यानादि क्रीड़ा करने जाने के लिए ऐसी सजावट नहीं होती थी, हमारे आर्यपुत्र आज महाभिनिष्क्रमण के लिए निष्क्रमण करेंगे'। इसलिए प्रसन्न मन होकर उस अश्व ने सजते हुए महा अट्टहास किया। वह शब्द सम्पूर्ण नगर में फैल न जाय, अतः देवताओं ने उस शब्द को रोककर किसी को सुनने नहीं दिया। बोधिसत्त्व ने भी 'छंद को भेजकर ही (भेज दिया) तब तक पुत्र को देख लूंगा (लूं)'—इस प्रकार सोचकर पर्यङ्क से उठकर राहुल की माता के निवासस्थान पर जाकर अन्तःपुर का द्वार खोल दिया। उस समय अन्दर गन्धतैलप्रदीप बुझ गये थे। राहुल की माता सुमन मल्लिका आदि फूलों को बिस्तर पर फैलाकर पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर सो रही थीं। बोधिसत्त्व ने देहली पर ही पैर रखकर खड़े होकर देखकर (सोचा)—'यदि मैं देवी के हाथ को हटाकर अपने पुत्र को ग्रहण करूँगा तो देवी जाग जायेंगी, इस प्रकार गमन में बाधा उत्पन्न होगी; अतः बुद्ध होकर ही आकर देखूंगा', (ऐसा निश्चय कर) बोधिसत्त्व प्रासाद से नीचे उतर गये।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धम्मचक्कपवत्तनसुत्तं

एवं मे सुतं--एवं समयं भगवा वाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू आमन्तेसि--द्वे मे, भिक्खवे, अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कानेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, यो चायं अत्तकिलामथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमा चा सा, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तत्ति? अयं एव अरियो अठ्टंगिको मग्गो, सेय्यथीदं--समादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो,. सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो सा, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं--जाति पि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खा। मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानखन्धा पि दुक्खा। इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं--यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दनी, सेय्यथीदं--कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा। इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधो अरियसच्चं--यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो, चागो, पटिनिस्सग्गो, मुत्ति, अनालयो। इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं—अयं एव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं--सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्त, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।

—सुत्तनिपात

संस्कृत अनुवाद

एवं मया श्रुतम्—एकस्मिद् समये भगवान् वाराणस्यां विहरति ऋषिपत्तने मृगदावे। तत्र खलु भगवान् पञ्चवर्गकान् भिक्षूनयमन्त्रत्—द्वौ इमौ भिक्षवः अन्तौ प्रव्रजितेन न सेवितव्यौ। कतमौ द्वौ? यश्चायं कामेषु कामसुखानुयोगो हीनो ग्राम्यः पृथग्जनिकोऽनार्योऽनर्थसंहृतः, यश्चायमात्मक्लमथानुयोगो दुःखोऽनार्योनर्थसंहृतः। एतौ खलु, भिक्षवः, उभौ अन्तावनुपगम्य मध्यमा प्रतिपद् तथागतेनाभि-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्बुद्धा चक्षुष्करणी ज्ञानकरण्युपशमायाभिज्ञायै सम्बोधाय निर्वाणाय संवर्त्तते। कतमा च सा भिक्षवः मध्यमा प्रतिपत् तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्षुष्करणी ज्ञानकरणी उपशमायाभिज्ञायै सम्बोधाय निर्वाणाय संवर्तते इति ? अयमेवार्याष्टांगिको मार्गः, स यथायम्—सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्सङ्कल्पः, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्तः, सम्यगाजीवः, सम्यग्व्यायामः, सम्यक्स्मृतिः, सम्यक्समाधिः। इयं खलु सा भिक्षवः ! मध्यमा प्रतिपत् तथागतेनाभिसम्बुद्धा, चक्षुष्करणी, ज्ञानकरणी, उपशमायाभिज्ञायै सम्बोधाय निर्वाणाय संवर्त्तते। इदं खलु पुनः भिक्षवः ! दुःखमार्यसत्यम्—जातिरपि दुःखा, जरा अपि दुःखा, व्याधिरपि दुःखा, मरणमपि दुःखम्, अप्रियैः सम्प्रयोगो दुःखः, प्रियैः विप्रयोगो दुःखः यदप्यभीष्टं न लभते तदपि दुःखम्। संक्षिप्तेन पञ्चोपादानस्कन्धा अपि दुःखाः। इदं खलु पुनः भिक्षवः ! दुःखसमुदय आर्यसत्यम्—येयं तृष्णा पौनर्भविका नन्दिरागसहगता, तत्रतत्राभिनन्दिनी, सा यथेयम्—कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा। इदं खलु पुनः भिक्षवः ! दुःखनिरोध आर्यसत्यम्—यस्तस्या एव तृष्णाया अशेषवैराग्यनिरोधः, त्यागः, प्रतिनिसर्गः मुक्तिः, अनालयः। इदं खलु पुनः भिक्षवः ! दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदार्यसत्यम्—अयमेवार्याष्टांगिको मार्गः स यथायम्—सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्संकल्पः, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्तः, सम्यगाजीवः, सम्यग्व्यायामः, सम्यक्स्मृतिः, सम्यक्समाधिः।

हिन्दी अनुवाद

ऐसा मैंने सुना है कि एक समय भगवान् वाराणसी में ऋषिपत्तन मृगदाव में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—प्रव्रज्या धारण करनेवाले द्वारा इन दो अन्तों पर आचरण नहीं करना चाहिए। कौन दो ? जो कामों में काम-सुख की इच्छा करनेवाला, (आचरण से) हीन, ग्राम्य पामर जन, अनार्य एवं अनर्थ एकत्र करनेवाला है, तथा जो अपने को (पाप कर्मों से) थकाने वाला, दुःखदायी अनार्य एवं अनर्थ को एकत्र करनेवाला है। हे भिक्षुओ, इन उपर्युक्त दोनों प्रकार के अन्तों का आचरण न कर ही तथागत ने दृष्टि तथा ज्ञान देनेवाली मध्यमा प्रतिपदा को समझा, जो शान्ति, सम्बोध और निर्वाण के लिए है। हे भिक्षुओ ! वह कौन-सी मध्यमा प्रतिपदा है जो तथागत द्वारा भलीं-भाँति समझी गयी है, जो दृष्टि देनेवाली है, ज्ञानप्रद है तथा उपशान्ति, अभिज्ञा, सम्बोध एवं निर्वाण के लिए संवर्तित (प्रवर्तित) होती है ? यही आर्याष्टांगिक मार्ग है, वह इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यक्स्मृति, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्समाधि। हे भिक्षुओ ! यही वह मध्यमा प्रतिपदा है जो तथागत द्वारा अभिसम्बुद्ध (भली-भाँति जानी गयी) है, जो दृष्टि देनेवाली है, ज्ञानप्रद है, तथा उपशान्ति, अभिज्ञा, सम्बोधि एवं निर्वाण के लिए संवर्तित होती है। हे भिक्षुओ ! दुःख आर्यसत्य है, जाति भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रिय (वस्तुओं या व्यक्तियों) के साथ संयोग दुःख है, प्रिय का वियोगी भी दुःख है/ जो अभीष्ट भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं प्राप्त होता है, वह भी दुःख है। संक्षेप में पाँचों उपादानस्कन्ध दुःख हैं। हे भिक्षुओ—दुःखसमुदय भी आर्यसत्य है—जो यह तृष्णा पुनः उत्पन्न होने का कारण बननेवाली, राग एवं आनन्द के साथ रहनेवाली, उन-उन स्थानों का अभिनन्दन करनेवाली है, वह यह है—कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा। भिक्षुओ! दुःखनिरोध भी आर्यसत्य है—जो कि उस तृष्णा का अशेष वैराग्यपूर्वक निरोध, त्याग, प्रतिनिसर्ग, मुक्ति तथा अनालय है। दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा भी आर्यसत्य है। यही आर्याष्टाङ्गिक मार्ग है, वह यह है—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यंक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"सिया खो पनानन्द तुम्हाकं एवं अस्स—"अतीतसत्थुकं पावचनं। नत्थि नो सत्था'ति। न खो पनेतं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं। यो वो, आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था। यथा खो पनानन्द, एतरहि भिक्खू अञ्ञमञ्ञं आवुसोवादेन समुदाचरन्ति, न वो ममच्चयेन एवं समुदाचरितब्बं। थेरतरेन, आनन्द, भिक्खुना नवकतरो भिक्खु नामेन वा गोत्तेन वा आवुसो-वादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खुना थेरतरो भिक्खु 'भन्ते' ति वा 'आयस्मा' ति वा समुदाचरितब्बो। आकङ्खमानो, आनन्द, सङ्घो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहन्तु। छन्नस्स, आनन्द, भिक्खुनो ममच्चयेन ब्रह्मदण्डो दातब्बो" ति। "कतमो पन भन्ते ब्रह्मदण्डो" ति? 'छन्नो, आनन्द, भिक्खु यं इच्छेय्य तं वदेय्य, सो भिक्खूहि नेव वत्तब्बो, न ओवदितब्बो न अनुसासितब्बो' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'सिया खो पन, भिक्खवे, एकभिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'सम्मुखीभूतो नो सत्था अहोसि, न मयं सक्खिम्हा भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं" ति। एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्हीअहेसुं। दुतियम्पि, ततियम्पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि....। ततियम्पि खो ते भिक्खू तुण्ही-अहेसुं। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि–'सिया खो पन, भिक्खवे, सत्थु गारवेनापि न पुच्छेय्याथ। सहायको पि, भिक्खवे, सहायकस्स आरोचेतू' ति। एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते! एवं प्रसन्नो अहं, भन्ते, 'इमस्मि भिक्खुसङ्घे नत्थि एकभिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा' ति। 'पसादा, खो त्वं, आनन्द वदेसि। ञाणं एव हेत्थ आनन्द तथागतस्स। नत्थि इमस्मिं भिक्खुसङ्घे एकभिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा। इमेसं हि, आनन्द, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिमको भिक्खु सो सोतापन्नो अवि-निपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आम-न्तेसि—'हन्द दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो–वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादथा' ति। अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा।

अथं खो भगवा पठमज्झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियज्झानं....ततियज्झानं....चतुत्थज्झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आकासानञ्चायतनं समापज्जि । आकासानञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि । विञ्ञाणञ्चायतनासमापत्तिया बुट्टहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि । आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिवा वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि । नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि । अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच—'वरिनिब्बुत्तो, भन्ते अनुरुद्ध, भगवा' ति । 'न आवुसो आनन्द, भगवा परिनिब्बुतो, सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो' ति । अथ खो भगवासञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तियावुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञानासञ्ञायतनं आकिञ्चञ्ञायतनं····विञ्ञाणञ्चायतनं ··· आकासनञ्चायतनं ··· चतुत्थं झानं ····ततियंझानं····दुतियंझानं' ·पठमंझानं समापज्जि, पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियज्झानं' ·ततियज्झानं' · चतुत्थज्झानं समापज्जि, चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि । परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, महाभूमिचालो अहोसि भिसनको लोमहंसो । देवदुन्दुभियो च फलिसु । परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, ब्रह्मा सहंपति इमं गाथं अभासि—

'सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सयं ।
यत्थ एतादिसो सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो ।
तथागतो बलप्पत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुतो' ति ॥

परिनिब्बुत्तो भगवति, सह परिनिब्बाना, सक्को देवानं इन्दो इमं गाथं अभासि—

'अनिच्चा वत संखारा, उप्पादवयधम्मिनो ।
उपज्जितवा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो'ति ॥

परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि—

'नाहु अस्सासपस्सासो, ठितचित्तस्य तादिनो ।
अनेजो तन्तिमारब्भ, यं कालं अकरी मुनी ॥
असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि ।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोखो चेतसो अहू'ति ॥

परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि—

'तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं ।
सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते' ति ॥
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

—सुत्तपिटक, दीघनिकाय, महापरिनिब्बानसुत्त ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ खलु भगवान् आयुष्मन्तमानन्दममन्त्रत्—"स्यात्खलु पुनः आनन्द ! युष्माकमेवं भवेत्–अतीतशास्तृकं प्रावचनम्, नास्ति नः शास्तेति । न खलु पुनरेतदानन्द ! एवं द्रष्टव्यम् । यो वः आनन्द ! मया धर्मश्च विनयश्च देशितः, प्रज्ञप्तः, स वो ममात्ययेन शास्ता । यथा खलु पुनरातनन्द ! एतर्हि भिक्षुमन्योऽन्यमावुसोवादेन समुदाचरन्ति, न खलु ममात्ययेनैवं समुदाचरितव्यम् । स्थविरतरेणानन्द ! भिक्षुणा नवकतरो भिक्षुः नाम्ना वा गोत्रेण वायुष्मद्वादेन वा समुदाचरितव्यः । नवकतरेण भिक्षुणा स्थाविरतरो भिक्षुः 'भवन्त' इति वा 'आयुष्मन्' इति वा समुदाचरितव्यः । आकांक्षमाणः आनन्द ! संघो ममात्ययेन क्षुद्रानुक्षुद्रकाणि शिक्षापदानि समूहन्तु । छन्दस, आनन्द ! भिक्षोः ममात्ययेन ब्रह्मदण्डं दातव्यम् ।"

"कतमः पुनः भवन्त ! ब्रह्मदण्ड इति ?"

"छन्द, आनन्द ! भिक्षुर्यदिच्छेत् तद् वदेत् स भिक्षुभिः नैव वक्तव्यः, नाववदतव्यः, नानुशासितव्यः" इति । अथ खलु भगवान् भिक्षूनममन्त्रत्—"स्यात्खलु पुनः भिक्षवः ! एकस्य भिक्षोः अपि कांक्षा वा विमतिः वा धर्मे वा संघे वा मार्गे वा प्रतिपदि वा, पृच्छथ भिक्षवः ! मा पश्चात् विप्रतिसारिणो भवत--सम्मुखीभूतः न शास्ताभूत्, न वयं शक्नुमो भगवन्तं सम्मुखं प्रतिप्रष्टुम्" इति ।

एवमुक्ते, ते भिक्षवः तूष्णीमभूवन् । द्वितीयमपि, तृतीयमपि खलु भगवान् भिक्षूनममन्त्रत् तृतीयमपि खलु ते भिक्षवः तूष्णीमभूवन् । अथ खलु भगवान् भिक्षूनममन्त्रत्—"स्यात्खलु पुनः भिक्षवः शास्तुः गौरवेणापि न पृच्छेयुः । सहायकोऽपि भिक्षवः ! सहायकमारोचयतु" इति । एवमुक्ते ते भिक्षवः तूष्णीमभूवन् ।

अथ खल्वायुष्मन् आनन्दः भगवन्तमेतदवोचत् "आश्चर्यं भन्ते ! अद्भुतं भन्ते ! एवं प्रसन्नोऽहं भन्ते ! एतस्मिन् भिक्षुसंघे नास्त्येकस्यापि भिक्षोः कांक्षा वा विमतिः वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा प्रतिपदि वा" इति ।

'प्रसादात्खलु त्वमानन्द ! वदसि । ज्ञानमेव हि अत्र आनन्द ! तथागतस्य, नास्त्यस्मिन् भिक्षुसंघे एकस्य भिक्षोः अपि कांक्षा वा विमतिः वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा मार्गे वा प्रतिपदि वा । एषां ह्यानन्द ! पञ्चानां भिक्षुशतानां याः पश्चिमकः भिक्षुः सः स्रोतस्यापन्नोऽविनिपातधर्मो नियतः सम्बोधिपरायण इति ।"

अथ खलु भगवान् भिक्षूनममन्त्रत्--"हन्त ! इदानीं भिक्षवः ! आमन्त्रयामि वः, व्ययधर्माः संस्कारा, अप्रमादेन सम्पादयत" इति ।

इयं तथागतस्य पश्चिमा वाग् ।

अथ खलु भगवान् प्रथमं ध्यानं समापादि । प्रथमध्यानादुत्थाय द्वितीयध्यानं समापादि । द्वितीयध्यानादुत्थाय तृतीयध्यानं समापादि । तृतीयध्यानादुत्थाय चतुर्थ-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थायाकाशानन्त्यायतनं समापादि। आकाशानन्त्यायतनसमापत्तेरुत्थाय विज्ञानानन्त्यायतनं समापादि। विज्ञानानन्त्यायतनसमापत्तेरुत्थायाकिंचन्यायतनं समापादि। आकिंचन्यायतनसमापत्तेरुत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञायतनं समापादि। नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसमापत्तेरुत्थाय संज्ञावेदयितृनिरोधं समापादि।

अथ खल्वायुष्मानानन्द आयुष्मन्तमनुरुद्धमेतदवोचत्—"परिनिर्वृतो, भन्ते! अनुरुद्ध! भगवान्।" इति।

"न आयुष्मन्नानन्द! भगवान् परिनिर्वृतः, संज्ञावेदयितृनिरोधं समापन्न इति।

अथ खलु भगवान् संज्ञावेदयितृनिरोधसमापत्तेरुत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञायतनं समापादि। नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसमापत्तेरुत्थाय आकिंचन्यायतनं समापादि। आकिंचन्यायतनसमापत्तेरुत्थाय विज्ञानानन्त्यायतनं समापादि। विज्ञानानन्त्यायतनसमापत्तेरुत्थायाकाशानन्त्यायतनं समापादि। आकाशानन्त्यायतनसमापत्तेरुत्थाय चतुर्थध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय तृतीयध्यानं समापादि। तृतीयध्यानादुत्थाय द्वितीयं ध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानादुत्थाय प्रथमं ध्यानं समापादि।

प्रथमध्यानादुत्थाय द्वितीयध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानादुत्थाय तृतीयध्यानं समापादि। तृतीयध्यानादुत्थाय चतुर्थध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय समनन्तरं भगवान् परिनिरवारीत्। परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, महाभूमिचालः अभूत् भीषणको लोमहर्षः; देवदुन्दुभयश्चाफालिषुः।

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, ब्रह्मा सदसस्पतिः इमां गाथायभाषिष्ट—

"सर्व एव निक्षेप्स्यन्ति भूताः लोके समुच्छ्रयम्।
यथैतादृशः शास्ता, लोकेऽप्रतिपुद्गलः।
तथागतो बलप्राप्तः, सम्बुद्धः परिनिर्वृतः" इति॥

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, शक्रो देवानामिन्द्रः इमां गाथामभाषिष्ट—

"अनित्याः वत संस्काराः उत्पादव्ययधर्मिणः।
उत्पद्य निरुध्यन्ते तेषामुपशमः सुखम्" इति॥

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेनायुष्मान् अनुरुद्धः इमां गाथामभाषिष्ट—

"न खल्वाश्वासप्रश्वासः, स्थितचित्तस्य तापिनः।
अनेजः शान्तिमारभ्य यं कालमरोत् मुनिः॥
असल्लीनेन चित्तेन वेदनामध्यवासयत्।
प्रद्योतस्यैव निर्वाणं विमोक्षः चेतसः अभूत्" इति॥

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेयुष्मान् आनन्दः इमां गाथामभाषिष्ट—

'तदासीत् यद्भीषणकं तदासीत् लोमहर्षणम्।
सर्वाकारवरोपे ते सम्बुद्धे परिनिर्वृते' इति॥

नमस्तस्मै भगवतेऽर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी अनुवाद

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—"आनन्द ! सम्भव है, तुम लोगों को ऐसा हो कि अतीत शास्ता का यह) प्रवचन है, अब हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द ! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदिष्ट किये हैं, प्रज्ञप्त किये हैं. मेरे बाद वे ही तुम्हारे शास्ता हैं। आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनन्द ! स्थविर भिक्षु नवीन भिक्षु को नाम से या गोत्र से, या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारें। नवीन भिक्षु स्थविरतर को 'भन्ते' या 'आयुष्मन्' कहकर पुकारें। आकांक्षा रखनेवाला संघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (छोटे-छोटे) शिक्षापदों को ऊहा करें। आनन्द ! मेरे बाद छन्द (स्वच्छन्द) भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना चाहिए।"

'भन्ते ! यह ब्रह्मदण्ड क्या है ?"

"आनन्द ! छन्द भिक्षु जो चाहे सो कहे, भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिए, न उसे उपदेश या अनुशासन करना चाहिए।"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपदा में किसी भिक्षु को कुछ शंका या विमति हो, (तो) पूछ ले। भिक्षुओ ! अभी पूछ लो, फिर अफसोस न करना कि शास्ता हमारे सम्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान् के सामने पूछ न सके।" ऐसा कहने पर वे भिक्षु चुप रहे।

दूसरी बार भी भगवान् ने""। तीसरी बार भी भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया - भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपदा में किसी भी भिक्षु को कुछ शंका या दुविधा हो, तो पूछ लो, भिक्षुओ ! बाद में पश्चात्ताप न करना—"शास्ता हमारे सम्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान् के सम्मुख पूछ नहीं सके।" तीसरी बार भी भिक्षु चुप रह गये। तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—'हो सकता है भिक्षुओ ! शास्ता के गौरव से भी (संकोच या भय से) न पूछते हो, तो भिक्षुओ ! सहायक ही सहायक से कहे।" ऐसा कहने पर भी वे भिक्षु चुप रहे।

तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है भन्ते ! अद्भुत है भन्ते ! मैं इस भिक्षुसंघ से ऐसा प्रसन्न हूँ, (कि यहां) एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपदा के विषय में सन्देह या विमति नहीं है।"

"आनन्द ! तुम 'प्रसन्न हूँ' कह रहे हो ? तथागत का ज्ञान ही यहां (कारण) है। इस भिक्षुसंघ में एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपदा के विषय में सन्देह या विमति नहीं है। आनन्द ! पाँच सौ भिक्षुओं में जो सबसे छोटा भिक्षु है, वह (भी कम-से-कम) स्रोतापन्न है, न गिरनेवाला है, नियत है, सम्बोधि-परायण है।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया –"हे भिक्षुओ ! मैं अब तुम्हें (अन्तिम उपदेश) देता हूँ—संस्कार व्ययधर्मा हैं; अप्रमाद के साथ (इनका) संपादन करो ।" यह तथागत का अन्तिम वचन है ।

तब भगवान् प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए । प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए । द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान को प्राप्त हुए । तृतीय ध्यान से उठकर चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हुए । चतुर्थ ध्यान से उठकर आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हुए । आकाशानन्त्यायतनसमापत्ति से उठकर विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हुए । विज्ञानानन्त्यायतनसमापत्ति से उठकर आकिञ्चन्यायतनसमापत्ति को प्राप्त हुए । आकिञ्चन्यायतनसमापत्ति से उठकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हुए । नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसमापत्ति से उठकर संज्ञावेदयितृनिरोधसमापत्ति को प्राप्त हुए ।

तदनन्तर आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से कहा—"भन्ते अनुरुद्ध ! क्या भगवान् परिनिर्वृत हो गये ?"

"आयुष्मान् आनन्द ! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए, संज्ञावेदयितृनिरोध को प्राप्त हुए हैं ।"

तब भगवान् पुनः संज्ञावेदयितृनिरोधसमापत्ति से उठकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हुए । नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसमापत्ति से उठकर आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हुए । आकिञ्चन्यायतन समापत्ति से उठकर विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हुए । विज्ञानानन्त्यायतनसमापत्ति से उठकर आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हुए। आकाशानन्त्यायतनसमापत्ति से उठकर चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हुए । चतुर्थ ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान को प्राप्त हुए । तृतीय ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए । द्वितीय ध्यान से उठकर प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए ।

पुनः प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए । द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान को प्राप्त हुए । तृतीय ध्यान से उठकर चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हुए । चतुर्थ ध्यान से उठने के अनन्तर भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर निर्वाण के साथ ही भीषण लोमहर्षक महाभूचाल हुआ । देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं । भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ सहम्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही—

"संसार के सभी प्राणी जीवन से गिरेंगे, जबकि लोक में ऐसे अद्वितीय पुरुष, बलप्राप्त, तथागत, शास्ता बुद्ध भी परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।"

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ देवेन्द्र शक्र ने यह गाथा कही—

"संस्कार उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं (जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं; उनका शान्त होना ही सुख है ।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ आयुष्मान् अनुरुद्ध ने यह गाथा कही—

स्थिरचित्त तथागत को (अब) आश्वास-प्रश्वास नहीं रहा। शान्ति के लिए निष्काम हो मुनि ने समय बिताया, अलिप्त चित्त से वेदना को छोड़ दिया। प्रकाशमान चित्त का ही निर्वाण विमोक्ष हुआ।

भगवान् के परिनिर्वृत्त होने पर, परिनिर्वाण के साथ आयुष्मान् आनन्द ने यह गाथा कही—

'जब सर्वश्रेष्ठ आकार से युक्त सम्बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, उस समय भीषणता हुई, उस समय रोमांच हुआ। उस भगवान् अर्हत् सम्यक्संबुद्ध को (मेरा) प्रणाम है।

—दीघनिकाय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि-संगहो

३

बुद्धसासनं

सम्मावत्तना

सद्धिविहारिकेन, भिक्खवे, उपज्झायम्हि सम्मावत्तितब्बं। तत्रायं सम्मावत्तना— कालस्सेव वुट्ठाय उपाहना ओमुञ्चित्वा एकंसं उत्तरासंगं करित्वा दन्तकट्ठं दातब्बं, मुखोदकं दातब्बं, आसनं, पञ्ञापेपब्बं। सचे यागु होति भाजनं धोवित्वा यागु उपनामेतब्बा। यागुं पीतस्स उदकं दत्वा भाजनं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अपटिघंसन्तेन धोवित्वा पटिसामेतब्बं। उपज्झायम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति सो देसो सम्मज्जितब्बो। सचे उपज्झायो गामं पविसितुकामो होति निवासनं दातब्बं, पटिनिवासनं पटिग्गहेतब्बं, कायबन्धनं दातब्बं, सगुणं कत्वा सङ्घाटियो दातब्बा, धोवित्वा पत्तो सउदको दातब्बो। स चे उपज्झायो पच्छासमणं आकंखति तिमंडलं पटिच्छादेन्तेन परिमण्डलं निवासेत्वा, कायबन्धनं बंधित्वा, सगुणं कत्वा, सङ्घाटियो पारुपित्वा, गण्ठिकं पटिमुञ्चित्वा, धोवित्वा पत्तं गहेत्वा उपज्झायस्स पच्छासमणेन होतब्बं। नातिदूरे गन्तब्बं, न अच्चासन्ने गन्तब्बं, पत्तपरियापन्नं पटिग्गहेतब्बं। न उपज्झायस्स भणमानस्स अन्तरन्तरा कथा ओपातेतेब्बा, उपज्झायो आपत्तिसामन्ता भणमानो निवारेतब्बो। निवत्तन्तेन पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं। सचे चीवरं सिन्नं होति मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बं, न च उण्हे चीवरं निदहितब्बं। चीवरं संहरितब्बं, चीवरं संहरन्तेन चतुरंगुलं कण्णं उस्सादेत्वा चीवरं संहरितब्बं-मा मज्झे भंगो अहोसीसि। ओभोगे कायबन्धनं कातब्बं। सचे पिण्डपातो होति उपज्झायो च भुञ्जितुकामो होति, उदकं दत्वा पिण्डपातो उपनामेतब्बो। उपज्झायो पानीयेन पुच्छितब्बो। भुत्ताविस्स उदकं दत्वा पत्तं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अपटिघंसन्तेन धोवित्वा वोदकं कत्वा मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बो, न च उण्हे पत्तो निदहितब्बो। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो, न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीव-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

खंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं। उपज्झायम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेतब्बं, सचे सो देसो उक्लापो होति सो देसो सम्मज्जितब्बो। सचे उपज्झायो नहायितुकामो होति नहानं पटियादेतब्बं, सचे सीतेन अत्थो होति सीतं पटियादेतब्बं ! सचे उण्हेन अत्थो होति उण्हं पटियादेतब्बं। सचे उपज्झायो जन्ताघर[1] पविसितुकामो होति चुण्णं सन्नेतब्बं, मत्तिका तेमेतब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय उपज्झायस्स पिट्ठितो पिट्ठितो गन्त्वा जन्ताघरपीठं दत्वा चीवरं पटिग्गहेत्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, चुण्णं दातब्बं, मत्तिका दातब्बा। सचे उस्सहति जन्ताघरं पविसितब्बं, जन्ताघरं पविसन्तेन मत्तिकाय मुखं मक्खेत्वा पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरं पविसितब्बं।

न थेरे भिक्खू अनुपखज्ज निसीदितब्बं, न नवा भिक्खू आसनेन पटिबाहेतब्बा। जन्ताघरे उपज्झायस्स परिकम्मं कातब्बं, जन्ताघरा निक्खमन्तेन जन्ताघरपीठं आदाय पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरा निक्खमितब्बं। उदकेपि उपज्झायस्स परिकम्मं कातब्बं, नहातेन पठमतरं उत्तरित्वा अत्तनो गत्तं वोदकं कत्वा निवासेत्वा उपज्झायस्स गत्ततो उदकं पमज्जितब्बं निवासनं दातब्बं, सङ्घाटि दातब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, उपज्झायो पानीयेन पुच्छितब्बो। सचे उद्दिसापेतुकामो होति उद्दिसापेतब्बो। सचे परिपुच्छितुकामो होति परिपुच्छितब्बो। यस्मि विहारे उपज्झायो विहरति सचे सो विहारो उक्लापो होति सचे उस्सहति सोधेतब्बो। विहारं सोधेन्तेन पठम पत्तचीवरं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, निसीदनपच्चत्थरणं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। मञ्चो नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो। पीठं नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। मञ्चपटिपादका नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बा। खेळमल्लको

१. रीस डेविड्स ने इस शब्द के बारे में लिखा है—[अग्गिसाला, a room in which a fire is kept (viz. for the purpose of a steam bath i.e. hot room...) Etym. uncertain. Buhler...yantragṛha (oil mill ?). E Hardy...jentaka (hot dry both)...In all probability it is a distorted form (by dissimilation or anology), perhaps, of jhantagara. to jha to burn-Sk. ksha, jhanti heat or heating (=sk kshati]+agara, which latter recived the aspiration of the first part (=aghara). both being reduced in length of vowels=jant aghara] l. A (hot) room for bathing puroses... 2. Living room.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो। अपरसेनफलकं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। भुम्मत्थरणं यथापञ्ञत्तं सल्लक्खेत्वा नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। सचे विहारे सन्तानकं होति उल्लोका पठमं ओहारेतब्बं, आलोकसन्धिकण्णभागा पमज्जितब्बा। सचे गेरुकपरिकम्मकता भित्ति कण्हाकिता होति चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे कालवण्णकता भूमि कण्णकिता होति चोलकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे अकता होति भूमि उदकेन परिप्फोसित्वा सम्मज्जितब्बा—मा विहारो रजेन ऊहञ्ञीति। संकारं विचिनित्वा एकमन्तं छड्डेतब्बं।

—विनय-पिटक

संस्कृत अनुवाद

सहविहारिकेण भिक्षवः, उपाध्याये सम्यगावर्तितव्यम्। तत्रेयं सम्यगावर्तना—काले एवोत्थायोपानहाववमुच्यैकांसे उत्तरासंगं कृत्वा दन्तकाण्ठं दातव्यम्, मुखोदक दातव्यमासनं प्रज्ञापयितव्यम्। चेद् यवागूः भवति, भाजनं धावित्वा यवागूरुपनामयितव्या। यवागूं पीताय उदकं दत्वा भाजनं प्रतिगृह्य नीचैः कृत्वा साधुकमपरिघर्षितेन धावित्वा प्रतिशमयितव्यम्। उपाध्याये उत्थिते आसनमुद्धर्तव्यम्। चेत् स देश उत्क्लापो भवति स देशः सम्मार्जयितव्यः। चेदुपाध्यायः ग्रामं प्रवेष्टुकामो भवति निवासनं दातव्यम्, प्रतिनिवासनं प्रतिगृहीतव्यम्, कायबन्धनं दातव्यम्, सगुण कृत्वा संघाटिका दातव्या, धावित्वा सोदकं पात्रं दातव्यम्। चेदुपाध्यायः पश्चात् श्रमणमाकांक्षते त्रिमण्डलं प्रतिच्छादयता परिमण्डलं निवास्य, कायबन्धनं बध्वा, सगुणं कृत्वा संघाटिकाः प्रारोप्य ग्रन्थिकां प्रतिमुच्य, धावित्वा पात्रं गृहीत्वोपाध्यायस्य पश्चात् श्रमणेन भवितव्यम्। नातिदूरे गन्तव्यम् पात्रपर्यापन्नं प्रतिगृहीतव्यम्। नोपाध्यायस्य भणतः अन्तरान्तरा कथावपातयितव्या। उपाध्याय आपत्तिसामन्तैः भणन् निवारयितव्यः। निवर्तयता प्रथमतरमागत्यासनं प्रज्ञापयितव्यम्, पादोदक पादपीठं पादकन्थारिकोपनिक्षेप्तव्या, प्रत्युद्गम्य पात्रचीवरे परिगृहीतव्ये। चेत् चीवरं स्विन्नं भवति मुहूर्त्तमुष्णे अवतापयितव्यम्, न चोष्णे चीवरं निदग्धव्यम्। चीवरं संहर्तव्यम्, चीवर संहरता चतुरंगुलं कर्णमुत्सार्य चीवरं संहर्तव्यम् मा मध्ये भंगोऽभूदिति। अवभोगे कायबन्धनं कर्तव्यमिति। चेत् पिण्डपातो भवत्युपाध्यायश्च भोक्तुकामो भवत्युदकं दत्त्वा पिण्डपात उपनामयितव्यः। उपाध्यायः पानीयेन प्रष्टव्यः, भुक्तावाव्यस्मै उदकं दत्त्वा पात्रं प्रतिगृह्य नीचैः कृत्वा साधुकमपरिघर्षितेन धावित्वा व्युदकं कृत्वा मुहूर्तमुष्णेऽवतापयितव्यम्, न चोष्णे पात्रं दिग्धव्यम्। पात्रचीवरे निक्षेप्तव्ये, पात्रं निक्षिपतैकेन हस्तेन पात्रं गृहीत्वैकेन हस्तेनाधस्तात् मञ्चस्य वा अधस्तात् पीठस्य वा परामृश्य पात्रं निक्षेप्तव्यम्, न च अनन्तर्हितायां भूमौ पात्रं निक्षेप्तव्यम्। चीवरं निक्षिपतैकेन हस्तेन चीवरं गृहीत्वैकेन हस्तेन चीवरांशं वा चीवररज्जं वा प्रमृज्य पारतः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्तमवरतः भोगं कृत्वा चीवरं निक्षेप्तव्यम्। उपाध्याये उत्थिते आसनमुद्धर्तव्यम्, पादोदकं पादपीठं पादकन्थारिका प्रतिशमयितव्या। चेत् स देश उत्क्लापो भवति स देशः सम्मार्जितव्यः। चेदुपाध्यायः स्नातुकामो भवति स्नानं प्रत्यादातव्यम्। चेत् शीतेनार्थो भवति शीतं प्रत्यादातव्यम्, चेत् उष्णेनार्थो भवत्युष्णं प्रत्यादातव्यम्। चेदुपाध्यायो यन्त्रगृहं प्रवेष्टुकामो भवति चूर्णं सन्नेतव्यम्, मृत्तिका तेमयितव्या, यन्त्रगृहपीठमादायोपाध्यायस्य पृष्ठतः पृष्ठतो गत्वा यन्त्रगृहपीठं दत्वा चीवरं प्रतिगृह्यैकान्ते निक्षेप्तव्यम्, चूर्णं दातव्यम्, मृत्तिका दातव्या। चेदुत्सहते यन्त्रगृहं प्रवेष्टव्यम्, यन्त्रगृहं प्रविशता मृत्तिकया मुखं मृक्षित्वा पुरतश्च प्रतिच्छाद्य यन्त्रगृहं प्रवेष्टव्यम्।

न स्थविरान् भिक्षूननुपभुज्य निषीदितव्यम्, न नवा भिक्षवः आसनात् प्रतिवाहयितव्याः। यन्त्रगृहे उपाध्यायस्य परिकर्म कर्त्तव्यम्, निष्क्रमता यन्त्रगृहपीठमादाय पुरतश्च पृष्ठतश्च प्रतिच्छाद्य यन्त्रगृहान् निष्क्रमितव्यम्। उदकेऽप्युपाध्यायस्य परिकर्म कर्त्तव्यम्, स्नातेन प्रथमतरमुत्तीर्यात्मनो गात्रं व्युदकं कृत्वा निवास्योपाध्यायस्य गात्रस्य उदकं प्रमार्ष्टव्यम्, निवसनं दातव्यम्, संघाटिका दातव्या। यंत्रगृहपीठमादाय प्रथमतरमागत्यासनं प्रज्ञापयितव्यम्, पादोदकं पीदपीठं पादकन्थारिकोपनिक्षेप्तव्योपाध्यायः पानीयेन प्रष्टव्यः। चेदुद्देशयितुकामो भवत्युद्देशयितव्यः, चेत् परिप्रष्टुकामो भवति, परिप्रष्टव्यः। यस्मिन् विहारे उपाध्यायो विहरति चेत् स विहारः उत्क्लापो भवति, चेदुत्सहते शोधयितव्यः। विहारं शोधयता प्रथमं पात्रचीवरं निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यम्, निषीदनप्रत्यस्तरणं निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यम्। मञ्चो नीचैः कृत्वा साधुकमपरिघर्षितेन असंघट्टता कपाटपृष्ठम् निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यः। पीठं नीचैः कृत्वा साधुकमपरिघर्षितेन संघट्टता कपाटपृष्ठम् निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यम्। मञ्चप्रतिपादकाः निर्हृत्य एकान्ते निक्षेप्तव्याः, क्ष्वेडमल्लकः निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यः; अपश्रयणफलकं निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यम्, भूम्यास्तरणं यथाप्रज्ञप्तं संलक्ष्य निर्हृत्यैकान्ते निक्षेप्तव्यम्। चेद् विहारे सन्तानकं भवति उल्लोकेन प्रथममवहरितव्यम्। आलोकसन्धिकर्णभागाः प्रमार्ष्टव्याः। चेद् गैरिकपरिकर्मकृता भित्तिः कृष्णकृता भवति चोलकं तेमयित्वा पीडयित्वा प्रमार्ष्टव्या। चेत् कालवर्णकृता भूमिः कृष्णकृता भवति तेमयित्वा पीडयित्वा प्रमार्ष्टव्या। चेदकृता भवति भूमिः उदकेन परिप्रुष्य सम्मार्ष्टव्या—मा विहारः रजसोद्धन्येतेति। सकारं विचित्य एकान्ते छर्दितव्य म्।

हिन्दी अनुवाद

हे भिक्षुओ, (उपाध्याय के) साथ-साथ (रहते हुए आप लोगों को) उपाध्याय के प्रति ऐसा आचरण करना चाहिए। वह आचरण (सम्यगावर्त्तना) इस प्रकार है—समय के भीतर ही उठकर उपानह को अलग करके उत्तरासंग को एक कन्धे पर कर, दातौन देना चाहिए, मुँह धोने के लिए जल देना चाहिए और आसन बताना चाहिए। यदि यवागू है तो पात्र को धोकर यवागू लानी चाहिए। यवागू पी लेने के बाद उन्हें जल देकर पात्र को लेकर नीचे कर भलीभाँति, बिना अधिक रगड़े, धोकर व्यवस्थित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रख देना चाहिए। उपाध्याय के उठने पर (उनका) आसन उठा देना चाहिए। यदि वह प्रदेश अस्वच्छ हो गया हो तो उसे झाड़-पोंछ देना चाहिए। यदि उपाध्याय गाँव में प्रवेश करना चाहते हों तो (उन्हें उनके) वस्त्र दे देने चाहिए। (उनके) पहने हुए कपड़ों को ले लेना चाहिए, कायबंधन दे देना चाहिए, रस्सी के साथ करके संघाटिका देनी चाहिए, धोकर जल-सहित पात्र देना चाहिए, यदि उपाध्याय अपने साथ एक श्रमण ले जाने की इच्छा करें तो त्रिमण्डल को ढकनेवाले परिमण्डल में निवास करके; कायबन्धन को बाँधकर रस्सी सहित संघाटिका का आरोपण करके (पहले से) लगी गाँट को छोड़कर शुद्ध पात्र साथ लेकर उपाध्याय के पीछे-पीछे श्रमण को भी अनुसरण करना चाहिए। उपाध्याय से न तो अतिदूर रहना चाहिए, न उनके अत्यन्त सन्निकट। (सभा में पहुँचकर) भिक्षापात्र ग्रहण कर लेना चाहिए। उपाध्याय जब बोल रहे हों (तब) बीच में दूसरी बात नहीं लानी चाहिए। यदि उपाध्याय अनभीप्सित व्यक्तियों से बात करते हों तो निवारण करना चाहिए। लौटते समय पहले ही आकर आसन बताना चाहिए, पैर धोने का जल देना चाहिए, पादपीठ बताना चाहिए और तौलिया समर्पित करनी चाहिए। उठकर (उपाध्याय के) पात्र तथा चीवर सम्भाल लेना चाहिए। यदि उपाध्याय का चीवर भींगा हो तो क्षणभर धूप में सुखा देना चाहिए (किन्तु) धूप में वस्त्र को जलने नही देना चाहिए। चीवर को बटोर लेना चाहिए, चीवर बटोरते समय चार अँगुलियों से चौकोर कर लेना चाहिए (चपोत देना चाहिए). मध्य में फट न जाये इसलिए उसमें (चीवर में) कायबन्धन कर देना चाहिए। यदि भिक्षापात्र में भोजन सामग्री हो और उपाध्याय भोजन करने की इच्छा करें तो जल देकर भोजन-सामग्री उनके पास लानी चाहिए। (बीच-बीच में) उपाध्याय से जल के लिए पूछना चाहिए। भोजन कर लेने के बाद उन्हें जल देकर पात्र ले लेना चाहिए, उसे नीचे कर भलीभाँति बिना अधिक रगड़े, धोकर उसका जल सुखा कर थोड़ी देर धूप में उसे सुखाना चाहिए (किन्तु) धूप में पात्र को जलने नहीं देना चाहिए। पात्र और चीवर (व्यवस्थित) रख देना चाहिए। पात्र को रखते समय एक हाथ से पात्र को पकड़कर दूसरे हाथ से मञ्च या पीठ के नीचे देख-भालकर पात्र रखना चाहिए, नंगी पृथ्वी पर पात्र नहीं रखना चाहिए। चीवर को रखते हुए एक हाथ से चीवर को पकड़कर दूसरे हाथ से चीवर के एक प्रदेश को या चीवर की रस्सी को रगड़कर (बराबर कर) बाहर से भीतर की तरफ मोड़कर (चपोत कर) रख देना चाहिए।

उपाध्याय के उठने पर (उनके) आसन को उठा देना चाहिए। पादोदक, पादपीठ, तौलिया व्यवस्थित रख देना चाहिए। यदि वह प्रदेश अस्वच्छ हो गया हो तो झाड़-पोंछ देना चाहिए। यदि उपाध्याय नहाने की इच्छा करें तो स्नान करा देना चाहिए, यदि उन्हें शीतल जल का प्रयोजन हो तो शीतल जल ला देना चाहिए और यदि गरम जल का प्रयोजन हो तो गरम जल ला देना चाहिए। यदि उपाध्याय यन्त्रगृह में प्रवेश करना चाहते हों तो चूर्ण (मिट्टी) ले आना चाहिए, मिट्टी भिगो देनी चाहिए, यन्त्रगृह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पीठ को ले आकर उपाध्याय के पीछे-पीछे जाकर यन्त्रगृहपीठ को देकर चीवर लेकर एकान्त में रख देना चाहिए, चूर्ण देना चाहिए, मृत्तिका देनी चाहिए। यदि उपाध्याय यन्त्रगृह में प्रवेश करने की आज्ञा दें तो यन्त्रगृह में प्रवेश करते हुए मिट्टी से मुँह धोकर (यन्त्रगृह को) आगे तथा पीछे से बन्दकर यन्त्रगृह में प्रवेश करना चहिए।

स्थविर भिक्षुओं का अनादर नहीं कर बैठना चाहिए, नये भिक्षुओं को भी आसन से नहीं हटाना चाहिए। यन्त्रगृह में उपाध्याय का परिकर्म करना (व्यवस्था करनी) चाहिए। उपाध्याय के स्नान के समय भी उनसे पूर्व ही निकलकर अपने शरीर को सुखाकर, वस्त्र पहनकर उपाध्याय के शरीर से जल पोंछ देना चाहिए, वस्त्र दे देना चाहिए, संघाटिका देनी चाहिए, यन्त्रगृहपीठ को लेकर पहले ही आकर आसन बना देना चाहिए। पादोदक, पादपीठ और तौलिया रख देनी चाहिए, उपाध्याय को पानी के लिए पूछना चाहिए। यदि वह कुछ (निर्देश) करना चाहें तो उस निर्देश को सुनना चाहिए, यदि वह कुछ पूछना चाहें तो उन्हें पूछने देना चाहिए। जिस विहार में उपाध्याय विहार कर रहे हों, यदि वह विहार अस्वच्छ हो तो उसे स्वच्छ कर देना चाहिए। विहार को स्वच्छ करते हुए सर्वप्रथम पात्र और चीवर को देखकर एक तरफ रख देना चाहिए। बैठने के आसन को देखकर एक तरफ रख देना चाहिए। मञ्च को नीचे करके भलीभांति बिना अधिक रगड़े व कपाटपृष्ठ को न खटखटाते हुए, देखकर एक तरफ रख देना चाहिए। पीठ को नीचे करके भलीभाँति बिना अधिक रगड़े कपाट-पृष्ठ को न खटखटाते हुए देखकर, एक तरफ रख देंना चाहिए। मञ्च प्रतिपादकों को देखकर एक तरफ रख देना चाहिए। पीकदान को भलीभाँति देखकर एक तरफ रख देना चाहिए, तकिया को भलीभाँति देखकर (उसे) एक तरफ रख देना चाहिए। पृथ्वी पर बिछाने के बिस्तर को यथास्थान सँभालकर भलीभांति देखकर एकान्त में रख देना चाहिए। यदि विहार में (कहीं) जाले आदि हों तो सर्वप्रथम पोंछनेवाले कपड़े से उसे (जाले को) पोंछ देना चाहिए। (विहार के) झरोखों में लगे हुए गन्दे पदार्थों को साफ कर देना चाहिए। यदि गेरू के परिकर्म (कपड़ा आदि रँगने) के कारण दीवाल अस्वच्छ हो जाय तो कपड़े को भिगोकर तथा निचोड़कर (उससे) पोंछ देना चाहिए। यदि काले वर्ण से भूमि अस्वच्छ हो जाय तो कपड़े को भिगोकर उससे भूमि को पोंछ देना चाहिए। यदि भूमि में किसी प्रकार का धब्बा आदि हो तो जल छिड़ककर सम्मार्जन कर देना चाहिए, विहार को धूल-धूसरित नहीं करना चाहिए (झाड़े हुए) कूड़े को एकत्र कर एक तरफ फेंक देना चाहिए।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्मादिट्ठि

सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा कच्चायनगोत्तो येन भगवा तेनुपसंकमि, उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कच्चायनगोत्तो भगवन्तं एतदवोच–सम्मादिट्ठि सम्मादिट्ठीति भन्ते वुच्चति, किन्तावता नु खो भन्ते सम्मादिट्ठि होतीति? द्वयं निस्सितो खो, यं कच्चायनलोको येभुय्येन--अत्थितञ्चेव नत्थितञ्च। लोकसमुदयं खो कच्चायन यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके नत्थिता सा न होति, लोकनिरोधं खो कच्चायन यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके अत्थिता सा न होति। उपायुपादानाभिनिवेसनिबंधो खो, यं कच्चायन लोको येभुय्येन—तञ्चायं 'उपायुपादानं चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसयं न उपेति न उपादियति नाधिट्ठाति 'अत्ता मेति; दुक्खं एव उप्पज्जमानं उप्पज्जिति, दुक्खं निरुज्झमानं निरुज्झतीति' न कखति, न विचिकिच्छति, अपरप्पच्चया ञाणं एवस्स एत्थ होति, एतावता खो कच्चायन सम्मादिट्ठि होति। 'सब्बं अत्थीति' खो कच्चायन अयं एको अन्तो, 'सब्बं नत्थीति, अयं दुतियो अन्तो, एते ते कच्चायन उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—अविज्जापच्चया संखारा, संखारप्पच्चया विञ्ञाणं—पे०—एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति, अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा संखारनिरोधो, संखारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो—पे०—एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होतीति।

—संयुक्त निकाय

संस्कृत अनुवाद

श्रावस्त्यां विहरति। अथ खल्वायुष्मान् कात्यायनगोत्रः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्, उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्यैकस्मिन् अन्ते न्यसीदत्। एकस्मिन् अन्ते निषण्णः खल्वायुष्मान् कात्यायनगोत्रो भगवन्तमेतदवोचत्—सम्यग्दृष्टिः सम्यग्दृष्टिरिति भदन्त उच्यते, किं तावद् खलु भदन्त सम्यग्दृष्टिः भवतीति? द्वयं निश्रितः खल्वयं कात्यायन! लोकः यद्भूयसा—अस्तितांचैव नास्तितांच। लोकसमुदयः खलु कात्यायन! यथाभूतं सम्प्रज्ञया पश्यतो या लोके नास्तिता सा न भवति, लोकनिरोधं खलु कात्यायन! यथाभूतं सम्प्रज्ञया पश्यतो या लोकेऽस्तिता सा न भवति। उपायोपादानाभिनिवेशनिबन्धः खल्वयं कात्यायन! लोकः यद्भूयसा—तच्चायमुपायोपादानं चेतसोऽधिष्ठानाभिनिवेशानुशयं नोपैति नोपादत्ते नाधितिष्ठति आत्मा ममेति, दुःखमेवोत्पद्यमानमुत्पद्यते। दुःखं निरुध्यमानं निरुध्यते इति न काङ्क्षति न विचिकित्सति। अपरप्रत्य-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

याज्ज्ञानमेवास्य भवति। एतावता खलु कात्यायन ! सम्यग्दृष्टिः भवति। 'सर्वमस्तीति' खलु कात्यायन ! अयमेकोऽन्तः, 'सर्वं नास्तीति' अयं द्वितीयोऽन्तः। एतौ तौ कात्यायन ! उभावन्तावनुपगम्य मध्येन तथागतः धर्मं दिशति—अविद्याप्रत्ययात्संस्काराः, संस्कारप्रत्ययाद् विज्ञानं ………एवमेतस्य केवलस्य दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति, अविद्यायास्त्वेवाशेषविरागनिरोधात् संस्कारनिरोधः, संस्कारनिरोधाद् विज्ञाननिरोधः—एवमेतस्य केवलस्य दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति।

हिन्दी अनुवाद

(जिस समय) तथागत श्रावस्ती में विहार कर रहे थे, आयुष्मान् कात्यायनगोत्र जहाँ भगवान् थे, वहीं गये। (वहाँ) जाकर भगवान् को अभिनादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् कात्यायनगोत्र ने भगवान् से यह कहा—भन्ते, सम्यग्दृष्टि सम्यग्दृष्टि, ऐसा कहा जाता है; भन्ते ! सम्यग्दृष्टि क्या होती है ? हे कात्यायन ! यह लोक जिस किसी को आस्तिकता और नास्तिकता कहता है, वे दोनों लोक-दृष्टि हैं।

यदि यथार्थ-रूप में लोक की उत्पत्ति की दृष्टि से देखा जाय, तो नास्तिकता का बोध सही नहीं है और इसी तरह यदि लोक में नाश दृष्टि से देखा जाय तो आस्तिकता का बोध सही नहीं है।

हे कात्यायन ! उपायोपादानमय यह संसार या तो प्राप्त करने में लगा रहता है या प्राप्त किये हुए को स्थिर करने के आग्रह बँधा रहता है। इस प्रकार मनुष्य, इस उपायोपादानमय संसार को, जो उसके चित्त में आग्रह का अधिष्ठान करता है, न तो प्राप्त करता है न ग्रहण करता है; न उनमें अधिष्ठित ही रहता है। वह अपना तादात्म्य इनसे नहीं कर पाता। केवल (इनसे) दुःख ही उत्पन्न होता है, इसी को उत्पन्न होना कहते हैं। दुःख ही विनष्ट होता है, इसी को निरोध कहते हैं। वह स्वयं न तो इच्छा करता है, न सन्देह करता है। इस प्रकार की लोकातीत प्रज्ञा से देखो तो जो ज्ञान होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। सब कुछ अस्तित्वशाली है—दृष्टि का यह एक छोर है, सब कुछ विनाशशाली है—यह दूसरा छोर। इन दोनों छोरों पर न जाकर, हे कात्यायन, तथागत बीच के मार्ग से धर्म का उपदेश करते हैं—अविद्या को पाकर संस्कार, संस्कार को पाकर विज्ञान और इसको पाकर दुःख-संस्कार की प्रतीति होती है। सब प्रकार से वैराग्य के द्वारा अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध, संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध और इस प्रकार दुःख के निरोध (विनाश) की प्रतीति होती है।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धम्मपदसंगहो

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ॥५॥
यथा अगारं सुच्छन्नं वुठ्ठि न समतिविज्जति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥१४॥
इध नन्दति, पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति ।
'पुञ्ञं मे कतं' ति नन्दति, भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ॥१८॥
अचिरं वत, यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।
छुद्दो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं व कलिङ्गरं ॥४१॥
यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं ।
पलेति रसं आदाय एवं गामे मुनी चरे ॥४९॥
दीघा जागरतो रत्ती, दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघं बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं ॥६०॥
न हि पापं कतं कम्म सज्जु खीरं व मुच्चति ।
डहन्तं वालं अन्वेति भस्माछन्नो व पावको ॥७१॥
उदकं नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥८०॥
सेलो यथा एकघनो वातेन स समीरति ।
एवं निन्दापसंसेसु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥८१॥
यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गमें मानुसे जिने ।
एकञ्च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥१०३॥
परिजिण्णं इदं रूपं रोगनिड्डं पभङ्गुणं ।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं ॥१४८॥
एकं धम्मं उतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्य नत्थि पापं अकारियं ॥१७६॥
यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च स्सरणं गतो ।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्पप्पञ्ञाव पस्सति ॥१९०॥
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥१९१॥
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।
एतं सरणमागम्म सब्दुक्खा पमुच्चति ॥१९२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानमदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥२१०॥
यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो, तरो जनो ॥२२२॥
अयसा व मलं समुट्ठितं, तदुपट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं, सककम्मानि नयति दुग्गतिं ॥२४०॥
सुदस्सं वज्जं अञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुनाति यथा भुसं।
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो ॥२५२॥
न तेत भिक्खु भवति यावता भिक्खते परे।
विस्सं सम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता ॥२६६॥
योध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियवा।
संखाय लोके चरति स वे भिक्खू, ति वुच्चति ॥२६७॥
'सब्बे संखारा अनिच्चा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥२७७॥
'सब्बे संखारा दुक्खा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥२७८॥
'सब्बे धम्मा अनत्ता' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बन्दती दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥२७९॥
सेय्यो अयोगुळो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥३०८॥
दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बं अहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ॥३८७॥
न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥३९३॥
किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि ॥३९४॥
पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९५॥

—खुद्दकनिकाय

संस्कृत अनुवाद

नहि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण च शाम्यन्त्येष धर्मः सनातनः ॥ ५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ॥ १४ ॥
इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्यः उभयत्र नन्दति ।
पुण्यं मे कृतमिति नन्दति भूयो नन्दति सुगतिं गतः ॥ १८ ॥
अचिरं बतायं कायः पृथिवीमधिशेष्यते ।
क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थमिव कलिङ्गरम् ॥ ४१ ॥
यथापि भ्रमरः पुष्पं वर्णगन्धमहेडमानः ।
पलायते रसमादाय एवं ग्रामे मुनिश्चरेत् ॥ ४९ ॥
दीर्घा जाग्रतो रात्रिः दीर्घं श्रान्तस्य योजनम् ।
दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्ममविजानताम् ॥ ६० ॥
न हि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुञ्चति ।
दहन् बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावकः ॥ ७१ ॥
उदकं हि नयन्ति नेतृकाः इषुकाराः नमयन्ति तेजनम् ।
दारुं नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ॥ ८० ॥
शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।
एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥ ८१ ॥
यः सहस्रं सहस्रेण संग्रामे मानुषान् जयेत् ।
एकञ्च जयेदात्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ॥ १०३ ॥
परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभङ्गुरम् ।
भिद्यते पूतिःसन्देहो मरणान्तं हि जीवितम् ॥ १४८ ॥
एकं धर्ममतीतस्य मृषावादिनो जन्तोः ।
वितीर्णपरलोकस्य नास्ति पापमकार्यम् ॥ १७६ ॥
यश्च बुद्धञ्च धर्मञ्च संघञ्च शरणं गतः ।
चत्वार्यार्यसत्यानि सम्यक् प्रज्ञया पश्यति ॥ १९० ॥
दुःखं दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।
आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ॥ १९१ ॥
एतत् खलु शरणं क्षेममेतच्छरणमुत्तमम् ।
एतच्छरणमागत्य सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥ १९२ ॥
मा प्रियैः समागच्छाप्रियैः कदाचन ।
प्रियाणामदर्शनं दुःखमप्रियाणाञ्च दर्शनम् ॥ २१० ॥
यो वै उत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तमिव धारयेत् ।
तमहं सारथिं ब्रवीमि रश्मिग्राह इतरो जनः ॥ २२२ ॥
अयस इव मलं समुत्थितं तत उत्थाय तदेव खादति ।
एवमतिधावनचारिणं स्वानि कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ॥ २४० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुदर्शमवद्यमन्येषामात्मनः पुनः दुर्दर्शम् ।
परेषां हि सोऽवद्यानवपुनाति यथा बुसम् ।
आत्मनः पुनः छादयति कलिमिव कितवः शठः ॥ २५२ ॥
न तावता भिक्षु भवति यावता भिक्षते परान् ।
वेष्यं धर्मं समादाय भिक्षुर्भवति न तावता ॥ २६६ ॥
य इह पुण्यञ्च पापञ्च वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।
संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ॥ २६७ ॥
सर्वे संस्काराः अनित्या इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गो विशुद्धेः ॥ २७७ ॥
सर्वे संस्काराः दुःखा इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गो विशुद्धेः ॥ २७८ ॥
सर्वे संस्काराः अनात्मानः इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गो विशुद्धेः ॥ २७९ ॥
श्रेयान् अयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपमः ।
यश्चेद्भुञ्जीत दुःशीलः राष्ट्रपिण्डमसंयतः ॥ ३०८ ॥
दिवा तपत्यादित्यः रात्रावाभाति चन्द्रमाः ।
सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः ।
अथ सर्वहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा ॥ ३८७ ॥
न जटाभिर्न गोत्रेण जात्या भवति ब्राह्मणः ।
यस्मिन् सत्यञ्च धर्मश्च स शुचिः स च ब्राह्मणः ॥ ३९३ ॥
किं ते जटाभिर्दुर्मेध ! किं तेऽजिनशाट्या ।
अभ्यन्तरं ते गहनं बाह्यं परिमार्जयसि ॥ ३९४ ॥
पांशुकूलधरं जन्तुं कृशं धमनिसंस्तृतम् ।
एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ३९५ ॥

हिन्दी अनुवाद

वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता है, (अपितु) अवैर (प्रेम) से ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म है ॥५॥

जिस प्रकार अच्छी तरह छाये गये (बनाये गये) घर को वृष्टि नहीं बेधती है, उसी प्रकार अच्छी तरह भावित चित्त को राग नहीं बेधता (घेरता है) ॥१४॥

(कोई व्यक्ति) यहाँ आकर आनन्दित होता है, (और कोई व्यक्ति) इस लोक से जाकर (भी) आनन्दित होता है किन्तु पुण्यवान् व्यक्ति दोनों जगह आनन्दित होता है। मैंने पुण्य किया है, ऐसा सोचकर (व्यक्ति) आनन्दित होता है तथा सुगति (निर्वाण) को प्राप्त कर व्यक्ति पुनः पुनः आनन्दित होता है ॥१८॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यह शरीर शीघ्र ही पृथ्वी पर सो जायगा। यह विज्ञानरहित क्षुद्र शरीर कलिंगर की तरह निरर्थक है ॥४१॥

जिस प्रकार भौंरा (निर्लिप्त होकर) फूल की गन्ध का अनादर न करता हुआ उसके रस को लेकर भाग (चला) जाता है, उसी प्रकार ग्राम में मुनि (निर्लिप्त भाव से) विचरण करे ॥४९॥

जागनेवाले व्यक्ति के लिए रात्रि बड़ी होती है। थके हुए व्यक्ति के लिए एक योजन बहुत बड़ा होता है। सद्धर्म को न जाननेवाले मूर्खों का संसार भी बहुत बड़ा होता है ॥६०॥

दूध जैसे तुरत नहीं छोड़ता और जैसे राख से ढकी हुई आग बालक को जला देती है, वैसे ही किया गया पापकर्म व्यक्ति को (दूध की तरह) नहीं छोड़ता (और आग की तरह जला देता है।) ॥७१॥

(जिस तरह) जल को नाली ले जाती है, लोहार तेज (लोहे) को झुका देते हैं, बढ़ई लकड़ी को झुका देते हैं। (उसी तरह) पण्डित लोग आत्मा का दमन करते हैं ॥८०॥

जिस प्रकार अत्यन्त मोटा पर्वत वायु द्वारा नहीं हिलाया जाता है, उसी प्रकार निन्दा एवं प्रशंसा से पण्डित लोग विचलित नहीं होते हैं ॥८१॥

जो संग्राम में हजार (व्यक्तियों) द्वारा हजार (व्यक्तियों) को जीतता है, यदि वह केवल अपने को जीत ले तो वही श्रेष्ठ संग्रामजित् है ॥१०३॥

यह रूप अत्यन्त जीर्ण, रोग का आगार, सर्वथा क्षणभंगुर, फोड़े-फुंसी आदि से सन्दिग्ध होकर भिन्न प्रकार का हो जाता हैं। यह जीवन भी तो मरण-पर्यन्त ही है ॥१४८॥

धर्म को अतिक्रमण करनेवाले, परलोक को चिन्ता से परे रहनेवाले मृषावादी प्राणी के लिए पाप अकार्य नहीं है (वह पाप कर सकता है) ॥१७६॥

बुद्ध, धर्म एवं संघ के शरण गया हुआ जो व्यक्ति चार आर्य सत्यों को भलीभाँति प्रज्ञा से देखता है उस व्यक्ति के लिए दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध, दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपदा एवं आर्याष्टांगिक मार्ग ही कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ शरण हैं। वह इनकी शरण में आकर सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥१९०, १९१, १९२॥

प्रिय (लोगों) के साथ मत जाओ तथा अप्रियों के साथ कभी भी मत जाओ (क्योंकि) प्रिय (जनों) का न देखना एवं अप्रिय (लोगों) का देखना दुःखकर होता है ॥२१०॥

जो उठे (उत्पन्न) हुए क्रोध को भ्रान्त रथ की भाँति धारण कर लेता है, उसी को मैं सारथी मानता हूँ। अन्य लोग तो केवल रस्सी पकड़नेवाले हैं ॥२२२॥

लोहे से उठा हुआ मल (जंग) उसी से उठकर उसी को खा लेता है (नष्ट कर देता है)। इसी प्रकार अत्यन्त धावनचारी (भोजन, वस्त्र आदि की ही चिन्ता में रहने वाले) को अपने कर्म ही दुर्गति को पहुँचा देते हैं ॥२४०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(जो) दूसरों का निन्द्यकर्म अच्छी तरह देखता है तथा अपना निन्द्यकर्म कठिनता से देख पाता है, (ऐसा) शठ व्यक्ति कलि की भाँति छल के द्वारा दूसरों के निन्द्यकर्मों को भूसे की तरह फैला देता है तथा अपना (निन्द्यकर्म) ढँक लेता हैं ॥२५२॥

दूसरे से भिक्षा माँगने से कोई भिक्षु नहीं होता है, सम्पूर्ण धर्मों को ग्रहण करके भी (कोई) भिक्षु नहीं होता है, (बल्कि) जो इस संसार में पुण्य एवं पाप को छोड़कर ब्रह्मचर्यवान् (होता है) तथा प्रारब्धवश इस संसार में विचरण करता है, वही भिक्षु कहा जाता है ॥२६७–२६७॥

सभी संस्कार अनित्य हैं, ऐसा जब बुद्धि से व्यक्त देखता है तब दुःखों पर दुःख प्रकट करता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ॥२७७॥

सभी संस्कार दुःखकारी हैं, इस प्रकार जब बुद्धि से व्यक्ति देखता है तब दुःखों पर दुःख प्रकट करता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ॥२७८॥

सभी संस्कार अन त्म हैं, इस प्रकार जब बुद्धि से वयक्ति देखता है तब दु खों पर दुःख प्रकट करता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ॥२७९॥

जो राष्ट्र के असंयत धन को खाता है, उसके लिए अग्नि की शिखा सदृश तप्त लौह-खण्ड को खा लेना श्रेयस्कर है ॥३०८॥

दिन में सूर्य तपता है, रात में चन्द्रमा चमकता है, (युद्ध में) सन्नद्ध क्षत्रिय तपता है और ध्यान में लीन रहनेवाला ब्राह्मण तपता है। परन्तु भगवान् बुद्ध अपने तेज से रात-दिन तपते हैं ॥३८७॥

न जटाओं से, न गोत्र से, न जाति से कोई ब्राह्मण होता हं (किन्तु) जिसमें सत्य और धर्म रहता है, वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है ॥३९३॥

हे दुर्मेध ! तेरी जटाओं एवं काले मृगचर्म से क्या (लाभ) ? तुम्हारा हृदय तो गहन (काला) है और बाहरी रूप का परिमार्जन करते हो ॥ ॥३९४॥

धूलि-धूसरित, दुर्बल, धमनीमात्र निश्शेष एवं अकेले वन में ध्यान करनेवाले प्राणी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥३९५॥

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धनिय-सुत्तं

(धनियो गोपो—)

"पक्कोदनो दुद्धखीरोहमस्मि अनुतीरे महिया समानवासो।
छन्ना कुटि, आहितो गिनि, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" १।

(भगवा—)

"अक्कोधनो विगतखिलोहमस्मि, अनुतीरे महियेकरत्तिवासो।
विवटा कुटि, निब्बुतो गिनि, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" २।

(धनियो गोपो—)

"अन्धकमकसा न विज्जरे, कच्छे रूळ्हतिणे चरन्ति गावो।
वुट्ठि पि सहेय्युमागतं, अथ चे पत्थयसी पवस्म देव।" ३।

(भगवा--)

"बद्धा हि भिसी सुसंखता तिण्णो पारगतो विनेय्य ओघं।
अत्थो भिसिया न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" ४।

(धनियो गोपो--।)

"गोपी मम अस्सवा अलोला, दीघरत्तं संवासिया मनापा।
तस्सा न सुणामि किञ्चि पापं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" ५।

(भगवा--)

"चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं, दीघरत्तं परिभावितं सुदन्तं।
पापं पन मे न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" ६।

(धनियो गोपो--)

"अत्तवेतनभतोहमस्मि, पुत्ता च मे समानिया अरोगा।
तेसं न सुणामि किञ्चि पापं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" ७।

(भगवा--)

"नाहं भतकोस्मि कस्सचि, निब्बिट्ठेन चरामि सब्बलोके।
अत्थो भतिया न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।" ८।

(धनियो गोपो—)

"अत्थि वसा अत्थि धेनुपा, गोधरणियो पवेमियो पि अत्थि।
उसभो पि गवम्पतीध अत्थि, अथ चे पत्थत्यसी पवस्स देव।" ९।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(भगवा--)

"नत्थि वसा नत्थि धेनुपा, गोधरणियो पवेणियो पि नत्थि ।
उसभो पि गवम्पतीध नत्थि, अथ चे पत्थयसो पवस्स देव ।"१०।

(धनियो गोपो—)

"खीला निखाता असम्पवेधी, दामा मुञ्जमया नवा सुसण्ठाना ।
नहि सक्खिन्ति धेनुपा पि छेत्तं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।"११।

(भगवा—)

"उसभोरिव छेत्वा बन्धनानि, नागो पूतिलतं व दालयित्वा ।
नाहं पुनुपेस्सं गब्भसेय्यं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।"१२।
"निन्नंच थलंच पूरयंतो, महामेघो पवस्स तावदेव ।
सुत्वा देवस्स वस्सतो, इममत्थं धनियो अभासथ ।"१३।
"लाभा वत नो अनप्पका, ये मयं भगवतं अद्दसाम ।
सरणं तं उपेम चक्खुम, सत्था नो होहि तुवं महामुनि ।"१४।
"गोपी च अहंच अस्सवा, ब्रह्मचरियं सुगते चरामसे ।
जातिमरणस्स पारगा, दुक्खस्सन्तकरा भवामसे ।"१५।

(मारो पापिमा—)

"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमिको गोहि तथेव नन्दति ।
उपधी हि नरस्स नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधि ।"१६।

(भगवा—)

"सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमिको गोहि तथे व सोचति ।
उपधी हि नरस्स सोचना, न हि सो सोचति यो निरुपधी"ति ।१७।

—सुत्तनिपात

संस्कृत अनुवाद

धनियगोपः—पक्वौदनो दुग्धक्षीरोऽहमस्म्यनुतीरे मह्याः समानवासः ।
छन्ना कुटी आहितोऽग्निः अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ १ ॥
भगवान्— अक्रोधनो विगताखिलोऽहमस्म्यनुतीरे मह्या एकरात्रिवासः ।
विवृता कुटी निवृत्तोऽग्निः अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ २ ॥
धनियगोपः—अन्धकमशकाः न विद्यन्ते कक्षे रूढतृणानि चरन्ति गावः ।
वृष्टिमपि सहेरन् आगतामथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ३ ॥
भगवान्— बद्धा हि वृसी सुसंस्कृता तीर्णः पारगतः विनेयमोघम् ।
अर्थः वृस्या न विद्यतेऽथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ४ ॥
धनियगोपः—गोपी समाश्रवालोला दीर्घरात्रं संवास्या मन आपा ।
तस्याः न शृणोमि किञ्चित्पापमथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भगवान्—चित्तं ममाश्रवं विमुक्तं दीर्घरात्रं परिभावितं सुदान्तम्।
पापं पुनः मे न विद्यतेऽथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ६ ॥

धनियगोपः—आत्मवेतनभृतोऽहमस्मि पुत्राश्च मे सम्मान्याः अरोगाः।
तेषां न शृणोमि किञ्चित्पापमथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ७ ॥

भगवान्— नाहं भृतकोस्मि कस्यचिद् निर्विष्टेन चरामि सर्वलोके।
अर्थो भृत्या न विद्यतेऽथ चेत्पार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ८ ॥

धनियगोपः—अस्ति वशास्ति धेनुपा गोधरिण्यः प्रवेण्योऽपि सन्ति।
वृषभोऽपि गवाम्पतिरिहास्त्यथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥ ९ ॥

भगवान्—नास्ति वशा नास्ति धेनुपा गोधरिण्यः प्रवेण्योऽपि न सन्ति।
वृषभोऽपि गवाम्पतिरिह नास्ति अथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥१०॥

धनियगोपः—कीलाः निखाताः असम्प्रव्यथिनः दामानि मुञ्जमयानि नवानि सुसंस्थानानि।
नहि शक्ष्यन्ति धेनुपाः अपि छेत्तुमथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥११॥

भगवान्— वृषभ इव छित्वा बन्धनानि नागः पूतिकालतामिव दलयित्वा।
नाहं पुनः उपैष्यामि गर्भशय्यामथ चेत्प्रार्थयसे प्रवर्ष देव ॥१२॥
निम्नञ्च स्थलञ्च पूरयन् महामेघः प्रावर्षीत् तावदेव।
श्रुत्वा देवं वर्षन्तं इममर्थं धनियोऽभाषिष्ट ॥१३॥
लाभाः बत नोनल्पकाः ये वयम् भगवन्तमद्राक्ष्म।
शरणं त्वामुपैमः चक्षुष्मन्तं शास्ता नः भव त्वं महामुने ॥१४॥
गोपी चाहञ्चाश्रवौ ब्रह्मचर्यं सुगते चरावः।
जातिमरणस्य पारगौ दुःखस्यान्तकरौ भवावः ॥१५॥

मारः पाप्मान्—नन्दति पुत्रैः पुत्रवान् गोमान् गोभिस्तत एव नन्दति।
उपधिः नरस्य नन्दना न हि स नन्दति यो निरुपधिः ॥१६॥

भगवान्—शोचते पुत्रैः पुत्रवान् गोमान् गोभिस्तत एव शोचते।
उपधिः नरस्य शोचना न हि स शोचते यो निरुपधिः ॥१७॥

हिन्दी अनुवाद

धनियगोप—मैं पक्वौदन (खाद्यसामग्रीसम्पन्न), संगृहीत दुग्धवाला, मही नदी के तीर पर निवास करता हूँ। मेरी कुटिया छायी जा चुकी है तथा मैंने अग्नि की व्यवस्था भी कर ली है। अतः यदि आपको इन वस्तुओं की कामना है (आप प्रसन्न हैं) तो वर्षा (इनका भोग) करें ॥१॥

भगवान्—मैं क्रोधरहित हूँ, विगताखिल (सम्पूर्ण वस्तुओं से विरक्त) हूँ, नदी के तीर पर मेरा एक ही रात्रि का निवास होगा। मेरी कुटिया बिना छायी हुई (नंगी) है, मेरी आन्तरिक अग्नि बुझ चुकी है। अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धनियगोप—मक्खियाँ और मच्छर नहीं हैं, तट पर गायें प्ररूढ़ (बढ़ी हुई) घासें चरती हैं। आयी हुई वृष्टि भी सही जा सकती है। अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥३॥

भगवान्—भलीभाँति अभ्यस्त आसन बाँध लिया गया है, पार किये जाने योग्य भवसागर को पार कर लिया गया है, अब आसन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥४॥

धनियगोप—गोपी मेरे अधीन रहनेवाली, अचञ्चल (गम्भीर), बहुत समय तक साथ रहने योग्य तथा मन को आकृष्ट करनेवाली है। उसके सम्बन्ध में मैं कोई पाप (दुष्कर्म) नहीं सुनता हूँ, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥२॥

भगवान्—मेरा चित्त मेरे अधीन, विमुक्त, दीर्घ समय तक परिभावित और सुनियन्त्रित है। मेरे पास कोई पाप (दुष्कर्म) नहीं है, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो पर्षा करें ॥६॥

धनियगोप—मैं अपनी कमाई का ही उपयोग करनेवाला हूँ तथा मेरे पुत्र प्रतिष्ठित और नीरोग हैं। उन लोगों का कोई भी पाप (दुष्कर्म) मैं नहीं सुनता, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥७॥

भगवान्—मेरा कोई भरण-पोषण करनेवाला नहीं हैं, विरक्त होकर सम्पूर्ण संसार में विचरण करता हूँ। मुझको किसी मजदूरी आदि से प्रयोजन नहीं हैं, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥८॥

धनियगोप—मेरे पास बन्ध्या गाय, सद्यः बिआई हुई गाय, बछड़ेवाली गाय तथा बिना पाली गयी गाय है; बैल और गायों का स्वामी साँड़ यहाँ मेरे पास है, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥९॥

भगवान्—मेरे पास बन्ध्या गाय, सद्यः बियाई हुई गाय, बछड़े वाली गाय तथा बिना पाली गाय नहीं है, बैल और गायों का स्वामी साँड़ यहाँ मेरे पास नहीं हैं, अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥१०॥

धनियगोप—कील गाड़ दिये गये हैं, नयी-नयी मूँज की बनी हुई भलीभाँति बटी तथा कष्ट न देनेवाली रस्सियाँ (मेरे पास हैं) जिसको नये बिआई गायें भी नहीं तोड़ सकेंगी। अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥११॥

भगवान्—जिस प्रकार वृषभ बन्धनों को तथा हस्ती पोय की लता को तोड़ देता है (उसी प्रकार मैंने जन्म के कारणों को तोड़ दिया है) अब मैं पुनः गर्भावस्था में नहीं जाऊँगा। अतः यदि आप को प्रसन्न हैं तो वर्षा करें ॥१२॥

इतने में ही ऊँची-नीची एवं स्थल भूमि को भरता हुआ महामेघ वर्षा करने लगा। वर्षा करते हुए उस मेघ को सुनकर (देखकर) इस अर्थ को धनिय ने कहा ॥१२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जो भगवान् को हम लोगों ने देख लिया, यह कोई कम लाभ की बात नहीं है। हम लोग उसी चक्षुष्मान् (सर्वज्ञ) की शरण जायेंगे। हम लोगों के आप ही, महामुने, शास्ता हैं ॥१४॥

गोपी और मैं दोनों आशा के अधीन हैं, बौद्ध-धर्म में हम लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करेंगे। हम दोनों जन्म और मरणरूपी दुःख का अन्त करनेवाले हैं ॥१५॥

पापीमार—पुत्रवान् पुत्रों से प्रसन्न होता है तथा गायोंवाला गायों से ही प्रसन्न होता है। सम्पत्ति मनुष्य को प्रसन्न करनेवाली होती है, किन्तु जो सम्पत्तिविहीन है, वह कभी प्रसन्न नहीं होता है ॥१६॥

भगवान्—पुत्रवान् पुत्रों से कष्ट पाता है तथा गायोंवाला गायों से ही कष्ट पाता है। सम्पत्ति मनुष्य को कष्ट देनेवाली होती है, किन्तु जो सम्पत्तिहीन है, वह कभी कष्ट नहीं पाता है ॥१७॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पटिच्चसमुप्पादो

तेन समयेन बुद्धो भगवा उरुवेलायं विहरति नेरञ्जराय तीरे बोधिरुक्खमूले पटमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवा बोधिरुक्खमूले सत्ताहं एकपल्लङ्केन निसीदि विमुत्तिसुखपटिसंवेदि। अथ खो भगवा रत्तिया पठमं यामं पटिच्चसमुप्पादं अनुलोमपटिलोमं मनसाकासि--अविज्जापच्चया संखारा, संखारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा भवन्ति। एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा संखारनिरोधो, संखारनिरोध विञ्ञाणनिरोधो, विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो, फस्सनिरोधा, वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होतीति। अथखो भगवा एवं अत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथ'स्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो पजानाति सहेतुधम्मं, ति॥

--विनयपिटक : महावस्तु

संस्कृत अनुवाद

तस्मिन् समये बुद्धो भगवान् उरुवेलायां विहरति निरञ्जरायाः नद्यास्तीरे बोधिवृक्षमूले प्रथमाभिसम्बुद्धः। अथ खलु भगवान् बोधिवृक्षमूले सप्ताहमेकपर्यङ्के न्यषदत्। विमुक्तिसुखं प्रतिसमवेदीत्। अथ खलु भगवान् रात्र्याः प्रथमे यामे प्रतीत्यसमुत्पादमनुलोमप्रतिलोमं मनस्यकार्षीत्—अविद्याप्रत्ययात् संस्कारः, संस्कारप्रत्ययात् विज्ञानं, विज्ञानप्रत्ययात् नामरूपे, नामरूपप्रत्ययात् षडायतनं, षडायतनप्रत्ययात् स्पर्शः, स्पर्शप्रत्ययात् वेदना, वेदनाप्रत्ययात् तृष्णा, तृष्णाप्रत्ययादुपादानमुपादानप्रत्ययाद्भवः, भवप्रत्याद् जातिः, जातिप्रत्ययाद् जरामरण-शोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासाः'[1]

१. रीस डेविस ने 'उप+आयास', ऐसा विग्रह दिखाकर इसे बौद्धसंस्कृत शब्द कहा है और इसका अर्थ (a kind of) trouble, turbulence, tribulation, vnrest, disturbance, unsettled condition दिया है। जहाँ तक इस शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न हैं उप + आ + √यसु प्रयत्ने से बन सकता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भवन्ति। एवमेतस्य केवलस्य दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति। अविद्यायास्त्वेवाशेष-विरागनिरोधात् संस्कारनिरोधः, संस्कारनिरोधाद् विज्ञाननिरोधः, विज्ञाननिरोधाद् नामरूपनिरोधः, नामरूपनिरोधात् षडायतननिरोधः, षडायतननिरोधात् स्पर्शनिरोधः, स्पर्शनिरोधाद् वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधात् तृष्णानिरोधः, तृष्णानिरोधाद् उपादान-निरोधः, उपादाननिरोधाद् भवनिरोधो, भवनिरोधाद् जातिनिरोधो, जातिनिरोधाद् जरामरणशोकदुःखपरिदेवमौर्मनस्योपायासाः निरुध्यन्ते। एवमेतस्य केवलस्य दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवतीति। अथ खलु भगवानेनमर्थं विदित्वा तस्यां वेलाया-मिदमुदानमुदानीत्—

यदा ह वै प्रादुर्भवन्ति धर्माः आतापिनो ध्यायतो ब्राह्मणस्य।
अथास्य कांक्षाः व्यपयन्ति सर्वा यतः प्रजानाति सहेतुधर्ममिति॥

हिन्दी अनुवाद

उस समय भगवान् बुद्ध सुन्दर वेला में निरञ्जरा नदी के किनारे बोधिवृक्ष के नीचे सद्यः बोधि को प्राप्त होकर विहार कर रहे थे। इसी बीच भगवान् बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे एक सप्ताह तक पर्यंक पर पड़े रहे और उन्होंने विमुक्ति-सुख प्राप्त किया। तदनन्दर भगवान् रात्रि के प्रथम याम में प्रतीत्य–समुत्पाद, के विषय में अनुकूल एवं प्रतिकूल मन में सोचने लगे—अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कारप्रत्यय से विज्ञान, विज्ञानप्रत्यय से नामरूप, नामरूपप्रत्यय से षडायतन, षडायतनप्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श-प्रत्यय से वेदना, वेदनाप्रत्यय से तृष्णा, तृष्णाप्रत्यय से उपादान, उपादानप्रत्यय से भव, भवप्रत्यय से जाति, जातिप्रत्यय से जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य एवं अशान्ति उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार केवल इस दुःखस्कन्ध का उदय होता है। अविद्या-सम्बन्धी सम्पूर्ण विरोगों के निरोध से संस्कार का निरोध, संस्कार-निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान-निरोध से नामरूप-निरोध, नामरूप-निरोध से षडायतन-निरोध, षडायतन-निरोध से स्पर्श-निरोध, स्पर्श-निरोध से वेदना का निरोध,वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोव, तृष्णा के निरोध से उपादाननिरोध, उपादाननिरोध से भवनिरोध, भवनिरोध से जातिनिरोध, जातिनिरोध से जरा-मरण, शोक, दुःख, परिदेव, दौर्मनस्य एवं अशान्ति का नाश होता है। तदनन्तर इस अर्थ को जानकर उस वेला में भगवान् ने इस उदान को कहा—

तपस्वी, ध्यानमग्न ब्राह्मण के जब धर्म उत्पन्न होते हैं, तब उसकी सभी कांक्षाएँ (इच्छाएँ) समाप्त हो जाती हैं क्योंकि वह सहेतुधर्म को जानता है।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालिसंगहो

४

बुद्धसासनप्पसारं

महापजापतिगोतमीगाथा

बुद्धवीर नमो त्थथु, सब्बसत्तानमुत्तम ।
यो मं दुक्खा पमोचेसि, अञ्ञञ्च बहुकं जनं ॥
सब्बदुक्खं परिञ्ञातं, हेतुतण्हा विसोसिता ।
अरियट्ठंगिको मग्गो, निरोधो फुसितो मया ॥
माता पुत्तो पिता भाता अय्यिका च पुरे अहुं ।
यथाभुच्चं अजानन्ती, संसरी'हं अनिब्बिसं ॥
दिठ्ठो हि मे सो भगवा, अन्तिमोयं समुस्यो ।
विक्खीणो जातिसंसारो,न'त्थि दानि पुनब्भवो ॥
आरद्धवीरिये पहितत्ते, निच्चं दळ्हपरक्कमे ।
समग्गे सावके पस्से, एसा बुद्धान वन्दना ॥
बहूनं बत अत्थाय, माया जनयि गोतमं ।
व्याधिमरणतुन्नानं दुक्खक्खन्धं व्यपानुदोति ॥

--थेरीगाथा

संस्कृत अनुबाद

बुद्ध ! वीर ! नम इत्यस्तु सर्वसत्त्वानामुत्तम ।
यो मां दुःखात् प्रामूमुचदन्याञ्च बहुकान् जनान् ॥
सर्वदुःखं परिज्ञातं हेतुतृष्णा विशोषिता ।
आर्याष्टांगिको मार्गो निरोधः स्पष्टो मया ॥
माता पुत्रः पिता भ्रातार्यिका च पुरोऽभवम् ।
यथाभूतताम् अजानन्ती संसारेऽहमनिर्विशम् ॥
दृष्टो हि मे स भगवान् अन्तिमोऽयं समुच्छ्रयः ।
विक्षीणो जातिसंसारो नास्तीदानीं पुनर्भवः ॥
आरब्धवीर्ये प्रहितात्मनि नित्यं दृढपराक्रमे ।
समग्रश्रावके पश्यैषा बुद्धानां वन्दना ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बहूनां बतार्थाय मायाजनीत् गोतमम् ।
व्याधिमरणतुन्नानां दुःखस्कन्धं व्यपानुदत् ॥

हिन्दी अनुवाद

सम्पूर्ण प्राणियों मे उत्तम हे बुद्ध ! वीर ! तुम्हें नमस्कार है, जिसने मुझे तथा अन्य बहुत लोगों को दुःख से मुक्त कर दिया। सब दुःख ज्ञात हो गये। हेतुभूत तृष्णा शुष्क कर दी गयी। मैंने आर्याष्टांगिक मार्ग और उसके निरोध का स्पर्श कर लिया है (जान लिया है), (मैं) माता, पुत्र, पिता, भ्राता और पत्नी पूर्वजन्म में हुई यथार्थ ज्ञान न होने के कारण मैंने संसार में प्रवेश किया।

उस भगवान् को मैंने देख लिया (समझ लिया) है। यही हमारे लिए उत्तम उन्नति है। जन्मरूपी संसार क्षीण हो गया, अब फिर से जन्म नहीं है। पराक्रमशाली आत्मसन्धान परायण, बलशाली और सम्पूर्ण श्रावकों के विषय में देखो, यह बुद्धों की वन्दना है।

बहुतों के प्रयोजन के लिए माया ने गौतम को पैदा किया, जिसने व्याधि और मरण से पीड़ित लोगों के दुःखस्कन्ध को काट दिया।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मालुक्यपुत्त गाथा

मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति माळुवा विय।
सो पलवती हुराहुरं, फलमिच्छं व वनस्मि वानरो। १।
यं ऐसा सहती जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्य पवड्ढन्ति, अभिवड्ढं व वीरणं। २।
यो चे' तं सहती जम्मिं, तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति, उदविन्दु व पोक्खरा। ३।
तं वो वदामि भद्दं वो, यावन्ते'त्थ समागता।
तण्हाय मूळं खणथ, उसीरत्थो व वीरणं।
मा वो नळं व सोतो व, मारो भञ्जि पुनप्पुनं। ४।
करोथ बुद्धवचनं, खणो वे मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता। ५।
पमादो रजो सब्बदा, पमादानुपतितो रजो।
अप्पमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लं अत्तनो'ति। ६।

--थेरगाथा

संस्कृत अनुवाद

मनुजस्य प्रमत्तचारिणः तृष्णा वर्धते मालुका इव।
स प्लवते असोरसुं फलमिच्छन्निव वने वानरः॥ १॥
यं एषा सहते जालमी तृष्णा लोके विषाक्तिका।
शोकाः तस्य प्रवर्धन्ते, अभिवृद्धमिव वीरणम्॥ २॥
यश्चैतां सहते जाल्मीं तृष्णां लोके दुरत्ययाम्।
शोकाः तस्मात् प्रपतन्ति उदकबिन्दुरिव पुष्करात्॥ ३॥
तद् वो वदामि भद्रं वो यावन्तोऽत्र समागताः।
तृष्णायः मूलं खनथ उशीरार्थमिव वीरणम्।
मा वो नाडमिव स्रोत इव मारः भाङ्क्षीत् पुनः पुनः॥ ४॥
कुरुत बुद्धवचनं क्षणं वै मा उपात्यगात्।
क्षणातीताः हि शोचन्ते निरये समर्पिताः॥ ५॥
प्रमादो रजः सर्वदा, प्रमादानुपतितो रजः।
अप्रमादेन, विद्यया आवृहेत् शल्यमात्मन इति॥ ६॥

हिन्दी अनुवाद

प्रमादी व्यक्ति की तृष्णा मालुका (मालुका एक प्रकार की अतिवर्धनशील लता है) की भाँति बढ़ती है। वह वन में फल चाहनेवाले वानर की भाँति एक प्राण से दूसरे प्राण पर कूदता रहता है। (पुनः पुनः जन्म लेता रहता है) ॥१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस लोक में यह विषाक्तिका जाल्मी तृष्णा जिसको सहन कर लेती है (पकड़ लेती है) उसके शोक बढ़े हुए प्ररूढ़ कुश[1] की भाँति बढ़ते हैं ।।२।।

तथा इस संसार में जो व्यक्ति इस दुरत्यय जाल्मी तृष्णा को सहन कर लेता है उसके शोक, पुष्करपर्ण से जल-बिन्दु की भाँति, उससे (उस व्यक्ति से) गिर जाते हैं (समाप्त हो जाते हैं) ।।३।।

आप लोग जितने यहाँ आये हुए हैं, सब के लिए, मैं इस कल्याणकारी तथ्य को कहता हूँ। जिस प्रकार उशीर के लिए वीरण का खनन किया जाता है, उसी प्रकार तृष्णा के मूल को आप लोग खनें (नष्ट करें) । जिस प्रकार नाड (नरकट) बार-बार (बढ़ने के लिए) काटा जाता है और सोता (बाढ़) को बार-बार रोका (छिन्न-भिन्न) जाता है, उसी प्रकार कामदेव (मार) आप लोगों का भविष्य में बार-बार शासन न करे ।।४।।

बुद्धवचनों को करो। एक क्षण भी व्यर्थ न जाय। जिसका समय व्यर्थ निकल जाता है वह नरक में पड़कर सोच करता है (कष्ट उठाता है) ।।५।।

रज ही प्रमाद है और प्रमाद से ही सदा रज की उत्पत्ति होती है। अप्रमाद और विद्या से अपने शल्य (सांसारिक दुःखों को यहाँ शल्य कहा गया है। सात प्रकार के शल्य बताये गये हैं—रागशल्य, दोषशल्य, मोहशल्य, मानशल्य, दृष्टिशल्य, शोकशल्य और कथनकथाशल्य) को निकाल फेकें ।।६।।

---

१. मॉनियर विलियम ने नपुंसक लिंग में 'वीरण' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है—A fragrant grass, Andropogon Muricatus. तथा उशीर का अर्थ the fragrant root of the Plant AndroPogon Muricatus.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लंकाविजयो

सब्बलोकहितं कत्वा पत्वा सन्ति खणं परं ।
परिनिब्बानमञ्चम्हि निपन्नो लोकनायको ॥ १ ॥
देवता सन्निपातम्हि महन्तम्हि महामुनि ।
सक्कं तत्र समीपट्ठं अवोच वदतं वरो ॥ २ ॥

विजयो लाळविसयो सीहबाहुनरिन्दजो ।
एसो लंकं अनुप्पत्तो सत्ताभच्चसतानुगो ॥ ३ ॥
पतिट्ठिस्सति देविन्द लङ्कायं मम सासनं ।
तस्मा सपरिवारं तं रक्ख लंकञ्च साधुकम् ॥ ४ ॥
तथागतस्स देविन्दो वचो सुत्वा' व सादरो ।
देवस्सु'प्पलवण्णस्स लंकारक्खं समप्पयि ॥ ५ ॥
सक्केन वुत्तमत्तो सो लङ्कं आगम्म सज्जुकं ।
परिब्बाजकवेसेन रुक्खमूलं उपाविसि ॥ ६ ॥
विजयप्पमुखा सब्बे तं उपेच्च अपुच्छिमुं ।
'अयं भो को नु दीपो'ति लङ्कादीपो'ति सो'ब्रवि ॥ ७ ॥
"न सन्ति मनुजा एत्थ न च हेस्सति वो भयं" ।
इति वत्वा कुण्डिकाय ते जलेन निसिञ्चिय ॥ ८ ॥
सुत्तं च तेसं हत्थेसु लग्गेत्वा नभसा गमा ।
दस्सेसि सोनिरूपेन परिचारिकयक्खिनी ॥ ९ ॥
एको तं वारियन्तोपि राजपुत्तेन अन्वगा ।
"गामम्हि विज्जमानम्हि भवन्ति सुनखा" इति ॥ १० ॥
तस्सा च सामिनी तत्थ कुवेणी नाम यक्खिनी ।
निसीदि रुक्खमूलम्हि कन्तन्ती तापसी विय ॥ ११ ॥
दिस्वान सो पोक्खरिणिं निसिन्नं तं च तापसिं ।
तत्थ नहात्वा पिवित्वा चा'दाय च मुळालयो ॥ १२ ॥
वारिञ्च पोक्खरे हे' व वुट्ठासि सा तं अब्रवि ।
भक्खो'सि मम तिट्ठा'ति आळ्हाबद्धो व सो नरो ॥ १३ ॥
परित्तसुत्ततेजेन भक्खेतुं सा न सक्कुणि ।
याचियन्तोपि तं सुत्तं ना'दा यक्खिनिया नरो ॥ १४ ॥
तं गहेत्वा सुरुङ्गायं रुदन्तं याक्खिनी खिपि ।
एवं एकेकसो तत्थ खिपि सत्तसतानि'पि ॥ १५ ॥
अनायन्तेसु सब्बेसु विजयो भयसंकितो ।
नद्धपञ्चायुधा गन्त्वा दिस्वा पोक्खरिणि सुभं ॥ १६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपस्सि उत्तिण्णपदं हसन्ति (पस्सन्ति) चे' व तापसिं।
"इमाय खलु भच्चा मे गहिता नू" ति चिन्तिय ॥ १७ ॥
"किन्न पस्ससि भच्चे मे भोतित्वं ?" इति आह तां।
"किं राजपुत्त भच्चेहि ? पिव न्हाया" त्याह सा ॥ १८ ॥
"यक्खिनी ताव, जानाति मम जातिं"ति निच्छितो।
सीधं सनामं सावेत्वा धनुं सन्धायु'पागतो ॥ १९ ॥
यक्खिं आदाय गीवाय नाराचवलयेन सो।
वामहत्थेन केसेसु गहेत्वा दक्खिणेन तु ॥ २० ॥
उक्खिपित्वा असिं आह "भच्चे मे देहि दासि'तं।
मारेमी"ति भयट्टा सा जीवितं याचि यक्खिनी ॥ २१ ॥
"जीवितं देहि मे सामि' रज्जं दस्सामि ते अहं।
करिस्सामि' इतित्थकिच्चञ्च अञ्ञं किञ्चि गथिच्छितं ॥२२॥
अदूभत्थाय सपथं सो तं यक्खिं अकारयि।
"आनेहि भच्चे सीधं" ति वुत्तमत्ता' व सा' नयि ॥ २३ ॥
"इमे छाता"ति वुत्ता सा तण्डुलादीनि निद्दिसि।
भक्खितानं वाणिजानं नावट्ठं विविधं बहु ॥ २४ ॥
भच्चा ते साधयित्वान भत्तानि व्यञ्जनानि च।
राजपुत्तं भोजयित्वा सब्बे चा'पि अभुञ्जिसुं ॥ २५ ॥
दापितं विजयेनग्गं यक्खी भुञ्जिय पीणिता।
सोळसवस्सिकं रूपं मापयित्वा मनोहरं ॥ २६ ॥
राजपुत्तं उपागञ्छि सब्बाभरणभूसिता।
मापेसि रुक्खमूलस्मिं सयनं च महारहं ॥ २७ ॥
साणिया सुपरिक्खित्तं वितानसमलङ्कतं।
तं दिस्वा राजतनयो पेक्खं अत्थं अनागतं ॥ २८ ॥
वत्वान ताय संवासं निपज्जि सयने सुखं।
साणिं परिक्खिपित्वान सब्बे भच्चा निपज्जिसुं ॥ २९ ॥
रत्तिं तुरियसद्दञ्च सुत्वा गीतरवञ्च सो।
अपुच्छि सहसेमानं "किं सद्दो ?" इति यक्खिनिं ॥ ३० ॥
"रज्जं च सामिनो देय्यं सब्बे यक्खा च घातिया।
मनुस्सावासकारणा यक्खा मं घातेस्सन्ति हि" ॥ ३१ ॥
इति चिन्तिय यक्खी सा अब्रुवि राजनन्दनं।
सिरीसवत्थु नामे'तं सामि यक्खपुरं इदं ॥ ३२ ॥
तत्थ जेट्ठस्स यक्खस्स लङ्कानगरवासिनी।
कुमारिका इधानीता तस्सा माता च आगता ॥ ३३ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आवाहमङ्गले तत्थ इधापि (सत्ताहं) उस्सवो महा।
वत्तते' तत्थ सद्दो' यं, महा ह'एस समागमो ॥ ३४ ॥
अज्जे' व यक्खे घातेहि' नहि सक्का इतो परं।
सो आहा'दिस्समाने ते घातेस्सामि कथं अहं ? ॥ ३५ ॥
"तत्थ सद्दं करिस्सामि' तेन सद्देन घातय।
आवुधं मे'नुभावेन तेसं काये पतिस्सति ॥ ३६ ॥
तस्सा सुत्वा तथा कत्वा सब्बयक्खे अघातयि।
सयं'पि विजयो लद्धा यक्खराजपसाधनं ॥ ३७ ॥
पसाधनेहि सेसेहि तं तं भच्चं पसाधयि।
कतिपा'हं वसित्व'त्थ तम्बपण्णि उपागमि ॥ ३८ ॥
मापयित्वा तम्बपण्णिनगरं विजयो तहिं।
वसि यक्खिणिया सद्धिं अमच्चपरिवारितो ॥ ३९ ॥
नावाय भूमिं ओत्तिण्णा विजयप्पमुखा तदा।
किलन्ता पाणिना भूमिं आवम्बिय निसीदिसुं ॥ ४० ॥
तम्बभूमिरजोफुट्ठा तम्बपण्णि यतो अहु।
सो देसो चे'व दीपो चाम्बपण्णि ततो अहु ॥ ४१ ॥
सीहबाहु नरिन्दो सो सीहं आदिण्णवा इति।
सीहलो तेन सम्बन्धा एते सब्बेपि सीहला ॥ ४२ ॥

महावंस

संस्कृत अनुवाद

सर्वलोकहितं कृत्वा प्राप्य शान्ति क्षणं पराम्।
परिनिर्वाण मञ्चे निपन्नो लोकनायकः ॥ १ ॥
देवतासन्निपाते महति महामुनिः।
शक्र तत्र समीपस्थमवोचव् वदतां वरः ॥ २ ॥
विजयो लाटविषयः सिंहबाहुनरेन्द्रजः।
एष लङ्कामनुप्राप्तः सप्तभृत्यशतानुगः ॥ ३ ॥
प्रतिष्ठास्यति देवेन्द्र लङ्कायां मम शासनम्।
तस्मात् सपरिवारं तं रक्ष लङ्काञ्च साधुकम् ॥ ४ ॥
तथागतस्य देवेन्द्रः वचः श्रुत्वैव सादरः।
देवायोत्पलवर्णाय लङ्कारक्षां समार्पिपत् ॥ ५ ॥
शक्रेणोक्तमात्रः स लङ्कामागत्य सद्यस्कम्।
परिव्राजकवेषेण वृक्षमूलमुपाविक्षत् ॥ ६ ॥
विजयप्रमुखाः सर्वे तमुपेत्याप्राक्षुः।
"अयं भोः! को नु द्वीप? इति" "लङ्काद्वीप" इत्यब्रवीत् ॥ ७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न सन्ति मनुजा अत्र न च भविष्यति वो भयम् ।
इत्युक्त्वा कुण्डिकायास्तान् जलेन निषिच्य ॥ ८ ॥
सूत्रं च तेषां हस्तेषु लागयित्वा नभसागमत् ।
अद्राक्षीत् शुनिरूपेण परिचारकयक्षिणी ॥ ९ ॥
एकस्तां वार्यमाणोऽपि राजपुत्रेणान्वगात् ।
"ग्रामे विद्यमाने भवन्ति शुनकाः"— इति ॥ १० ॥
तस्याश्च स्वामिनि तत्र कुवेणी नाम यक्षिणी ।
न्यसदत् वृक्षमूले कर्तन्ती तापसीव ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा स पुष्करिणीं निषण्णां तां च तापसीम् ।
तत्र स्नात्वा पीत्वा चादाय च मृणालीः ॥ १२ ॥
वारि च, पुष्करे ह्येवोदस्थात्, सा तमब्रवीत् ।
"भक्ष्योऽसि मम तिष्ठे" त्याढचाबद्ध इव स नरः ॥ १३ ॥
परीतसूत्रतेजसा भक्षयितुं सा नाशकत् ।
याच्यमानोऽपि तत्सूत्रं नादात् यक्षिण्यै नरः ॥ १४ ॥
तं गृहीत्वा सुरङ्गायां रुदन्तं यक्षिण्यक्षैप्सीत् ।
एवमेकैकशः तत्राक्षैप्सीत् सप्तशतान्यपि ॥ १५ ॥
अनायातसु सर्वेषु विजयो भयशङ्कितः ।
नद्धपञ्चायुधो गत्वा दृष्ट्वा पुष्करिणीं शुभाम् ॥ १६ ॥
अद्राक्षीदुत्तीर्णपदां हसन्तीं (पश्यन्तीं) चैव तापसीम् ।
इमे खलु भृत्याः मे गृहीतान्वित्यचिंचितत् ॥ १७ ॥
"किं न पश्यसि भृत्यान् मे भवति!त्वमि"त्याह ताम् ।
"किं राजपुत्र ! भृत्यैः पिब स्नाहीत्याह" सा ॥ १८ ॥
यक्षिणी तावद् जानाति मम ज्ञातिमिति निश्चितम् ।
शीघ्रं स्वनाम श्रावयित्वा धनुः सन्धायोपागतः ॥ १९ ॥
यक्षिणीमादाय ग्रीवायां नाराचवलयेन सः ।
वामहस्तेन केशेषु गृहीत्वा दक्षिणेन तु ॥ २० ॥
उत्क्षिप्यासिमाह "भृत्यान् मे देहि दासि ! त्वम् ।
मारयामीति" भयार्त्ता सा जीवितमयाचिष्ट यक्षिणी ॥ २१ ॥
"जीवितं देहि मे स्वामिन् ! राज्यं दास्यामि तेऽहम् ।
करिष्यामि स्त्रीकृत्यञ्चान्यत्किञ्चिद् यथेच्छितम्" ॥ २२ ॥
अद्रूडभार्थाय शपथ स तां यक्षिणीमचीकरत् ।
"आनय भृत्यान् शीघ्रमिति" उक्तमात्रा सानैषीत् ॥ २३ ॥
"इमे क्षोद्यार" इत्युक्ता सा तण्डुलादि निरदिक्षत् ।
भक्षितानां वणिजां नौस्थं विविधं बहु ॥ २४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भृत्यास्ते साधयित्वा भक्तानि व्यञ्जनानि च ।
राजपुत्रं भोजयित्वा सर्वे चाप्यभोक्षुः ॥ २५ ॥
दापितं विजयेनाग्रं यक्षिणी भुक्त्वा प्रीणिता ।
षोडशवार्षिकं रूपं मापयित्वा मनोहरम् ॥ २६ ॥
राजपुत्रमुपागमत् सर्वाभरणभूषिता ।
अमीमपत् वृक्षमूले शयनञ्च महार्घम् ॥ २७ ॥
शाण्या सुपरिक्षिप्तं वितानसमलंकृतम् ।
तं दृष्ट्वा राजतनयः प्रेक्ष्यमर्थंमनागतम् ॥ २८ ॥
कृत्वा तया संवासं न्यपादि शयने सुखम् ।
शाणीं परिक्षिप्य सर्वे भृत्याः न्यपादिषत ॥ २९ ॥
रात्रौ तूर्यशब्दांश्च श्रुत्वा गीतरवञ्च सः ।
अप्राक्षीत् सहशयमानां"कः शब्दः" इति यक्षिणीम् ॥३०॥
राज्यं च स्वामिने देयं सर्वे यक्षाश्च घात्याः ।
मनुष्यावासकारणात् यक्षाः मां घातयिष्यन्ति हि" ॥३१॥
इति चिन्तयित्वा यक्षिणी साब्रवीत् राजनन्दनम् ।
शिरीषवस्तु नाम्ना स्वामिन् ! यक्षपुरमिदम् ॥ ३२ ॥
तत्र ज्येष्ठस्य यक्षस्य लङ्कानगरवासिनी ।
कुमारिकेहानीता तस्याः माता चागता ॥ ३३ ॥
आवाहमंगले तत्रेहापि (सप्ताह) उत्सवो महान् ।
वर्त्तते तत्र शब्दोऽयं महान् ह्येष समागमः ॥ ३४ ॥
अद्यैव यक्षान् घातय न हि शक्याः इतः परम् ।
स आहादृश्यमानान् तान् घातयिष्यामि कथमहम् ॥३५॥
तत्र शब्दं करिष्यामि तेन शब्देन घातय ।
आयुधं ममानुभावेन तेषां काये पतिष्यति ॥ ३६ ॥
तस्याः श्रुत्वा तथा कृत्वा सर्वयक्षानजीघतत् ।
स्वयमपि विजयो लब्ध्वा यक्षराज-प्रसाधनम् ॥ ३७ ॥
प्रसाधनैः शेषैस्तं तं भृत्यं प्रासीषिधत् ।
कतिपयाहमुषित्वात्र ताम्रपर्णीमुपागमत् ॥ ३८ ॥
मापयित्वा ताम्रपर्णीनगरं विजयस्तत्र ।
अवात्सीत् यक्षिण्याः सष्ठपङ् अमात्यपरिवारितः ॥३९॥
नावा भूमिमुत्तीर्णाः विजयप्रमुखास्तदा ।
क्लान्ताः पाणिना भूमिमालम्ब्य न्यषदन् ॥ ४० ॥
ताम्रभूमिरजःस्पृष्टा ताम्रपर्णी यतोऽभूत् ।
स देशश्चैव द्वीपश्च ताम्रपर्णी ततोऽभूत् ॥ ४१ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सिंहबाहु नरेन्द्रः स सिंहमादीर्णवान् इति ।
सिंहलस्तेन सम्बन्धाद् एते सर्वेऽपि सैंहलाः ॥ ४२ ॥

हिन्दी अनुवाद

सभी लोगों का हित कर एवं उत्तम शान्ति को क्षणभर प्राप्त कर लोक-नायक (भगवान् बुद्ध) परिनिर्वाण मञ्च पर बैठे ॥ १ ॥

वक्ताओं में श्रेष्ठ महामुनि ने देवताओं के महान् समूह में समीप बैठे हुए इन्द्र से कहा ॥ २ ॥

लाट देश निवासी, सिंहबाहु राजा का यह विजय नामवाला लड़का, सात सौ भृत्यों से अनुगत हो, लङ्का गया ॥ ३ ॥

हे देवेन्द्र ! (यह) लङ्का में मेरा शासन प्रतिष्ठापित करेगा। अतः सपरिवार उसकी और लङ्का की भलिभाँति रक्षा करिये (अथवा सपरिवार उस साधु की और लङ्का की रक्षा करिये) ॥४॥

तथागत के वचन को सुनते ही, आदरयुक्त होकर देवेन्द्र ने उत्पलवर्ण को लङ्का की रक्षा का भार सौंपा ! ५॥

इन्द्र से कह देने मात्र से वह सद्यः लङ्का आकर परिव्राजकवेष में पेड़ के नीचे बैठा ॥६॥

सभी विजय आदि ने उसके पास आकर पूछा—"यह कौन-सा द्वीप है ?" "यह लङ्का द्वीप है" ऐसा उसने कहा ॥७॥

यहाँ पर न तो मनुष्य हैं और न तुम लोगों को कोई भय—ऐसा कहकर कुण्डिका के जल से अभिषेक करके और रक्षा-सूत्र को उन लोगों के हाथ में बाँधकर आकाश-मार्ग से चला गया। (इतने में ही) कुतिया के रूप में सेविका-यक्षिणी ने उसे देखा ॥८-९॥

"गाँव में तो कुत्ते होते ही हैं", (ऐसा कहकर) राजपुत्र के निवारण करने पर भी एक ने उसका पीछा किया ॥१०॥

उस कुतिया की स्वामिनी कुवेणी नाम की यक्षिणी वहीं (सूत) कातती हुई पेड़ के नीचे तापसी की तरह बैठी थी ॥११॥

वह पुष्करिणी और बैठी हुई उस तपस्विनी को देखकर (तथा) वहीं स्नान कर जल पीकर मृणालियों और जल को लेकर पुष्कर ही उठ खड़ा हुआ ! (यक्षिणी ने) उससे कहा—रुको, तुम हमारे भक्ष्य हो। वह व्यक्ति किंकर्तव्य-विमूढ हो गया ॥१२-१३॥

बँधे हुए सूत्र के तेज के कारण वह (यक्षिणी) उसको खा न सकी। माँगने पर भी (उस) व्यक्ति ने उस सूत्र को यक्षिणी को नहीं दिया ॥१४॥

रोते हुए उसको पकड़कर यक्षिणी ने सुरंग में फेंक दिया। इसी प्रकार एक-एक करके सातों सौ (भृत्यों) को यहाँ फेंक दिया ॥१५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सभी (भृत्यों) के न आने पर विजय भय से आशंकित हो, पाँच अस्त्रों को बाँध-कर, जाकर शुभ पुष्करिणी को देखकर उलटे पैरोंवाली और हँसती हुई (देखती हुई) तापसी को देखा। यहीं, ये मेरे भृत्य गृहीत किये गये हैं, ऐसा सोचा ॥१६-१७॥

"क्या आप मेरे भृत्यों को नहीं जानती हैं", ऐसा उससे कहा। "हे राजपुत्र! भृत्यों से क्या प्रयोजन ? (जल) पीओ, स्नान करो', ऐसा उसने कहा ॥१८॥

यह निश्चित है कि यक्षिणी मेरी जाति को जानती है (अतः) शीघ्र ही अपना नाम सुनाकर धनुष चढ़ाकर (उसके) समीप गया ॥१९॥

गर्दन में धनुष की डोरी से (लगाकर) यक्षिणी को बायें हाथ से केशों को पकड़-कर, तथा दाहिने हाथ से तलवार को ऊपर उठाकर कहा—"हे दासि, मेरे भृत्यों को दे दो (अन्यथा) मैं तुम्हें मार डालूँगा", इस प्रकार डरी हुई उस यक्षिणी ने (अपने) जीवन की भीख माँगी—"हे स्वामी, मुझे जीवन की भीख दो, तुम्हें मैं राज्य दूँगी, तुम्हारी पत्नी बनकर रहूँगी तथा और भी जैसा चाहोगे वैसा (कार्य) करूँगी" ॥२०–२२॥

सरलता से छल न करने के लिए उसने उस यक्षिणो से शपथ करायी। "भृत्यों को शीघ्र लाओ" ऐसा कहने मात्र से ही उसने ला दिया ॥२३॥

ये बुभुक्षित हैं, ऐसा उसको कहे जाने पर, उस यक्षिणी ने, नावों में रखे हुए भक्षित बनियों के विविध प्रकार के प्रचुर तण्डुलादि दिखलाये ॥२४॥

उन सब भृत्यों ने भी भात और व्यञ्जनों को पकाकर, राजपुत्र को भोजन कराकर, भोजन किया ॥२५॥

विजय के द्वारा पहले दिलाये गये भोजन को यक्षिणी खा-पीकर प्रसन्न हुई। सुन्दर सोलह वर्ष का अपना रूप बना सब आभूषणों से सुसज्जित हो राजपुत्र के पास गयी। वृक्ष के नीचे अत्यन्त बहुमूल्य तथा वितान से सुसज्ज और शाणी (विशेष प्रकार का पट-कुटीर) से सुपरिक्षिप्त (चारों ओर से पर्दा लगाकर) शय्या बिछायी। उस अभीप्सित भविष्यत् अर्थ (भविष्यकाल में अपने उद्देश्य) को देखकर उसके साथ संवास कर (वह) शय्या पर सुखपूर्वक पड़ गया। (और) पर्दा लगाकर सभी भृत्य भी पड़ गये ॥२६–२९॥

रात में तूर्य (वाद्य) के शब्दों और गीतों के शब्द को सुनकर साथ सोयी हुई यक्षिणी से उसने (विजय ने) "यह कैसा शब्द हो रहा है", ऐसा पूछा ॥३०॥

स्वामी को राज्य देना चाहिए, यक्षों को मरवा देना चाहिए; क्योंकि मनुष्यों के साथ रहने के कारण यक्ष मुझे मरवा डालेंगे, ऐसा सोचकर उस यक्षिणी ने राजपुत्र से कहा—हे स्वामी! शिरीष वस्तु नाम का यह यक्षपुर है ॥३१–३२॥

इसमें ज्येष्ठ यक्ष की लंका निवासिनी कुमारी यहाँ लायी गयी है और उसकी माता भी (यहाँ) आयी है ॥३३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसके विवाहोत्सव में यहाँ भी (एक सप्ताह तक) महान् उत्सव है। वहाँ यह शब्द हो रहा है। यह बहुत बड़ी भीड़ है ॥३४॥

आज ही (इसी समय) यक्षों को मरवा डालो (क्योंकि) इसके बाद वे नहीं मारे जा सकते हैं। उसने कहा—दिखलायी न पड़नेवाले उनको मैं कैसे मरवाऊँगा ॥३५॥

वहाँ (मैं) शब्द करूँगी, उन्हीं शब्दों के संकेत से मरवाना। मेरे अनुभाव से उनके शरीर पर ही अस्त्र गिरेंगे ॥३६॥

विजय ने उसकी बात सुनकर (तथा) वैसा कर सभी यक्षों को मरवा डाला। स्वयं भी यक्षराज के प्रसाधनों को प्राप्त कर, शेष प्रसाधनों से उन-उन भृत्यों को प्रसाधन-सम्पन्न किया। कुछ दिन वहाँ रहकर (वह) ताम्रपर्णी नदी के पास पहुँचा ॥३७–३८॥

वहाँ ताम्रपर्णीनगर का निर्माणकर, मंत्रियों से युक्त होकर, विजय ने यक्षिणी के साथ निवास किया ॥३९॥

उस समय नाव से भूमि पर उतरे हुए तथा थके हुए विजय आदि, हाथ से भूमि का सहारा लेकर, बैठे ॥४०॥

यतः ताम्रभूमि की धूलि का स्पर्श करके ताम्रपर्णी हुई, अतएव वह देश और द्वीप ताम्रपर्णी कहलाया ॥४१॥

सिंहबाहु राजा ने (यतः) सिंह को विदीर्ण किया उसी सम्बन्ध से (अतएव) यह सिंहल कहलाया और ये (यहाँ के निवासी) सभी सैंहल कहलाते हैं ॥४२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनत्तवादो

अथ खो मिलिन्दो राजा येना' यस्मा नागसेनो तेनु'पसंकमि, उपसंकमित्वा आयस्मता नागसेनेन सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। आयस्मा पि खो नागसेनो पटिसम्मोदि, येने'व मिलिन्दस्स रञ्ञो चित्तं आराधेसि। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—कथं भदन्तो ञायति किन्नामोसि भन्ते'ति? नागसेनो' ति खो मं महाराज ञायामि, नागसेनो' ति खो मं महाराज सब्रह्मचारी समुदाचरन्ति, अपि च मातापितरो नामं करोन्ति नागसेनो' ति वा सूरसेनो'ति वा वीरसेनो'ति वा सीहसेनो'ति वा, अपि च खो महाराजा सञ्ञा समञ्ञा पञ्ञा पञ्ञत्तिवोहारो नाममत्तं यदिदं नागसेनो'ति, न हे'त्थ पुग्गलो उपलब्भतीति। अथ खो मिलिन्दो राजा एवं आह—सुणन्तु मे भोन्तो पञ्चसतायोनका असीतिसहस्सा च भिक्खू, अयं नागसेनो एवं आह—'न हे'त्थ पुग्गलो उपलब्भतीति' कल्लं नु खो तद् अभिनन्दितुं ति। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच-–सचे भन्ते नागसेन पुग्गलो नू'पलब्भति। को चरहि तुम्हाकं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारं देति? को तं परिभुञ्जति? को सीलं रक्खति? को भावनं अनुयुञ्जति? को मग्गफलनिब्बानानि सच्छिकरोति? को पाणं हनति? को अदिन्नं आदियति? को कामेसु मिच्छाचारं चरति? को भुसा भणति? को मज्जं पिबति? को पञ्चान्तरियकम्मं करोति? तस्मा न'त्थि कुसलं, न'त्थि अकुसलं, न'त्थि कुसलाकुसलानं कम्मानं कत्ता वा कारेता वा, न'त्थि सुकतदुक्कटानं कम्माणं फलं, विपाको। सचे, भन्ते नागसेन यो तुम्हे मारेति न'त्थि तस्सापि पाणातिपातो, तुम्हाकम्पि भन्ते नागसेन न'त्थि आचरियो न'त्थि उपज्झायो न'त्थि उपसम्पदा। नागसेनो'ति मं महाराजा सब्रह्मचारी समुदाचरन्ती'ति यं वदेसि, कतमो एत्थ नागसेनो, किन्नु खो भन्ते केसा नागसेनो'ति? नहि महाराजा'ति। लोमा नागसेनो'ति? नहि महाराजा'ति। नखा, दन्ता, तचो, मंसं, नहारु, अट्ठि, अट्ठिमिञ्जा, वक्कं, हदयं, यकनं, किलोमकं, पिहकं, पप्फासं, अन्तं, अन्तगुणं, उदरियं, करीसं, पित्तं, सेम्हं, पुब्बो, लोहितं, सेदो, मेदो, अस्सु, वसा, खेळो, सिङ्घाणिका, लसिका, मुत्तं, मत्थके, मत्थलुङ्गं' नागसेनो'ति? नहि महाराजा'ति। किन्नु खो भन्ते रूपं नागसेनो'ति? नहि महाराजा' ति। वेदना नागसेनो'ति? नहि महाराजा'ति। सञ्ञा नागसेनो'ति? नहि महाराजा'ति। संखारा नागसेनो'ति? नहि महाराजा'ति। विञ्ञाणं नागसेनो'ति? न हि महाराजा'ति। किं पन भन्ते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रूपवेदनासञ्ञासंखारविञ्ञाणं नागसेनो'ति ? न हि महाराजा'ति। किं पन भन्ते अञ्ञत्र रूपवेदनासञ्ञासंखारविञ्ञाणं नागसेनो'ति ? न हि महाराजा'ति। 'तं अहं भन्ते पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि नागसेनं, सद्दो येव नु खो भन्ते नागसेनो'ति ? नहि महाराजा'ति। को पने'त्थ नागसेनो, अलिकं त्वं भन्ते भाससि मुसावादं, न'त्थि नागसेनो'ति।

अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दं राजानं एतदवोच--त्वं खो सि महाराज खत्तियसुखुमालो अच्चन्तसुखुमालो, तस्स ते महाराज मज्झन्तिकसमयं तत्ताय भूमिया उण्हाय वालुकाय खरा सक्खरकठलबालुका मद्दित्वा पादेन गच्छन्तस्स पादा रुजन्ति, कायो किलमति, चित्तं उपहञ्ञति, दुक्खसहगतं कायविञ्ञाणं उप्पज्जति, किन्नु खो त्वं पादेनागतोसि उदाहु वाहनेना'ति ? नाहं भन्ते पादेना'गच्छामि। रथेनाहं आगतो'स्मीति। स चे त्वं महाराज रथेनागतोसि रथं मे आरोचेहि। किन्नु खो महाराज ईसा रथो'ति ? न हि भन्ते'ति। अक्खो रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। चक्कानि रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। रथपञ्जरं रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। रथदण्डको रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। युगं रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। रस्मियो रथो'ति' ? नहि भन्ते'ति। पतोदलट्ठी रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। किं नु खो महाराज ईसा अक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदं रथो'ति ? नहि भन्ते'ति। किंपन महाराज अञ्ञत्र ईसाअक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदं रथो'ति। नहि भन्ते'ति। तं अहं महाराजा पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि रथं। सद्दो येव नु खो महाराज रथो'ति। नहि भन्ते'ति। को पने'त्थ रथो ? अलिकं त्वं महाराज भाससि मुसावादं, नंत्थि रथो। त्वं सि महाराज सकलजम्बुदीपे अग्गराजा। कस्स पन त्वं भायित्वा मुसावादं भाससि। सुणन्तु मे भोन्तो पञ्चसता योनका असीतिसहस्सा च भिक्खू। अयं मिलिन्दो राजा एवं आह--रथेनाहं आगतो'स्मीति। 'सचे त्वं महाराज रथेना'गतोसि रथं मे आरोचेहीति' वुत्तो समानो रथं न सम्पादेति कल्लन्नु खो तदभिनन्दितुं'ति।

एवं वुत्ते पञ्चसता योनका आयस्मतो नागसेनस्स साधुकारं दत्वा मिलिन्दं राजानं एतदवोचुं--इदानि खो त्वं महाराजा सक्कोन्तो भासस्सू'ति। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच--नाहं भन्ते नागसेन मुसा भणामि। ईसञ्च पटिच्च, अक्खञ्च पटिच्च, चक्कानि च पटिच्च, रथपञ्जरञ्च पटिच्च, रथदण्डकञ्च पटिच्च, रथोति संञ्ञा समञ्ञा पञ्ञत्तिवोहारो नाम, पवत्ती'ति। साधु खो त्वं महाराज रथं जानासि। एवं एव खो महाराज मय्हम्पि केसे च पटिच्च, लोमे च पटिच्च, मत्थलुङ्गञ्च पटिच्च, रूपञ्च पटिच्च, वेदनं च पटिच्च, सञ्ञं च पटिच्च, संखारे च पटिच्च, विञ्ञाणञ्च पटिच्च नागसेनो'ति संञ्ञा, समञ्ञा, पञ्ञत्ति, वोहारो नाममत्तं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्‍त्ति। परमत्थतो पने'त्थ पुग्गलो 'नू'पलब्भति। भासितं पे'तं महाराज वजिराय भिक्खुनिया भगवतो सम्मुखा—

यथा हि अङ्गसम्भारा होति सद्दो रथो इति,
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति सम्मुतीति ॥

अच्छरियं भन्ते नागसेन ! अब्भुतं भन्ते नागसेन !! अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विस्सज्जितानि। यदि बुद्धो तिट्ठेय्य साधुकारं ददेय्य, साधु ! साधु !! नागसेन, अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विस्सज्जितानि इति।

—मिलिन्दपञ्हो

संस्कृत अनुवाद

अथ खलु राजा मिलिन्दो येनायुष्मान्नागसेनस्तेनोपसमक्रमीत्। उपसङ्क्रम्य आयुष्मता नागसेनेन सध्र्यङ् सममोदिष्ट। सम्मोदनीयां कथां साराणीयां व्यतिसार्य एकान्ते न्यषदत्। आयुष्मानपि खलु नागसेनः प्रतिसम्मोदनीयेनैव मिलिन्दस्य राज्ञश्चित्तमारात्सीत्। अथ खलु मिलिन्दो राजा आयुष्मन्तं नागसेनमेतदवोचत्— "कथं भदन्तो ज्ञायते, किं नामाऽसि भदन्ते"ति ?

"नागसेन इति खल्वहं, महाराज, ज्ञाये। नागसेन इति खलु मां, महाराज, सब्रह्मचारिणः समुदाचरन्ति। अपि च मातापितरौ नाम कुर्वन्ति नागसेन इति वा शूरसेन इति वा वीरसेन इति वा सिंहसेन इति वा। अपि च खलु, महाराज, संज्ञा समज्ञा प्रज्ञप्तिर्व्यवहारो नाममात्रं यदिदं नागसेन इति। न ह्यत्र पुद्गल उपलभ्यत" इति।

अथ खलु मिलिन्दो राजा एवमाह—"शृण्वन्तु मे भवन्तः पञ्चशतानि यवनकाः, अशीतिसहस्राणि च भिक्षवः। अयं नागसेन एवमाह—"न ह्यत्र पुद्गल उपलभ्यत' इति। कल्यं नु खलु तदभिनन्दितुमिति" ? अथ खलु मिलिन्दो राजाऽऽयुष्मन्तं नागसेनमेतदवोचत्— 'चेद्, भदन्त नागसेन, पुद्गलो नोपलभ्यते, कस्तर्हि युष्मभ्यं चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारं ददाति ? कस्तं परिभुनक्ति ? कः शीलं रक्षति ? को भावनानुयुनक्ति ? को मार्गफलनिर्वाणानि साक्षात्करोति ? कः प्राणान् हन्ति ? कोदत्तमाददाति ? कः कामेषु मिथ्याचारं चरति ? को मृषा भणति ? को मद्यं पिबति ? कः पञ्चानन्तर्यकर्म करोति ? तस्मान्नास्ति कुशलम्। नास्त्यकुशलम्। नास्ति कुशलाकुशलानां कर्मणां कर्ता वा कारयिता वा। नास्ति सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलं विपाकः। चेद्, भदन्त ! नागसेन, यो युस्मान् मारयति, नास्ति तस्यापि प्राणातिपातः। युष्माकमपि, भदन्त ! नागसेन !, नास्ति आचार्यः, नास्ति उपाध्यायः, नास्ति उपसम्पदा। 'नागसेन' इति मां महाराज, सब्रह्मचारिणः समुदाचरन्तीति यद् वदसि, कतमोऽत्र नागसेनः" ?

'किन्तु खलु, भदन्त ! केशा नागसेन" इति ? "नहि, महाराज" इति : "लोमानि नागसेन" इति ? "नहि महाराज" इति। "नखाः, दन्ताः त्वचः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मांसं, स्नायुः, अस्थि, अस्थिमज्जा, वृक्कं, हृदयं, यकृत्, क्लोमकं, प्लीहा, फुप्फुसं, अन्त्रं, अन्त्रगुणः, औदर्यं, करीषं, पित्तं, श्लेष्म, पूतिः, लोहितं, स्वेदः, मेदः, अश्रु, वसा, खेलो (खेडः), सिंघाणिका, लसिका, मूत्रं, मस्तके मस्तलुङ्गं नागसेन" इति ?

"नहि महाराज !" इति। "किन्नु खलु, भदन्त, रूपं नागसेन" इति ? "नहि महाराज !" इति। "वेदना नागसेन" इति ? "नहि महाराज !" इति। "संज्ञा नागसेन" इति ? "नहि महाराज !" इति। "संस्काराः नागसेन" इति ? 'नहि महाराज !" इति। "विज्ञानं नागसेन" इति। "नहि महाराज !" इति। "किम्पुनर्भदन्त, रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानानि नागसेन" इति ? "नहि महाराज !" इति किम्पुनर्भदन्त, अन्यत्र रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानेभ्यः नागसेन"इति ? "नहि महाराज!" इति। "तमहं, भदन्त, पृच्छन् पृच्छन् न पश्यामि नागसेनम् "नागसेन शब्द एव नु खलु, भदन्त, नागसेन" इति ? "नहि महाराज !" इति। कः पुनरत्र नागसेनः ? अलीकं त्वं, भदन्त, भाषसे मृषावादं, नास्ति नागसेन" इति।

अथ खलु आयुष्मान्नागसेनो मिलिन्दं राजानमेतवोचत्—"त्वं खल्वसि, महाराज, क्षत्रियसुकुमारोऽत्यन्तसुकुमारः। तस्य ते, महाराज, मध्याह्निकसमयः तप्तायां भूम्यामुष्णायां बालुकायां खराः शर्करकठलबालुकाः मर्दित्वा पादाभ्यां नच्छतः पादौ रुजतः, कायः क्लाम्यति, चित्तमुपहन्यते, दुःखसहगत कायविज्ञानमुत्पद्यते। किन्तु खलु त्वं पादाभ्यामागतोऽसि, उताहो वाहनेनेति" ? नाहं, भदन्त, पादाभ्यामागच्छामि रथेनाहमागतोऽस्मीति"। "चेत्त्वं, महाराज, रथेनागतोऽसि, रथं मे आरोचय। किन्तु खलु, महाराज, इषो रथ" इति ? "नहि भदन्ते"ति। "अक्षो रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। "चक्राणि रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। रथपञ्जरं रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। "रथदण्डको रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। "युगं रथ' इति ? "नहि भदन्त" ! इति। "रश्मयो रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। "प्रतोदयष्टी रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। किन्नु खलु, महाराज, ईषाचक्ररथपञ्जररथदण्डयुगरश्मिप्रतोदाः रथ" इति ? "नहि भदन्त !" इति। किम्पुनर्महाराज, अन्यत्र ईषाचक्ररथपञ्जररथदण्डयुगरश्मिप्रतोदेभ्यः रथ' इति ? "नहि, भदन्त !" इति। "तमहं, महाराज, पृच्छन् पृच्छन् न पश्यामि रथम्। (रथ) शब्द एव नु खलु, महाराज, रथ" इति ?

"नहि भदन्त !" इति। "कः पुनरत्र रथः ? अलीकं त्वं, महराज, भाषसे मृषावादं नास्ति रथः ! त्वमसि महाराज, सकलजम्बूद्वीपेऽग्रराजः। कस्मात् पुनस्त्वं भीत्वा मृषावादं भाषसे? शृण्वन्तु मे, भगवन्तः पञ्चशतानि यवनकाः, अशीतिसहस्राणि च भिक्षवः। अयं मिलिन्दो राजा एवमाह—"रथेनाहमागतोऽस्मीति !" 'चेत् त्वं, महाराज ? रथेनागतोऽसि, रथं मे आरोचयेत्युक्तः सन् रथं न सम्पादयति। कल्यं नु खलु तदभिनन्दितुमिति" ?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एवमुक्ते पञ्चशतानि यवनकाः आयुष्मते नागसेनाय साधुकारं दत्त्वा मिलिन्दं राजानमेतदवोचन्—"इदानीं खलु त्वं, महाराज !, शक्नुवन् भाषस्वेति ।" अथ खलु मिलिन्दो राजायुष्मन्तं नागसेनमेतदवोचत्—"नाहं, भदन्त नागसेन, मृषा भणामि । ईषां च प्रतीत्य, अक्षं च प्रतीत्य, चक्राणि च प्रतीत्य, रथपञ्जरं च प्रतीत्य, रथदण्डकं च प्रतीत्य, रथ इति संज्ञा समज्ञा प्रज्ञप्तिर्व्यवहारो नाममात्रं प्रवर्तत" इति ।

"साधु खलु त्वं, महाराज, रथं जानासि । एवमेव खलु, महाराज, मह्यमपि केशांश्च प्रतीत्य, लोमानि च प्रतीत्य, मस्तलुङ्गं च प्रतीत्य, रूपं च प्रतीत्य, वेदनां च प्रतीत्य, संज्ञां च प्रतीत्य, संस्कारांश्च प्रतीत्य, विज्ञानं च प्रतीत्य, 'नागसेन' इति संज्ञा समज्ञा प्रज्ञप्तिर्व्यवहारो नाममात्रं प्रवर्तते । परमार्थतः पुनरत्र पुद्गलो नोपलभ्यते । भाषितमप्येतन्महाराज, वज्र्या भिक्षुण्या भगवतः सम्मुखे—

यथा ह्यङ्गसम्भारा भवन्ति शब्दो रथ इति ।
एवं स्कन्धेषु सत्सु भवति सत्त्व इति सम्मतिः ।।" इति।।

"आश्चर्यं भदन्त नाससेन, अद्भुतं, भदन्त नागसेन । अतिचित्राणि प्रश्नप्रतिभानानि विर्सजितानि । यदि बुद्ध अस्थास्यत्, साधुकारं अदास्यत् । 'साधु साधु, नागसेन ! अतिचि ाणि प्रश्नप्रतिभानानि विर्सजितानि" इति ।

हिन्दी अनुवाद

एक समय आयुष्मान् नागसेन जहाँ थे वहाँ राजा मिलिन्द गये । जाने पर आयुष्मान् नागसेन के साथ बहुत प्रसन्न हुए । आनन्द देनेवाली सुसम्बद्ध कथा (समाचार) का आदान-प्रदान करके एक ओर एकान्त में बैठ गये । आयुष्मान् नागसेन ने भी आनन्ददायक व्यवहार से मिलिन्द राजा के चित्त का आरावन किया । तदनन्तर राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से यह कहा—"हे भदन्त ! आप कैसे जाने जाते हैं, आपका क्या नाम है" ? "महाराज ! मैं 'नागसेन' इस रूप से जाना जाता हूँ । महाराज ! मित्र छात्र मुझे नागसेन कहते हैं । मेरे माता-पिता भी मेरा नाम नागसेन, शूरसेन, वीरसेन अथवा सिंहसेन ऐसा करते हैं (रखते हैं) । महाराज ! जो यह नागसेन है, वह नाममात्र का, संज्ञा, समज्ञा, प्रज्ञप्ति, व्यवहार है, न कि यहाँ कोई पृथक् पुद्गल पदार्थ पाया जाता है ।"

तदनन्तर राजा मिलिन्द ने इस प्रकार कहा—हे पाँच सौ यवन, तथा अस्सी हजार भिक्षुओ ! आपलोग सुनें—इस शरीर में पुद्गल नहीं उपलब्ध होता है, ऐसा यह नागसेन कहते हैं । इस बात को स्वीकार करना उचित ही है । तदनन्तर राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से यह पूछा—हे भदन्त नागसेन ! यदि पुद्गल कोई वस्तु नहीं है, तो कौन तुमलोगों को चीवर, पिण्डपात, शयन, आसन, ग्लान, प्रत्यय, औषधि एवं परिष्कार देता है ? कौन भोग करता है ? कौन शील की रचा करता है ? कौन भावों का अनुयोग करता है ? कौन मार्गफल एवं निर्वाण का साक्षात्कार करता है ? कौन प्राणों को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मारता है ? कौन न दिये गये धन को ग्रहण करता है । कौन कामनाओं में स्वतन्त्राचरण करता है । कौन झूठ बोलता है ? कौन शराब पीता है ? कौन पंचानन्तर्यकर्म करता है ? इसलिए कुशल नहीं है । अकुशल नहीं है । कुशल एवं अकुशल कर्मों को करनेवाला एवं करानेवाला नहीं है । पुण्य एवं पाप कर्मों के फल और विपाक नहीं हैं । हे भदन्त नागसेन ! जो तुम लोगों को मारता है, उसके प्राणों का नाश नहीं है । हे भदन्त नागसेन ! तुमलोगों का भी कोई आचार्य नहीं है, कोई उपाध्याय नहीं है । कोई उपसम्पदा नहीं है । हे महाराज ! मुझको मित्र छात्र 'नागसेन' ऐसा कहते हैं, ऐसा जो तुम कहते हो, तो यहाँ नागसेन कौन है ? "क्या भदन्त ! ये केश नागसेन हैं ?" "हे महाराज ! नही" । "क्या रोम नागसेन हैं ?" "नहीं महाराज" । 'नख, दाँत, चर्म, मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थिमज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, फेफड़ा, प्लीहा, फुप्फुस, अँतड़ी, अन्त्रगुण, गर्भ, मल, पित्त, श्लेष्मा, पीब, रुधिर, स्वेद, मेदा, अश्रु, वसा, खेड़ी, नकटी (सिंघाड़िका), लार, मूत्र, मस्तक और मस्तलुङ्ग नागसेन है ?" ऐसा नहीं महाराज । "हे भदन्त ! क्या रूप नागसेन है ?" "ऐसा नहीं महाराज" । "वेदना नागसेन है" ? "ऐसा नहीं महाराज" । "संज्ञा नागसेन है" ? "ऐसा नहीं महाराज" । "संस्कार नागसेन है" ? "ऐसा नहीं महाराज" । "हे भदन्त ! क्या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नागसेन हैं" ? "ऐसा नहीं महाराज" । "हे भदन्त ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान से अन्यत्र नागसेन है" ? "ऐसा नहीं महाराज" । "हे भदन्त ! आपसे बार-बार पूछता हुआ भी उस नागसेन को नहीं समझ पाता हूँ । हे भदन्त ! क्या 'नागसेन' शब्द ही नागसेन है" ? "ऐसा नहीं महाराज" । "यहाँ कौन नागसेन है" ? "हे भदन्त ! तुम असत्य हो, झूठ बोलते हो, नागसेन नहीं है" ।

इसके बाद आयुष्मान् नागसेन ने मिलिन्द राजा को (से) पूछा – 'हे महाराज, क्षत्रियकुमार, तुम अत्यन्त सुकुमार हो । हे महाराज, यह दोपहरी का समय है (अतः) जलती हुई भूमि, जलती हुई बालुका के ऊपर खर (तेज) मिट्टी के कंकण और बालुका का मर्दन करके पैदल आते हुए तुम्हारे पैर दुखते हैं, शरीर क्लान्त हो रहा है, चित्त मलिन हो रहा है, दुःख के साथ कायविज्ञान उत्पन्न हो रहा है ! क्या आप पैदल आये हैं अथवा सवारी से ?' "हे भदन्त ! मैं पैदल नहीं आया हूँ, रथ से आया हूँ" ।

"हे महाराज ! यदि आप रथ से आये हैं तो हमें रथ समझाइये । हे महाराज ! क्या ईसा (हरसा) रथ है" ? 'ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या अक्ष रथ है" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या चक्के रथ हैं" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या रथपंजर रथ है" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या रथदण्ड रथ है" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या जुआ रथ है" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या रस्सियाँ रथ हैं" ? ऐसा नहीं भन्ते" । "क्या कोड़ा रथ है" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "हे महाराज ! क्या ईषा, अच, चक्र, रथपञ्जर, रथदण्ड, जुआ, रस्सी और कोड़ा (ये सब मिलकर) रथ हैं ?" "ऐसा नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भन्ते" । "हे महाराज ! तो फिर क्या ईषा, अक्ष, चक्र, रथपंजर, रथदण्ड, जुआ, रस्सी और कोड़ा आदि से अन्यत्र कहीं रथ है" ? "ऐसा नहीं भन्ते" । "हे महाराज ! आपको बार-बार पूछता हुआ भी मैं रथ नहीं समझ पाता हूँ । क्या (रथ) शब्द ही रथ है ?" "ऐसा नहीं भन्ते" । 'तो क्या रथ है" ? हे महाराज ! तुम असत्य हो, असत्य बोलते हो, कुछ भी रथ नहीं है । हे महाराज ! तुम सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में बड़े राजा हो, तो फिर किससे डरकर असत्य बोल रहे हो ? हे पाँच सौ यवन एवं अस्सी हजार भिक्षुओ, मुझसे सुनो, 'रथ से मैं आया हुआ हूँ' ऐसा यह मिलिन्द राजा कहता है । किन्तु यह पूछने पर कि यदि तुम रथ से आये हो तो मुझे रथ समझाओ, यह नहीं समझा पा रहा है । इसे स्वीकार करना उचित है ? ऐसा कहने पर पाँच सौ यवनों ने आयुष्मान् नागसेन को साधुवाद देकर मिलिन्द राजा से यह पूछा—"हे महाराज, आप समर्थ हैं, आप ही कहें ।" इसके बाद राजा मिलिन्द ने नागसेन को (से) ऐसा कहा—"हे भन्ते नागसेन ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ । ईषा समझकर, अक्ष समझकर, चक्र समझकर, रथपञ्जर और रथदण्ड समझकर रथ ऐसी संज्ञा, समज्ञा, प्रज्ञप्ति, व्यवहार, नाममात्र प्रवर्तित होता है ।"

हे महाराज ! आप ठीक जान रहे हैं । हे महाराज ! इसी प्रकार मेरे लिए भी केश समझकर, रोम समझकर, मस्तक समझकर, रूप समझकर, वेदना समझकर, संज्ञा समझकर, संस्कार समझकर, विज्ञान समझकर, नागसेन ऐसी संज्ञा, समज्ञा, प्रज्ञप्ति, व्यवहार नाममात्र को ही प्रवर्तित होता है । वस्तुतः पुद्गल नहीं ही मिलता है । महाराज ! वज्री भिक्षुणी ने भी भगवान् के सम्मुख यह कहा है—

"जिस प्रकार अंगसमूह रथशब्द से कहा जाता है इसी प्रकार (पाँचों) स्कन्धों के होने पर सत्त्व ऐसा कहा जाता है, यह मेरी सम्मति है" । "हे भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है, अद्भुत है । अत्यन्त विचित्र ज्ञान आपने हमलोगों को दिये हैं । यदि बुद्ध होते तो साधुवाद देते । साधु ! साधु !! नागसेन ! अत्यन्त विचित्र ज्ञान आपने दिये हैं" ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

१

अशोकाभिलेखः

इयं धम्मलिपी देवानं प्रियेन प्रियदसिना आञा लेखापिता इध न किंचि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं न च समाजो कतव्यो। बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानं प्रियो प्रियदसि राजा। अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं प्रिअस प्रियदसिगो राञो।

पुरा महानसम्हि देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो अनुदिवसं बहूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय। से अज यदा अयं धम्मलिपी लिखिता ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो। सोपि मगो न ध्रुवो। एतेऽपि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे।

—गिरनार शिलालेख प्रथम

अयं ध्रमदिपि देवन प्रिअस रञो लिखोपितु हिद नो किचि जिवे अरभितु प्रयुहोतवे नोपि च समज कटव। बहुक हि दोषं समजस देवन प्रियो प्रियद्रशि रय दखति। अस्ति पि च एकतिये समये ससुमते देवन प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो।

पुर महनससि देवनं प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो अनुदिवसो बहूनि प्रणसत-सहस्रनि अरिभियिसु सुपठये। सो इदनि यद अय ध्रमदिपि लिखित तद त्रयो वो प्रण हंञंति मजुर दुवि २ म्रुगो १। सोपि म्रुगो नो ध्रुवं। एतपि प्रण त्रयो पच न अरभिशंति।

—सहबाजगढ़ी शिलालेख प्रथम

अयि ध्रमदिपि देवन प्रियेन प्रियद्रसिन रजिन लिखपित हिद नो किंचि जिवे अरभितु प्रयुहोत विये नो पि च समजे कटविये। बहुक हि दोस समजस देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज दखति। अस्ति पि चु एकतिय समज सधुमत देवन प्रिअस प्रियद्रशिस रजिने।

पुर महनससि देवन प्रियस प्रियद्रशिस रजिने अनुदिवसं बहुनि प्रणसत-सहस्रणि अरभिसु सुपथ्रये। से इदनि अयि ध्रमदिपि लिखित तद तिनि येव प्रणनि अरभियंति दुवे २ मजुर एके १ मृगे। से पि चु मृगे नो ध्रुवं। एतनि पि चु तिनि प्रणनि पज नो अरभिशंति।

—मानसेरा शिलालेख प्रथम

इयं धम्मलिपि देवानं पियेना पियदसिना लेखिता हिदा नो किछि जिवे आलभितु पजोहितविये नो पि चा समाजे कटविये। बहुका हि दोसा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समाजसा देवानं पिये पियदसी लाजा दखति। अथि पि चा एकतिया समाज साधुमता देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने।

पुले महानससि देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने अनुदियसं बहुनि पानसहसानि आलभियिसु सुपठाये। से इदानि यदा इयं धम्मलिपि लेखिता तदा तिनि येवा पानानि आलभियंति दुवे मजुला एके मिगे। सेपि च मिगे नो धुवे। एतानि पि च तिनि पानानि नो आलभियिसंति।

—कलसी शिलालेख प्रथम

इयं धम्मलिपी खपिंगलसि पवतसि देवानं पियेन पियदसिना लाजिना लिखापिता। हिद नो किछि जीवं आलभितु पजोहितविये नो पि च समाजे कटविये। बहुकं हि दोसं समाजसि दखति देवानं पिये पियदसी लाजा। अथ पि चु एकतिये समाजा साधुमता देवानं पियस पियदसिने लाजिने।

पुलुवं महानससि देवानं पियस पियदसिने लाजिने अनुदिवसं बहूनि पानसतसहसानि आलभियिसु सूपथाये। से अज अदा इयं धम्मलिपी लिखिता तिनि येव पानानि आलभियन्ति दुवे मजूला एके मिगे। से पि चु मिगे नो धुवं। एतानि पि चु तिनि पानानि पछा नो आलभियिसंति।

—जौगड शिलालेख प्रथम

संस्कृत अनुवाद

इयं धर्मलिपिर्देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता इह न कश्चिज्जीव आलभ्य प्रहोतव्यः। नापि च समाजः कर्तव्यः। बहुकं हि दोषं समाजे देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा पश्यति। सन्त्यपि च एकत्याः समाजाः साधुमताः देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः। पुरा महानसे देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः अनुदिवसं बहूनि प्राणशतसहस्राण्यालप्स्यत सूपार्थम्। तदद्य यदेयं धर्मलिपिर्लेखिता त्रय एव प्राणा आलभ्यन्ते सूपार्थम् द्वौ मयूरौ एको मृगः। सोपि मृगः न ध्रुवः। एतेऽपि त्रयः प्राणाः पश्चाद् नालप्स्यन्ते।

हिन्दी अनुवाद

इस धर्मलिपि को देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखाया है। यहाँ किसी जीव को मारकर हवन नहीं करना चाहिए। मेला भी नहीं लगाना चाहिए। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में बहुत दोष देखते हैं। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के साधुसम्मत कुछ समाज हैं भी।

पहले देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के रसोईघर में प्रतिदिन सूप बनाने के लिए सैकड़ों हजारों प्राण लिये जाते थे। वह भी आजकल जब से यह धर्मलिपि लिखी गयी है, तीन ही प्राणों का सूप के लिए आलम्भन होता है—दो मोरों का और एक मृग का। उसमें भी मृग का कोई निश्चय नहीं। बाद में इन तीनों का भी आलम्भन नहीं होगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गिरनार-अभिलेखः

अतिकातं अन्तरं बहूनि वाससतानि वधितो एव प्राणारम्भो विहिंसा च भूतानं ञातीसु असंप्रतिपती ब्राह्मणस्रमणानं असंप्रतिपती। त अज देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो धम्मचरणेन भेरीघोसो अहो धम्मघोसो विमानदसणा च हस्तिदसणा च अगिखन्धानि च अञानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्पा जनं। यारिसे बहूहि वाससतेहि न भूतपुवे तारिसे अज वढिते देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो धम्मानुसस्टिया अनारम्भो प्राणानं अविहीसा भूतानं ञातिनं सम्पटिपती ब्राह्मणसमणानं सम्पटिपती मातरि पितरि सुस्रसा थयिर सुस्रसा। एस अञे च बहुविधे धम्मचरणे वढिते वढयिसति चेव देवानं प्रियो प्रियदसि राजा धम्मचरणं इदं। पुत्रा च पोत्रा च प्रपोत्रा च देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो वडयिसन्ति इदं धम्मचरणं आव संवटकपा धम्मम्हि सीलम्हि तिस्टन्तो धम्मं अनुसासिसन्ति।

एस हि सेस्टे कम्मे य धम्मानुसासनं। धम्मचरणे पि न भवति असीलस। त इम्हि अथम्हि वधी च अहीनी च साधु। एताय अथाय इदं लेखापितं इमस अथस वधि युजन्तु हीनि च मा लोचेतव्या। द्वादस वासा भिसितेन देवानं प्रियेन प्रियदसिना राञा इद लेखापितं।

संस्कृत अनुवाद

अतिक्रान्तमन्तरं बहूनि वर्षशतानि वर्धित एव प्राणालम्भो विहिंसा च भूतानां ज्ञातिष्वसम्प्रतिपत्तिः ब्राह्मणश्रमणानामसम्प्रतिपत्तिः। तदद्य देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः धर्माचरणेन भेरीघोषोऽभूत्, धर्मघोषो विमानदर्शनानि च हस्तिदर्शनानि च अग्निस्कन्धानि चान्यानि च दिव्यानि रूपाणि दर्शयित्वा जनम्। यादृशो बहुभिः वर्षशतेन न भूतपूर्वः तादृशोऽद्य वर्धितः देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः धर्मानुशिष्टयनालम्भः प्राणनामविहिंसा भूतानां, ज्ञातीनां सम्प्रतिपत्तिः, ब्राह्मणश्रमणानां सम्प्रतिपत्तिर्मातृपित्रोः शुश्रूषा, स्थविरशुश्रूषाः, एतच्चान्यच्च बहुविधं धर्माचरणं वर्धितं, वर्धयिष्यति चैव देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजेदं धर्माचरणम्। पुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्च देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः वर्धयिष्यन्तीदं धर्माचरणं यावत् संवृतकल्पाद् धर्मेशीले तिष्ठन्तः धर्ममनुशासिष्यन्ति। एतद्धि श्रेष्ठं कर्म यद्धर्मानुशासनम्। धर्माचरणमपि न भवत्यशीलस्य। तदस्मिन्नर्थे वृद्धिश्चाहानिश्च साधुः। एतदर्थमिदं लेखितमस्यार्थस्य वृद्धि युञ्जन्तु हानिश्च मा लोचयितव्या। द्वादशवर्षाभिषिक्तेन देवानांप्रियेण प्रियदर्शिनाराज्ञेदं लेखितम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी अनुबाद

बहुत दिनों पहले की बात है कि सैकड़ों वर्षों तक प्राणियों का वध और हिंसा चलती रही। (फलस्वरूप) प्राणियों की जातियों में तथा ब्राह्मणश्रमणों में (अनेक प्रकार के) विसंवाद (मतभेद) हो गये। सो आज देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण के कारण धर्मघोष, विमानदर्शन, हस्तिदर्शन, अग्निस्कन्ध तथा अन्य दिव्यरूपों को जनता को दिखाकर भेरीघोष हुआ। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन के कारण अनालम्भ (वध का अभाव) तथा प्राणियों की अहिंसा, और प्राणियों की जातियों में ब्राह्मणश्रमणों में मतैक्य, माता-पिता कि शुश्रूषा तथा स्थविरों की शुश्रूषा (आदि) जैसे सैकड़ों वर्षों में नहीं हुए थे, वैसे आज हो रहे हैं। यह और इसी प्रकार के अन्य अनेक-विध धर्माचरण बढ़ाये गये और देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा बढ़ायेगा भी। यही धर्माचरण है। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र इस धर्माचरण को बढ़ाते रहेंगे। धर्म और शील में रहते हुए कल्प-पर्यन्त धर्म का अनुशासन करते रहेंगे।

जो यह धर्म का अनुशासन है, यही श्रेष्ठ कर्म है। शील में विश्वास न करने-वाले का धर्माचरण भी नहीं हो पाता। सो इस मार्ग में वृद्धि और लाभ सुनिश्चित है। इसी प्रयोजन से इसे लिखवाया गया है कि इस अर्थ को वृद्धि हो और हानि कभी न हो। राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इसे लिखाया था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अशोकस्य भब्राभिलेखः

प्रियदसि लाजा मागधे संघं अभिवादे (तू) नं आहा अपाबाधते च फासुविहालतं चा।

विदिते वे भंते आवतके हमा बुधसि धम्मसि संघसी ति गालवे च प्रसादे च।

ए केञ्चि भंते भगवता बुधेन भासिते स्त्रे से सुभासिते वा। एचु खो भंते हमियाये दिसेया हेवं सधम्मे चिलठितिके होसतीति अलहामि हकं तं वतवे।

इमानि भंते धंमपलियायानि विनयसमुकसे अलियवसानि अनागतभयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते। एतानि भंते धंमपलियायानि इछामि किंति बहुके भिखुपाये चा भिखुनिये चा अभिखिनं सुनेयु चा उपाधालेयेयु चा हेवम्मेवा उपासका चा उपासिका चा।

एतेनि भंते इमं लिखापयामि अभिप्रेतं जानंतू ति।

—Bhabra Minor Rock Edict I

संस्कृत अनुवाद

प्रियदर्शी राजा मागधः संघमभिवाद्याह—अपाबाधतां च* स्पर्शं (प्राशु) विहार तां च।

विदितं वः भवन्त,*यावत्तकः (यावत्कः) अस्माकं बुद्धे, धर्मे, संघे इति गौरवञ्च प्रसादश्च।

यत्किञ्चिद् भदन्त, भगवता बुद्धेन भाषितं सत्रं तत् सुभाषितमेव।

यश्च खलु भवन्त, मया द्रष्टव्यः ह्येवं स धर्मः चिरस्थितिको भविष्यतीत्यर्हामि अहकं तद्वक्तुम्। इमे भवन्त धर्मपर्यायाः-विनयसमुत्कर्षः, आर्यवंशाः, अनागत भयानि, मुनिगाथा, मौनेयसूत्रमुपतिष्यप्रश्नः, यश्च राहुलोवादः मृषावादमधिकृत्य भगवता बुद्धेन भाषितः। एतान् भवन्त, धर्मपर्यायान् इच्छामि किमिति बहुको भिक्षुप्रायाश्च भिक्षुण्यश्चाभीक्ष्णं शृणुयुश्चोपधारयेयुश्चैवमेवोपासकाश्चोपासिकाश्च।

एतेन भवन्त, इमं लेखयामि अभिप्रेतं मम जानन्त्विति।

हिन्दी अनुवाद

मगध के रहनेवाले प्रियदर्शी राजा ने संघ को अभिनादन कर स्वस्थ एवं सुखी जीवन को कहा। हे भदन्त, आप जानते हैं कि बुद्ध में, धर्म में, तथा संघ में मेरी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कितनी गौरवबुद्धि और प्रसादबुद्धि है। हे भदन्त, जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है, वह सभी सुभाषित है।

हे भदन्त, जो धर्म मैंने देखा है, वह चिरस्थायी होगा (ऐसा) मैं कह सकता हूँ।

हे भदन्त, ये धर्मपर्याय हैं—विनयसमुत्कर्ष, आर्यवंश, अनागतभय, मुनिगाथा, मौनेयसूत्र, उपतिष्यप्रश्न। इन्हें राहुलवाद और मृषावाद को ध्यान में रखकर भगवान् बुद्ध ने कहा है। हे भदन्त, इन धर्मपर्यायों को मैं चाहता हूँ कि प्रायः सभी भिक्षु और भिक्षुणियाँ बार-बार सुनें और धारण करें तथा इसी प्रकार उपासक तथा उपासिकाएँ भी। हे भदन्त! इसीलिए मैं इसको लिखवा रहा हूँ, मेरे अभिप्रेत को जानें।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सोहगौराताम्रपत्रम्

सवतियान महमगन ससने मनवसतिकड सिलमाते उसगमे व एते दवे कोठगलनि ति (य) वेनिमाथुल-चचुमोदाम-भलकन वल कयियति अतियायिकय नो गहितवय।

संस्कृत अनुवाद

श्रावस्त्यां महामार्गाणां (महामात्राणां) शासनं मानवाशीतिकटां सीरिमात्रेभ्यः (श्रीमान्) ऊष्मागमे (वंशग्रामे) एव एतौ द्वौ कोष्ठागारौ। त्रिकवेणीमाथुरचञ्चुमोदामभल्लकानां (भल्लकेभ्यः ग्रामेभ्यः) वरं कार्येते अत्यायिकाय। न गृहीतव्यम्।

हिन्दी अनुवाद

श्रावस्ती में महामात्र के मानवाशीति शिविर से उपज्ञा जारी हुई है। केवल खेतिहरों के लिए सूखे की स्थिति में (उपभोग के लिए) ये दोनों कोठार बनाये गये। त्रिकवेणी, माथुर, चञ्चुमोदाम, भल्लकगाँवों के लिए संकटकाल के लिए बनाये गये। इसको खर्च नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी :—त्रिकवेणी, माथुर, चञ्चुमोदाम, भल्लक आदि ने बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि ये सब गाँवों के नाम हैं या व्यक्तियों के या वस्तुओं के। उसी प्रकार **उसगम** का अर्थ कुछ लोगों ने वंशग्राम किया है (**बांसगांव** नामक गाँव सोहगौरा से ६ मील पश्चिम है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हेलियोडोरस्य बेसनगराभिलेखः

देवदेवस वासुदेवस गरुडध्वजे अयं
कारिते इ (अ) हेलिओडोरेण भाग—
वतेन दियस पुत्रेण तक्खसिलाकेन
योनदूतेन (आ) गतेन महाराजस
अंतलिकितस उपता सकासं रञो
कासीपुत्रस भागभद्रस त्रातारस
वसेन चतुदसेंन राजेन वधमानस ।
त्रिनि अमुत-पदानि (इअ) (सु-) अनुठितानि
नेयंति (स्वगं) दम चाग अप्रमाद ॥

संस्कृत अनुवाद

देवदेवस्य वासुदेवस्य गरुडध्वजः अयम् कारितः इ (ह) हेलियोडोरेण भागवतेन दियस्पुत्रेण तक्षशिलाकेन यवनदूतेन (आ) गतेन महाराजस्य अन्तलिखितस्य उपान्तात् सकाशं राज्ञः काशीपुत्रस्य भागभद्रस्य त्रातुः वर्षेण चतुर्दशेन राज्येन वर्धमानस्य ।

त्रीणि अमृतपदानि (इह) स्वनुष्ठितानि नयन्ति (स्वर्गम्)–दमः, त्यागः, अप्रमादः ।

हिन्दी अनुवाद

चौदहवें वर्ष में राज्य करने के कारण (शासनकाल के चौदहवें वर्ष में) अभिवृद्ध रक्षक राजा काशीपुत्र भागभद्र के साथ महाराज अन्तलिखित के समीप यवन दूत के रूप में आये हुए, तक्षशिला के रहनेवाले दिवस् के पुत्र भागवत हेलियोडोर ने देवताओं के देवता वासुदेव का वह गरुड़ध्वज बनवाया ।

इस ध्वज पर तीन अमृत-पद हैं जिनका अनुष्ठान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है (वे हैं) दम, त्याग और अप्रमाद ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

खारवेलस्य हाथीगुम्फागुहाभिलेखः

नमो अरहंतानं। नमो सव-सिधानं।

अइरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराज-वंसवधनेन पसथसुभलखनेन चतुरंत-लुठ (ण)-गुणउपितेन कलिङ्गाधिपतिना सिरिखारवेलेन पंदरस-वसानि सिरि-[कडार]-सरीरवता कीडिता कुमार-कीडिक। ततो लेखरूप-गणना-ववहारविधिविसारदेन सव-विजावदातेन नव-वसानि योवरजं पसासितम्। संपुंण-चतुवीसतिवसो तदानि वधमानसेसयो-वेनाभि-विजयो ततिये कलिगराज-वंसे पुरिस-युगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति।

अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुरपाकारनिवेसनं पटिसंखार-यति कलिगनगरि खिबी [र इ-] सितल तडाग-पाडियो च बंधापयति सवूयान-प [दि]-संथपनं च कारयति पनतिसाहि हत-सहसेहि। पकतियो च रंजयति।

दुतियो च वसे अचितयिता सातकंनिँ पछिम-दिसं हय-गज-नर-रध-बहुलं दंडं पठापयति। कण्हबेंणा-गताय च सेनाय वितासिति असिकनगरम्।

ततिये पून वसे गन्धव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित-संदसनाहि उसव समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिम्.......

Hathigumpha Cave Inscription.

संस्कृत अनुवाद

नमोऽर्हद्भ्यः। नमः सर्वसिद्धेभ्यः।

ऐलेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेदिराज-वंशवर्धनेन प्रशस्त-शुभलक्षणेन चतुरन्तलुठनगुणोपेतेन कलिङ्गाधिपतिना श्रीखारवेलेन पञ्चदशवर्षाणि श्रीकडारशरीरवता क्रीडिता कुमारक्रीडा। ततः लेखरूपगणनाव्यवहारविधिविशारदेन सर्वविद्यावदातेन नववर्षाणि यौवराज्यम् प्रशासितम्। संपूर्णचतुर्विंशतिवर्षः तदानीं वर्धमानशैशवः वेन्याभिविजयः तृतीये कलिङ्गराजवंशे पुरुषयुगे महाराजाभिषेचनं प्राप्नोति।

अभिषिक्तश्च प्रथमे वर्षे वातविहतगोपुरप्राकारनिवेशनं प्रतिसंस्कारयति कलिङ्ग-नगरे खिबि-शीतल-तडाग-वाटश्च बन्धयति सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापनं च कारयति पञ्च-त्रिंशता सहस्रेण। प्रकृतीश्च रञ्जयति।

द्वितीये च वर्षे अचिन्तयित्वा शातकर्णिं पश्चिमदिशं हयगजनररथबहुलं दण्डं प्रस्थापयति। कृष्णवेणां नदीं गतायां च सेनायां वित्रासयति असिकनगरं।

तृतीये पुनः वर्षे गान्धर्ववेदबुधः दम्पनृत्य-गीत-वादित्र-सन्दर्शनाभिः उत्सवसमाज-करणैश्च क्रीडयति नगरीम्... ...

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी अनुवाद

अर्हतों को नमस्कार है। सभी सिद्धों को नमस्कार है।

इलावंशी महाराज महामेघवाहन, चेदिराज के वंश को बढ़ानेवाले, प्रशंसनीय शुभलक्षणों से युक्त, चारों दिशाओं से लुण्ठित (हठात् संचित) गुणों से युक्त कलिंगाधिपति, शोभा से युक्त पीले-पीले (गौर वर्ण) शरीरवाले, श्री खारवेल ने कुमारक्रीड़ा नामक खेल पन्द्रह वर्ष तक खेला। उसके बाद लेख, रूप, गणना, व्यवहार, विधि में विशारद, सम्पूर्ण विद्याओं के जानकार, उन्होंने नौ वर्ष तक युवराज के रूप में प्रशासन किया। उस समय चौबीस वर्ष के पूर्ण हो जाने पर युवावस्था के प्राप्त कर लेने पर, वेणु के पुत्र पृथु की तरह विजय करने वाले खारवेल, तृतीय राजवंश कलिंग में दो पुश्त, बीतने पर, महाराजा पद पर अभिषिक्त हुए।

अभिषिक्त होते ही प्रथम वर्ष में उन्होंने आँधी-पानी में क्षत-विक्षत गोपुर और परकोटों की मरम्मत करायी तथा कलिंग नगरी में खिबिर और ऋषितल तालाबों की भीटें बँधवायीं। समस्त उद्यानों का फिर से उद्धार कराया तथा इन सब में पैंतीस हजार मुद्राएँ खर्च हुईं। उसने प्रजा का रंजन प्रारम्भ किया।

द्वितीय वर्ष में एकाएक बहुत ज्यादा तैयारी न करके पश्चिम दिशा में शातकर्णी के ऊपर आक्रमण करने के लिए अश्व, गज, पदाति, रथ से युक्त चतुरंगिणी सेना भेजी। यह सेना कृष्णवेणा नदी पर पहुँची और इसने असिक नगर को चारों ओर से घेर लिया।

तृतीय वर्ष में गन्धर्व विद्या में निष्णात राजा ने नगरी में पराक्रमपूर्ण नृत्य, गीत, वाद्य आदि तथा उत्सव एवं समारोहों के आयोजनों के द्वारा नगरी का मनोरंजन कराया।

टिप्पणी—१. डप—मोनियर विलियम्स ने √डप् का अर्थ to accumulate दिया है तथा चाटुर्ज्या ने 'दप' को √ डम्फ से व्युत्पन्न मानकर Heroic dance अर्थ दिया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वकनपतेः मथुराभिलेखः

सम्वत्सरे २०+८ गुर्प्पिये दिवसे १ अयं पुण्य-शाला प्राचिनीकन सरुकमान-पुत्रेण खरासलेरपतिन वकन-पतिना अक्षयनीवि दिन्न।

तुतो वृद्धितो मासानुमासं शुद्धस्य चतुदिशि पुण्यशालायं ब्राह्मण-शतं परिविषितव्यम्।

दिवसे दिवसे च पुण्य-शालाये द्वार-मूले धारिये साद्यं सक्तना आढका ३ ल्वृण-प्रस्थो १, शक्त-प्रस्थो १, हरितकलापक-घटक ३, मल्लक ५, एतं अनाधनां कृतेन द [ातव्य] बभक्षितन पिबसितन।

य चत्र पुण्य तं देवपुत्रस्य षाहिस्य हुविष्कस्य। येषा च देवपुत्रो प्रियः तेषामपि पुण्य भवतु। सरवायि च पृथिवीये पुण्य भवतु।

अक्षयनिवि दिन्ना.......[र] ाक-श्रेण [ि] वे पुराण शत ५००+५० समित कर श्रेणी [-ये च] पुराण-शत ५००+५०।

संस्कृत अनुवाद

संवत्सरे २०+८ गुर्पिए (मासे) दिवसे १ (रविवारे) इयं पुण्यशाला प्राचीनिकेन सरखमानपुत्रेण खरासलेरपतिना वकनपतिना *अक्षयनीवी (अक्षयनिधि) दत्ता।

ततः वृद्धितः मासानुमासं शुद्धस्य चतुर्दश्यां पुण्यशालायां ब्राह्मणशतं परिवेषयितव्यं।

दिवसे दिवसे च पुण्यशालायाः द्वारमूले धार्याः सद्यः सक्तूनाम् आढकाः ३ लवणप्रस्थः १ शुक्तप्रस्थः १ हरितकलापकघटकाः ३ मल्लकाः ५ (इति) एतद् अनाथानां कृते दातव्यं बुभुक्षितानां पिपासितानां। यच्चात्र पुण्यं तद् देवपुत्रस्य शाहिनः (शासिनः) हुविष्कस्य। येषां च देवपुत्रः प्रियः, तेषामपि च पुण्यं भवतु। सर्वस्याश्च पृथिव्याः पुण्यं भवतु *अक्षयनीवी (अक्षयनिधिः) दत्ता..........पुराणशतं ५००+५० समितकरश्रेण्यां च ५००+५०।

हिन्दी अनुवाद

सम्वतसर अट्ठाईस में गुर्पयुस महीने में रविवार के दिन यह पुण्यशाला प्राचीनिक नाम के सरक्मान के पुत्र खरासलेर के अधिपति वकनपति ने यह अक्षय-निधि दान की।

उसके व्याज से प्रतिमास शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को इस पुण्यशाला में सौ ब्राह्मणों को परसकर भोजन कराया जायगा।

प्रतिदिन पुण्यशाला के द्वारा अनाथ, भूखे और प्यासे लोगों को देने के लिए इतनी चीजें रखी जायेंगी—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टटका सतुआ के तीन आढक (एक आढक=२० सेर), एक सेर नमक, एक सेर सूखा मसाला, तीन घड़ा मसूर और मूँग की दाल, पाँच मिट्टी के घड़े।

इससे जो पुण्य होगा, वह देवपुत्र शाही हुविष्क को मिले। जिनको देवपुत्र प्रिय हैं, उनको भी मिले तथा समस्त पृथ्वी को यह पुण्य मिले। यह अक्षयनीवी न्यास के रूप में ५५० स्वर्णमुद्रा.....श्रेणी को दी गयी। ५५० स्वर्णमुद्रा चक्कीवाले श्रेणी को दी गयी है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नासिकगुहाभिलेखः

सिद्धं। गोवधने अमचस सामकस देयो राजाणितो।

रञो गोतमिपुतस सातकणिस महादेवीय च जीवसुताय राजमातुय वचनेन गोवधने अमचो सामको अरोग वतव ततो एव च वतवो।

एथ अम्हेहि पवते तिरण्हुम्हि अम्हधमदाने लेणे पतिवसतानं पवजितान भिखून गा [मे] कखडीसु पुव खेतं दत। त च खेत [न] कसते सो च गामो न वसति।

एवं सति य दानि एथ नगर-सोमे राजकं खेतं अम्हसतकं ततो एतेस पवजितान भिखूनं तेरण्हुकानं दद [म] खेतस निवतण-सतं १००। तस च खेतस परिहार वितराम अपावेस अनोमस अलोण-खादक अरठ-सविनयिक सव-जात-पारिहारिक च।

एतेहि न परिहारेहि परिहरेथ। एत चस खेतपरीहा [रे] च एथ निबधापेथ।

अवियेन आणत।

पटिहा [र]-रखिय लोटाय छतो लेखो।

सवछरे २० + ४ वासान पखे ४ दिवसे पछमे ५। सुजिविना कटा। निबधो निबधो सवछरे २० + ४ गिहान पखे २ दिवसे १०।

(Nasik Cave Inscription of Gautamiputra Satakarni, Mother)

संस्कृत अनुवाद

सिद्धम्। गोवर्धने अमात्याय श्यामकाय दैवम् राज्ञाज्ञप्तम्। राज्ञः गौतमीपुत्रस्य शातकर्णेः महादेव्याश्च जीवसुतायाः राजमातुः वचनेन गोवधने अमात्य! श्यामक! आरोग्यं वक्तव्यम् तत एव च वक्तव्यम्।

अत्र अस्माभिः पर्वते त्रिसानौ अस्मद्धर्मदाने लयने प्रतिवसतां प्रव्रजितानां भिक्षूणां (कृते) ग्रामे (ग्रामेषु) कफडीसु पूर्वक्षेत्रं दत्तम्। तत् च क्षेत्रं न कृष्यते, स च ग्रामो न वसति (उष्यते)।

एवं सति यद् इदानीम् अत्र दगरसीम्नि राजकीयं क्षेत्रम् अस्मत् शतकं तत एतेभ्यः प्रव्रजितेभ्यः भिक्षुभ्यः त्रिसानुकेभ्यो दद्मः क्षेत्रस्य निर्वर्तनशतम् १००।

तस्य च क्षेत्रस्य परिहारं वितरामः अप्रावेश्यं अनावमर्श्यम् अलवणखातकं अराष्ट्रसविनयकं सर्वजातपारिहारिकं च।

एतैः परिहारैः न परिहरत। एतच्चास्य क्षेत्रपरिहारान् च अत्र निबन्धयत। अबीजेन आज्ञप्तम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रतिहार्या रक्ष्या लोटया क्षतः लेखः। संवत्सरे २० + ४ वर्षाणां पक्षे ४ दिवसे पञ्चमे। सुजीविना कृतः।

निबन्धो निबद्धः संवत्सरः २० + ४ ग्रीष्माणां पक्षे २ दिवसे १०।

हिन्दी अनुवाद

सिद्धम्। गोर्धवन में (अधिष्ठित) अमात्य श्यामक के लिए यह राजकीय आज्ञा है। राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि की महादेवी तथा चिरञ्जीवी पुत्रोंवाली राजमाता के कहने से गोवर्धन में रहने वाले अमात्य श्यामक! (तुम्हारा) कुशल हो। इसके पश्चात् कहना है कि—

इसके पहले हमने तीन शिखरवाले पर्वत पर अपने धर्मादा से बनवायी गयी गुफा में रहनेवाले प्रव्रजित भिक्षुओं के लिए ककड़ी खित्ते में गाँवों में खेत दिया था: वह खेत जोता नहीं जाता और वह गाँव बसा नहीं है। इस दशा में अब इस समय नगर की सीमा में ही हम अपना राजकीय खेत (सरकारी सीर) त्रिकूट पर रहनेवाले इन प्रव्रजित भिक्षुओं को सौ निर्वर्तन (खेत का एक परिमाण) दे रहे हैं, और उस खेत को हम इतने प्रकार की छूट दे रहे हैं—इसको कोई बेदखल नहीं कर सकेगा, इस पर कोई बलात् कब्जा नहीं कर सकेगा, इसमें नमक खोदने पर कोई कर नहीं लगेगा, इसमें राष्ट्र का और कोई शुल्क नहीं लगेगा और अन्य सभी प्रकार की छूट भी इसे मिलेगी।

इन छूटों से (इस आज्ञा के अनुसार इनको) मुक्त नहीं मानना और इस (दान-पत्र) में इसे और इन छूटों को निबद्ध (लिपिबद्ध) करा देना। यह आज्ञा बिना किसी कारण (आवेदन पत्र आदि) के जारी की गयी है। इस आज्ञा को प्रतिहारी रक्षिका लोटा ने लिपिबद्ध किया। संवत्सर २४ की वर्षाऋतु के चौथे पक्ष के पाँचवें दिन सुजीवी ने (दानपत्र) प्रस्तुत किया (किन्तु) २४ सम्वत्सर की ग्रीष्मऋतु के दूसरे पक्ष के दसवें दिन यह निबन्ध तैयार किया जा चुका था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कीर्तिशर्मणः पत्रम्

प्रियदर्शन चोझ्ब्रो क्रनय षोठंघ लियपेयज च ओगु क्रितिशर्म अरोग्य परिप्रोछति पुनपुनो बहो अप्रमेयो एवं च ज़च ।

प्रथमदरो इमदे मग़ेन पग़ोष च हस्तंमि लेख प्रहुड प्रहिदेमि । तदे ञदर्थ भविदवो । अवि पेत अवनम्मि पल्यि परुत्रषि-शेस यं च इम वर्षि पल्यि तह ज़र्वस्पोर तोंमिहि ज़ध इश विज़जिदवो । यति तदे पुरिम पश्चिम विज़जिष्यतु पंर्थमि परज़ भविष्यति । तुओ षोठंघ लियपेय तनु-गोठदे ब्योषिशसि नधन भग़ेन ।

यं च भुम नवक अंनेन घ्रिद अतिवहो क्रिनिदवो इश प्रहदवो । वेग़ किलिम स्त्रियन पल्यि भुम नवक अं स्पोर विज़जितवो ।

अवि पल्यि उट तेनेव ज़ध इश विज़जितवो । म इंचि तोंगन परिदे उट विथिष्यतु । तज़ उट प्रचेय रयसछि लिहिदग़ क्रिदग़ लिविस्तरंमि अनतिलेख अत्र गद ।

तहि चोझ्बो क्रयनज़ लिहमि । एत कर्यमि तुओ चित कर्तव्य । एष लियपेय न चित करेति । यो पुन तहि कर्यंनि हछंति शछ्यमि अहो करंनय । यो अत्र शुभाशुभज प्रवृति हछति एमेत्र लेहरग़ज़ हस्तंमि लेख इश प्रहतवो । यो इश वर्तमान लियंसुअज़ परिदे ञदर्थ भविदवो ।

(Niya Documents From Chinese Turkestan)

संस्कृत अनुवाद

प्रियदर्शनचोझ्वं क्रनयं शोष्ठङ्ग (कराधिकारिणं) लियपेयसं च ओगं (महाधिकारिणं) कीर्त्तिशर्मा आरोग्यं परिपृच्छति पुनः पुनः बहु अप्रमेयम् एवं च स च ।

प्रथमतरं अस्मात् मगनस्य पगोहस्य च हस्ते लेखं प्राभृतं प्रहितोऽस्मि ।

तस्मात् ज्ञातार्थो भवितव्योऽपि पेत (नाम) आपणे वलिः परुद्धर्षशेषः यच्चास्मिन्वर्षे वलिः तत्सर्वः स्फुरेण (शीघ्रं) तोम्यिभिः सह इह विसर्जयितव्यः ।

यदि तस्मात् पूर्वम् पश्चिमं क्रमेण विसर्जयिष्यति* (विसर्जयिष्यते) पथि परास्यं भविष्यति ।

त्वं शोष्ठङ्ग लियपेयः (स्वगोष्ठात्) व्यवलक्ष्यसि । नद्धानां भागेन (खण्डशः) ।

यच्च भूमिनवकान्नेन घृतम् अतिबहुक्रेतव्यमिह प्रहातव्यम् । *वेगकिलिमस्त्रियां

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(विधवा स्त्रियां) बलिः भूमिनवकान्नं स्फुटं विसर्जयितव्यमपि बल्युष्ट्रः तेनैव सह इह विसर्जयितव्यः ।
मा ईञ्जितत्तुङ्गानां (अधिकारी) परितोः उष्ट्रः विष्ठिस्यति* (विष्ठास्यति) ।।
तस्योष्ट्रं प्रतीत्य राजसाक्षिकं लिखितककृतकलिपिविस्तरे
आज्ञप्तिलेखोऽत्र गतः ।
तुभ्यं चोज्बक्नयाय लिखामि ।
एतस्मिन्कार्ये त्वं (त्वया) चित्तं कर्त्तव्यम् ।
एष लियपेयः न चित्तं करोति ।
यः पुनस्तत्र कार्ये आस्ते (आक्षियति*) शक्ष्याम्यहं करणाय ।
याऽत्र शुभाशुभयोः प्रवृत्तिः आस्ते एवमेव लेखहारकस्य हस्ते
लेखः इव प्रहातव्यः ।
य इह वर्तमानः लियञ्शुवस्य परितः ज्ञातार्थः भवितव्यः ।।७।।

हिन्दी अनुवाद

प्रियदर्शन चोज्ब क्नय, सोष्ठंग (कराधिकारी) लियपेय ओग (महाधिकारी) का कुशल कीर्तिशर्मा पूछता है (और) बार-बार अपरिमित (कुशल कामना करता है) । पहले तो मैं इस मगन और पगोह के हाथ से प्रस्तुत लेख और भेंट भेज रहा हूँ । उससे अवगत होना तथा पेत नामक बाजार में परसाल की बकाया बलि (कर) और इस साल की वसूल की गयी बलि—यह सब शीघ्र ही इसके साथ लगनेवाले अतिरिक्त कर तोम्पि के साथ यहाँ भेज देना । यदि उसके पहले या उसके बाद भेजोगे, अर्थात् किस्तों में भेजोगे, तो रास्ते में (सम्भवतः) लूट लिया जा सकता है । और तुम सोष्ठंग लियपेय अपने कोठार से किस्त-किस्त में इतनी चीजें—जो नया अन्न तैयार हो उसे और अधिक मात्रा में घी खरीदकर-यहाँ भेजना । विधवा स्त्रियों से कर और नया अन्न वसूल कर तुरन्त भेजना । कर के रूप में जो ऊँट मिलें उसके साथ ही यहाँ भेजना । किसी भी तरह तुंग अधिकारियों से ऊँट को दूर रखना । उस ऊँट के विषय में राजा की मुद्रा से अंकित लिखित पत्र विस्तार में तैयार करके यहाँ से जा चुका है । अब मैं चोज्ब क्नय को लिख रहा हूँ । इस कार्य में तुम चित्त लगाना । यह लियपेय मन लगाकर कार्य नहीं करता है । जो इस कार्य से सम्बद्ध हैं उनसे जवाब लेने में मैं समर्थ हूँ ।

यहाँ के शुभ-अशुभ समाचार के बारे में पत्रवाहक से जानना । इसी के हाथ पत्र भेजना । जो यहाँ लियशुव के सम्बन्ध में समाचार है, वह भी पत्रवाहक से जान लेना ।

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

२

साहित्यिक-प्राकृत

(महाराष्ट्री)

गाहा-सत्तसई

उअ णिच्चलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेतइ वलाआ ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ संखसुत्ति व्व ॥ १,४ ॥
सहि ईरिसि व्विअ गई मा रुव्वसु तिरिअवलिअमुहअन्दं ।
एआणँ बालबालुंकितन्तुकुडिलाणं पेम्माणं ॥ १,१० ॥
पाअवडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहत्तम्मि ।
दहमण्णुदुण्णिआएँ वि हासो घरिणीएँ णेक्कन्तो ॥ १,११ ॥
रंधणकम्मणिउणिए मा जूरसु, रत्तपाडलसुअन्धम् ।
मुहमारुअं पिअन्तो घूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥ १,१४ ॥
अमअमअ गणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द दे छिवसु ।
छित्तो जेहँ पिअअमो ममं पि तेहिं व्विअ करेहिं ॥ १,१६ ॥
पिअविरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइं ।
जीएँ तुमं कारिज्जसि तीएँ णमो आहिजाईएँ ॥ १,२४ ॥
अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाइँ संभरन्तीए ।
अहिणवमेहाणँ रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥ १,२९ ॥
आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं वि होइ पुरिसस्स ।
तं मरणं अणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होइ ॥ १,४२ ॥
विरहाणलो सहिज्जइ आसबन्धेण वल्लहजणस्स ।
एक्कग्गामवासो माए मरणं विसेसेइ ॥ १,४३ ॥
थोअं पि ण णीसरई मज्झण्णे उह सरीरतललुक्का ।
आअवभएण छाई वि पहिअ ता किं ण वीसमसि ॥ १,४९ ॥
सुहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्तो ।
उअआरअ जर जोअं पि णेन्त ण कआवराहोसि ॥ १,५० ॥
पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चक्खदिट्ठिविलिअस्स ।
उअअस्स व आविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ १,५३ ॥
दिढमण्णुदूणिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ओसरइ बालुआमुट्ठि व्व माणो सुरसुरन्तो ॥ १,७४ ॥
मुहमारुएण तं कण्ह गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो।
एताणँ बल्लवीणं अण्णाणं वि गोरअं हरसि ॥ १,८९ ॥
दिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणलो सहिओ।
कज्जाइं व्विअ गरुआइँ मामि को वल्लहो कस्स ॥ १,९७ ॥
कमलाअरा ण मलिआ हंसा उड्डाविआ ण अ पिउच्छा।
केणॉवि गामतडाए अब्भं उत्ताणअं व्वूढम् ॥ २,१० ॥
कइअवरहिअं पेम्मं णत्थि व्विअ माम माणुसे लोए।
अह होइ कस्स विरहो विरहे होत्तम्मि को जीअइ॥ २,२४ ॥
अहअं लज्जालुइणी तस्स अ उग्गच्छराइँ पेम्माइं।
सहिआअणो वि णिउणो अलाहि किं पाअराएण ॥ २,२७ ॥
रूअं अच्छीसु थिअं फरिसो अंगेसु जम्पिअं कण्णे।
हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ २,३२ ॥
दूइ तुमं विअ कुसला कक्खउमउआइं जाणसे बोल्लुं।
कण्डूइअपण्डुरं जह ण होइ तह तं करेज्जासु ॥ २,८१ ॥
सरए महद्धदाणं अन्ते सिसिराइँ वाहिरुह्णाइं।
जाआइं कुविअसज्जणहि अअसरिच्छाइँ सलिलाइं ॥ २,८६ ॥
अज्जव्वेअ पउत्थो अज्ज व्विअ सुण्णआइँ जाआइँ।
रत्थामुहदेउलचत्तराइँ अम्हं च हिअआइं ॥ २,९० ॥
फुट्टन्तेण व्वि हिअएण मामि कह णिव्वरिज्जए तम्मि।
आदंसे पडिबिम्बं व्विअ जम्मि दुःखं ण संकमइ ॥ ३,४ ॥
पासासङ्की काओ केच्छति दिण्णं पि पहिअघरणोए।
ओअन्तकरअलो गलिअवलअमज्झट्ठिअं पिण्डं ॥ ३,५ ॥
ओहिदि अहागमासंकिरीहिं सहिआहिं कुड्डुलिहिआओ।
दोतिण्णि तहि विअ चोरिआएँ रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ३,६ ॥
अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए।
पढम व्विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ ॥ ३,८ ॥
पुट्ठि पुससु किसोअरि पडोहरङ्कोल्लपत्तचित्तलिअं।
छेआहि दिअरजाआहि उज्जुए मा कलिज्जिहसि ॥ ४,१३ ॥
दढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कुतो।
राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥ ४,१९ ॥
सूइज्जइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण।
धूमकविलेण परिविरलतन्तुना जुण्णवडएण ॥ ४,२९ ॥
वसणम्मि अणुव्विग्गा विहवम्मि अगव्विआ भए धीरा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ४,८० ॥
मरगअसूईविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअग्गीओ ।
मोरो पाउसआले तणग्गलग्गं उअअबिंदुं ॥ ४,९४ ॥
सुप्पउ तइओ विगओ जामोत्ति सहिओ कीस मं भणह ।
सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तुं सुअह तुम्हे ॥ ५,१२ ॥
चावो सहासरलं सिच्छिवइ सरं गुणम्मि वि पडन्तं ।
वङ्कस्स उज्जुअस्स अ संबंधो किं चिरं होइ ॥ ५,२४ ॥
कत्थ गअं रइबिंबं कत्थ पणट्ठाओ चन्दताराओ ।
गअणे वलाअपन्ति कालो होरं व कड्ढेइ ॥ ५,३५ ॥
जइ भमसि भमसु एमेअ कण्ह सोहग्गःव्वरो गोट्ठे ।
महिलाणं दोसगुणे वि आरक्खमो अज्ज वि ण होसि ॥५,४७॥
तुह दंसणे सअण्हा सद्दं सोऊण णिग्गदा जाइं ।
तइ वोलीणे ताइं पआइँ बोढव्विआ जाआ ॥ ६,५ ॥
जं जं पलएमि दिसं परओ लिहिअ व्व दीससे तत्तो ।
तुह पडिमापडिवाडि वहइ व्व सअलं दिसाअक्कं ॥ ६,३०॥
पङ्कमइलेण छीरेक्कपाइणा दिण्ण जाणुवडणेण ।
आणन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण व्व सालिछेत्तेण ॥ ६,६७ ॥
वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व लिक्खिए लेहे ।
तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ६,७१ ॥
दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिं घिट्टोसि पत्थरे तावा ।
जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ॥ ७,२७ ॥
कमलं मुअन्त महुअर पिक्ककइत्थाणं गन्धलोहेण ।
आलेक्खडड्डुअं पामरो व्व छिविऊण जाणिहिसि ॥ ७,४१ ॥
गिज्जन्ते मङ्गलगाइआहि घरगोत्तदिण्णकण्णाए ।
सोउं व णिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ७,४२ ॥
जं जं आलिहइ मणो आसावट्टीहिं हिअअफलअम्मि ।
तं तं बालो व्व विही णिहुअं हसिऊण पम्हुसइ ॥ ७,५६ ॥
उअ सिन्धवपव्वअसच्छहाइँ धुअतूलपुञ्जसरिसाइं ।
सोहन्ति सुअणु मुक्कोअआइं सरए सिअब्भाइं ॥ ७,७९ ॥
मज्झे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिक्खिल्लं ।
गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअं ॥ ७,८२ ॥

संस्कृत अनुवाद

(* पश्य) पश्य, निश्चलनिःस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका ।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥ १,४॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्वलितमुखचन्द्रम् ।
एतेषां बालकर्कटीतन्तुकुटिलानां प्रेम्णाम् ॥ १,१० ॥
पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे समारुहति ।
दृढमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ॥ १,११ ॥
रन्धनकर्मनिपुणिके मा क्रुध्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम् ।
मुखमारुतं पिबन् धूमायते शिखी न प्रज्वलति ॥ १,१४ ॥
अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।
स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥ १,१६ ॥
प्रियविरहोऽप्रियदर्शनञ्च गुरुके द्वेऽपि दुःखे ।
यया त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥ १,२४ ॥
अद्य मया तेन विनानुभूतसुखानि संस्मरन्त्या ।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ॥ १,२९ ॥
आरभमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीर्मरणमपि भवति पुरुषस्य ।
तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ॥ १,४२ ॥
विरहानलः सह्यत आशाबन्धेन वल्लभजनस्य ।
एकग्रामप्रवासो मातर्मरणं विशेषयति ॥ १,४३ ॥
स्तोकमपि न निःसरति मध्याह्ने पश्य शरीरतललीना ।
आतपभयेन च्छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥ १,४९ ॥
सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।
उपकारक ज्वर जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽसि ॥ १,५० ॥
प्रेम्णो विरोधितसन्धितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य ।
उदकस्येव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥ १,५३ ॥
दृढमन्युदूनयापि गृहीते दयिते पश्यतानया ।
अपसरति बालुकामुष्टिरिव मानः सुरसुरायमाणः ॥ १,७४ ॥
मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।
एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥ १,८९ ॥
दृष्टाश्रुता आघ्राता सुरा दक्षिणानिलः सोढः ।
कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को वल्लभः कस्य ॥ १,९७ ॥
कमलाकरा न मृदिता हंसा उड्डायिता न च पितृष्वसः ।
केनापि ग्रामतडागे अभ्रमुत्तानितं क्षिप्तम् ॥ २,१० ॥
कैतवरहितं प्रेम नास्तीव मातुलानि मानुषे लोके ।
अथ भवति कस्य विरहो विरहे भवति को जीवति ॥ २,२४ ॥
अहं लज्जालुस्तस्य चोन्मत्तसराणि प्रेमाणि ।
सखीजनोऽपि निपुणोऽपेहि किं पादरागेण ॥ २,२७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रूपमक्ष्णोः स्थितं स्पर्शोऽङ्गेषु जल्पितं कर्णे ।
हृदयं हृदये निहितं वियोजितं किमत्र दैवेन ॥ २,३२ ॥
दूति त्वमेव कुशला कर्कशमृदुकानि जानासि वक्तुम् ।
कण्डूयितपाण्डुरं यथा न भवति तथा तं करिष्यसि ॥ २,८१ ॥
शरदि महाह्रदानामन्तःशिशिराणि बहिरुष्णानि ।
जातानि कुपितसज्जनहृदयसदृक्षाणि सलिलानि ॥ २,८६ ॥
अद्यैव प्रोषितोऽद्यैव शून्यकानि जातानि ।
रथ्यामुखदेवकुलचत्वराण्यस्माकञ्च हृदयानि ॥ २,९० ॥
स्फुटतापि हृदयेन मातुलानि कथं निवेद्यते तस्मिन् ।
आदर्शे प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति ॥ ३,४ ॥
पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।
उपान्तकरतलावगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥ ३,५ ॥
अवधिदिवसागमाशङ्किनीभिः सखीभिः कुड्यलिखिताः ।
द्वित्रास्तत्रैव चोरिकया रेखाः प्रोञ्छयन्ते ॥ ३,६ ।
अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया ।
प्रथम एव दिवसार्धे कुड्य रेखाभिश्चित्रितम् ॥ ३,८ ॥
पृष्ठं प्रोञ्छ कृशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रचित्रितम् ।
विदग्धाभिर्देवरजायाभि ऋजुके मा कलयिष्यसे ॥ ४,१३ ॥
दृढरोषकलुषितस्यापि सुजनस्य मुखाद् विप्रियं कुतः ।
राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥ ४,१९ ॥
सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीषाग्नि (सु) गन्धेन ।
धूमकपिलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ॥ ४,२९ ॥
व्यसनेऽनुद्विग्ना, विभवेऽगर्विता, भयेधीराः ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ॥ ४,८० ॥
मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पिबत्यायतग्रीवः ।
मयूरः प्रावृट्काले तृणाग्रलग्नमुदकबिन्दुम् ॥ ४,९४ ॥
सुप्यतां तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यः कस्मान्मां भणथ ।
शेफालिकानां गन्धो न ददाति स्वप्तुं स्वपित यूयम् ॥ ५,१२ ॥
चापः स्वभावसरलं विक्षिपति शरं गुणेऽपि पतन्तम् ।
वक्रस्य ऋजुकस्य च सम्बन्धः किं चिरं भवति ॥ ५,२४ ॥
कुत्र गतं रविबिम्बं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारा: ।
गगने बलाकापङ्क्ति कालो होरामिवाकर्षति ॥ ५,३५ ॥
यदि भ्रमसि भ्रमैवमेव कृष्ण सौभाग्यगर्वितो गोष्ठे ।
महिलानां दोषगुणयोर्विचारक्षमोऽद्यापि न भवसि ॥ ५,४७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तव दर्शने सतृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि ।
त्वयि व्यवलीने तानि पदानि वोढव्यानि जातानि ॥ ६,५ ॥
यां यां प्रलोके दिशं पुरतो लिखित इव दृश्यसे तत्र ।
तव प्रतिमापरिपाटीं वहतीव सकलं दिशाचक्रम् ॥ ६,३० ॥
पङ्कमलिनेन क्षीरैकपायिना दत्तजानुपतनेन (दत्तजानुवदनेन) ।
आनन्द्यते हालिकः पुत्रेणेवशालिक्षेत्रेण ॥ ६,६१ ॥
वाचा किं भण्यतां कियन्मात्रं वा लिख्यतां लेखे ।
तव विरहे यद् दुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥ ६,७१ ॥
दुःशिक्षितरत्नपरीक्षकं घृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।
यावत्तिलमात्रं वर्तसे मरकत का तव मूल्यकथा ॥ ७,२७ ॥
कमलं मुञ्चन्मधुकर पक्वकपित्थानां गन्धलोभेन ।
आलेख्यलड्डुक पामर इव स्पृष्ट्वा ज्ञास्यसि ॥ ७,४१ ॥
गीयन्ते मङ्गलगायिकाभिर्वरगोत्रदत्तकर्णायाः ।
श्रोतुमिव निर्गतः पश्यत भविष्यद्वध्वाः रोमाञ्चः ॥ ७,४२ ॥
यद्यदालिखति मन आशावर्तिकाभिर्हृदयफलके ।
तत्तद्बाल इव विधिर्निभृतं हसित्वा प्रमृशति ॥ ७,५६ ॥
पश्य सैन्धवपर्वतसवृक्षाणि धुततूलपुञ्जसदृशानि ।
शोभन्ते सुतनु मुक्तोदकानि सरदि सिताभ्राणि ॥ ६,७९ ॥
मध्ये प्रतनुकपङ्कमुभयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।
ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रथ्यामुखं जातम् ॥ ७,८२ ॥

हिन्दी अनुवाद

देखो, निश्चल, निस्पन्द बलाका कमलिनी के पत्ते पर शोभा पा रही है, मानो स्वच्छ मरकत मणि के पात्र में रखी शंख-शुक्ति हो ॥ १,४ ॥

सखि, इस शिशुकर्कटिकातन्तुसदृश कुटिल प्रेम की ऐसी ही गति है, तू मुखचन्द्र को तिरछा मोड़कर न रो ॥ १,१० ॥

पैरों पर गिरे पति की पीठ पर पुत्र के चढ़ जाने पर, क्रोध से अत्यन्त दुःखित गृहिणी की भी हँसी निकल (ही) पड़ी ॥ १,११ ॥

हे पाकक्रियाप्रवीणे, क्रुद्ध मत हो, रक्त पाटल-सी सुगन्धवाले (तुम्हारे) मुख-मारुत को पीकर (ही) अग्नि धूमयुक्त हो रहा है, जलता नहीं ॥१,१४॥

हे अमृतमय, गगनशेखर, रजनी के मुख के तिलक (स्वरूप) चन्द्र ! मुझे भी अपनी उन्हीं किरणों से छू, जिनसे (तूने) प्रियतम को छुआ है ॥१,१६॥

प्रिय-विरह और अप्रियदर्शन—दोनों ही गहरे दुःख हैं। तुम जिसके द्वारा (प्रेरित) किये जाते हो, उस आभिजात्य को नमस्कार है ॥१,२४॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(पहले) आज उसके बिना अनुभूत सुखों को (ही) याद करती हुई, मैंने नवीन मेघों की ध्वनि को वध्यपटह की भाँति सुना ॥१,२९॥

निश्चय ही, आरम्भ करनेवाले को (ही) लक्ष्मी मिलती है। (ऐसे) पुरुष की मृत्यु भी होती है। (पर) वह मरण तो (कार्य) आरम्भ न करने पर भी होती है; (हाँ) फिर लक्ष्मी नहीं मिलती ॥१,४२॥

प्रिय की आशा के सहारे विरहाग्नि सह ली जाती है, (पर) एक ही गाँव का प्रवास, ओ माँ, मृत्यु से भी विशेष (असह्य) हो जाता है ॥१,४३॥

देखो, पथिक, मध्याह्न में शरीर में छिपी छाया भी आतप के भय से जरा भी नहीं निकलती, तो (तुमहीं) विश्राम क्यों नहीं करते ? ॥१,४९॥

सौख्य के विषय में प्रश्न करनेवाले दुर्लभ जन को भी दूर से हमारे पास ले आकर उपकार करनेवाले ज्वर! हमारे प्राण ले जाकर भी तुमने कोई अपराध नहीं किया ॥१,५०॥

टूटकर फिर से जोड़े गये प्रेम का, जिसमें अपराध प्रत्यक्ष दिखायी देता हो, रस, गरम करके फिर ठण्ढे किये गये जल (के स्वाद) की भाँति, विरस हो जाता है ॥१,५३॥

देखिए, अत्यन्त कोपवश दुःखित इस मानिनी द्वारा नायक के पकड़ लिये जाने पर उसके प्रति किया गया मान मुष्टि से बालुका की तरह सुर-सुर निकल जाता है ॥१,७४॥

हे कृष्ण, मुखमारुत से राधा (की आंख) के गोरज (धूलि या गो धूलि) दूर करते समय इन दूसरी गोपियों के भी गौरव (अथवा उज्ज्वलता) को हर लेते हो। (अर्थात् वे कामना से अधीर या ईर्ष्या से मलिन हो जाती हैं।) ॥१,८९॥

आम्रांकुर देखा गया है, सुरा पी ली गयी है और दक्षिण पवन (भी) सहन कर लिया गया है, परन्तु प्रिय अभी प्रवास से नहीं आया, लगता है, मेरी अपेक्षा वहाँ के उसके कार्य गुरुतर हैं; मामी! (मेरे मन में निराशा हो गयी है कि) कौन किसे प्यारा है ? ॥१,९७॥

बुआ, गाँव के तालाब में किसी ने ताना हुआ आकाश गिरा दिया है, (फिर भी) न कमलसमूह मर्दित हुआ है, न हंस ही उड़ाये गये हैं ॥ २,१० ॥

छलरहित प्रेम तो मामी! जैसे इस मनुष्यलोक में है ही नहीं। अगर होता तो किसे विरह होता, होने पर कौन जीवित रहता ? ॥२,२४॥

मैं लज्जालु हूँ और उसका प्रेम उत्कट है। सखीजन भी चतुर हैं। जाओ, पादराग से क्या होगा ? ॥२,२७॥

(उसका) रूप आँखों में विद्यमान है, स्पर्श अङ्गों में, बातें कानों में, (उसका) हृदय (मेरे) हृदय में रखा है, फिर दैव ने यहाँ अलग क्या किया है ? ॥२,३२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूती, तुम्हीं कुशल हो, कड़वी-मीठी कहना जानती हो, जिस तरह से वह खुजलाते हुए पीला न पड़ जाय वैसा उसे करना (अर्थात् उसे बात लगे तो, पर असह्य न हो जाय) ।।२,८१।।

शरत्काल में बड़े सरोवरों की जलराशि कुपित सज्जनों के हृदय के समान भीतर शीतल किन्तु बाहर ऊष्ण हो जाती है ।।२,८६।।

आज ही वह प्रवास पर गया और आज ही मार्ग-मुख, देवकुल, चबूतरे और हमारे हृदय सूने हो गये हैं ।।२,९०।।

विदीर्ण होते हुए हृदय से भी, मामी, उससे कैसे निवेदन किया जाय जिसमें, दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति, दुःख व्याप्त ही नहीं होता ? ।।३,४।।

पथिक गृहिणी द्वारा प्रदान किये जाने पर भी उसके लटकते हाथ से विगलित कङ्कण के बीच विद्यमान पिण्ड को पाश की आशङ्का से युक्त काक (ग्रहण करना) नहीं चाहता ।।३,५।।

अवधि के दिन आ जाने की आशंका करनेवाली सखियां (नायिका द्वारा) भित्ति पर अंकित दो-तीन रेखाएँ वहीं चोरी से मिटा देती हैं ।।३,६।।

"आज गया', "आज गया", "आज गया", इस प्रकार गणना-रत नायिका ने पहले दिनार्द्ध में ही भीत को रेखाओं से भर दिया ।।३,८।।

अरी कृशमध्ये, पिछले मकानवाले अङ्कोट वृक्ष के पत्ते से अङ्कित अपनी पीठ पोंछ डाल। अरी भोली ! तू कहीं चतुर देवरानियों द्वारा पहचानी न जाय ।।४,१३।।

दृढ़ रोग से आविल होने पर भी सज्जन के मुख से अप्रिय (वचन) कहाँ ? राहु के मुख में विद्यमान भी चन्द्र की किरणें अमृत ही देती हैं ।।४,१९।।

हेमन्त में निर्धन व्यक्ति अपने गोंइठें की गन्धवाले धूएँ से कपिल वर्ण के, अत्यन्त विरल सूत्रजालवाले (फटे पुराने) वस्त्र से ही जान लिया जाता है ।।४,२९।।

सज्जन, विपत्ति में उद्वेगरहित, सम्पत्ति में गर्वरहित, भय में धैर्ययुक्त तथा ऊँच-नीच में अपरिवर्तित स्वभावले होते हैं ।। ४,८०।।

वर्षा में मोर ग्रीवा बढ़ाकर मरकत की सूई से बिंधे मोती के समान दूर्वाग्र पर स्थित जलबिन्दु का पान करता है ।। ४,९४ ।।

'सो जाओ, तीसरा याम भी गया, ऐसा हे सखियो ! मुझसे क्यों कहती हो ? शेफालिका पुष्पों की गन्ध (मुझे) सोने नहीं देती; तुम सो जाओ ।। ५,१२।।

धनुष, स्वभाव से सरल और गुण ही का आश्रय लेनेवाले बाण को भी दूर फेंक देता है। (भला) टेढ़े और सीधे का सम्बन्ध क्या देर तक रहता है ? ।।५,२४।।

कहाँ गया सूर्यमण्डल और कहाँ नष्ट हो गये चांद-तारे। काल, आकाश में बगुलियों की पाँत की तरह होरा को काढ़ रहा है ।। ५,३५ ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृष्ण ! यदि घूमते हो तो इस गोठ में सौभाग्यमद से मत्त इसी प्रकार घूमते रहो। महिलाओं के दोष-गुण विचारने में तुम आज भी समर्थ नहीं हो ॥ ५, ४७ ॥

तुम्हारे दर्शन की अभिलाषिणी होकर तुम्हारी कण्ठध्वनि सुनकर वह जितने कदम निकली थी, तुम्हारे विलीन होने पर उसे उतने ही कदम ढोकर लाना पड़ा ॥ ६,५ ॥

जिस-जिस दिशा को देखती हूँ, वहीं समाने चित्रित-से दिखायी देते हों। सारा दिङ्मण्डल ही जैसे तुम्हारी प्रतिमा-परम्परा को धारण किया है ॥६,३०॥

पङ्कमलिन, केवल दुग्धपान करनेवाले, घुटनों में मुँह छिपा लेनेवाले पुत्र की भाँति पंकमलिन, केवल जलपायी, जानुपर्यन्त अवस्थित शालि (= धान्य) के क्षेत्र से कृषक आनन्दित होता है ॥ ६,६७॥

वाणी से क्या कहा जाय ? पत्र में भी कितना लिखा जा सकता है ? तुम्हारे विरह में कितना दुःख है, तुम्हीं समझ रहे हो ॥ ६, ७१ ॥

दुःशिक्षित जौहरियों द्वारा, हे मरकत, तुम तबतक पत्थर पर घिसे गये हो, जब तक तिल-मात्र ही बचे हो (फिर भी) तुम्हारे मूल्य-निर्धारण की बात हो क्या ? ॥७,२७॥

पके कैथ की गन्ध के लोभ में कमल को छोड़नेवाले भ्रमर ! इसके स्पर्श द्वारा ही तुम इसे जान सकोगे, जैसे कोई मूर्ख चित्रित लड्डू को (जान जाता है)॥७,४१॥

देखो, मंगल गायिकाओं द्वारा (गीत) गाये जाते हैं। वर के नाम पर कान देने-वाली भावी वधू का रोमाञ्च भी मानो सुनने के लिए निकल पड़ा है ॥७,४२॥

मन आशा की कूँची से हृदय-पलक पर जो-जो चित्र बनाता है, उन्हें-उन्हें विधाता बालक की तरह चुपचाप हँसकर मिटा देता है ॥७,५६॥

देखो सुतनु ! जल बरसा चुकने पर शरद् में, लवण के पर्वत जैसे और धुनी हुई रूई के समूहों जैसे श्वेत मेघ शोभा पा रहे हैं ॥७,७९॥

बीच में थोड़ी कीचड़वाली और दोनों किनारों पर सूखी कर्दमवाली गाँव की राह उसके मस्तक की सीमन्त-रेखा-सी हो गयी है ॥७,८२॥

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रावणवहो
(पढमो आसासओ)

णमह अवडिढअतुङ्गं अवसारिअवित्थअं अणोणअगहिरम्।
अप्पलहुअपरिसण्हं अणाअपरमत्थपाअडं महुमहणम्॥ १॥
दणुएन्दरुहिरलग्गे जस्स फुरन्ते णहप्पहाविच्छड्डे।
गुप्पन्ती विवलाआ गलिअ व्व थणंसुए महासुरलच्छी॥ २॥
पीणत्तणदुग्गेज्झं जस्स भुआअन्तणिट्ठुरपरिग्गहिअम्।
रिट्ठस्स विसमवलिअं कण्ठं दुक्खेण जीविअं बोलीणम्॥ ३॥
ओआहिअमहिवेढो जेण परूढगुणमूललद्धत्थामो।
उम्मूलन्तेण दुमं पारोहो व्व खुडिओ महेन्दस्स जसो॥ ४॥
णमह अ जस्स फुडरवं कण्ठच्छाआघडन्तणग्गिसिहम्।
फुरइ फुरिअट्टहासं उद्धपडिततिमिरं विअ दिसाअक्कम्॥ ५॥
वेवइ जस्स सविडिअं वलिडं महइ पुलआइअत्थणअलसम्।
पेम्मसहावविमुहिअं वीआवासगमणूसुअं बामद्धम्॥ ६॥
जस्स विलग्गन्ति णहं फुडपडिसद्दा दिसाअलपडिक्खलिआ।
जोण्हाकल्लोला विअससिधवलासु रअणीसु हसिअच्छेआ॥ ७॥
णट्टारम्भक्खुहिआ जस्स भउब्बन्तमच्छपहअजलरआ।
होन्ति सलिलुद्धुमाइअधूमाअन्तवडवामुहा मअरहरा॥ ८॥
अहिणवराआरद्धा चुक्कक्खलिएसु विहडिअपरिट्ठविआ।
मेत्ति व्व पमुहरसिआ णिव्वोढुं होइ दुक्करं कव्वकहा॥ ९॥
परिवड्ढइ विण्णाणं सम्भाविज्जइ जसो विढप्पन्ति गुणा।
सुव्वइ सुउरुसचरिअं किं तं जेण ण हरन्ति कव्वालावा॥ १०॥
इच्छाइ व धणरिद्धी जोव्वणलद्धव्व आहिआईअ सिरी।
दुक्खं सम्भाविज्जइ बन्धच्छाआइ अहिणवा अत्थगई॥ ११॥
तं तिअसबन्दिमोक्खं समत्थतेल्लोक्कहिअअसल्लुद्धरणं।
सुणह अणुराअइण्हं सीआदुक्खक्खअं दहमुहस्स वहम्॥ १२॥
अह पडिवण्णविरोहे राहववम्महसरेण माणब्भहिए।
विद्धाइ वालिहिअए राअसिरीअ अहिसारिए सुग्गीवे॥ १३॥
ववसाअरइपओसो रोसगइन्ददिढसिङ्खलापडिबन्धो।
कह कह वि दासरहिणोजअकेसरिपञ्जरो गओ घणसमओ॥ १४॥
गमिआ कदम्बवाआ दिट्ठं मेहन्धआरिअं गअणअलम्।
सहिओ गज्जितसद्दो तह विहु से णत्थि जीविए आसङ्घो॥ १५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तो हरिवइजसवन्थो राहवजीअस्स पथमहत्थालम्बो ।
सीआबाहविहाओ दहमुहवज्झदिअहो उवगओ सरओ ॥ १६ ॥
रइअरकेसरणिवहं सोहइ धवलब्भदलसहस्सपरिगअम् ।
महुमहदंसणजोग्गं पिआमहुप्पत्तिपङ्कअं व णहअलम् ॥ १७ ॥
दिणमणिमोहप्फुरिअं गलिअं घणलच्छिरअणरसणादामम् ।
उदुमअणबाणवत्तं णहमन्दारणवकेसरं इन्दधणुम् ॥ १८ ॥
धुअमेहमहुअराओ घणसमआअट्टिओणअविमुक्काओ ।
णहपाअवसाहाओ णिअअट्ठाणं व पडिगआओ दिसाओ ॥ १९ ॥
अहिणवणिद्धालोओ उद्देसासारदीसमाणजललवा ।
णिम्माअमज्जणसुहा दरवसुआअच्छवि वहन्ति व दिअहा ॥ २० ॥
सुहसम्माणिअणिद्दो विरहालुङ्खिअसमुद्दिण्णुक्कण्ठो ।
असुवन्तो वि विबुद्धो पढमविबुद्धसिरिसेविओ मुहमहणो ॥ २१ ॥
सोहइ विसुद्ध किरणो गअणसमुद्दम्मि रअणिवेलालग्गो ।
तारामुत्तावअरो फुडविहडिअमेहसिप्पि संपुडमुक्को ॥ २२ ॥
सत्तच्छआँण गन्धो लग्गइ हिअए खलइ कलम्बामोओ ।
कलहंसाणँ कलरओ ठाइण संठाइ परिणअं सिहिविरुअम् ॥ २३ ॥
पीणपओहरलग्गं दिसाणँ पवसन्तजलअसमअविइण्णम् ।
सोहग्गपणमइण्हं पम्माअइ सरसणहवअं इन्दधणुम् ॥ २४ ॥
पज्जत्तसलिलधोए दूरालोक्कन्तणिम्मले गअणअले ।
अच्चासण्णं व ठिअं विमुक्कपरभाअपाअडं ससिबिम्बम् ॥ २५ ॥
चिरआलपडिणिउत्तं दिसासु घोलन्तकुमुअरअवेलइविअम् ।
भमइ अलद्धासाअं कमलाअरदंसणूसुअं हंसउलम् ॥ २६ ॥
चन्दाअवधवलाओ फुरन्तदिअसरअणन्तरिअसोहाओ ।
सोम्मे सरअस्स उरे मुत्तावलिविब्भमं वहन्ति णिसाओ ॥ २७ ॥
भमररुअदिण्णसण्णं घणरोहविमुक्कदिण अरअरालिट्ठम् ।
फरिससुहाअन्तं विअ पडिबुज्झइ जलणिहितणालं णलिणम् ॥ २८ ॥
मब्भहधणुग्घोसो कमलवणक्खलिअलच्छिणेउरसद्दो ।
सुव्वइ कलहंसरओ महुअरिवाहित्तणलिणिपडिसंलाओ ॥ २९ ॥
खुडिडप्पइअमुणालं दट्ठूण पिअं व सिढिलवलअं णलिणिम् ।
महुअरिमहुरुल्लावं महुमअतम्बं मुहं व घेप्पइ कमलम् ॥ ३० ॥
पज्जत्तकमलगन्धो महुतण्णाओसरन्तणवकुमुअरओ ।
भमिरभमरोअइव्वो संचरइ सदाणसीअरो वणवाओ ॥ ३१ ॥
[illegible] हावा ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

रइअरचुम्बिज्जन्तं ण णिअत्तेइणलिणी मुहं विअ कमलम् ॥ ३२ ॥
परिघोलन्तक्खलिअं सत्तच्छअकुसुमधवलरेणुक्खइअम् ।
उत्पुसइ दाणवङ्कं मुहुत्तगअकण्ण चामरं भमरउलम् ॥ ३३ ॥
—प्रवरसेन विरचितस्य सेतुबन्धस्य प्रथमाश्वासात्

संस्कृत अनुवाद

नमतावर्धिततुङ्गमप्रसारितयिस्तृतममवनतगथीरम् ।
अप्रलघुकपरिश्लक्ष्णनज्ञातपरमार्थप्रकटं मधुमथनम् ॥ १ ॥
दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने यस्य स्फुरतिं नखप्रभाविच्छर्दे ।
गुप्यन्ती (व्याकुला) विपलायिता गलित इव स्तनांशुके महासुरलक्ष्मीः ॥ २ ॥
पीनत्वदुर्ग्राह्यं यस्य भुजान्तनिष्ठुरपरिगृहीतम् ।
अरिष्टस्य विषमवलितं कण्ठं दुखेन जीयितं व्यतिक्रान्तम् ॥ ३ ॥
अवगाहितमहीवेष्टं येन प्ररूढगुणमूललब्धस्थाम् ।
उन्मूलयता द्रुमं प्ररोह इव खण्डितं महेन्द्रस्य यशः ॥ ४ ॥
नमत च यस्य स्फुटरवं कण्ठच्छायाघटमाननयनाग्निशिखम् ।
स्फुरति स्फुरिताट्टहासमूर्ध्वप्रदीप्ततिमिरमिव दिक्चक्रम् ॥ ५ ॥
वेपते यस्य सव्रीडं वलितुं महति पुलकाचितस्तनकलशम् ।
प्रेमस्वभावविमुषितं द्वितीयावकाशगमनोत्सुकं वामार्धम् ॥ ६ ॥
यस्य विलगन्ति नभः स्फुटप्रतिशब्दा दिक्तलप्रतिस्खलिताः ।
ज्योत्स्नाकल्लोला इव शशिधवलासु रजनीसु हसितच्छेदाः ॥ ७ ॥
नृत्यारम्भक्षुभिता यस्य भयोद्भ्रान्तमत्स्यप्रहतजलहयाः ।
भवन्ति सलिलोद्भ्मापित घूमायमानवडवामुखा मकरगृहाः ॥ ८ ॥
अभिनवरागा (जा) रब्धा च्युतस्खलितेषु विघटितपरिस्थापिता ।
मैत्रीव प्रमुखरसिका निर्वोढुं भवति दुष्करं काव्यकथा ॥ ९ ॥
परिवर्धते विज्ञानं संभाव्यते यशोऽऽर्ज्यन्ते गुणाः ।
श्रूयते सुपुरुषचरितं किं तद्येन न हरन्ति काव्यलापाः ॥ १० ॥
इच्छयेव धनऋद्धिर्यौवनलब्धेवाभिजात्या श्रीः ।
दुःख सम्भाव्यते बन्धच्छाययाभिनवार्थगतिः ॥ ११ ॥
तं त्रिदशबन्दिमोक्षं समस्तत्रैलोक्यहृदयशल्योद्धरणम् ।
शृणुतानुरागचिह्नं सीतादुःखक्षय दशमुखस्य वधम् ॥ १२ ॥
अथ प्रतिपन्नविरोधे राघवमन्मथशरेण मानाभ्यधिके ।
विद्धवा बालिहृदये राजश्रियाभिसारिते सुग्रीवे ॥ १३ ॥
व्यवसायरविप्रदोषो रोषगजेन्द्रदृढश्रृङ्खलाप्रतिबन्धः ।
कथं कथमपि दाशरथेर्जयकेसरिपञ्जरो गतो घनसमयः ॥ १४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गमिताः कदम्ववाता दृष्टं मेघान्धकारितं गगनतलम् ।
सोढो गर्जितशब्दस्तथापि खल्वस्या नास्ति जीवित आसङ्गः ॥ १५ ॥
धतो हरिपतियषः पथो राघवजीवस्य प्रथमहस्तालम्बः ।
सोताबाष्पविघातः दशमुखवध्यदिवस उपगता शरत् ॥ १६ ॥
रविकरकेसरनिवहं शोभते धवलाभ्रदलसहस्रपरिगतम् ।
मधुमथनदर्शनयोग्यं पितामहोत्पत्तिपङ्कजमिव नभस्तलम् ॥ १७ ॥
दिनमणिमयूखस्फुरितं गलितं घनलक्ष्मीरत्नरशनादाम ।
ऋतुमदनबाणवक्त्रं नभोमन्दारनवकेसरमिन्द्रधनुः ॥ १८ ॥
धुतमेभमधुकरा घनसमयाकृष्टावनतविमुक्ताः ।
नभः पापशाखा निजकस्थानमिव प्रतिगता दिशः ॥ १९ ॥
अभिनवस्निग्धालोका उद्देशासारदृश्यमानजललवाः ।
निर्मितमज्जनसुखा दरशुष्कच्छवि वहन्तीव दिवसाः ॥ २० ॥
सुखसम्मानितनिद्रो विरहस्पृष्टः समुद्रदत्तोत्कण्ठः ।
अस्वपन्नपि विबुद्धः प्रथमविबुद्धश्रीसेवितो मधुमथनः ॥ २१ ॥
शोभते विशुद्धीकिरणो गगनसमुद्रे रजनिवेलालग्नः ।
तारामुक्ताप्रकरः स्फुटविघटितमेघशुक्तिसंपुटमुक्तः ॥ २२ ॥
सप्तच्छदानां गन्धो लगति हृदये स्खलति कदम्बामोदः ।
कलहंसानां कलरवस्तिष्ठति न सन्तिष्ठते परिणतं शिखिविरुतम् ॥ २३ ॥
पीनपयोधरलग्नं दिशां प्रवसज्जलदसमयवितीर्णम् ।
सौभाग्यप्रथमचिह्नं प्रम्लायति सरसनखपदमिन्द्रधनुः ॥ २४ ॥
पर्याप्तसलिलधौते दूरालोक्यमाननिर्मले गगनतले ।
अत्यासन्नमिव स्थितं विमुक्तपरभागप्रकटं शशिबिम्बम् ॥ २५ ॥
चिरकालप्रतिनिवृत्तं दिक्षु घूर्णमानकुमुदरजोविलिप्तम् ।
भ्रमत्यलब्धास्वादं कमलाकरदर्शनोत्सुकं हंसकुलम् ॥ २६ ॥
चन्द्रातपधवलाः स्फुरद्दिवसरन्तरितशोभाः ।
सौम्य शरद उरसि मुक्तावलिविभ्रमं वहन्ति निशाः ॥ २७ ॥
भ्रमररुतदत्तसंज्ञं घनरोधविमुक्तदिनकराश्लिष्टम् ।
स्पर्शसुखायमानमिव प्रतिबुध्यते जलनिहिअनालं नलिनम् ॥ २८ ॥
मन्मथधनुर्निर्घोषः कमलवनस्खलितलक्ष्मीनूपुरशब्दः ।
श्रूयते कलहंसरवो मधुकरीव्याहृतनलिनीप्रतिसंलापः ॥ २९ ॥
खण्डितोत्पाटितमृणालां दृष्ट्वा प्रियामिवशिथिलवलयां नलिनीम् ।
मधुकरीमधुरोल्लापं मधुमयाताम्रं (पक्षे-मधुमदताम्रं) मुखमिव गृह्यते कमलम् ॥ ३० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर्याप्तकमलगन्धो मध्वार्द्रापसरन्नवकुमुदरजाः ।
भ्रमद्भ्रमरोपजीव्यः सञ्चरति सदानशीकरो वनवातः ॥ ३१ ॥
कण्टकितगोपिताङ्गी स्तोकस्तोकापसरन्मुग्धस्वभावा ।
रविकरचुम्ब्यमानं न निवर्तयति नलिनी मुखमिव कमलम् ॥ ३२ ॥
परिपूर्णमानस्खलितं सप्तच्छदकुसुमधवलरेणूत्खचितम् ।
उत्प्रोञ्छति दानपङ्कं मुहूर्तगजकर्णचामरं भ्रमरकुलम् ॥ ३३ ॥

हिन्दी अनुवाद

बिना बड़े हुए ही ऊँचे, बिना फैले ही सुविस्तृत, बिना झुके (अवनत हुए) ही गम्भीर, कृश न होते हुए भी कृश, परमार्थ तत्त्व रूप में अज्ञय होकर भी प्रकट मधु-रिपु को प्रणाम करो ॥१॥

असुरराज के रक्त से रंजित जिनके नखों के कान्तिजाल के विकीर्ण होने पर महादनुज की लक्ष्मी स्तनांशुक के गिर जाने पर (लज्जित-सी) छिपती भाग खड़ी हुई ॥२॥

अपनी विशालता के कारण दुर्ग्राह्य अरिष्ट (नामक असुर) का कण्ठ जिनके भुजान्त द्वारा निष्ठुरता-पूर्वक पकड़े जाने पर बुरी तरह ऐंठा गया और प्राण कष्ट से निकल गया ॥३॥

समस्त पृथ्वीमण्डल का अवगाहन करनेवाला अत्यधिक गुणों के कारण स्थिरता को प्राप्त देवेन्द्र का यश जिन्होंने (पारिजात) वृक्ष उखाड़ते समय अंकुर के समान नष्ट कर दिया ॥४॥

जिन (शंकर भगवान्) के कण्ठ की छाया से सम्बद्ध शिखावाला स्फुरित अट्टहासवाला, ऊपर के भाग में जलते हुए अन्धकारवाला, स्पष्ट शब्दवाला दिक्चक्र विकनिम होता हैं, उस शंकर भगवान् को नमस्कार करें ॥५॥

पुलकावली संकुल स्तनमंडलयुक्त, प्रेम स्वभाववश विमूढ एवं अपर (=दक्षिण) भाग की ओर जाने के लिए उत्सुक जिन (अर्धनारीश्वर) का वामार्ध, जिनके झुकने की कामना करने पर, लज्जायुक्त हो काँपता है ॥६॥

जिनकी स्फुट प्रतिध्वनिवाली; दिवोणों से परावर्तित हँसी, चन्द्रिका की लहरों की भाँति चन्द्रधवल रात्रियों में आकाश का स्पर्श करती है ॥७॥

जिनके नृत्यारम्भ से विक्षुब्ध समुद्रों के जल का प्रवाह भयभ्रमित मत्स्यों से रुद्ध हो जाता है और जल से बुझता हुआ वड़वानल धुमयुक्त हो जाता है ॥८॥

रसिक ही जिसमें सर्वोपरि हैं, जो नवीन रागवश प्रारम्भ होती है, चूक जानेवाले व्यक्ति के अपराध से खण्डित होने पर जिसे फिर से स्थापित करना पड़ता है, ऐसी मैत्री के समान नवीन राजा (प्रवरसेन) द्वारा प्रारब्ध चूक जाने पर दोषों के कारण नष्टप्राय होने पर परिष्कृत प्रमुखतया रसिकों के लिए प्रयोज्य काव्य-कथा का निर्वाह करना कठिन होता है ॥९॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशिष्ट ज्ञान बढ़ता है। यश की सम्भावना होती है। गुण अर्जित किये जाते हैं। सज्जनों का चरित सुनने को मिलता है। वह कौन-सी वस्तु है जिससे काव्य-प्रयोग मनोहारी नहीं होते (अर्थात् सभी वस्तुओं से मनोहारी होते हैं) ॥१०॥

कामना के साथ धन-सम्पत्ति, आभिजात्य के साथ यौवनप्राप्तशोभा तथा काव्य-बन्ध (=छन्द) रमणीयता के साथ नवीनार्थ की योजना दुःखपूर्वक (कठिनता से) ही संभव है ॥११॥

बन्दी देवताओं के मुक्तिस्वरूप, निखिल त्रिलोकी के हृदय-शूल को निकालनेवाले अनुराग के प्रतीक, सीता के दुःख को दूर करनेवाले उस दशमुख के वध को सुनें ॥१२॥

रामरूप कामदेव के बाण द्वारा विरोधयुक्त पर्याप्त अभिमानवाले बालि के हृदय में प्रहृत (बालि) की राज्य-लक्ष्मी के सुग्रीव से अभिसार करने पर;

राम के प्रयत्नरूप सूर्य का प्रदोष-काल, उनके कोप रूपी गजराज का शृङ्खला-रूप दृढ़-बन्धन एवं राम की विजयरूपी सिंह का पिंजड़ारूपी वर्षाकाल किसी-न-किसी तरह बीत गया ॥१३,१४॥

कदम्ब की वायु भी बिता ली गयी, मेघों से अन्धकारावृत आकाश भी देख लिया गया, गर्जन का शब्द भी सहन कर लिया गया, फिर भी जीवन से उसकी आसक्ति नहीं हुई ॥१५॥

फिर वानरराज के यश का मार्ग, राम के प्राणों का पहला हस्तावलम्ब, सीता के अश्रुओं का नाशक, रावण-वध के योग्य दिवसरूप शरत्समय उपस्थित हुआ ॥१६॥

सूर्यकिरणरूप केसर राशिवाला, हजारों शुभ्र मेघ-खण्ड-रूपी पँखुड़ियों से व्याप्त, नारायण के दर्शन योग्य आकाश-प्रदेश, ब्रह्मा के उत्पत्तिकमल-सा शोभित हुआ ॥१७॥

सूर्य की किरणों से प्रकाशित, वर्षाऋतुरूप कामदेव का बाणाग्र, आकाश-रूपी मन्दार पुष्प का केसर एवं मेघ-लक्ष्मी का मेखलाबन्ध इन्द्रधनुष विगलित हो गया ॥१८॥

जिनसे मेघरूपी भ्रमर विलीन हो गये हैं, वे वर्षाऋतु द्वारा खींचकर झुकायी जाने के बाद छोड़ दी गयी आकाशरूपी वृक्ष की दिशारूपी शाखाएँ मानो अपनी जगह लौट गयीं ॥१९॥

नवीन स्निग्ध प्रकाशयुक्त दिवस, एक भूभाग में वेगपूर्ण वर्षा के कारण दिखायी देनेवाले जलखण्डों के कारण स्नान-सुख प्राप्त किये हुए लोगों की भाँति आधे सूखे दिखायी देते हैं ॥२०॥

विरहाकुल समुद्र के प्रति उत्कण्ठा-युक्त, सुखपूर्वक निद्रा का सम्मान करनेवाले पहले से जागी हुई लक्ष्मी द्वारा सेवित मधुरिपु (वस्तुतः) न सोने पर भी (सोकर) जागे (अर्थात् देवोत्थानी एकादशी हुई) ॥२१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आकाशरूपी समुद्र में रात्रिरूपी किनारे से लगी स्पष्टतः विदीर्ण होते हुए मेघों के रूप-सी सीपी के सम्पुट से निकलती विशुद्ध किरणोंवाली तारारूप मुक्ताओं की राशि शोभित हो रही है ॥२२॥

सप्तच्छदों की गन्ध हृदय में लगती है। कदम्ब की गन्ध व्याप्त होती है। राजहंसों का कलरव (हृदय में) रह जाता है। मयूरों की (असमय के कारण) विरस केका नहीं रहती ॥२३॥

जाते हुए वर्षाकाल द्वारा प्रदत्त दिशाओं के सुविशाल पयोधरों पर लगा सौभाग्य का प्रथम चिह्न सरस नखाङ्करूप इन्द्रधनुष मलिन हो रहा है ॥२४॥

प्रचुर जलराशि से धुले, दूर से ही देखने में स्वच्छ आकाश में मेघादिमुक्त चन्द्र-मण्डल, लगता है, बहुत ही पास विद्यमान है ॥२५॥

बहुत समय बाद लौटा हुआ दिशाओं में व्याप्त कुमुद्रों के पराग से लिप्त, पद्मसर को देखने के लिए उत्सुक हंस-समूह स्वाद प्राप्त किये बिना ही घूम रहा है ॥२६॥

प्रदीप्त दिनमणि से जिनकी शोभा समाप्त हो जाती है, वे चन्द्रिकोज्ज्वल रात्रियाँ शरत्काल के कान्तिमान् वक्ष पर विद्यमान मुक्तामालाओं की शोभा धारण करती हैं। २७॥

जल में व्याप्त नालयुक्त, मधुकर रव से संकेत प्राप्त कर, मेघमुख सूर्य की किरणों से आलिंगित कमल, स्पर्श-सुख का अनुभव करता हुआ-सा जागता (खिलता) है ॥२८॥

राजहंसों का शब्द, कामदेव के धनुष की टंकार, कमल-वनों में स्खलित लक्ष्मी के नूपुरों की ध्वनि तथा मधुकरी द्वारा कही गयी बात के कमलिनी द्वारा दिये गये प्रत्युत्तर के रूप में सुना जाता है ॥२०॥

तोड़कर निकाले गये मृणालोंवाली कमलिनी को शिथिल-वलया प्रिया के समान देखकर (सहृदयों द्वारा) भ्रमरी के मधुर रव से युक्त मधुमय रक्तमुख के समान कमल ग्रहण किया जाता है ॥३०॥

कमल की गन्ध से परिपूर्ण, (कमल, कुमुद और मदगन्ध की जिज्ञासा से) घूमते हुए भ्रमरों का उपजीव्य (द्वारा सेवनीय,), गजमदबिन्दुयुक्त वन्य पवन, नये कुमुदों के मधु से गीले पराग को गिराता (बिखेरता) हुआ बह रहा है ॥३१॥

पुलकित (नालरूप) अङ्ग को (जल में) छिपाये, कलिका-भाव का धीरे-धीरे त्याग करनेवाली कमलिनी सूर्यकरों द्वारा स्पृश्यमान कमल को नहीं हटाती। जैसे पुलकित अंगों को छिपानेवाली, मुग्धात्व का धीरे-धीरे त्याग करनेवाली, प्रेमी के द्वारा चुम्ब्यमान मुख को नायिका नहीं हटाती ॥३२॥

घूमते हुए स्खलित होनेवाला सप्तच्छद-पुष्पों के उज्ज्वल पराग से लिप्त, क्षणभर के लिए गज का कर्ण चामर बननेवाला, भ्रमर-समूह (उसके) दानवारि के पङ्क को पोंछ देता है ॥३३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गउडवहो

विन्ध्यवासिनी स्तुतिः

बन्दी-कय-महिसासुर-कुल-कण्ठुम्मोइ एहिव तुमाए।
माहवि घण्टा दामेहिं मण्डियं तोरणद्दारं ॥ १ ॥
दिठ्टं साहेज्जारुढ-तुहिण-गिरी खण्ड-दिण्ण-पीढं व।
महिसासुरस्स सीसं तुह चलण-णह-प्पहा-भरियं ॥ २ ॥
सोहसि नारायणि रणिर णेडराराव-मिलिअ-हंस-उले।
भवणम्मि कवालाविल-मसाण-राएण न भमन्ती ॥ ३ ॥
तुह दारं थाम-त्थाम-दिण्ण-रुहिरोवहारमाभाइ।
हर-पणय-रोस-विससिय-संज्झा-सयलावइण्णं व ॥ ४ ॥
णिमिसंपि णेअ मुच्चइ आययणो बवण-मण्डलं तुज्झ।
सण्णिहिअ-कुमार मऊर-णेह-रसिएहिं व सिहीहिं ॥ ५ ॥
वीर-विइण्ण-विकोसासिधेणु-करबाल-कन्ति-कज्जलियं।
दिअसिम्मि वि देवि असङ्क-कोसियं गब्भ-भवणं ते ॥ ६ ॥
सुलहोवहार-रुहिर-पवाह-सम्भाबणाए लिब्भन्ति।
अरुण पडाया-पडिमा-गब्भाओ सिला इह सिवाहिं ॥ ७ ॥
गब्भीर-गब्भ मन्द-प्पहाओ तुह देवि दीवमालाओ।
उवहार-मुण्ड-केसन्धयार-मूढाओ व खलन्ति ॥ ८ ॥
सीसम्मि कओ महिसस्स देवि मारणाय जोहि संदण्णो।
सोच्चिअ जणस्स जाओ तुह चलणो मङ्गल-ट्ठाणं ॥ ९ ॥
पयइ-परिसुक्क-काया पुरओ संचरइ रेवई तुज्झ।
इह सइ सण्णिहिय-महा-परेय-भय-मुक्कमांसव्व ॥१०॥
रूअं चिय णवर कराल-दारुणं काल-रत्ति लीलाए।
हिययं पुण ते करुणा-रहेण सइ वच्छलं चेअ ॥११॥

—वप्पइराअकओगौडवहो
(वाक्पतिराजकृतंगौडवधम्)

संस्कृत अनुवाद

बन्दीकृत-महिषासुर-कुल-कण्ठोन्मोचितैरिव त्वया।
माधवि घण्टादामभिर्मण्डितं तोरणद्वारम् ॥ १ ॥
दृष्ट साहाय्यारूढतुहिनगिरिखण्डदत्तपीठमिव।
महियासुरस्य शिरस्तव चरणनखप्रभाभरितम् ॥ २ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शोभसे नारायणि रणन्नूपुरारावमिलितहंसकुले ।
भवने कपालाविलश्मशानरागेणेव भ्रमन्ती ।। ३ ।।
तव द्वारं स्थानस्थानदत्तरुधिरोपहारमाभाति ।
हरप्रणयरोषविशसितसंध्याशैलावकीर्णमिव ।। ४ ।।
निमिषमपि नैव मुच्यते आयतनोवनमण्डलं तव ।
सन्निहितकुमारमयूरस्नेहरसिकैरिव शिखिभिः ।। ५ ।।
वीरविकीर्णविकोषासिधेनुकरवालकान्तिकज्जलितम् ।
दिवसेऽपि देवि ! अशङ्कौशिकं गर्भभवनं ते ।। ६ ।।
सुलभोपहाररुधिरप्रवाहसम्भावनया लिह्यन्ते ।
अरुणपताकाप्रतिमागर्भाः शिला इह शिवाभिः ।। ७ ।।
गम्भीर-गर्भ (गृह)-मन्दप्रभास्तव देवि दीपमालाः ।
उपहारमुण्डकेशान्धकारमूढा इव स्खलन्ति ।। ८ ।।
शिरसि कृतो महिषस्य देवि मारणाय योहि सम्पन्नः ।
सः चिद् जनस्य जातस्तव चरणो मंगलस्थानम् ।। ९ ।।
प्रकृतिपरिशुष्ककाया पुरतः सञ्चरति रेवती तव ।
इह सती सन्निहितमहापरेतभयमुक्तमांसेव ।।१०।।
रूपंचित् केवलकरालदारुणं कालरात्रिलीलया ।
हृदयं पुनस्ते करुणारसेन सखि ! वत्सलं चैव ।।११।।

हिन्दी अनुबाद

हे माधवि, बन्दी किये गये महिषासुर के गले से तुम्हारे द्वारा उतारी गयी घण्टे की रस्सियों में अलंकृत-सा तुम्हारा तोरण-द्वार है ।।१।।

तुम्हारे चरण-नखों की कान्ति से भरपूर महिषासुर का सिर चढ़ने में सहायता के लिए हिमाचल खण्ड द्वारा प्रदत्त पादपीठ-सा दिखायी पड़ता है ।।२।।

गुंजार करते नूपुरों की ध्वनि से एकत्र (खिंच आये) हंसोंवाले भवन में हे नारायणि ! कपालों से भरे श्मशान के प्रति रागवश घूमती हुई-सी शोभा पाती हो ।।३।।

जगहं-जगह दिये गये रुधिरोपहार (के कारण) से तुम्हारा द्वार, हर के प्रति प्रणयकोपवश खण्ड-खण्ड किये गये सन्ध्याशैल से व्याप्त-सा लगता है ।।४।।

तुम्हारे मन्दिर का उपवन मण्डल, मानो कुमार कार्तिकेय के साथ रहनेवाले मयूर के प्रति स्नेह रखनेवाले मयूरों से क्षणभर भी रिक्त नहीं होता ।।५।।

हे देवि ! वीरों द्वारा बिखेरी गयी विशिष्ट म्यानवाली तलवार, छुरी एवं कटारों की प्रभा से अंधकारित तुम्हारा आँगन, दिन में भी निःशङ्क उल्लूओंवाला है ।।६।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

सहज ही उपहार रूप में प्राप्य रुधिर प्रवाह की सम्भावना से यहाँ तुम्हारी लाल पताका के प्रतिबिम्बों से युक्त शिलाएँ, सियारियों द्वारा चाटी जाती हैं ।।७।।

गम्भीर आँगन होने के कारण मन्द कान्तिवाली तुम्हारी दीप-मालिकाएँ, हे देवि ! उपहाररूप में दिये गये मुंडों के केशरूपी अन्धकार से मानो मूढ़ होकर स्खलित होती हैं ।।८।।

हे देवि ! महिषासुर के मारण के लिए उसके मस्तक पर रखा गया तुम्हारा चरण, भक्तजन का मङ्गल स्थान है ।।९।।

स्वभाव से ही दुर्बल कायावाली रेवती तुम्हारे आगे चलती है। मानो यहाँ रहने पर समुपस्थित महाप्रेतों के भय से मांसहीन हो गयी हो ।।१०।।

कालरात्रिलीला के कारण तुम्हारा रूप सम्भवतः केवल भयंकर एवं कठोर है, किन्तु हे देवि ! तुम्हारा हृदय करुणा-प्रवाह के कारण वात्सल्यपूर्ण (स्नेहमय) ही है ।।११।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वीर हलिओ विहु भक्ता अनन्नभज्जो गुणेहिं रहिओ वि।
मा सगुणो बहुभज्जो जइ राया चक्कवट्टी वि ॥ १ ॥
संकरहरिबंभाणं गउरी लच्छी अहेव बंभाणी।
तह जइ पइणो इट्ठा तो महिला इयरहा छेली ॥ २ ॥
विभवेण जो न भुल्लइ जो न वियारं करेइ ताहन्ने।
सो देवाणँ वि पुज्जो किमंग पुण मणुयलोयस्स ॥ ३ ॥
दुकलत्तं दालिछं वाही तह कन्नयाणँ बाहुल्लं।
पच्चक्खं नरयमिणं मत्थुवइट्ठं च वि परोक्खं ॥ ४ ॥
कण्णाद्धारविहीणं बोहित्थं जह जलम्मि डोल्लेइ।
सिट्ठ महंतयरहियं रज्जं पि हु तारिसं होइ ॥ ५ ॥
वरजुबइ विलसिणं गन्धव्वेण च एत्थ लोयम्मि।
जस्स न हीरइ हियय़ं सो पसुओ अहव पुण देवा ॥ ६ ॥

संस्कृत अनुवाद

भ्रातर्हालिकोऽपि खलु भर्त्तानिभ्यभार्यो गुणैरहितोऽपि।
मा सगुणो बहुभार्यो यदि राजा चक्रवर्त्त्यपि ॥ १ ॥
शङ्करहरिब्रह्मणां गोरी लक्ष्मीर्यथैव ब्रह्माणी।
तथा यदि पत्युरिष्टा ततो महिलेतरथाजा ॥ २ ॥
विभवेन यो न विस्मरति यो न विकारं करोति तारुण्ये।
सो देवानामपि पूज्यः किमंग पुनर्मनुजलोकस्य ॥ ३ ॥
दुष्कलत्रं दारिद्यं व्याधिस्तथा कन्यकानां बाहुल्यम्।
प्रत्यक्षं नरकमिदं शास्त्रोपदिष्टं चापि परोक्षम् ॥ ४ ॥
कर्णधारविहीनं वहित्रं यथा जले ट्वलति।
शिष्टमहत्करहितं राज्यमपि खलु तादृशं भवति ॥ ५ ॥
वरयुवतिविलसितेन गान्धर्वेण चात्र लोके।
यस्य न ह्रियते हृदयं सः पशुरथवा पुनर्देवः ॥ ६ ॥

हिन्दी अनुवाद

भैया ! हलवाह ही हो और गुणों से रहित ही हो, पर भर्त्ता वह है जो एकपत्नी हो; अगर बहुपत्नी, गुणी और चक्रवर्ती राजा भी हो तो न हो ॥१॥

शङ्कर, विष्णु तथा ब्रह्मा को जैसे गौरी, लक्ष्मी और ब्रह्माणी हैं, ऐसे ही यदि पति को प्रिय है तो वह स्त्री है, नहीं तो बकरी है ॥२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्पत्ति में जो भूल नहीं जाता और तरुणभाई में जिसे विकार नहीं होता, वह देवताओं का भी पूज्य है फिर मनुष्यलोक की तो बात ही क्या ! ।।३।।

बुरी स्त्री, गरीबी, रोग और कन्याओं का आधिक्य—यह प्रत्यक्ष नरक है, शास्त्र द्वारा बताया गया तो फिर भी परोक्ष है ।।४।।

कर्णधाररहित जहाज जैसे पानी में डोलता है, शिष्टों एवं महापुरुषों से रहित राज्य भी वैसा हो होता है ।।५।।

श्रेष्ठ युवतियों के विलास से और संगीत से इस लोक में जिसका हृदय आकृष्ट नहीं होता, वह पशु है अथवा देवता ।।६।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

३

शौरसेनी

स्वप्नवासवदत्तम् (चतुर्थोऽङ्कः)

[ततः प्रविशति विदूषकः ।]

विदूषक—[सहर्षम्] भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेद-विवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि—ता दिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो' त्ति । इदाणिं पासादेसु असीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ण्हाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जीआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठुग परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि, जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि । भो ! सुहं णाम अपरिभूदं अकल्लवत्तं च ।

[ततः प्रविशति चेटी ।]

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? [परिक्रम्यावलोक्य] अम्हो ! एसो अय्यवसन्तओ । [उपगम्य] अय्य ! वसन्तअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि ।

विदूषकः—[दृष्ट्वा] किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ?

चेटी—अम्हाणं भट्टिणी भणदि-अवि ह्लादो जामादुओ त्ति ।

विदूषकः--किं णिमित्तं भोदि पुच्छदि ।

चेटी—किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति ।

विदूषकः— ह्लादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं ।

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ?

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिवरिबट्टो विअ कुक्खि-परिवट्टो संवुत्तो ।

चेटी—ईदिसो एव्व होहि ।

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि ।

[निष्क्रान्तौ ।]

इति प्रवेशकः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च ।

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ?

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुम्हआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति ।

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं ।

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणिं विलम्बेसि ?

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तणं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव अहं वि कुसुकावचअं करोमि ।

पद्मावती—अय्ये ! किं एत्थ उपविसामो ?

वासवदत्ता—एव्वं होदु ।

[उभे उपविशतः ।]

चेटी—[तथा कृत्वा] पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहि पूरिअं में अञ्जलिं ।

पद्मावती—[दृष्ट्वा] अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या ।

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं ।

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ?

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ ।

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ?

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिस्ससि सम्माणिदा भवेअं ।

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ?

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दुक्खरं खु अहं करेमि । इअं वि णाम एव्वं मन्तेदि ।

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति ।

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो ।

वासवदत्ता—किं किं ?

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति ?

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं !

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्वं दाव भणिस्सं [प्रकाशम्] जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि।

पद्मावती—होदव्वं।

चेटी—भट्टिदारिए! साहु भतारं भणाहि—अहं पि वोणं सिक्खिस्सामि त्ति।

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो।

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं?

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुण्हीओ संवुत्तो।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि?

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] धण्णा खु म्हि, जदि एव्वं सच्चं भवे।

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च।]

विदूषकः—ही! ही! पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं। इदो दाव भवं।

—भास कविः

संस्कृत अनुवाद

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भोः! दिष्ट्या तत्रभवतः वत्सराजस्य अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालः दृष्टः। भोः! को नाम एतज् जानाति—तादृशे वयं अनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनः उन्मङ्क्ष्याम इति। इदानीं प्रासादेषु उष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्ते इति अनप्सरः संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, मम आहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे, यथा वातशोणितम् अभित इव वर्तत इति प्रेक्षे। भोः सुखं नाम अपरिभूतं अकल्यवर्तम् च।

(ततः प्रविशति चेटी।)

चेटी—कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः? (परिक्रम्यावलोक्य) हम्भो! एष आर्यो वसन्तकः। (उपगम्य) आर्य! वसन्तक! कः कालः त्वामन्विष्यामि।

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किन्निमित्तं भद्रे! माम् अन्विष्यसि?

चेटी—अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातः जामाता इति।

विदूषकः—किन्निमित्तं भवती पृच्छति?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चेटी—किमन्यत् । सुस्नोवर्णकमानयामि इति ।

विदूषकः— स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती, वर्जयित्वा भोजनम् ।

चेटी—किन्निमित्तं वारयसि भोजनम् !

विदूषकः—अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त्त इव कुक्षिपरिवर्त्तः संवृत्तः।

चेटी—ईदृश एव भव ।

विदूषकः— गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवतः सकाश गच्छामि ।

(निष्क्रान्तौ ।) इति प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणीवासवदत्ता च ।)

चेटी—किन्निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?

पद्मावती— हला ! तानि तावत् शेफालिकागुल्फकानि प्रेक्षे कुसुमितानि वा नवेति ।

चेटी— भर्तृदारिके ! तानि कुसुमितानि नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकालम्बकैराचितानि कुसुमैः ।

पद्मावती—हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ?

चेटी—तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्त्तकम् उपविशतु भर्तृदारिका । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि ।

पद्मावती— आर्य्ये ! किमत्र उपविशावः !

वासवदत्ता— एवं भवतु ।

(उभे उपविशतः ।)

चेटी—(तथा कृत्वा) प्रेक्षतां प्रेक्षतां भर्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितो मे अञ्जलिः ।

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो ! विचित्रता कुसुमानाम् प्रेक्षतां प्रेक्षताम् आर्या ।

वासवदत्ता—अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।

चेटी— भर्तृदारिके ! किं भूयः अवचेष्यामि ?

पद्मावती— हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।

वासवदत्ता—हला ! किन्निमित्तं वारयसि ?

पद्मावती— आर्य्यपुत्र इहागत्य इमां कुसुमसमृद्धिं प्रेक्षिष्यते, सम्मानिता भवेयम् ।

वासवदत्ता—हला ! प्रियस्ते भर्ता ?

पद्मावती— आर्य्ये ! न जानामि । आर्यपुत्रेण विरहिता उत्कण्ठिता भवामि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुष्करं खल्वहं करोमि। इयमपि नाम एवं मन्त्रयति ।

चेटी— अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितम्— प्रियो मे भर्तेति ।

पद्मावती—एकः खलु मे सन्देहः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वासवदत्ता—किं किम् !

पद्मावती—यथा ममार्यपुत्रः, तथैव आर्याया वासवदत्ताया इति ?

वासवदत्ता—अतोऽप्यधिकम् ।

पद्मावती—कथं त्वं जानासि ?

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेन अतिक्रान्तः समुदाचारः । एवं तावद् भणिष्यामि । (प्रकाशम्) यदि अल्पः स्नेहः, सा स्वजनंन परित्यजति ।

पद्मावती—भवितव्यम् ।

चेटी—भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण—अहमपि वीणां शिक्षिष्ये इति ।

पद्मावती—उक्तो मयार्यपुत्रः ।

वासवदत्ता—ततः किं भणितम् ?

पद्मावती—अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।

वासवदत्ता ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?

पद्मावती—तर्कयामि आर्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

विदूषकः—ही ! ही !! प्रचितरतितबन्धुजीवकुसुमविरलत्वात रमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद्भवान् ।

हिन्दी अनुवाद

[विदूषक प्रवेश करता है ।]

विदूषक—[सहर्ष] अहो ! भाग्य से, पूज्य वत्सराज का, अभिमत विवाह-मङ्गल से रमणीय समय, देखा । आहे ! भला कौन यह जानता था कि जलावर्त जैसे अनर्थ में पड़कर भी फिर हम उबरेंगे । इस समय महलों में रहते हैं, अन्तःपुर की बावलियों में नहाते हैं, प्रकृति-मधुर सुन्दर लड्डू खाते हैं । इस प्रकार मैं बिना अप्सराओं के साथ के भी उत्तर कुरुवास का अनुभव कर रहा हूँ । एक ही बड़ा दोष है कि मेरा खाना ठीक से पचता नहीं, भलीभांति बिछायी गयी शय्या पर भी नींद नहीं आती । ऐसा प्रतीत होता है कि सब ओर से वातरक्त घेरे हुए हैं । सुख वह है कि कलेवा मिलने में बाधा न हो ।

[चेटी प्रवेश करती है ।]

चेटी—कहाँ चले गये आर्य वसन्तक ? [घूमकर देखती है] ओह ! यह रहे आर्य वसन्तक । [समीप जाकर] आर्य वसन्तक ! कितने समय से आपको खोज रही हूँ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषक—[देखकर] क्यों खोज रही हो मुझे भद्रे ?

चेटी—हमारी स्वामिनी पूछती हैं—जामाता स्नान कर चुके क्या ?

विदूषक—किसलिए पूछती हैं देवी ?

चेटी—दूसरा क्या ? फूल आदि ले आऊँ, यही ।

विदूषक—वे नहा चुके । सब ले आयें, खाना छोड़कर ।

चेटी—भोजन, क्यों मना करते हैं ?

विदूषक—कोयलों की आंख पलटने की तरह मुझ अभागे का पेट उलट गया है ।

चेटी—ऐसे ही रहो ।

विदूषक—जाइये आप ! तब तक मैं भी महाराज के पास जाता हूँ ।

[दोनों निकल जाते हैं ।]

प्रवेशक समाप्त

[अब परिजनों सहित पदमावती और आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता प्रवेश करती हैं ।]

चेटी—स्वामिपुत्रि, प्रमदवन क्यों आयी हैं ?

पद्मावती—सखि ! उन्हीं शेफाली कुंजों को देखूंगी कि वे फूले या नहीं ।

चेटी—स्वामिपुत्रि ! वे तो फूल गये, मूंगे के बीच मोती की मालाओं की भाँति फूलों से वे लदे हैं ।

पद्मावती—अगर ऐसा है सखि ! तो अब देर क्यों कर रही हो ?

चेटी—तो स्वामिपुत्रि ! इस शिलापट्ट पर क्षणभर बैठें । जब तक मैं फूल चुन लूं ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या यहाँ बैठा जाय ?

वसवदत्ता—ऐसा ही करें !

[दोनों बैठती हैं ।]

चेटी—[वैसा करके] देखिये स्वामिपुत्रि ! देखिए, मैनसिल के छोटे-छोटे टुकड़ों की तरह शेफाली-पुष्पों से मेरी अंजलि भर गयी ।

पद्मावती—[देखकर] अहो ! सुमनों की विचित्रता ? देखें आर्या, देखें ।

वासवदत्ता—अहो ! देखने लायक फूल हैं ।

चेटी—स्वामिपुत्रि ! क्या और चुन लूं ?

पद्मावती—मत चुनो सखि ! मत चुनो ।

वासवदत्ता—मना क्यों करती हो सखि ?

पद्मावती—आर्यपुत्र यहाँ आकर यह पुष्प-वैभव देखेंगे, तो सम्मानित होऊँगी ।

वासवदत्ता—सखि ! तुम्हें स्वामी प्रिय हैं ?

पद्मावती—नहीं जानती आर्ये । (पर) आर्यपुत्र से अलग होकर उत्कण्ठित हो जाती हूँ ।

चेटी—कुलीनता से ही स्वामिपुत्री ने कहा कि मुझे स्वामी प्रिय हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पद्मावती—मुझे एक सन्देह है।

वासवदत्ता—क्या ? क्या ??

पद्मावती—जैसे आर्यपुत्र मेरे हैं, वैसे ही आर्या वासवदत्ता के भी हैं (क्या) ?

वासवदत्ता—उससे भी अधिक।

पद्मावती—तुम कैसे जानती हो ?

वासदत्ता—[स्वगत] हूँ, आर्यपुत्र के पक्षपात के कारण मुझसे व्यवहार का उल्लंघन हो गया। भवतु, ऐसा कहती हूँ,। [प्रकाश] अगर थोड़ा स्नेह होता तो वह स्वजनों को छोड़ती नहीं।

पद्मावती—हो सकता है।

चेटी—भर्तृदारिके ! स्वामी से कहें—मैं भी वीणा सीखूंगी।

पद्मावती—मैंने आर्यपुत्र से कहा था।

वासवदत्ता—तो क्या कहा (उन्होंने) ?

पद्मावती—कुछ न कहकर, लम्बी साँस छोड़कर, चुप रह गये !

वासवदत्ता—तो तुम क्या अनुमान करती हो ?

पद्मावती—अनुमान करती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद कर दाक्षिण्य के कारण मेरे आगे रोते नहीं !

वासवदत्ता—[स्वगत] धन्य हूँ मैं, अगर यह सच हो।

[राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं।]

विदूषक—ओ हो ! बिछे पड़े बन्धुजीव-पुष्पोंवाला एवं विरल पवनवाला यह प्रमदवन रमणीय है। इधर आयें आप।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ततः प्रविशति रत्नमालामादाय सास्रा सुसङ्गता ।)

सुसंगता—(सकरुणं निःश्वस्य) हा पिअसहि साअरिए । हा लज्जालुए ! हा सहीगणवच्छले ! हा उदारसीले ! हा सोम्मदंसणे ! कहिं गदासि ! देहि मे पडिवअणं इति रोदिति । ऊर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च) हं हो देव्वहदअ । अकरुण । असामण्णरूवसोहा तादिसी तुए जइ णिम्मिदा ता कसि उण ईदिसं अवत्थन्तरं पाविदा । एयं च रअणमाला जीविदणिरासाए ताए 'कस्सवि बम्हणस्स हत्थे पडिवादेसुत्ति' भणिअ मम हत्थे समप्पिदा । ता जाव कंपि बम्हणं अण्णेसामि । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अए ! कहं एसो क्खु वम्हणो वसन्तओ इध एव्व आअच्छदि । ता इमस्सिं एव्व पडिवादइस्सं ।

(ततः प्रविशति हृष्टो वसन्तकः ।)

वसन्तकः—ही ही । भो भोः । अज्ज क्खु पिअ वअस्सेण पसादिदाए तत्तभोदीए वासवदत्ताए बंधणादो मोचिअ सहत्थदिण्णेहि मोदअलड्डुआहिं उदरं मे सुपूरिदं किदं । अण्णं च । एदं पट्टंसुअजुअलं कण्णाभरणं अ दिण्णं । ता जाव दाणि पिअवअस्सं पेक्खिस्सं । (इति परिक्रामति ।)

सुसंगता—(रुदती सहसोपसृत्य) अज्ज वसन्तअ । चिट्ठ दाव तुमं मुहुत्तअं ।

वसन्तकः—(दृष्ट्वा) कधं सुसंगदा । सुसंगदे ! एत्थ किंणिमित्तं रोदीअदि । ण क्खु साअरिआए अच्चाहिदं किं वि संवुत्तम् ।

सुसंगता—इदं ज्जेव्व णिवेदइदुकामा । सा क्खु तवस्सिणी देवीए उज्जइणिं णीदेत्ति प्पवादं कदुअ उवत्थिते अद्धरत्ते ण जाणीअदि कहिं णीदेत्ति ।

वसन्तकः—(सोद्वेगम्) हा भोदि साअरिए । हा असामाण्ण रूवसोहे । हा मिदुभासिणि । अदिणिग्घिणं दाणि देवीए किदम् । तदो तदो ।

सुसंगता—एसा रअणमाला ताए जीविदणिरासाए अज्जवसन्तअस्स हत्थे पडिवादेसित्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा । ता णं गेण्हदु अज्जो एदम् ।

वसन्तकः—(सास्रं सकरुणं कर्णौ पिधाय) भोदि ण मम ईदिसे पत्थावे एदं वोढुं हत्थो पसरदि (इत्युभौ रुदतः ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुसङ्गता--(अञ्जलिं बद्ध्वा) ताए एव्व अणग्गहं करन्तो अङ्गीकरेदु एदं अज्जो।

वसन्तक:--(विचिन्त्य) अहवा उवणेहि। जेण इमाए ज्जेव्व साअरिआविरहकुण्ठिदं पिअवअस्सं विणोदेमि।

(सुसङ्गता वसन्तकस्य हस्ते रत्नमालां ददाति।)

बसन्तक:—(गृहीत्वा निरूप्य सविस्मयम्) भोदि! कुदो उण ईदिसस्स अलंकारस्स समागमो ?

सुसङ्गता--अज्ज! मए वि सा कोदूहलेण पुच्छिदा अस्सि।

वसन्तक:--तदा ताए किं भणिदं।

सुसङ्गता--तदो सा उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससिअ। 'सुसंगदे, किं दाणिं तुह इमाए कधाए त्ति भणिअ रोदिदुं पउत्ता।

वसन्तक:--णं कधिदं एव्व ताए। सामण्णदुल्लहेण इमिणा परिच्छदेण सव्वधा महाभिजणसमुप्पण्णाए होदव्वं। सुसंगदे! पिअवअस्सो दाणिं कहिं।

सुसङ्गता--अज्ज एसो क्खु भट्टा देवीभवणदो णिक्कमिअ फडिअसिलामण्डवं गदो। ता गच्छदु अज्जो। अहं वि देवीए वासवदत्ताए परिचारिणी भविस्सं।

--महाराजश्रीहर्षदेवः

संस्कृत अनुवाद

(ततः प्रविशति रत्नमालामादाय सास्रा सुसङ्गता।)

सुसङ्गता—(सकरुणं निःश्वस्य) हा प्रियसखिसागरिके! हा लज्जालुके! हा सखीगणवत्सले! हा उदारशीले! हा सौम्यदर्शने! कुत्र गतासि ? देहि मे प्रतिवचनम्। (इति रोदिति। ऊर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च) हंहो दैवहतक! अकरुण! आसामान्यरूपशोभा तादृशी त्वया यदि निर्मिता तत्कस्मात्पुनः ईदृशमवस्थान्तरं प्रापिता। इयं च रत्नमाला जीवितनिराशया तया 'कस्यापि ब्राह्मणस्य हस्ते प्रतिपादयेति' भणित्वा मम हस्ते समर्पिता। तद्यावतकमपि ब्राह्मणन्वेषयामि। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अये! कथमेष खलु ब्राह्मणो वसन्तक इत एवागच्छति। तदस्मिन्नेव प्रतिपादयिष्ये।

(ततः प्रविशति हृष्टो वसन्तकः।)

वसन्तकः—ही! ही! भो भोः! अद्य खलु प्रियवयस्येन प्रसादितया तत्रभवत्या वासवदत्तया बन्धनान्मोचयित्वा स्वहस्तदत्तैर्मोदकलड्डुकैः उदरं मे सुपूरितं कृतम्। अन्यच्च। एतत्पट्टांशुकयुगलं कर्णाभरणं च दत्तम्। तद्यावदिदानीं प्रियवयस्यं प्रेक्षिष्ये। (इति परिक्रामति।)

सुसङ्गता—(रुदती सहसोपसृत्य) आर्य वसन्तक! तिष्ठ तावत्त्वं मुहूर्त्तकम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वसन्तकः—(दृष्ट्वा) कथं सुसंगता। सुसंगते ! अत्र किं निमित्तं रुद्यते। न, खलु सागरिकाया अत्याहितं किमपि संवृत्तम्।

सुसङ्गता—एतदेव निवेदयितुकामा। सा खलु तपस्विनी देव्या उज्जयिनीं नीतेति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न ज्ञायते कुत्र नीतेति।

वसन्तकः—(सोद्वेगम्) हा भवति सागरिके ! हा असामान्यरूपशोभे ! हा मृदुभाषिणी ! अतिनिर्घृणमिदानीं देव्या कृतम्। ततस्ततः।

सुसंगता—एषा रत्नमाला तया जीवितनिराशया आर्यवसन्तकस्य हस्ते प्रतिपादयस्वेति भणित्वा मम हस्ते समर्पिता। तद् ननु गृह्णात्वार्यः एताम्।

वसन्तकः—(सास्रं सकरुणं कर्णौ पिधाय) भवति ! न ममेवृशे प्रस्तावे एतां वोढुं हस्तः प्रसरति। (इत्युभौ रुदतः।)

सुसंगता—(अञ्जलिं बद्ध्वा) तस्या एवानुग्रहं कुर्वन्नङ्गीकरोतु एतामार्यः।

वसन्तकः—(विचिन्त्य) अथवोपनय। येनानयैव सागरिकाविरहकुण्ठितं प्रियवयस्यं विनोदयामि।

(सुसंगता वसन्तकस्य हस्ते रत्नमालां ददाति)

वसन्तकः—(गृहीत्वा निरूप्य सविस्मयम्) भवति ! कुतः पुनरीदृशस्यालङ्कारस्य समागमः ?

सुसंगता— आर्य ! मयापि सा कौतूहलेन पृष्टा आसीत्।

वसन्तकः—ततः तया किं भणितम्।

सुसंगता—ततः सा ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्य 'सुसंगते, किमिदानीं तवानया कथये'ति भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता।

वसन्तकः—ननु कथितमेव तया। सामान्यजनदुर्लभेनानेन परिच्छदेन सर्वथा सहाभिजनसमुत्पन्नया तया भवितव्यम्। सुसंगते ! प्रियवयस्य इदानीं कुत्र ?

सुसंगता—आर्य ! एष खलु भर्ता देवीभवनतः निष्क्रम्य स्फटिक-शिलामण्डपं गतः। अहमपि देव्या वासवदत्तायाः परिचारिणी भविष्यामि।

हिन्दी अनुवाद

(रत्नमाला लिये सजलनयना सुसङ्गता प्रवेश करती है)

सुसङ्गता—(करुण निःश्वास छोड़कर) हा प्रियसखि ! सागरिका ! ओ लजीली ! हा सखियों से स्नेह रखनेवाली ! हा उदारशीले ! हा सौम्यदर्शने ! कहाँ गयी ? मुझे उत्तर दो (रोती है। ऊपर देखकर और साँस छोड़कर) हाय रे दुष्ट दैव ! अकरुण ! वैसी असामान्य रूपशोभा अगर तूने बनायी, तो फिर ऐसी अवस्था तक क्यों पहुँचाया ? और यह रत्नमाला जीवन से निराश हो उसने "किसी ब्राह्मण के हाथ तक पहुँचा देना" कहकर मेरे हाथ में दी थी। तो फिर किसी ब्राह्मण को ही खोजूं। (परदे की ओर देखकर) अरे ! ये क्या ब्राह्मण वसन्तक इधर ही आ रहे हैं। तो इन्हीं को दे दूँ।

(प्रसन्न वसन्तक प्रवेश करता है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वसन्तक—ही ही ! वाह वाह ! आज तो प्रिय मित्र द्वारा मनायी गयी देवी वासवदत्ता ने बन्धन से छुड़ाकर अपने हाथों दिये मनभाते लड्डुओं से खूब मेरा पेट भरा है और ऊपर से यह रेशमी कपड़ों का जोड़ा और कर्णाभूषण भी दिया है । तो फिर अब प्रियमित्र को खोजूँ । (घूमता है ।)

सुसङ्गता—(रोती हुई एकाएक समीप आकर) आर्य वसन्तक ! आप क्षणभर ठहरें तो ।

वसन्तक—(देखकर) कौन सुसङ्गता ! सुसङ्गता ! यह रोना क्यों ? सागरिका का कुछ अमङ्गल तो नहीं हुआ ?

सुसङ्गता—यही तो कहना चाहती हूँ । देवी ने "वह उज्जयिनी ले जायी गयी है" ऐसा प्रवाद फैलाकर आधी रात होने पर न जाने उस 'बेचारी को कहाँ भेज दिया है ।

वसन्तक—(उद्वेगपूर्वक) हा देवि सागरिके ! हा विलक्षण रूपराशिवाली ! हा मृदुवचने ! यह तो अत्यन्त निर्दय कार्य देवी ने किया है । फिर ?

सुसङ्गता—यह रत्नमाला जीवन से निराश होकर उसने 'आर्य वसन्तक को दे देना' कहकर मेरे हाथों सौंपी थी । सो इसे तो आप ले ही लें ।

वसन्तक—(अश्रुपूर्ण नेत्र एवं सकरुण होकर और दोनों कान मूँदकर) देवि ! ऐसे प्रस्ताव पर, इसे ढोने में मेरे हाथ बढ़ते नहीं । (दोनों रोते हैं ।)

सुसङ्गता—(हाथ जोड़कर) उसी पर अनुग्रह करके आर्य इसे ले लें ।

वसन्तक—(सोचकर) अथवा लाओ । इसी से सागरिका के विरह में क्षुब्ध प्रियवयस्य का मन बहलाऊँगा ।

(सुसङ्गता वसन्तक के हाथ में रत्नमाला देती है)

वसन्तक—(लेकर, भलीभाँति देखकर आश्चर्यपूर्वक) देवि ! ऐसा अलंकार उसे भला कहाँ से मिला ?

सुसङ्गता—आर्य ! मैंने भी कुतुहलवश उससे पूछा था ।

वसन्तक—तो उसने क्या कहा ?

सुसङ्गता – तो वह ऊपर देखकर लम्बी साँस छोड़कर "सुसंगते ! तुम्हें इससे क्या ?" कहकर रोने लगी ।

वसन्तक—तब तो उसने कह ही दिया । सामान्यजन द्वारा दुर्लभ इस रत्न से तो लगता है कि वह ऊँचे कुल में उत्पन्न हुई होनी चाहिए । सुसंगते ! प्रियमित्र इस समय कहाँ हैं ?

सुसङ्गता—आर्य ! यहीं अभी-अभी स्वामी देवी के भवन से निकलकर स्फटिक-शिला-मण्डप गये हैं । तो आर्य जायं ! मैं देवी वासवदत्ता की सेवा में जाती हूँ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विद्याधरी--ता किं ति पुरो आआसं दुद्दंततरलतडिच्छडाकडारं अवरं विय झत्ति संवुत्तम् ?

विद्याधरी--दिट्ठिया, एदेण विमलमुत्तासेअसीअलसिणिद्धमसिणमंसलेण णाहदेहप्पंसेण आणन्दसंदलिदघुण्णमाणवेअणाए अद्धोदिदो-एव्व अन्दरिदो मे संदावो।

विद्याधरी--कहं अविरलविलोलघुण्णमाणविज्जुल्लदाविलासमंसलेहिं मत्त-मयूरकण्ठसामलेहिं ओत्थरीअदि णभोङ्गणं जलहरेहिं ?

विद्याधरी--पिअं मे, पिअं मे ।

विद्याधरी--णाध ! को दाणि एसो स संभमोक्खित्तकरम्भमदुत्तरीअञ्चलो दूरदो एव्व महुरसिणिद्धवअणपडिसिद्धजुद्धव्वावारो एदाणं अन्दरे विमाणवरं ओदरावेदि ?

संस्कृत अनुवाद

विद्याधरी – तत्किमिनि पुर आकाशं दुर्दशंतरलतडिच्छटाकडारमपरमिव झटिति संवृत्तम् ?

विद्याधरी— दिष्ट्या, एतेन विमलमुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृणमांसलेन नाथदेह-स्पर्शेनानन्दसंवलितघूर्णमानवेदनाया अर्धोदित एवान्तरितो मे सन्तापः ।

विद्याधरी- कथमविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लताविलासमांसलैर्मत्तमयूरकण्ठश्याम-लैरवस्तीर्यंते नभोङ्गणं जलधरैः ?

विद्याधरी—प्रियं मे, प्रियं मे ।

विद्याधरी—नाथ ! क इदानीमेष ससंभ्रमोत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तारीयाञ्चलो दूरत एव मधुरस्निग्धवचनप्रतिषिद्धयुद्धव्यापार एतयोरन्तरे विमानवरमवतारयति ?

हिन्दी अनुवाद

विद्याधरी—तब क्यों सामने दुर्दर्श और चञ्चल बिजली की पङ्क्ति से पिङ्गल वर्णवाला यह आकाश झटपट दूसरे पदार्थ के सदृश हो गया ।

विद्याधरी—भाग्य से कुछ ही उत्पन्न मेरा सन्ताप, निमल मोती के पहाड़ सदृश ठण्ढा, चिकना, कोमल और पुष्ट पतिदेव के इस शरीरस्पर्श से आनन्द के कारण फैलती हुई वेदना के दूर होने से, विनष्ट हो गया है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विद्याधरी – किस तरह निरन्तर चञ्चल और घूमती हुई बिजलियों के चमकने से पुष्ट और मत्त मयूरों के कण्ठ के सदृश श्याम वर्णवाले मेघ आकाश को आच्छादित कर रहे हैं।

विद्याधरी—मुझे पसन्द है, मुझे पसन्द है।

विद्याधरी—नाथ! अभी यह कौन दूर से ही शीघ्रता से ऊँचे किये हुए हाथ में उत्तरीय को हिलाता हुआ मीठे और स्नेहपूर्ण वचनों से युद्धक्रिया का निषेध कर इन दोनों के बीच में श्रेष्ठ विमान (पुष्पक) को उतार रहा है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कर्पूरमञ्जरी (तृतीयोऽङ्कः)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—(तामनुसन्धाय)

दूरे किज्जदु चम्प अस्स कलिआ कज्जं हलिद्दी अ किं
ओल्लोल्लाइ वि कञ्चणेण गणणा का णाम जच्चेण वि ।
लावण्णस्स णउग्गदिन्दुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
पच्चग्गेहि-वि केसरस्स कुसुमुक्केरेहिं किं कारणं ॥ १ ॥

अवि अ

मरगअमणिगुच्छा हारलट्ठि व्व तारा
भमरकवलिअद्धा मालईमालिअव्व ।
रहसवलिअकण्ठी तीअ दिट्ठी वरिट्ठा
सवणपहणिविट्ठा माणसं मे पइठ्टा ॥ २ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! किं तुवं भज्जाजिदो पइव्व किंपि किंपि कुरकुराअन्तो चिट्ठसि ।

राजा—वअस्स पिअं सुविणअं दिट्ठं । तं अणुसन्धामि ।

विदूषकः—ता कीदिसं तं कधेदु पिअवअस्सो ।

राजा—जाणे पङ्करुहाणणा सुविणए मं केलिसज्जागदं
कन्दोट्टेण तडत्ति ताडिदुमणा हत्थन्तरे संठिदा ।
ता कोड्डेन मए वि झत्ति गहिदा ढिल्लं वरिल्लञ्चले
तं मोत्तूण गदं च तीअ सहसा णट्ठा खु णिद्दा वि मे ॥ ३ ॥

विदूषकः—(स्वगतम्) भोदु एवं दाव । (प्रकाशं) भो वअस्स अज्ज मए वि सुविणअं दिट्ठं ।

राजा—(सप्रत्याशम्) ता कहिज्जदु कीदिसं तं सुविणअं ।

विदूषकः—अज्ज सुविणए सुरसरिसोत्ते सुत्तोम्हि ।

राजा—तदो तदो ।

विदूषकः—ता हरसिरोवरि दिण्णलीलावआए गङ्गाए पक्खालिदोम्हि तोएण ।

विदूषकः—तदो सरअसमअवरिसिणा जलहरेण जहिच्छं पीदोम्हि ।

राजा—अच्छरिअं अच्छरिअं । तदो तदो ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषकः—तदो चित्ताणक्खत्तगदे सअवदि मत्तण्डे तम्बवण्णीणदीसंगमे समुद्दं गदो सो मइ्मेहो। जाणे अहं-पि तस्स गब्भट्ठिदो गच्छामि।

राजा—तदो तदो।

विदूषकः—तदो तहिं सा थूरुजलबिन्दूहिं वीरसिदुं पअट्टो। अहं च रअणाअरसुत्तिहिं मुत्तासुत्तिआणामधेआहिं समुप्फाडिअ जलबिन्दूहिं पीदो। ताणं च दसमासप्पमाणो मुत्ताहलो भविय गब्भे संठिदो।

राजा—तदो तदो।

विदूषकः—

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो घणम्बुबिन्दू जिदवंसरोअणो।
मुवत्तलं णिच्चलमच्छमुज्जलं कमेण पत्तो णवमोत्तिअत्तणं॥ ४॥

तदो सो हं अत्ताणं ताणं गब्भगदं मुत्ताहलत्तणेण मण्णेमि।

राजा—तदो तदो।

विदूषकः—तदो परिणदि काले समुद्दाओ कड्ढिदाओ ताओ सुत्तिओ फाडिदाओ। अहं चउस्सट्ठिमुत्ताहलत्तणं गदो ठिदो। कीदो च एक्केण सेट्ठिणा सवण्णलक्खं देइअ।

राजा—अहो विचित्तदा सुविणअस्स। तदो तदो।

विदूषकः—तदा तेण आणिअ वेअडिअं विद्धाविदा मोत्तिआ। मम वि ईसीसि वेअणा समुप्पण्णा।

राजा—तदो तदो।

विदूषकः—तेणं च मुत्ताहलमण्डलेणं एक्केक्कादाए दसमासिएणं।
एक्कावली लट्ठिकमेण गुच्छा सा संठिदा कोडिसुवण्णमुल्ला॥ ५॥

राजा—तदो तदो।

विदूषकः—तदो तं करण्डिआए कदुअ साअरदत्तो गदो पञ्चालाहिवस्स सिरिवज्जाउहस्स णअरं कण्णउज्जं णाम। तदो सा विक्किणीदा कोडिए सुवण्णस्स।

राजा—तदो तदो।

विदूषकः—तदो अ

दट्ठूण थोरत्थणतुङ्गिमाणं एक्कावलीए तह चङ्गिमाणं।
सा तेण दिण्णा दइआएँ कण्ठे रज्जन्ति छेआ समसंगमम्मि॥ ६॥

अवि अ

णहबहलिदजोण्हाणिब्भरे रत्तिमज्झे
कुसुमसरपहारत्तासमीलिदाणं।
णिहुवणपरिरम्भे णिब्भरुत्तुङ्गपीण—
त्थणकलसणिवेसा पीडिदो हं विबुद्धो॥ ७॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(किञ्चिद् विहस्य विचिन्त्य)
सुविणअमेणमसच्चं तं दिट्ठं मेणुसन्धमाणस्स ।
पडिसुविणएण तस्स विणिवारणं तुह अभिप्पाओ ॥ ८ ॥

—राजशेखर

संस्कृत अनुवाद

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—(तामनुसन्धाय)

दूरे म्रियतां चम्पकस्य कलिका कार्यं हरिद्रया (नु) किम्
उष्णोष्णेन च कञ्चनेन गणना का नाम जात्येनापि ।
लावण्यस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्याः पुरः
प्रत्यग्रैरपि केशरस्य कुसुमोत्करैः (च) किं कारणम् ॥ १ ॥

अपि च

मरकतमणिगुच्छा हारयष्टिरिव तारा-
भ्रमरकवलितार्धा मालतीमालिकेव ।
रभसवलितकण्ठी तस्या दृष्टिर्वरिष्ठा
श्रवणपथनिविष्टा मानसं मे प्रविष्टा ॥ २ ॥

विदूषकः—भो वयस्य ! किं त्वं भार्याजितः पतिरिव किमपि किमपि फुरफुराय-माणस्तिष्ठसि ।

राजा—वयस्य प्रियं स्वप्नकं दृष्टम् । तदनुसन्दधामि ।

विदूषकः—तत्कीदृशम् तत् कथयतु प्रियवयस्यः ।

राजा—जाने पङ्करुहानना स्वप्नके मां केलिशय्यागतं
तडिति ताडितुमना हस्तान्तरे संस्थिता ।
तत्कौतुकेन मयापि झटिति गृहीता शिथिले वराञ्चले
तन्मोचयित्वा गतश्च तया सहसा नष्टा खलु निद्रापि मे ॥ ३ ॥

विदूषकः —(स्वगतम्) भवतु, एवं तावत् । (प्रकाशम्) भो वयस्य अद्य मयापि स्वप्नो दृष्टः ।

राजा—(सप्रत्याशम्) तत्कथ्यतां कीदृशः सः स्वप्नः ।

विदूषकः—अद्य स्वप्ने सुरसरित्स्रोतसि सुप्तोऽस्मि ।

राजा—ततस्ततः ।

विदूषकः—तद्धरशिरसि बद्धलीलावत्या गङ्गायाः प्रक्षालितोऽस्मि तोयेन ।

राजा— ततस्ततः ।

विदूषकः—ततः शरत्समयवर्षिणा जलधरेण यथेच्छं पीतोऽस्मि ।

राजा—आश्चर्यमाश्चर्यम् । ततस्ततः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषकः— ततश्चित्राःनक्षत्रगते भगवति मार्त्तण्डे ताम्रपर्णीसङ्गमे समुद्रं गतः स महामेघः। जाने अहमपि तस्य गर्भस्थितो गच्छामि।

राजा—ततस्ततः।

विदूषकः—ततस्तत्र स स्थूलजलबिन्दुभिः वर्षितुं प्रवृत्तः। अह रत्नाकरशुक्तिभिः शुक्ताशुक्तिकानामधेयाभिः समुत्फाट्य जलबिन्दुभिः पीतः। तासां च दशमासप्रमाणों मुक्ताफलो भूत्वा गर्भे संस्थितः।

राजा—ततस्ततः।

विदूषकः—ततश्चतुष्षष्टिपु शुक्तिषु स्थितो घनाम्बुबिन्दुः जितवंशरोचनः।
सुवर्त्तुलं निश्चलमच्छमुज्ज्वलं क्रमेण प्राप्तो नवमौक्तिकत्वम् ॥ ४ ॥
ततः सोऽहमात्मानं तासां गर्भगतं मुक्ताफलत्वेन मन्ये।

राजा—ततस्तः।

विदूषकः—ततः परिणतिकाले समुद्रात् कर्षितास्ताः शुक्तयः स्फाटिताः। अहञ्च चतुष्षष्टिमुक्ताफलत्वं गतः स्थितः। क्रीतश्चैकेन श्रेष्ठिना सुवर्णलक्षं दत्वा।

राजा अहो विचित्रता स्वप्नस्य। ततस्ततः।

विदूषकः—ततस्तेन आनीय वैकटिकं वेधितानि मोक्तिकानि। ममापीषदीषद् वेदना समुत्पन्ना।

राजा - ततस्ततः।

विदूषकः—तेन च मुक्ताफलमण्डलेन एकैकतया दशमासिकेन।
एकावली यष्टिक्रमेण गुम्फिता स्थिता च सा कोटिसुवर्णमूल्या ॥ ५ ॥

राजा—ततस्ततः।

विदूषकः—ततस्तां करण्डिकायां कृत्वा सागरदत्तो गतः पाञ्चालाधिपस्य श्रीवज्रायुधस्य नगरं कान्यकुब्जं नाम। ततः सा क्रीतां कोट्या सुवर्णस्य।

राजा—ततस्ततः।

विदूषकः—ततश्च
दृष्ट्वा (च) स्थूलस्तनतुङ्गिमानमेकावल्यास्तथा *चङ्गिमानं (सौन्दर्यं)।
सा तेन दत्ता दयितायाः कण्ठे, रज्यणित छेकाः समसङ्गमे ॥ ६ ॥

अपि च

नभोबहुलितज्योत्स्नानिर्भरे रात्रिमध्ये
कुसुमशरप्रहारत्राससम्मीलितयोः।
निधुवनपरिरम्भे निर्भरोत्तुङ्गपीन—
स्तनकलशनिवेशात्पीडितोऽहं विबुद्धः ॥ ७ ॥

राजा –(किञ्चिद् विहस्य विचिन्त्य)
स्वप्न एषोऽसत्यः स दृष्टः मेऽनुसन्धानस्य।
[illegible] तस्य विनिवारणं तवाभिप्रायः ॥ ८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी अनुवाद

(तदनन्तर राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—(उसी का चिन्तन करते हुए)

चम्पा की कली दूर कर दो। नये उगते चाँद की-सी मधुर कांतिवाले उसके सलोनेपन के रहते हल्दी से क्या प्रयोजन? तपाये हुए शुद्ध सोने की भी क्या गिनती? केसर के अभी-अभी खिले फूलों के गुच्छों से भी क्या प्रयोजन? ॥ १ ॥

और भी—मरकत मणि से सेवित (गुँथी) हारयष्टि की तरह, भ्रमरों से आधी कवलित (खायी गयी) मालती की माला की तरह, कर्ण-प्रदेश तक (तिरछे) पहुँचायी गयी वेगपूर्वक उससे कण्ठ को मोड़नेवाली उसकी श्रेष्ठ दृष्टि मेरे मन में पैठ गयी है ॥ २ ॥

विदूषक—अरे मित्र ! क्या तुम भी स्त्री से हारे पति के समान कुछ-न-कुछ बड़बड़ाये जा रहे हो?

राजा—मित्र ! प्यारा-सा सपना देखा है। उसे ही याद कर रहा हूँ !

विदूषक—तो वह कैसा है मित्र? कहो तो।

राजा—मुझे लगा कि एक कमलनयना, केलिशय्या पर सोये मुझको लाल कमल से तड़ से मारने के लिए हाथभर की दूरी पर खड़ी हो गयी। सो मैंने भी उसे कुतूहलवश उसके ढीले वरांचल को पकड़ लिया। उसे छुड़ाकर वह चली गयी और मेरी नींद भी खुल गयी ॥ ३ ॥

विदूषक—(मन-ही-मन) ठीक है, तो ऐसा है। (प्रकाश) मित्र, आज मैंने भी सपना देखा है।

राजा—(आशापूर्वक) तो कहो, वह स्वप्न कैसा था?

विदूषक—आज सपने में गंगा की धारा में सोया था।

राजा—फिर क्या हुआ?

विदूषक—फिर शिव के मस्तक पर विहार करनेवाली गंगा के जल से धुलता रहा।

विदूषक—उसके बाद शरत्काल में बरसनेवाले मेघ द्वारा इच्छानुसार पी लिया गया।

राजा—आश्चर्य ! आश्चर्य !! फिर?

विदूषक—फिर भगवान् सूर्य के चित्रा नक्षत्र में जाने पर वह महामेघ ताम्रपर्णी नदी के संगम पर समुद्र पर गया। लगा, मैं भी उसके गर्भ में ही जा रहा हूँ।

राजा—फिर?

विदूषक—फिर वह वहाँ बड़ी-बड़ी बूंदों से बरसने लगा। और मैं मुक्ताशुक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नाम की समुद्री सीपियों द्वारा, मुख खोलकर, जल-बिन्दुओं के साथ पी लिया गया और उनके गर्भ में दस महीने तक बनकर रहा।

राजा — फिर ?

विदूषक—फिर चौंसठ सीपियों में बड़ी-बड़ी जल की बूंदों के रूप में स्थित मैं सुडौल, स्वच्छ, उज्ज्वल और निर्दोष मोती बन गया ॥ ४ ॥

सो ऐसा मैं उनके गर्भ में विद्यमान अपने आपको मोती मानता हूँ।

राजा—फिर ?

विदूषक— तो परिणति काल में समुद्र से निकाली गयी वे सीपियाँ फाड़ी गयीं और मैं चौंसठ मोतियों के रूप में आ गया। फिर एक सेठ द्वारा सौ मुहरें देकर खरीद लिया गया।

राजा—-आश्चर्यजनक स्वप्न है !! फिर ?

विदूषक—-फिर उसने वेधक को बुलवाकर मोती छिदवाये। मुझे भी थोड़ी-थोड़ी वेदना उत्पन्न हुई।

राजा-—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—-जिनमें से प्रत्येक दस-दस महीने में परिणत हुआ था, ऐसे उन मोतियों से लड़ी पिरोकर एकावली बनायी गयी और वह करोड़ मुहरों के मोल की हो गयी ॥ ५ ॥

राजा - फिर ? उसके बाद ?

विदूषक—-फिर उसे पिटारी में रखकर सागरदत्त पांचाल नरेश श्री वज्रायुध के नगर कन्नौज गया। वहाँ वह (एकावली) सौ मुहरों में खरीदी गयी।

राजा—-उसके बाद ?

विदूषक—-उसके बाद—-पीनस्तनों की उच्चता और एकावली की सुन्दरता देख कर उसने वह एकावली प्रिया के गले में डाल दी (क्योंकि) विदग्धजन सदृश वस्तुओं के मेल से प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

और फिर—-आकाश में छिटकी चाँदनी से भरपूर रात्रि में कामदेव के प्रहार के भय से मिलनेवाले उन दोनों के सुरतालिंगन में अत्युच्च विशाल स्तनकलश के भरपूर स्थापन से पीड़ित मैं जाग पड़ा ॥ ७ ॥

राजा—-(कुछ हँसकर, सोचकर)

यह सपना झूठा है। मेरे स्वप्न को सोचते हुए ही तुमने देख लिया है। इस प्रतिस्वप्न से उसका निवारण ही तुम्हारा अभिप्राय है ॥ ८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

४

मागधी

मृच्छकटिकम् (षष्ठोऽङ्कः)

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कधं अज्ज वि अज्जआ ण विवुज्झदि ? भोदु, पविसिअ पडिबोधइस्सं। (इति नाट्येन परिक्रामति।)

(ततः प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

चेटी—(निरूप्य) उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ। पभादं संवुत्तं।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कधं रत्तिज्जेव्व पभादं संवुत्तं ?

चेटी—अम्हाणं एसो पभादो। अज्जआए उण रत्तिज्जेव्व।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कहिं उण तुम्हाअं जूदिअरो ?

चेटी—अज्जए ! वड्ढमाणअं समादिसिअ पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं गदो अज्जचारुदत्तो।

वसन्तसेना—कि समादिसिअ ?

चेटी—जोएहि रात्तीए पवहणं, वसन्तसेना गच्छदुत्ति।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कहिं मए गंतव्वं ?

चेटी—अज्जए ! जहिं चारुदत्तो।

वसन्तसेना—(चेटीं परिष्वज्य) हञ्जे ! सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए, ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं। हञ्जे ! किं पविट्ठा अहं इह अब्भन्तरचदुस्सालअं ?

चेटी—ण केवलं अब्भन्तरचदुस्सालअं, सव्वजणस्स वि हिअअं पविट्ठा।

वसन्तसेना—अपि संतप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ?

चेटी—संतप्पिस्सदि।

वसन्तसेना—कदा ?

चेटी—जदो अज्जया गमिस्सदि।

वसन्तसेना—तदो मए पढमं संतप्पिदव्वं। (सानुनयम्) अज्जे ! गेण्ह एदं रअणावलिं। मम वहिणिआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भणिदव्वं च—'अहं सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तदा तुम्हाणं पि। ता एसा तुह ज्जेव कंठाहरणं होद रअणावली'।

चेटी--अज्जए! कुविस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव।

वसन्तसेना--गच्छ, ण कुविस्सदि।

चेटी--(गृहीत्वा) जं आणवेदि। (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविशति) अज्जए! भणादि अज्जा धूदा--'अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा, ण जुत्तं मम एदं गेण्हिदुं। अज्जउत्तो ज्जेव्व मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी।'

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका)

रदनिका--एहि वच्छ! सअडिआए कीलम्ह।

दारकः--(सकरुणम्) रदणिए! किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए! तं ज्जेव्व सोवण्णसअडिअं देहि।

रदनिका—(सनिर्वेदं निःश्वस्य) जाद! कुदो अम्हाणं सुवण्णववहारो? तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि। ता जाव विणोदेमि णं। अज्जआवसन्तसेणाए समीवं उवसप्पिस्सं (उपसृत्य) अज्जए! पणमामि।

वसन्तसेना--रदणिए! साअदं दे; कस्स उण अअं दारओ? अणलंकिदसरीरो वि चन्दमुहो आणन्देदि मम हिअअं।

रदनिका—ऐसो खु अज्जचारुदत्तस्य पुत्तो रोहसेणो णाम।

वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) एहि मे पुत्तअ! आलिंग। (इत्यङ्क उपवेश्य) अणुकिदं अणेण पिदुणो रूवं।

रदनिका—ण केवलं रूवं, सीलं पि तक्केमि। एदिणा अज्जचारुदत्तो अत्ताणअं विणोदेदि।

वसन्तसेना--अध किं णिमित्तं एसो रोअदि?

रदनिका--एदिणा पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए सुवण्णसअडिआए कीलिदं। तेण अ सा णीदा। तदो उण तं मग्गंतस्स मए इअं मट्टिआसअडिआ कदुअ दिण्णा। तदो भणादि 'रदणिए, किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए? तं ज्जेव्व सोवण्णसअडिअं देहि' त्ति।

वसन्तसेणा--हद्धी, अअं पि णाम परसंपत्तीए संतप्पदि। भअवं कअंत। पोक्खरवत्तपडिदजलबिंदुसरिसेहिं कीलसि तुमं पुरिसभाअधेएहिं। (इति सास्रा) जाद! मा रोद। सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि।

दारक--रदणिए। का एसा?

वसन्तसेना--दे पिदुणो गुणणिज्जिदा दासी।

रदनिका—जाद! अज्जआ दे जणणी भोदि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दारकः--रदणिए ! अलियं तुमं भणासि, जइ अम्हाणं अज्जआ जणणी ता कीस अलंकिदा ?

वसन्तसेना--जाइ ! मुद्धेण मुहेण अदिकरुणं मन्तेसि। (नाट्येनाभरणान्यवतार्य रुदति) ऐसा दाणिं दे जणणी संवुत्ता; ता गेण्ह एदं अलंकारअं, सोवण्णसअडिअं घडावेहि।

दारक--अवेहि, ण गेण्हिस्सं रोदसि तुमं।

वसन्तसेना--(अश्रूणि प्रमृज्य) जाद ण रोदिस्सं। गच्छ कीळ। (अलङ्कारैर्मृच्छकटिकां पूरयित्वा) जाद ! कारेहि सोवण्गसअडिअं।

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)

--मृच्छकटिकम् (षष्ठोङ्कः)

संस्कृत अनुवाद

(ततः प्रविशति चेटी।)

चेटी—कथमद्यापि आर्या न विबुध्यते ? भवतु, प्रतिबोधयिष्यामि। (इति नाट्येन परिक्रामति।)

(ततः प्रविशति आच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

चेटी—(निरूप्य) उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु आर्या। प्रभातं-संवृत्तम्।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कथं रात्रिरेव प्रभातं संवृत्तम् ?

चेटी- अस्माकमेतत् प्रभातम्। आर्यायाः पुना रात्रिरेव।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कुत्र पुनः युष्माकं द्यूतकरः ?

चेटी – आर्ये ! वर्धमानकं समादिश्य पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं गत आर्यचारुदत्तः।

वसन्तसेना – किं समादिश्य !

चेटी—योजय राज्याः प्रवहणं, वसन्तसेना गच्छत्विति।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कुत्र मया गन्तव्यम् ?

चेटी—आर्ये ! यत्र चारुदत्तः।

वसन्तसेना—(चेटीं परिष्वज्य) हञ्जे ! सुष्ठु न निर्ध्यातः रात्रौ, तदद्य प्रत्यक्षं प्रेक्षिष्ये। हञ्जे ! किं प्रविष्टाहमिहाभ्यन्तरचतुःशालकम् ?

चेटी—न केवलमभ्यन्तरचतुःशालकम्, सर्वजनस्यापि हृदयं प्रविष्टा।

वसन्तसेना—अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजनः ?

चेटी—सन्तप्स्यति।

वसन्तसेना – कदा ?

चेटी—यदार्या गमिष्यति।

वसन्तसेना—ततो मया प्रथमं सन्तप्तव्यम्। (सानुनयम्) हञ्जे ! गृहाणैतां

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रत्नावलीम्। मम भगिनिकायै आर्याधूतायै गत्वा समर्पय। भणितव्यं च—'अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली।'

चेटी—आर्ये! कुपिष्यति चारुदत्तः आर्यायै तावत्।

वसन्तसेना—गच्छ, न कुपिष्यति।

चेटी—(गृहीत्वा) यदाज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविशति) आर्ये? भणत्यार्या धूता—'आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता, न युक्तं ममैतां ग्रहीतुम्। आर्यपुत्र एवं ममाभरणविशेष इति जानातु भवती।'

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका)

रदनिका—एहि वत्स! शकटिकया क्रीडावः।

दारकः—(सकरुणम्) रदनिके! किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामेव सौवर्णशकटिकां देहि।

रदनिका—(सनिर्वेदं निःश्वस्य) जात! कुतोऽस्माकं सुवर्णव्यवहारः तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद् विनोदयामि एनम्। आर्या वसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। (उपसृत्य) आर्ये! प्रणमामि।

वसन्तसेना—रदनिके! स्वागतं ते; कस्य पुनरयं दारकः? अनलंकृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।

रदनिका—एष खल्वार्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसनो नाम।

वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) एहि मे पुत्रक! आलिङ्ग। (इत्यङ्क उपवेश्य) अनुकृतमनेन पितू रूपम्।

रदनिका न केवलं रूपं, शीलमपि तर्कयामि। एतेन आर्यचारुदत्त आत्मानं विनोदयति।

वसन्तसेना—अथ किं निमित्तमेष रोदिति?

रदनिका—एतेन प्रतिवेशिकगृहपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्। तेन च सानीता। ततः पुनस्तां याचमानाय मयेयं मृत्तिका शकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति 'रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामेव सौवर्णशकटिको देहो'ति।

वसन्तसेना—हा धिक्, हा धिक्! अयमपि नामपरसम्पत्त्या संताप्यते। भगवन् कृतान्त! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुषभागधेयैः। (इति सास्रा) जात! मा रोदिहि। सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।

दारकः—रदनिके! का एषा?

वसन्तसेना—ते पितुर्गुणनिर्जिता दासी।

रदनिका—जात! आर्या ते जननी भवति।

दारकः—रदनिके! अलीकं त्वं भणसि; यद्यस्माकमार्या जननी तत्कस्मा:-बलङ्कृता?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वसन्तसेना—जात ! मुग्धेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि। नाट्येनाभरणान्यवतार्य रुदती) एषेदानीं ते जननी संवृत्ता; तद्गृहाणैतमलङ्कारम्; सुवर्णशकटिकां घटापय।

दारमः—अपेहि, न ग्रहीष्यामि; रोदिषि त्वम्।

वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जात ! न रोदिष्यामि। गच्छ क्रीड। (अलङ्कारैर्मृच्छकटिकां पूरयित्वा) जात ! कारय सौवर्णशकटिकाम्।

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)

हिन्दी अनुवाद

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—क्या आर्या ! वसन्तसेना अब भी नहीं उठीं ? ठीक है, जाकर जगाती हूँ।

(घूमने का अभिनय करती है।)

(ढँके हुए शरीरवाली सोती हुई वसन्तसेना का प्रवेश)

चेटी—(देखकर) उठिये, उठिये आर्या ! प्रभात हो गया।

वस०—(जागकर) क्या रात ही प्रभात हो गयी ?

चेटी—हमारा तो यह प्रभात है, आर्या की रात ही है।

वस०—अरी ! तेरा जुआरी कहाँ है ?

चेटी—आर्ये ! वर्धमानक को आदेश देकर आर्य चारुदत्त पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान गये हैं।

वस०—क्या आदेश देकर ?

चेटी—रात का यान जोड़ना। वसन्तसेना जायगी !

वस०—अरी ! कहाँ जाना है मुझे ?

चेटी—आर्ये ! जहाँ चारुदत्त हैं।

वस०—(चेटी का आलिंगन कर) अरी ! रात में ठीक से उन्हें देख न सकी। सो अब प्रत्यक्ष देखूँगी। अरी ! क्या मैं भीतरी चौक में आ गयी हूँ ?

चेटी—केवल भीतरी चौक में ही नहीं, सबके हृदय में भी प्रवेश कर गयी हैं।

वस०—क्या चारुदत्त के परिजनों को खेद होता है ?

चेटी—खेद होगा।

वस०—कब ?

चेटी—जब आर्या जायेंगी।

वस०—तब तो पहले मुझे खेद होना चाहिए। (अनुनयपूर्वक) री ! यह रत्नावली ले। मेरी बहन आर्या धूता को जाकर देना और कहना—"मैं श्रीचारुदत्त के गुणों द्वारा जीती गयी दासी हूँ, सो तुम्हारी भी। इसलिए यह रत्नावली तुम्हारे कण्ठ का ही आभूषण हो।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चेटी—आर्ये ! चारुदत्त आर्या से क्रुद्ध हो जायँगे ।

वस०—जा, नहीं क्रुद्ध होंगे ।

चेटी—(लेकर) जैसी आज्ञा । (जाकर फिर प्रवेश करती है) आर्ये ! आर्या धूता कहती हैं--'आर्यपुत्र ने तुम्हें प्रसाद-रूप में दी है । मेरा इसे लेना उचित नहीं । आप समझ लें आर्यपुत्र ही मेरे लिए आभूषण हैं ।'

(बालक के साथ रदनिका का प्रवेश)

रदनिका--आओ वत्स ! गाड़ी से खेलें ।

दारक--(रोता हुआ) रदनिके ! मुझे इस मिट्टी की गाड़ी से क्या प्रयोजन ? सोने की उस गाड़ी को ही दो ।

रदनिका—(उदास-भाव से लम्बे श्वास छोड़कर) भैया ! अब हमारे यहाँ सोना कहाँ से आयेगा । पिताजी के पुनः समृद्ध होने पर सोने की गाड़ी से खेलोगे । अस्तु, मैं इसको बहलाती हूँ ।

आर्या वसन्तसेना के पास चलूंगी । (समीप जाकर) आर्ये ! नमस्कार है ।

वसन्तसेना--रदनिके ! स्वागत है; यह बच्चा किसका है ? आभूषणविहीन भी चाँद-सा मुखड़ावाला यह मेरे हृदय को आनन्दित करता है ।

रदनिका--यह आर्य चारुदत्त के पुत्र रोहसेन हैं ।

वसन्तसेना--(दोनों हाथ फैलाकर) आओ बेटा, आओ । मुझे आलिंगन करो । (गोदी में बैठाकर) यह तो ठीक अपने पिता की आकृतिवाला है ।

रदनिका--न केवल इसकी आकृति ही, अपितु स्वभाव भी है, ऐसा सोचती हूँ । इससे आर्य चारुदत्त अपना मन बहलाया करते हैं ।

वसन्तसेना--भला, यह रो क्यों रहा है ?

रदनिका--यह एक पड़ोसी के बालक की सोने की गाड़ी से खेल रहे थे । वह अपनी गाड़ी ले गया । अब फिर उसी गाड़ी को माँगने पर इन्हें मैंने यह मिट्टी की गाड़ी बनाकर दी है । इस पर यह कहते हैं कि 'रदनिके' मुझे इस मिट्टी की गाड़ी से क्या लेना-देना, मुझे तो वही सोने की गाड़ी ला दो' ।

वसन्तसेना--अरे रे ! यह भी दूसरों की सम्पत्ति से दुःखी होता है । भगवन् कृतान्त ! पुरइन पात पर पड़ी जल की बूंदों-से पुरुषों के भाग्य से तुम खेलते हो । (साश्रुनयना) पुत्र ! मत रोओ । सोने की गाड़ी से खेलोगे ।

बालक--रदनिका ! यह कौन है ?

वस०--तुम्हारे पिता के गुणों द्वारा जीती गयी दासी ।

रद०--पुत्र ! आर्या तुम्हारी माँ होती हैं ।

बालक--रदनिका ! तुम झूठ बोलती हो । अगर आर्या हमारी माँ हैं, तो अलंकृत कैसे हैं ?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वस०--पुत्र ! भोले मुँह से बड़ी करुण बात कहते हो । (आभूषण उतारकर रोती हुई) यह अब मैं तुम्हारी माँ हो गयी । यह अलंकार ले लो । सोने की गाड़ी गढ़वा लो ।

बालक--हटो । मैं नहीं लूँगा, तुम रोती हो ।

वस०--(आँसू पोंछकर) पुत्र ! नहीं रोऊँगी । जाओ, खेलो । (अलंकारों से मिट्टी की गाड़ी भरकर) पुत्र ! सोने की गाड़ी बनवा लेना ।

(बालक को लेकर रदनिका निकल जाती है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद् बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च ।)

रक्षिणौ--अले कुम्भीलओ, कहेहि कहि तुए एशे मणिवन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीअए अंगुलीअए शमाशादिए ।

पुरुषः--(भीतिनाटितकेन) पशीदन्तु भावमिश्शे । हगे ण ईदिशकम्मकाली ।

प्रथमः--किं शोहणे बम्हणेत्ति कलिअ रण्णा पडिग्गहे दिण्णे ।

पुरुषः--शुणुध दाणिं । हगे शक्कावदाळब्भंतरालवाशी धीवले ।

द्वितीयः--पाडच्चला, किं अम्हेहि जादी पुच्छिदा ।

श्यालः--सूअअ, कहेदु शव्वं अणुक्कमेण । मा णं अन्तरा पडिबन्धह ।

उभौ--जं आवुत्ते आणवेदि कहेहि ।

पुरुषः--अहके जालुग्गालादिहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि ।

श्यालः--(विहस्य) विसुद्धो दाणिं आजीवो ।

पुरुषः--भट्टा मा, एव्वं भण--

शहज किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए ॥ १ ॥

श्यालः--तदो तदो ।

पुरुषः--एकश्शिं दिअशं खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव । तश्श उदलब्भन्तले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ पच्छा अहके शे विक्कआअ दंशअंते गहिदे भावमिश्शेहिं । मालेह वा मुञ्चेह वा । अअं शे आअमवुत्तन्ते ।

श्यालः--जाणुअ, विस्सगन्धी गोहादी मच्छबन्धो एव्व निस्संअअं । अंगुलीअदंसणं से विमरिसिदव्वं । राअउलं एव्व गच्छामो ।

रक्षिणौ--तह गच्छ अले गंडभेदअ ।

(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

श्यालः--सूअअ, इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिवालह जाव इमं अंगुलीअअं जहागमणं भट्टिनो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि ।

उभौ--पविशदु आवुत्ते शामिपशादश्श ।

(इति निष्क्रान्तः श्यालः)

प्रथमः--जाणुअ, चिलाअदि क्खु आवुत्ते ।

द्वितीयः--णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो ।

प्रथमः--जाणुअ, फुल्लन्ति मे हत्था इमश्श वहश्श शुमणा पिणद्धुं ।

(इति पुरुषं निर्दिशति)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पुरुषः—ण अलुहदि भावे अकालणमालणं भविदुं।

द्वितीयः--(विलोक्य) एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देखीअदि। गिद्धबली भविश्शशि, शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि।

(प्रविश्य)

श्यालः--सूअअ, मुंचेदु एसो जालोअजीवी। उववण्णो क्खु से अंगुलीअअस्स आअमो।

सूचकः--जह आवुत्ते भणादि।

द्वितीयः--एशे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते।

(इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति।)

पुरुषः--(श्यालं प्रणम्य) भट्टा, अह कीलिशे मे आजीवे।

श्यालः--एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो।

(इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति।)

पुरुषः--(सप्रणामं प्रतिगृह्य) भट्टा, अणुग्गहिदम्हि।

सूचकः--एशे णाम अणुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कन्धे पडिट्ठाविदे।

जानुकः--आवुत्त, पालिदोशिअं कहेदि, तेण अंगुलीअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं।

श्यालः—ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि तस्स दंसणेण भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो। मुहुत्तअं पकिदि गम्भीरो वि पज्जरस्सुणअणो आसी।

सूचकः--शंविदं णाम आवुत्तेण।

जानुकः--णं भणाहि। इमश्श कए मच्छिआभत्तुणो त्ति।

(इति पुरुषमसूयया पश्यति)

पुरुषः—भट्टालक, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणो मुल्लं होदु।

जानुकः--एत्तके जुज्जइ।

श्यालः--धीवर, महत्तरो तुमं पिअवअस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पठमसोहिदं इच्छीअदि। ता सोण्डिआपणं एव्व गच्छामो।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे।)

इति प्रवेशकः

संस्कृत अनुवाद

अथ प्रवेशकः

(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद् बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अरे कुम्भीरक ! कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्ण-नामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम् ।

पुरुषः—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्राः अहं नेदृशकर्मकारी ।

प्रथमः—किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ।

पुरुषः—शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः ।

द्वितीयः--पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिः पृष्ठा ।

श्यालः--सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मैनमन्तरा प्रतिवधान ।

उभौ--यदावुत्त आज्ञापयति । कथय ।

पुरुषः--अहकं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि ।

श्यालः—(विहस्य) विशुद्ध इदानीमाजीवः ।

पुरुषः—भर्तः मैवम् भण ।

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥

श्यालः—ततस्ततः ।

पुरुषः—एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत् तस्योद-राभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन्गृहीतो भावमिश्रैः । मारयत वा मुञ्चत वा । अयमस्यागमवृतान्तः ।

श्यालः—जानुक विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निसंशयम् । अंगुलीयक-दर्शनमस्य विमर्शयितव्यम् । राजकुलमेव गच्छामः ।

रक्षिणौ—तथा गच्छ अरे गण्डभेदक ! (सर्वे परिक्रामन्ति) ।

श्यालः—सूचक, इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीयकं यथा-गमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि ।

उभौ—प्रविशत्वावुतः स्वामिप्रसादाय ।

(इति निष्क्रान्तः श्यालः ।)

प्रथमः—जानुक, चिरायते खल्वावुत्तः ।

द्वितीयः—नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः ।

प्रथमः—जानुक, स्फुरतो मम हस्तावस्य वधस्य सुमनसः पिनद्धुम् ।

(इति पुरुषं निर्दिशति ।)

पुरुषः—नार्हति भावोऽकारणमारण भावयितुम् ।

द्वितीयः—(विलोक्य) एषोऽस्माकं स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते । गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि ।

(प्रविश्य)

श्यालः—सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी उपपन्नः खल्वस्याङ्गुलीयक-स्यागमः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सूचकः—यथावृत्तो भणति ।

द्वितीयः—एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः ।

(इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति ।)

पुरुषः—(श्यालं प्रणम्य) भर्त्तः ! अथ कीदृशो मे आजीवः ।

श्यालः—एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः ।

(इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति ।)

पुरुषः—(सप्रणामं प्रतिगृह्य) भर्त्तः अनुगृहीतोऽस्मि ।

सूचक।—एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः ।

जानुक—आवुत्त प्ररितोषिकं कथयति तेनांङ्गुलीयकेन भर्त्तुः संमतेन भवितव्यम् ।

श्यालः—न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि । तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः । मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन आसीत् ।

सूचकः – सेवितं नामावुत्तेन ।

जानुक।—ननु भण अस्य कृते मात्स्यकभर्तुरिति ।

(इति पुरुषमसूयया पश्यति)

पुरुषः—भट्टारक, इतोऽर्ध युष्माकं सुमनो मूल्यं भवतु ।

जानुकः—एतावद्युज्यते ।

श्यालः--धीवर ! महत्तरस्त्वं प्रियवयस्क इदानीं मे संवृत्तः । कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रभमसौहृदमिष्यते । तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रवेशकः

हिन्दी अनुवाद

(तदनन्तर राजा के साले कोतवाल का और उसके पीछे बेड़ी से बँधे हुए एक पुरुष को लिये हुए दो सिपाहियों का प्रवेश ।)

दोनों सिपाही--(पीटकर) अरे चोर ! बोल, कहाँ तुमने राजा के नाम से अंकित यह मणि लगी हुई अँगूठी पायी ?

पुरुष-- (भय का अभिनय करते हुए) महाशय ! क्षमा करें । मैं ऐसा काम नहीं किया करता ।

प्रथम सिपाही--क्या तुझे सुपात्र ब्राह्मण जानकर राजा ने दक्षिणा दी थी ?

पुरुष--तनिक सुनने की कृपा तो करें। मैं शक्रवतार गांव का रहनेवाला मछुआ हूँ ।

दूसरासिपाही--अबे ! क्या हम तुम्हारी जाति-पाँति पूछ रहे हैं ।

कोतवाल--सूचक ! इसे सब बातें ब्योरे के साथ बताने दो, बीच में मत टोको ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दोनों सिपाही—श्रीमान् की जैसी आज्ञा। बोल रे! बोल।

पुरुष—मैं जाल, वंसी आदि मछली को पकड़नेवाले साधनों से अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता हूँ।

कोतवाल—(बिहँसकर) तेरी आजीविका तो बहुत अच्छी है।

पुरुष—स्वामी! ऐसा न कहें।

लोग चाहे जितनी भी निन्दा करें, किन्तु जो जिसका स्वाभाविक जाति-धर्म या आजीविका है, उसका उसे कभी त्याग नहीं करना चाहिए! देखिये, करुणा से आर्द्र हृदय वेदनिष्ठ ब्राह्मण ही यज्ञों में पशुओं की हिंसा जैसे क्रूर कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

श्याल—इसके बाद क्या हुआ?

पुरुष—एक दिन जब मैं एक रोहू मछली को टुकड़े-टुकड़े काट रहा था तब उसके पेट के भीतर रत्न के कारण चमकती हुई इस अँगूठी को देखा। बाद में मैं उसी को बेचने के लिए दिखला रहा था कि आप लोगों ने मुझे पकड़ लिया। अब चाहे मुझे मारिये या छोड़िये, इसके मिलने का यही सम्पूर्ण वृत्तान्त है।

कोतवाल—जानुक! इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यह गोह खानेवाला मछुआ ही है, क्योंकि इसके शरीर से कच्चे मांस की दुर्गन्ध आ रही है। हाँ, इस अँगूठी के मिलने की घटना की जाँच करनी चाहिए। इसे राजदरबार में हमें ले चलना चाहिए।

दोनों सिपाही—ठीक। अरे गिरहकट! चल। (सभी घूमते हैं।)

कोतवाल—सूचक! नगर-द्वार पर सावधानी से इसकी रखवाली करना, तब तक मैं महाराज से इस अँगूठी के प्राप्त होने का विवरण निवेदन करके और उनकी आज्ञा लेकर आता हूँ।

दोनों सिपाही—आप महाराज की अनुग्रह-प्राप्ति के लिए जायँ।

(कोतवाल चला गया)

प्रथम सिपाही—जानुक, आवुत्त देर कर रहे हैं।

दूसरा सिपाही—अरे! राजा के पास अवसर देखकर ही जाया जाता है।

प्रथम सिपाही—जानुक, इसे मारने के लिए माला पहनाने को मेरे हाथ फड़क रहे हैं। (मछुए की ओर संकेत करता है।)

मछुआ—यह आपके योग्य नहीं है कि बिना किसी कारण के मुझे मारने का विचार करें।

दूसरा पुरुष—(देखकर) ये हमारे अधिकारी हाथ में महाराज का आज्ञापत्र लिये हुए इसी तरफ मुख किये आते दिखायी पड़ रहे हैं। अब तू या गिद्धों का आहार बनेगा या कुत्तों के मुँह में जायेगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(प्रवेश करके)

कोतवाल--सूचक ! इस मछुए को छोड़ दो। अँगूठी के मिलने का रहस्य मालूम पड़ गया।

सूचक—श्रीमान् की जैसी आज्ञा।

दूसरा सिपाही--यह तो यमराज के घर पहुँचकर भी वापस लौट आया।

(मछुए को बन्धन से मुक्त करता है।)

मछुआ—(कोतवाल को प्रणामकर) श्रीमान्! बताएँ मेरी आजीविका कैसी रही ?

कोतवाल--महाराज ने इस अँगूठी के मूल्य के बराबर इसे उपहार देने की आज्ञा भी दी है। (मछुए को धन देता है।)

मछुआ-- (प्रणामपूर्वक स्वीकार करते हुए) श्रीमान् ! मैं अनुगृहीत हूँ।

सूचक--इसे ही राजा की कृपा कहते हैं, जिसने सूली से उतारकर हाथी की पीठ पर बैठा दिया।

जानुक—श्रीमान् ! पारितोषिक कहता है कि (से लगता है कि) अंगूठी स्वामी को विशेष प्रिय थी।

कोतवाल—मैं तो समझता हूँ कि उस अँगूठी में जो बहुमूल्य नग जड़ा था, उसके कारण वह महाराज को प्रिय नहीं लगी बल्कि उसे देखकर महाराज को किसी प्रियजन की याद आ गयी है; क्योंकि स्वभाव से गम्भीर होने पर भी उनके नेत्र अँगूठी को देखकर अनमने-से हो गये थे।

सूचक—तब तो श्रीमान् ने महाराज का बहुत बड़ा काम किया है।

जानुक--यों कहो कि इस मछुए ने राजा का बड़ा काम किया।

(मल्लाह को ईर्ष्या से देखता है।)

मछुआ—श्रीमान् ! इसका आधा भाग आप लोगों के पत्र-पुष्प के लिए है।

जानुक—यह तुमने ठीक कहा।

कोतवाल—मछुए ! अब तो तुम मेरे बड़े अच्छे मित्र हो गये। मदिरा का पात्र हमारा-तुम्हारा प्रथम प्रीतिपात्र हो—ऐसी मेरी इच्छा है। चलो मदिरालय की ओर चलें।

(सब चले जाते हैं)

प्रवेशक समाप्त

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

५

अर्धमागधी

अहिंसा

कोहाइमाणं हनिया च वीरे,
लोभस्स पासे निरयं महन्तं ।
तम्हा हि वीरे विरओ बहाओ,
छिन्देज्ज सोयं लहुभूयगामी ॥१॥
गन्थं परिन्नाय इह, अज्ज वीरे,
सोयं परिन्नाय चरेज्ज दान्ते ।
उम्मुग्गा लद्धुं इह माणवेहिं,
नो पाणिणं पाणे समारभेज्जा ॥२॥

—आयरङ्ग सुत्त (आचाराङ्ग सूत्र)

संस्कृत अनुवाद

क्रोधाभिमाने हन्याच्च वीर; लोभस्य पाशे निरयो महान् ।
तस्माद्धि वीरो विरतो वधात्, छिन्द्यात् स्रोतः लघुभूयगामी ॥ १ ॥
ग्रन्थं परिज्ञाय इहाद्य वीरः, स्रोतः परिज्ञाय चरेद्दान्तः ।
उन्मग्नान् लब्धुमिह मानवैः, न प्राणिनां प्राणान् समालभेत् ॥ २ ॥

हिन्दी अनुवाद

वीर (धर्मवीर) मनुष्य को चाहिए कि वह क्रोध और अभिमान को नष्ट करे, लोभ के पाश में पड़ने पर महान् नरक होता है, अतः शीघ्रता से अत्यन्त तेज चलनेवाले (सांसारिक कृत्यों में प्रगति करनेवाले) वीर मनुष्य को चाहिए कि हिंसा से विरत (होकर) जीवन के स्रोतों को (जीवन-मरण के कारणों को) उच्छिन्न कर दे ॥ १ ॥

इस समय इस संसार में ग्रन्थों (धार्मिक ग्रन्थों) का सम्यग् ज्ञान करके (तथा जीवन-मरण के) स्रोतों को भलीभाँति जानकर (इन्द्रियों को) दमन करनेवाले वीर पुरुष को (संसार में) आचरण (व्यवहार) करना चाहिए (तथा) मनुष्यों की सहायता से (भवजाल से) ऊपर उठे हुए को (लोगों को) प्राप्त करने के लिए जीवों के प्राणों की हिंसा नहीं करनी चाहिए ॥ २ ॥

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महावीरजन्म

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढ सुद्धस्स छट्ठी पक्खेणं महाविजयपुप्फुत्तर-पवर-पुण्डरीयाओ महाविमानाओ वीसंसागरोवमट्ठिती-याओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे इसीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए दुस्सम-सुसमाए समाए वहुविइक्कंताए पंच-हत्तरीए वासेहिं अद्ध-नवमेहिं य मासेहिं सेसेहिं एक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खाग-कुल-समुप्पन्नेहिं कासवगोत्तेहिं दोहि य हरिवंस-कुलसमुप्पनेहिं गोयमसगोत्तेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं विइक्कंतेहिं समणे भगवं महावीरे चरिमे तित्थयरे पुब्बतित्थवरनिद्दिट्ठे माहणकुण्डग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडाल-सगोत्तस्स भारियाए देवानन्दाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए पुब्बर-त्तावरत्त-कालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगं उवागएणं आहार-वक्कंतीए भव-वक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कते ।

--कप्पसुत्त

संस्कृत अनुवाद

तेन कालेन तेन समयेन (तस्मिन् काले तस्मिन् समये) श्रमणो भगवान् महावीरः यः सः ग्रीष्माणां चतुर्थे मासे अष्टमे पक्षे आषाढ़शुद्धे तस्य ननु आषाढ़-शुद्धस्य षष्ठ्यां पक्षेण महाविजयपुष्पोत्तरप्रवरपुण्डरीकात् महाविमानात् विंशसागरो-पमस्थितिकादनन्तरं च्यवं च्यवित्वा इहैव जम्बूद्वीपे भारतवर्षे अस्यामवसर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायां व्यतिक्रान्तायां दुष्षमसुषमायां समायां बहुव्यतिक्रान्तायां पञ्चसप्तत्या वर्षैः अर्द्धनवमैश्च मासैः शेषैः एकविंशत्या तीर्थङ्करैः इक्ष्वाकुकुलसमुत्पन्नैः काश्यपगोत्रैः द्वाभ्याञ्च हरिवंशकुलसमुत्पन्नाभ्यां गोतमसगोत्राभ्यां त्रयोविंशत्या तीर्थङ्करैः व्यतिक्रान्तैः श्रमणो भगवान् महावीरश्चरमः तीर्थङ्करः पूर्वतीर्थङ्करनिर्दिष्टः महनीय-कुण्डग्रामे नगरे वृषभदत्तस्य महनीयस्य कौटालसगोत्रस्य भार्यायाः देवानन्दायाः महनीयायाः जालन्धरसगोत्रायाः पूर्वरात्रकालसमये हस्तोत्तराभ्यां नक्षत्रेण योग-मुपागतेन, आहारापक्रान्त्या, भवापक्रान्त्या, शरीरापक्रान्त्या, कुक्षौ गर्भतया अवक्रान्तः ।

हिन्दी अनुवाद

उस बार, उस समय जो श्रमण भगवान् महावीर थे, वे ग्रीष्म ऋतु के चौथे महीने आठवें पाख आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में, उस आषाढ़ शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को महाविजयपुष्पोत्तर प्रवरपुण्डरीक नामक दिव्यलोक से जहाँ पर बीससागर (= काल गंगा की एक इकाई) पर्यन्त स्थिति रहती है, भोग-भोगकर मानव जन्म में उतरकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में सुषम-सुषमा नामक समय के बीतने पर दुष्षमसुषमा नामक समय के और अधिक बीतने पर इस अवसर्पिणी नामक काल-गणना में पचहत्तर वर्ष बीतने पर साढ़े आठ महीना शेष रहते, इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न कश्यप गोत्रवाले इक्कीस तीर्थंकरो के तथा गौतम गोत्रीय हरिवंश कुल में उत्पन्न दो तीर्थंकरों के, इस प्रकार तेईस तीर्थंकरों के बीत जाने पर अन्तिम तीर्थंकर के रूप में अपने पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के द्वारा श्रेष्ठ, पहले से ही निर्दिष्ट श्रमण भगवान् महावीर श्रेष्ठ कुण्डकग्राम नामक नगर में पूजनीय कोटाल गोत्रीय वृषभदत्त की जालन्धर फाल्गुनी और हस्त नक्षत्र की सन्धि-वेला में भोग की अवधि शुरू होने के कारण, भव के नये प्रारम्भ के कारण, नये शरीर के भोग के उपस्थित होने के कारण गर्भ के रूप में अवतीर्ण हुए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महावीरस्य परिव्रजनम्

अह दुच्चर-लाढं अचारी वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च ।
पन्तं सेज्जं सेविंसु आसणगाइं चेव पन्ताइम् ॥ १ ॥
लाढेहिं तस्स उवसग्गा बहवे जाणयवया लूसिंसु ।
अहलुक्स-देशिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु दिवइंसु ॥२॥
अप्पे जणे निवारेइ लूसणए सुणए डसमाणे ।
छुच्छुक्-कारेन्ति आहन्तुं समणं कुक्कुरा डसन्तुत्ति ॥३॥
एलिक्खए जणे भुज्जो बहवे वज्ज-भूमि फरुसासी ।
लट्ठिं गहाय नालियं समणा तत्थ एव विहरिंसु ॥४॥
एवं पि तत्थ विहरन्ता पुट्ठपुब्बा अहेसि सुणएहिं ।
संलुङ्चमाणा सुणएहिं दुच्चरगणि तत्थ लाढेहिं ॥५॥
निहाय दण्डं पाणेहि तं कायं वोसज्ज मणगारे ।
अह गामकण्टए भगवं ते अहियासए अभिसमेच्चा ॥६॥
नाओ संगाम-सीसे वा पारए तत्थ से महावीरे ।
एवं पि तत्थ लाढेहिं अलद्ध-पुब्बो वि एकया गामो ॥७॥
उवसंकमन्तं अपदिन्नं गामन्तियं पि अप्पत्तं ।
पडिनिक्खमित्तु लूसिंसु एयाओ परं पलेहि त्ति ॥८॥
हयपुब्बो तत्थ दण्डेणं अदु वा मुट्ठिणा अदु फलेणं ।
अदु लेलुणा कवालेणं हन्ता हन्ता बहवे कन्दिंसु ॥९॥
मंसूणि छिन्नपुब्बाइं ओट्ठुभियाए एगया कायं ।
परिस्सहाइं लुञ्चिंसु अदु वा पंसुणा उवकरिंसु ॥१०॥
उच्चालइय निहणिंसु अदु वा आसणाओ खलइंसु ।
वोसट्ठ-काए पणयासी दुक्खसहे भगवं अपदिन्ने ॥११॥
सूरो संगामसिसे व संयुदे तत्थ से महावीरे ।
पडिसेवमाणो फरुसाइं अचले भगवं रीइत्था ॥१२॥

—आयरङ्ग, सुत्त

संस्कृत अनुवाद

अथ दुश्चरराढमचारीत् वज्रभूमिं श्वभ्रभूमिं च ।
पूतियुक्तां शय्यामसेविष्ट आसनकानि चैव पूतिम् ॥१॥
राढेषु तस्योपसर्गाः बहवः जानपदाः अरुषन् ।
अथ रूक्षदेशीयः भक्तः कुक्कुरास्तत्र अहिंसिषुः न्यपप्तन् ॥२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अल्पः जनः निवारयति रोषणकान् शुनकान् दशतः ।
क्षुक्क्षुक् कारयन्ति आहन्तुं श्रमणं कुक्कुराः दशन्तु इति ॥३॥
*एवूक्षकः (ईवृक्षकः) जनः भूयः बहवः वज्रभूमिः परुषा आसीत् ।
यष्टिं गृहीत्वा नालिकं श्रमणास्तत्रैव व्यहार्षुः ॥४॥
एवमपि तत्र विहरन्तः स्पृष्टपूर्वाः अभूवन् शुनकैः ।
संलुञ्च्यमानाः शुनकैः दुश्चरकाणि तत्र राढेषु ॥५॥
निधाय दण्डं प्राणिभ्यः तं कायं व्यवसृज्यानागारः ।
अथ ग्रामकण्टकान् भगवान् तान् अध्यास्त अभिसमेत्य ॥६॥
नागः संग्रामशीर्षे इव पारगः तत्र स महावीरः ।
एवमपि तत्र राढेषु अलब्धपूर्वः अपि एकदागामी ॥७॥
उपसङ्क्राम्यन्तमप्रतिज्ञं ग्रामान्तिकमपि अप्राप्तम् ।
प्रतिनिष्क्रमितुमरुजन् एतस्मात् परं पलायस्व इति ॥८॥
हतपूर्वः तत्र दण्डेनाथवा मुष्टिना उत फलेन ।
उत लेड्डुना (मृत्पिण्डेन) कपालेन हत हत बहवः अक्रन्दिषुः ॥९॥
श्मश्रूणि छिन्नपूर्वाणि अवष्टभितायामेकदा कायम् ।
परिस्रवाणि अलुचन् उत वा पांशुना उपाकारिषुः ॥१०॥
उच्चाल्य न्यवधिषुः उत वा आसनात् अचस्खलन् ।
व्यवसृष्टकायः प्रणतः आसीत् दुःखसहः भगवान् अप्रतिज्ञः ॥११॥
शूरः संग्रामशीर्षे इव संवृतः तत्र स महावीरः ।
प्रतिसेवमानः परुषाणि अचलद्भगवान् आरत् ॥१२॥

हिन्दी अनुवाद

इसके बाद महावीर ने ऊबड़-खाबड़ (सम्भवतः पश्चिमी बंगाल का पश्चिमी भाग और छोटा नागपुर का पर्वतीय भाग) एवं तलहटीवाली दुश्चर राढ़ देश की भूमि में विचरण किया और अशोभन बिस्तर तथा अशोभन आसनों पर वे सोये एवं बैठे ॥ १ ॥

राढ़ देशों में महावीर के लिए बहुत दुःख थे और वहाँ के निवासी इनसे अप्रसन्न थे। रूखे-सूखे भातों पर (लिपटे हुए) उन्हें कुक्कुर काटते थे और टूट पड़ते थे ॥ २ ॥

थोड़े ही लोग उन क्रुद्ध एवं काटनेवाले कुत्तों का निवारण करते थे (किन्तु कुछ लोग) श्रमणों को कुत्ते काटें ऐसा (सोचकर) उनको काटने के लिए क्षुक्-क्षुक् (कुत्तों को प्रोत्साहित करने की बोली) करते थे ॥ ३ ॥

एक तो, इसी प्रकार के वहाँ लोग थे और दूसरे, वह वज्रभूमि, रूक्ष रही। वहाँ श्रमण लोग यष्टि और बाँस के बने डण्डों (नालिका) को लेकर विहार करते थे ॥ ४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसी तरह वहाँ विहार करते हुए श्रमणों को कुत्तों ने काटा और चिथड़े-चिथड़े कर दिये। राढ़ देश में वे लोग चल-फिर नहीं सकते थे ॥ ५ ॥

प्राणियों के समक्ष दण्ड को त्याग कर, अपने पूर्व भाव को छोड़कर वे अनागार भगवान् महावीर परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर कण्टक के समान उन गाँवों में रहे ॥ ६ ॥

घोर संग्राम में जिस प्रकार हाथी पार चला जाता है उसी प्रकार महावीर राढ़ देश में अलब्धपूर्व की भाँति रहते हुए एक बार जाने को हुए ॥ ७ ॥

निष्काम महावीर गाँवों में घूमते हुए भी गाँवों के पास नहीं गये। यहाँ से भाग चलना चाहिए, ऐसा सोचकर, वहाँ से निकल चलने का उन्होंने निश्चय किया ॥ ८ ॥

डण्डे से, मुष्टि से, फल से, ढेले से, कपाल (घड़े का टुकड़ा) से यह (महावीर) मारा गया है। इसको 'मारो-मारो' (ऐसा) बहुत से लोग चिल्लाने लगे ॥ ९ ॥

एक समय, शरीर को जड़ (निश्चल) बना देने की स्थिति में पहले से बनी हुई (तथा इस समय) बिखरी हुई दाढ़ों-मूँछो को (राढ़ देशवासियों ने) नोच लिया और (उस पर) धूल बिखेर दी ॥ १० ॥

शरीर को उलट-पुलटकर (उन्हें लोगों ने) मारा और आसन से ढकेल दिया। शरीर को फेंक दिया (तो) निष्काम, दुःख सहनेवाले भगवान् महावीर प्रणत हो गये ॥ ११ ॥

घोर संग्राम में बहादुर की भाँति वह भगवान् महावीर वहाँ घिरे थे। पुरुष वचनों को सहते हुए भगवान् वहाँ से चले और चले गये ॥ १२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इह खलु 'आणंदा' इ समणे भगवं महावीरे आणंदं समणोवासगं एवं वयासी--एवं खलु, आणंदा, समणोवासएणं अभिगअ जीवाजीवेणं····जाव···· अणइक्कमणिज्जेणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा--संका, कंखा, विइगिच्छा, परमासंड-पसंसा, पर-पासंड-संथवे ॥ ४४ ॥

तयाणंतरं च णं थूलगस्स पाणाइवाय-वेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाण-वोच्छेए ॥ ४५ ॥

तयाणंतरं च णं थूलगस्स मुसावायरेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न ममाअरियव्वा। तं जहा--सहसाभक्खाणे, रहसाभक्खाणे, सदार-मंत-भेए, मोसोवएसे, कूड लेह-करणे ॥ ४६ ॥

तयाणंतरं च थूलगस्स अदिण्णादाणवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा--तेणाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जा-इक्कमणे, कूड-तुल्ल-कूड-माणे, तप्पडिरूवग-ववहारे ॥ ४७ ॥

तयाणंतरं च णं सदार-संतोसीए पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा--इत्तरिअ-परिग्गहिया-गमणे, अपरिग्गहियागमणे, अणंग-कीडा, पर-विवाह-करणे, कामा-भोगा तिव्वाभिलासे ॥ ४८ ॥

तयाणंतरं च णं इच्छा-परिमाणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, ण समायरियव्वा। तं जहा--खेत्तवत्थु पमाणाइक्कमे, हिरण्ण-सुवण्ण-पमाणाइक्कमे, दुपय-चउप्पय-पमाणाइक्कमे, धण-धन्नपमाणाइक्कमे, कुविय-पमाणाइक्कमे ॥ ४९ ॥

तयाणंतरं च णं दिसि-व्वयस्स पंच अइयारा-जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा--उड्ढदिसि पमाणाइक्कमे, अहो-दिसि-पमाणाइक्मे, तिरिय-दिसि-पमाणाइक्कमे, खेत्त-वुड्ढी-सइ, अंतरद्धा ॥ ५० ॥

संस्कृत अनुवाद

इह खलु 'आनन्द' इति श्रमणो भगवान् महावीर आनन्दं श्रमणोपासकं एवमवादीत्--एवं खल्वाआनन्द! श्रमणोपासकेनाभिगतजीवाजीवेन यावदनतिक्रमणीयेन सम्यक्त्वस्य पञ्चातिचारप्रकाराः ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः। तद्यथा--शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, परपाषण्डप्रशंसा, परपाषण्डसंस्तवः ॥ ४४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तदानन्तरञ्च ननु स्थूलकस्य प्राणातिपातविरमणस्य श्रमणोपासकेन पंचातिचारप्रकाराः । ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः । तद्यथा--बन्धः वधः छविच्छेदः अतिभारः भक्तपानव्यवच्छेदः ॥ ४५ ॥

तदानन्तरञ्च ननु स्थूलकस्य मृषावादविरमणस्य पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः । तद्यथा -सहसाभ्याख्यानं, रहस्याभ्याख्यानं, स्वदारमन्त्रभेदः मृषोपदेशः कूटलेखकरणम् ॥ ४६ ॥

तदानन्तरञ्च ननु स्थूलकस्यादत्तादानविरमणस्य पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः । तद्यथा--स्तेनाहृतम्, तस्करप्रयोगः, विरुद्धराज्यातिक्रमणम्, कूटतुलाकूटमानम्, तत्प्रतिरूपकव्यवहारः ॥ ४७ ॥

तदानन्तरञ्च स्वदारसन्तोषिणः पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः तद्यथा-इत्वरिकपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीतागमनं, अनङ्गक्रीडा, परविवाहकरणं, कामभोगयोः तीव्राभिलाषः ॥ ४८ ॥

तदानन्तरञ्च ननु इच्छापरिमाणस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः । तद्यथा--क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमः, हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रमः, द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रमः, धनधान्यप्रमाणातिक्रमः, कुप्यप्रमाणातिक्रमः ॥ ४९ ॥

तदानन्तरञ्च ननु दिग्व्रतस्य पंचातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः । तद्यथा--ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रमः, अधोदिक्प्रमाणातिक्रमः, तिर्यक्दिक्प्रमाणातिक्रमः, क्षेत्रवृद्धिः स्मृत्यन्तर्धानम् ॥ ५० ॥

हिन्दी अनुवाद

यहाँ 'आनन्द' (ऐसा) श्रमण भगवान् महावीर ने आनन्द श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा– आनन्द ! जीवों एवं निर्जीवों को अच्छी प्रकार जान लेनेवाले, अनतिक्रमणीय श्रमणोपासक को सम्यक्त्व के मुख्य पाँच प्रकार के बुरे आचरणों को जानना चाहिए तथा उनका आचरण नहीं करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं--शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, दूसरे धर्म को माननेवाले की प्रशंसा तथा दूसरे धर्म को माननेवालों के साथ निकटता का सम्बन्ध ॥ ४४ ॥

तदनन्तर श्रमणोपासक को प्राणियों के बुरे प्रयोगों के स्थूल तरीकों के पाँच दुर्व्यवहारों को जानना चाहिए तथा उनका आचरण नहीं करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं--बन्ध (पशु आदि को कठोर बन्धन से बाँधना), वध (किसी अङ्ग को काटना), अतिभार (सामर्थ्य से अधिक भार लादना), भोजन एवं पानी न देना ॥ ४५ ॥

तदनन्तर स्थूल असत्य बोलने से हटने के पाँच दुर्व्यवहारों को श्रमणोपासक को जानना चाहिए तथा उनका आचरण नहीं करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं--सहसा कुछ कह देना, एकान्त में कुछ कहना, अपनी पत्नी के साथ मन्त्रभेद, असत्य बातों का उपदेश तथा असत्य लेखों का तैयार करना ॥ ४६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तदनन्तर स्थूल चोरी से रुकने के पाँच दुर्व्यवहारों को जानना चाहिए तथा उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—चोर के द्वारा लायी गयी वस्तु को स्वीकार करना, चोरी करवाना, विरुद्धराज्य का अतिक्रमण, गलत तराजू और गलत बाट तथा मिलावट के द्वारा अशुद्ध वस्तु का शुद्ध वस्तु के रूप में व्यवहार ॥ ४७ ॥

तदनन्तर स्वदारसन्तोषी-व्रत के पाँच दुर्व्यवहारों को जानना चाहिए तथा उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं--चञ्चल किन्तु परिगृहीता स्त्री के पास गमन, अपरिगृहीता स्त्री के पास गमन, अनङ्ग (अप्राकृतिक) क्रीड़ा, दूसरे अपरिचित विवाह कराना, काम एवं भोग में तीव्र अभिलाषा ॥ ४८ ॥

तदनन्तर इच्छा परिमाण के दुर्व्यवहारों को श्रमणोपासक को जानना चाहिए तथा उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं--खेत और गृहसम्बन्धी प्रमाण का अतिक्रमण, हिरण्य-सुवर्ण-प्रमाण का अतिक्रमण, द्विपद-चतुष्पद-प्रमाण का अतिक्रमण, धनधान्य-प्रमाण का अतिक्रमण तथा गृहोपकरण (वस्त्र, वर्त्तन, शय्या, आसन आदि) सम्बन्धी प्रमाण का अतिक्रमण ॥ ४९ ॥

तदनन्तर दिग्व्रत के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए एवं उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं--ऊर्ध्वदिशा के प्रमाण का अतिक्रमण, अधोदिशा के प्रमाण का अतिक्रमण, तिरछी दिशा के प्रमाण का अतिक्रमण, रहने के स्थान पर दूसरे के क्षेत्र में बढ़ना एवं स्मृतिनाश ॥ ५० ॥

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

६

खोतानी-प्राकृत

अप्रमादरतिः भिक्षुधर्मश्च

अप्रमद प्रशजति प्रमदु गरदितु सद ॥ १ ॥
हिण-धम न जेव, अ प्रमदेण न जवजि ।
मिछदिठि न रोय अ न जि' अ-लोक-वढणो ॥ २ ॥
यो दु पुवि प्रमजति पछ सु न प्रमजदि ।
सो इद लोकु ओहजेदि अभ मुतो व सुरि' उ ॥ ३ ॥
अरहथ निखमध युजथ बध-शशणे ।
धुणथ मुचुणो जेण नडकर ब कुञरु ॥ ४ ॥
अप्रमद स्वदिमद सुशिल भोदु भिक्षवि ।
सुजमहिद-जगप जचित अणुरक्षध ॥ ५ ॥
यो इमस धम-विण' इ अप्रमतु विहषिदि ।
प्रह' इ जदि-जत्शर दुखुसद करिषिदि ॥ ६ ॥
त यु वदमि भुद्रञु यपदेथ जमकद ।
अप्रमद रद भोध जधमि सुप्रवेदिदि ॥ ७ ॥
प्रमद परिवजेति अप्रमद रद जद ।
भवेथ कुशल धम योक-क्षेमज प्रत' अ ॥ ८ ॥
जलव्हु नदिमञे' अ नञेष स्विह' ओ षि' अ ।
अञेष स्विह' ओ भिखु जमधि नधिकछदि ॥ ९ ॥
अप-लभो दु यो भिखु जलव्हु नदिमञदि ।
त गु देव प्रशजदि सुध-यिव अतद्रिद ॥१०॥
कमरमु कम-रदु कमु अणुविचिद' ओ ।
कमु अणुस्वरो भिखु जधर्मं परिहयदि ॥११॥
धरममु धम-रदु धमु अणुविचिद' ओ ।
धमु अणुस्वरो भिखु जधर्म न परिहयदि ॥१२॥
न शिल-वद-मत्रेध बहोषुकेण व मणो ।
अध जमधि-लभेण विवित-शयणेण व ॥१३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

फुषमु नेखम-सुखु अप्रधजण-जेविद ।
भिखु विश्पशम् अ [पदि] अप्रते असव-क्षये ॥१४॥
न भिखु तवद भोदि यवद भिक्षदि पर ।
विश्प धर्मं ज़मदइ भिखु भोदि न तवद ॥१५॥
यो दु बहेति पवण वदव ब्रम्म-यियव ।
ज़ग' इ चरदि लोकु सो दु भिखु दु वुचदि ॥१६॥
मेत्र विहरि यो भिखु प्रज़नु बुध-शशणे ।
दुणदि पवक धर्म द्रुम-पत्र व मदुरु ॥१७॥
मेत्र-विहर यो भिखु प्रज़नु बुध-शशणे ।
पडिविजु पद शद ज़गरवोशमु सुह ॥१८॥

संस्कृत अनुवाद

अप्रमादः प्रशस्यते प्रमादः गर्हितः सदा ॥ १ ॥
हीनं धर्मं न सेवेत प्रमादेन न संवसेत् ।
मिथ्यादृष्टि न रोचेत न स्यात् लोकवर्धनः ॥ २ ॥
यस्तु पूर्वं प्रमाद्यति पश्चात् न प्रमाद्यति ।
स इह लोके अवभासते अभ्रमुक्त इव सूर्यः ॥ ३ ॥
अर्हत निष्कामयध्वम् युङ्ध्वम् बुद्धशासने ।
धुनुत मृत्योः स्वेन नलागारम् इव कुञ्जरः ॥ ४ ॥
अप्रमादाः स्मृतिमन्तः सुशीलाः भवत भिक्षवः ।
सुसमाहितसंकल्पाः स्वचित्तम् अनुरक्षत ॥ ५ ॥
यो अस्य धर्मविनये अप्रमत्तः विहरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ ६ ॥
तद्वः वदामि भद्रं वः यावदत्र समागताः ।
अप्रमादरतः भवत स्वधर्मे सुप्रवेदिते ॥ ७ ॥
प्रमादं परिवर्जयति अप्रमादरतः सदा ।
भवेत् कुशलधर्मा योगक्षेमयोः प्राप्तये ॥ ८ ॥
स्वलाभं नातिमन्येत नान्येभ्यः स्पृहयन् स्यात् ।
अन्येभ्यः स्पृहयन् भिक्षुः समाधिं नाधिगच्छति ॥ ९ ॥
अल्पलाभस्तु यो भिक्षुः स्वलाभं नातिमन्यते ।
तं खलु देवाः प्रशंसन्ति शुद्धजीवमतन्द्रितम् ॥ १० ॥
कामरमः कामरतः काममनुविचिन्तयन् ।
काममनुस्मरन् भिक्षुः स्वधर्मात् परिहीयते ॥ ११ ॥
धर्मरमः धर्मरतः धर्ममनुविचिन्तयन् ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धर्ममनुस्मरन् भिक्षुः स्वधर्माद् न परिहीयते (सद्धर्मं न परिजहाति) ॥१२॥
न शीलव्रतमात्रेण बह्वौत्सुक्येन इव मनाक्।
अथ समाधिलाभेन विविक्तशयनेन वा ॥१३॥
स्पृशामः नैष्कर्म्यसुखं अपृथग्जनसेवितम्।
भिक्षु विश्वासमापतेत् अप्राप्ते आस्रवक्षये ॥१४॥
न भिक्षुः तावता भवति यावता भिक्षते परान्।
वेष्यं धर्मं समादाय भिक्षुः भवति न तावता ॥१५॥
यस्तु बहिष्करोति पापं व्रतवान् ब्रह्मचर्यवान्।
संख्याय चरति लोके स तु भिक्षुस्तु उच्यते ॥१६॥
मैत्रविहारी यो भिक्षुः प्रसन्नः बुद्धशासने।
धुनोति पापकं धर्मं द्रुमपत्रमिव मारुतम् ॥१७॥
मैत्रविहारी यो भिक्षुः प्रसन्नः बुद्धशासने।
प्रतिविध्यन् पदं शान्तं संस्करोपशमं सुखम् ॥१८॥

हिन्दी अनुवाद

अप्रमाद प्रशंसित है (और) प्रमाद सदा गर्हित (है) ॥ १ ॥

हीनधर्म (असद्धर्म) की सेवा नहीं करनी चाहिए, प्रमाद की सेवा नहीं करनी चाहिए। मिथ्यादृष्टि का सेवन नहीं करना चाहिए (और इस दृष्टि से) लोक में प्रसिद्ध नहीं होना चाहिए ॥ २ ॥

जो पहले प्रमाद करता है पर बाद में प्रमाद नहीं करता है, वह बादलों से मुक्त सूर्य की तरह, इस लोक को प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

अर्हत् बनो, निष्काम बनो, बुद्ध के शासन में तत्पर बनो। अपनी शक्ति से मृत्यु के पाश को उस तरह तोड़ डालो, जैसे नरकुल के घर को हाथी तोड़ डालता है ॥ ४ ॥

हे भिक्षुओ! प्रमादरहित होकर, स्मृतिशील होकर, सुशील होकर, एकाग्रभाव से दृढ़ संकल्प होकर, अपने चित्त की रक्षा करो (नियन्त्रण में रखो) ॥ ५ ॥

जो इस धर्म के अनुशासन में अप्रमत्त होकर विहार करेगा, वह जन्म और संसार से मुक्त होकर मृत्यु का अन्त करेगा ॥ ६ ॥

जितने लोग यहाँ हैं उनसे मैं कहता हूँ कि तुम्हारा कल्याण हो, अच्छी तरह समझाये गये सद्धर्म में सावधानी से तत्पर बनो ॥ ७ ॥

सावधान (अप्रमादी) व्यक्ति बराबर प्रमाद से बचता है। भिक्षुओ! तुम्हें योग-क्षेम के लिए कुशल धर्म-सेवी होना चाहिए ॥ ८ ॥

अपने ही लाभ को सब कुछ नहीं मानना चाहिए तथा दूसरों के साथ स्पृहा नहीं करनी चाहिए। दूसरों के साथ स्पृहा रखनेवाला भिक्षु कभी समाधि (एकाग्रता) को नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जो भिक्षु अल्पलाभवाला होकर अपने लाभ को सब कुछ नहीं मानता, उसी शुद्ध जीवनवाले जागरूक भिक्षु की देवता प्रशंसा करते हैं ॥ १० ॥

काम में रमण करनेवाला, काम में लीन, काम की चिन्ता करनेवाला, काम का निरन्तर स्मरण करनेवाला भिक्षु स्वधर्म से च्युत हो जाता है ॥ ११ ॥

धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में लीन, धर्म की चिन्ता करनेवाला, धर्म का स्मरण करनेवाला भिक्षु स्वधर्म से च्युत नहीं होता ॥ १२ ॥

न तो शीलव्रत के साधन से, और न तो बहुत ज्यादा उत्सुकता दिखलाने से, न समाधि लेने से, न एकान्त में सोने से (नैष्कर्म्य का सुख प्राप्त होता है)। जिसका उपभोग इतर जन नहीं कर सकते, उस नैष्कर्म्य सुख को हम प्राप्त करते हैं (इस प्रकार सोचते हुए) जब तक मलों का क्षय नहीं होता तब तक भिक्षु को विश्वास करते रहना चाहिए ॥ १३–१४ ॥

दूसरों से भिक्षा माँगने से ही भिक्षु नहीं होता। केवल गेरुआ वेश (बनावटी वेश) का धर्म मात्र स्वीकार करने से भिक्षु नहीं होता ॥ १५ ॥

जो पाप छोड़कर व्रतशील और ब्रह्मचर्यशील होता है तथा इस लोक में ज्ञानपूर्वक आचरण करता है वही भिक्षु कहा जाता है ॥ १६ ॥

बुद्ध के शासन में रमा हुआ जो भिक्षु मैत्रीपूर्वक विचरण करनेवाला है, वही पाप को झकझोर कर उसी प्रकार फेंक सकता है जैसे कि हवा पत्तों को पेड़ से अलग कर देती है ॥ १७ ॥

बुद्ध के शासन में रमा हुआ जो भिक्षु मैत्रीपूर्वक विहार करता है वही संस्कारों के उपशमरूप सुख तथा शान्तपद को प्राप्त करता है ॥ १८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाइअ-संगहो

७

मिश्रित-प्राकृत

मूलदेव-कथा

वेण्णायडे णमरे मण्डिय णाम तुण्णाओ पद-दव्वहरणपसत्तो आसी। सो य दुट्ठ-गण्डो मि त्ति जणे पगासेन्तो जाणु-देसेण निच्च एव अद्दावलेवलित्तेन बद्ध-वणपट्टो रायमग्गे तुण्णागसिप्पं उवजीवइ। चङ्कमन्तो विय दण्ड-धरिएणं पाएणं किलिम्मन्तो कहंचि चंकमइ। रत्ति च खत्तं खणिऊण दव्व-जायं घेत्तूण नगरसण्णिहिए उज्जाणेग-देसे भूमिघरं तत्थ निक्खिवइ। तत्थ य से भगिणी कण्णगा चिट्ठइ। तस्स भूमिधरस्स मज्झे कूवो। जं च सो चोरो दव्वेण पलोभेउं सहायं दव्ववोढारं आणेइ तं सा से भगिणी अगड-समीवे पुव्व-नत्थासणे णीवेसिउं पाय-सोय-लक्खेण पाए गेण्हिऊण तम्मि कूवए पक्खिवइ। तओ सो विवज्जइ।

एवं कालो वच्चइ णयरं मुसन्तस्स। चोरग्गहा तं ण सक्केन्ति गेण्हिउं। तओ णयरे बहुरवो जाओ। तत्थ य मूलदेव राया पुव्वभणियविहाणेण जाओ। कहिओ य तस्स पउरेहिं तक्कर-वइयरो जहा--एत्थ णयरे पभूयकालो मुसन्तस्स वट्टइ कस्सइ तक्करस्स। ण य तीरइ केणइ गेण्हिउं। ता करेउ किम्पि उवायं।

ताहे सो अन्नं नगरारक्खियं ठवेइ। सो वि ण सक्कइ चोरं गेण्हिउं। ताहे मूलदेवो सयं नील-पडं पाउणिऊण रत्तं णिग्गतो। मूलदेवो अणज्जन्तो एगाए सभाए णिवण्णो अच्छइ जाव सो मण्डिय-चोरो आगन्तुं भणइ--को एत्थ अच्छइ।

मूलदेवेण भणियं--अहं कप्पडिओ।
तेण भण्णइ--एहि मानुसं करेमि।

मूलदेव उट्ठिओ। एगम्भि इसर-घरे खत्तं खयं सुवहुं दव्वजायं णीणे-उण मूलदेवस्स उवरिं चडावियं। पयट्टा णयरवाहिरियं। मूलदेवो पुरओ चोरो असिणा कड्ढिएण पिट्ठओ एइ। संपत्ता भूमिघरं। चोरो तं दव्वं निहणिउं आरद्धो।

भणिया य णेण भगिणी--एयस्स पाहुणयस्स पायसोयं देहि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ताए कूव-तडसण्णिविट्ठे आसने णिवेसिओ। ताए पायसोयलक्खेण पाओ गहिओ कूवे छुहामि त्ति। जाव अतीत-सुकुमारा पाया ताए णायं जहा एस कोइ अणुभूय-पुव्व रज्जो विहलियंगो। अणुकंपा जाया। तओ ताए पाय-तले सण्णिओ णस्स त्ति मा मारिज्जिहिसि त्ति। पच्छा सो पलाओ। ताए वोलो कओ णट्ठो णट्ठो त्ति। सो असिं कड्ढ मग्गे ओलग्गो।

मूलदेवो राय-पहे अइसन्निकिट्ठं णाऊण चच्चरसिवंतरिओ ठिओ। चोरो तं सिवलिंगं एसो पुरिसो त्ति काउं कङ्कमएण असिणा दुहा-काउं वडि-नियतो गओ भूमिघरं। तत्थ वसिऊण पहायाए रयणिए तओ निग्गन्तूण गओ बहिं। अन्तरावणे तुण्णगत्तं करेइ।

राइणा अब्भुट्ठाणेण पूइओ आसने निवेसाविओ सुवहुं च पियं आभासिओ संलत्तो मम भगिणिं देहि त्ति।

तेण दिन्ना विवाहिया राइणा। भोगा य से संपदत्ता।

कइसुवि दिणेसु गएसु राइणा मण्डियो भणिओ—दव्वेण कज्जं त्ति।

तेण सुबहुं दव्वजायं दिण्णं। राइणा संपूजिओ।

अण्णया पुणो मग्गिओ पुणो वि दिण्णं। तस्सो य चोरस्स अतीव सक्कारसम्माणं पउञ्जइ।

एएन पगारेण सव्वं दवाविओ। भगिणि से पुच्छइ। तीए भण्णति—एत्तियं चेव वित्तं।

तओ पुव्वावेइय-लेक्खाणुसारेण सव्वं दव्वं दवावेऊण मण्डियो सूलाए आरोविणो।

संस्कृत अनुवाद

वेण्णातटे नगरे मण्डिको नाम तुन्नगः परद्रव्याहरणप्रसक्तः आसीत्। स च दुष्टगण्डोऽस्मि इति जनान् प्रकाशयन् जानुदेशेन नित्यमेवार्द्रावलेपलिप्तेन बद्ध-व्रणपट्टः राजमार्गे तूर्णशिल्पमुपजीवति। चङ्क्रममाण इव दण्ड-धारितेन पादेन क्लाम्यन् कथञ्चित् चङ्क्रमते। रात्रौ च खातं खनित्वा द्रव्यजातं गृहीत्वा नगरसन्निहितस्योद्यानैकदेशे भूमिगृहं, तत्र निक्षिपति। तत्र च तस्य भगिनी कन्यका तिष्ठति। तस्य भूमिगृहस्य मध्ये कूपः। यं च स चौरः द्रव्येण प्रलोभयितुं सहायं द्रव्यवोढारमानयति तं सा तस्य भगिन्यागर्तसमीपे पूर्वन्यस्तासने निवेश्य पादशौचलक्ष्येण पादौ गृहीत्वा तस्मिन् कूपे प्रक्षिपति। ततः स विपद्यते।

एवं कालः वर्तते नगरं मुष्णतः। चौरग्रहास्तं न शक्नुवन्ति ग्रहीतुम्। ततः नगरे बहुरवो जातः। तत्र च मूलदेवराजः पूर्वभणितविधानेन जातः। कथितश्च तस्य पौरैः तस्कर-व्यतिकरो—अत्र नगरे प्रभूतकालो मुष्णतः वर्तते कस्यचित् तस्करस्य। न च तीर्यते केनापि ग्रहीतुम्। तत्करोतु किमप्युपायम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ततः स अन्यं नगररक्षकं स्थापयति। सोऽपि न शक्नोति चौरं ग्रहीतुम्। ततः मूलदेवः स्वयं नीलपटं प्रावृत्य रात्रौ निर्गतः। मूलदेवोऽजानन्नेकस्यां सभायां निपन्न आस्ते। यावत् सः चौरो मण्डिकः आगन्तुकं भणति—कोऽत्रास्ते ?

मूलदेवेन भणितं—अहं कार्पटिकः।

तेन भण्यते—एहि मानुषं करोमि।

मूलदेवः उत्थितः। एकस्मिन् ईश्वरगृहे खनितं खातं सुबहुद्रव्यजातं नीत्वा मूलदेवस्योपरि *चडाथितम् (आरोहितम्)। प्रयातौ नगरबाह्ये। मूलदेवः पुरतश्चौरोऽसिना कर्षितेन पृष्ठतः एति। सम्प्राप्तं भूमिगृहं। चौरः तद्द्रव्यं निखनितुमारब्धः।

भणिता चानेन भगिनी—एतस्मै प्राघुणकाय पादशौचं देहि।

तया कूपतटसन्निविष्टे आसने निवेशितः। तया पादशौचलक्ष्येण पादौ गृहीतौ, कूपे क्षिपामीति, यावद् अतीव सुकुमारौ पादौ तया ज्ञातं—यथा एष कोप्यनुभूत-पूर्वराज्यः विह्वलिताङ्गः। तस्या अनुकम्पा जाता। ततः तया पादतले संज्ञितः नश्य इति, मा मारिष्यसे इति। पश्चात् स पलायितः। तया बोलः (शब्दः) कृतः, नष्टो नष्ट इति। स असिं कर्षयित्वा मार्गेऽवलग्नः।

मूलदेवः राजपथेऽतिसन्निकृष्टं ज्ञात्वा चत्वरशिवान्तरितः स्थितः। चौरस्त-च्छिवलिङ्गमेष पुरुष इति कृत्वा कङ्कमयेनासिना द्विधाकृत्य प्रतिनिवृत्तो गतो भूमिगृहम्। तत्रोषित्वा प्रभातायां राजन्यां ततः निर्गत्य गतो बहिः। अन्तरापणे तूर्णंगत्वं करोति।

राज्ञा पुरुषैः शब्दायितः। तेन चिन्तितं यथा स पुरुषो न मारितः। अवश्यञ्चैष राजा भविष्यति—इति। तैः पुरुषैः आनीतः।

राज्ञाभ्युत्थानेन पूजितः, आसने निवेशितः, सुबहु च प्रियमाभाषितः, संलपितः—"मह्यं भगिनीं देहि" इति तेन दत्ता, विवाहिता राज्ञा। भोगाश्च तस्मै सम्प्रदत्ताः। कतिषु अपि दिवसेषु गतेषु राज्ञा मण्डिको भणितः—द्रव्येण कार्यमिति।

तेन सुबहु द्रव्यजातं दत्तं। राज्ञा संपूजितः। अन्यदा पुनः मार्गितः पुनरपि दत्तं। तस्य च चौरस्यातीव सत्कारसम्माने प्रयुङ्क्ते।

एतेन प्रकारेण सर्वं द्रव्यं दापितम्। भगिनीं तस्य पृच्छति। तया भण्यते—एतावत्कमेव वितम्।

ततः पूर्वविदितलेखानुसारेण सर्वं द्रव्यं दापयित्वा मण्डिकः शूलीमारोपितः।

हिन्दी अनुवाद

वेण्णातट नगर में दूसरों के धन को चुराने में लगा हुआ माण्डिक नाम का एक रफूगर रहता था। "वह दुष्ट फोड़ेवाला है" ऐसा लोगों में प्रकाशित करता हुआ घुटने तक गीले लेप से अवलिप्त, घाव पर पट्टी बाँधकर राजमार्ग पर रफूगरी का कर्म करता हुआ, जी रहा था। लँगड़े की भाँति डण्डे के सहारे रखे जाते हुए पैर से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कष्ट पाता हुआ किसी प्रकार चलता था। रात में गड्ढा खोदकर, द्रव्यसमूह को लेकर नगर के समीप स्थित उद्यान के एक ओर भूमि के नीचे बने घर में डाल देता था। वहाँ उसकी कर्णिका नाम की बहन बैठी रहती थी। उस भूमिगृह के बीच में कुँआँ था। वह चोर द्रव्य के प्रलोभन से, जिस सहायक द्रव्यवाहक को ले आता था, उसे उस चोर की बहन, उस गड्ढे के समीप पहले से रखे गये आसन पर बैठने के लिए जैसे, पैर धोने के बहाने से दोनों पैरों को पकड़कर, उस कुँएँ में छोड़ देती थी। तदनन्तर वह मर जाता था।

नगर को मूसते (चुराते हुए) इस प्रकार (उसका) समय बीत रहा था। चोर पकड़नेवाले उसे पकड़ने में समर्थ नहीं हो रहे थे। नगर में बहुत शोर था।

उसके पुरवासियों ने तस्कर-प्रसङ्ग को (राजा से) कहा कि बहुत समय से नगर में चोरी करते हुए कोई चोर रह रहा है। किसी के द्वारा पकड़ा नहीं जा रहा है। इसलिए कोई उपाय करें।

तब उसने दूसरे नगर-रक्षक को स्थापित (नियुक्त) किया। वह भी चोर को पकड़ने में समर्थ नहीं हुआ। उसके बाद मूलदेव स्वयं नील वस्त्र से अपने (शरीर) को ढककर रात में निकल पड़ा। (कुछ भी) न जानते हुए मूलदेव एक सभा में बैठा था। इतने में उस माण्डिक चोर ने आगन्तुक से कहा—यहाँ कौन है ? मूलदेव ने कहा— मैं भिखमंगा हूँ। उसने कहा—आओ, आदमी करना है (मजदूर की आवश्यकता है) मूलदेव उठ खड़ा हुआ। एक धनी के घर में आकर खने गये गड्ढे से अत्यधिक धन लेकर मूलदेव के ऊपर चढ़ा दिया। नगर के बाहर (वे दोनों) चल पड़े। मूलदेव आगे-आगे तथा तलवार निकालकर चोर पीछे-पीछे जा रहा था। भूमिगृह आ गया। चोर ने उस द्रव्य को रखना प्रारम्भ कर दिया। बहन से इसने कहा — इस पाहुन (अतिथि) को पैर धोने के लिए जल दे दो। उसने कूप के किनारे स्थित आसन पर उसे बैठा दिया। कुँएँ में ढकेल दूँगा (ऐसा सोचकर) पैर धोने के बहाने उसके पैरों को पकड़ लिया। ज्योंही उसने 'ये अत्यन्त सुकुमार पैर हैं' ऐसा जाना, त्योंही, यह पूर्व समय में राज्य का अनुभव करनेवाला है, और इस समय राज्यच्युत हो गया है (ऐसा उसे ज्ञात हुआ)। उसकी अनुकम्पा जग गयी। तदनन्तर उसने उस (राजा) के पैर में इशारा कर दिया—अदृश्य हो जाओ, मारे मत जाओ (अन्यथा मारे जाओगे)। बाद में वह भाग गया। उसने कहा—वह अदृश्य हो गया, अदृश्य हो गया। वह चोर तलवार निकालकर रास्ते में जा खड़ा हुआ !

मूलदेव सड़क पर उसे अत्यन्त नजदीक जानकर शिव के चबूतरे की आड़ में हो गया। चोर, यह पुरुष है, ऐसा समझकर कङ्कमय तलवार से उस शिवलिङ्ग को दो टुकड़े कर, लौटकर भूमिगृह में चला गया। वहाँ रहकर प्रातःकाल वहाँ से निकलकर बाहर चला गया, बाजार में दाक्षिया का काम करने लगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नौकरों से राजा ने उसे बुलवाया। उसने सोचा कि सम्भवतः वह पुरुष नहीं मारा जा सका है। अवश्य यह राजा होगा। उन नौकरों के द्वारा वह लाया गया।

राजा ने उठकर उसका आदर किया, अपने आसन पर बिठाया, बहुत-सी प्रिय बातें कीं और बातचीत के प्रसंग में ही 'अपनी भगिनी दो' (ऐसा कहा)।

उससे दी गयी भगिनी से राजा ने विवाह किया। भोग्य पदार्थों को भी उसने राजा को दे दिया। कुछ दिनों के बीतने पर राजा ने माण्डिक को कहा—कुछ द्रव्य चाहिए। उसने प्रभूत द्रव्यराशि दी। राजा के द्वारा वह आदृत हुआ। दूसरे समय फिर भी माँगने पर पुनः दिया। उस चोर का अत्यन्त सत्कार और सम्मान हुआ।

इसी प्रकार से सम्पूर्ण द्रव्य दिला दिया गया। (राजा ने) उसकी भगिनी से पूछा, उसने कहा—इतना ही वित्त था।

तदनन्तर पूर्वविदित लेखा के अनुसार सम्पूर्ण द्रव्य दिलवाकर माण्डिक शूली पर चढ़ा दिया गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वसुदत्त-कथा

अत्थि उज्जेणी नाम नयरी। तत्थ च वसुमित्तो नाम गहवइ परिवसति। भज्जा से धणसिरी नाम पुत्तो से धणवसू धूया से वसुदत्ता। तेण य वसुमित्त-सत्थवाहेण कोसंबी-वत्थव्वस्स धणदेव सत्थवाहस्स वाणिज्जसंगेण आगयस्स धूया वसुदत्ता दिण्णा। सो य वक्ककल्लाणो तं घेत्तूण कोसंबि आगओ पिउमाउ-सहिओ सुहं परिवसइ।

तस्स च कालेणं धणदेवस्स वसुदत्ताए दोन्नि पुत्ता जाया। तइएग य गब्भेणं आसण्णप्पसवा। भत्ता य से पवसिओ। सुयं य ताए—उज्जेणिं सत्थओ वच्चइ। सा य पिउ-माउ-बन्धवाणं उक्कंठिया गन्तुमणा सस्सूससूरं आपुच्छइ—उज्जेणिं वच्चामि त्ति। ततो तेहिं भणिया—पुत्ति एक्कल्लिया कहिं वच्चिहिसि। भत्ता य ते पवसियओ। पडिच्छ जाव आगच्छइ। ततो गच्छसि। सा भणइ—वच्चामि। किं मम भत्ता करिहिति। तेहिं पुणो वि वारिज्जन्तो निच्छइ सोउं। सच्छन्दा गुरुजणाइक्कम कारिया पुत्ते घेत्तूण पत्थिया। ते वि य परिहीण कुटुम्ब-विहवा अम्हे न करेइ वयणं ति तुण्हिक्का ठिया। सावि य मन्दभग्गा गया तःव सत्था दूरं अतिक्कन्तो। सा वि सत्थपरिब्भट्ठा उन्नेण मग्गेण गया। भत्ता य से तद्दिवसं चेव आगओ। पुच्छिया य णेण माया अम्मो कहिं वसुदत्ता गय त्ति। ताए य भणिओ—पुत्त उज्जेणी-सत्थेण समं अम्मेहिं वारिज्जमाणी वि गय त्ति। ततो सो—अहो अकज्जं कयं ति भणेऊग पुत्त-कलत्ताबद्ध-नेहाणुरागो गहिय-पत्थयणो मग्गतो अन्नेसन्तो गतो। अणु-सरन्तेण य सा अडविं अयन्ती दिट्ठा भममाणी। तोसिया अणेणं पुणरवि अणुणेउं। पत्थिया पविट्ठा य अडविं महल्लं। अत्थमिए दिणयरे आवासिओ।

तम्मि य समए वसुदत्ताए पोट्ट वेयणा जाया। ततो धणदेवसत्थवाहेण रुक्खसाहा-पल्लवे भञ्जिऊण मण्डओ से कबो। तत्थ य वसुदत्ता पसूय दारयं पयाया। तत्थ य अन्धकारे रत्ति रुहिर-गंधेणं मिगमंसाहारो अडवीसावय-खयंकरो महापइभओ वग्घो आगतो। तेण य सो धणदेव वीसत्थो चेव गलए घेत्तूण नीओ। सा वि य पइवियोगजनिय-दुक्खभय-कलुण सोग-सन्तत्त-हियया रोयमाणी—तं जायभेत्तयं अभव्वो त्ति भणन्तो मोहं गया। ते वि य कलुण असरणा भय-वेविय-सव्वंगा वाला मोहं गया। सो वि य तद्दिवसं जायओ दारओ थण्णं अलभमाणो उवरओ। सा वि य चिरेण पच्चागयचेयगा समाणी परिदेवन्ती पभाए पुत्ते घेत्तूण पत्थिया। अकालवरिसेण गिरि-नदो पुण्णा। सा य तं दट्ठूण एगं पुत्तं उत्तारेऊग बितियं उत्तारेन्ती विसमसिलातले निसिरियचलणा पडिय। दारओ य से हत्थाओ पब्भट्ठो स य अवरो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दारओ उदगब्भासे ट्ठिओ तं मातं पाणिए पडियं दट्ठूण तेणवि य जले अप्पओ छूढो।

सा वि य तवस्सिणी चण्डवेग-वाहिणीए गिरिनदीए दूरं छूढा तत्थ न नदी-कूले पडियस्स पायवस्स साहाए लग्गा मुहुत्तन्तरस्स य आसत्था सइरं उट्ठिया। तत्थ य वा अच्छन्ति नदीतडे वणगोयरेहिं तक्कर-पुरिसेहिं गहिया पुच्छिया य आणीया सीहगुहं नाम पल्लि अल्लिया य चोर-सेणावइस्स काल-दण्डस्स। तेण य सा रुवस्सिनि त्ति काऊण भज्जा कया य अन्तेउरं। सा य सव्वाणं सेनावइ-महिलाणं अग्गमहिसी जाया।

तओ ताओ तक्कर महिलाओ पइणो सरीर-परिभोगं अलभमाणोओ उवायं चितिन्ति—किहं एयं परिच्चएज्ज त्ति। तस्स य तीसे कालेण पुत्तो जातो। सो य माउ-सरिसओ। तओ ताहिं सेणावई विण्णविओ— सामि तुमं अइ-वल्लभाए इमाए चरियं नयाणसि। एसा पर-पुरिससत्तहियया। एस य से पुत्तो अन्नेण जायओ त्ति। जइ ते विपच्चओ अप्पाणं एयं च पेच्छह त्ति। तेन कलुस-हियएण खग्गं कड्ढिऊण अप्पा जोइओ दिट्ठं च णेण मुहं। विच्छिन्नं महन्त-विवृत्त-गण्डलेहं। रत्तायत-विसालनयणं विसिट्ठ-वुग्ग-मण्डुवक-नासं विप्फालिय-थूल-लंबोट्ठं अप्पणो मुहं दट्ठूण तं च दारयं एवं एयं ति भणति। ततो तेण य अपरिच्छियबुद्धिना पावेण तेण य खग्गेणं दारओ मारिओ। सा वि य वेत्तकसप्पहराभिहया मुण्डेऊण तक्करे सन्दिसइ— वच्चह भो एयं रुक्खे बन्धेह त्ति। ततो तक्कर-पुरिसा तं गहाय दूरं गया। तत्थ य ते पन्थब्भासे एगस्स सालरुक्खस्स मूले रज्जुए बेढिऊण कण्टय-साहा समन्ततो परिक्खिविऊण नियत्ता। सा वि वराई पुव्वकम्म-निव्वत्तियं दुक्खं अनुभवंती बहूणि य हियएणं चिन्तयन्ती अणाहा असरणा य अच्छति।

तत्थ य तीए भागधेज्जेहिं उज्जेणिगमणीओ सत्थो तत्थेव तम्मि चेव दिवसे पाणीयसुलभे पएसे आवासिओ। ततो सत्थाओ तण-कट्ठ-पत्त-हारया केइ दूरं गया। तेहि य सा कण्टक-साहाहि रुद्धा रज्जु-परिवेढिय-सरीरा-रुक्ख-मूले एक्कलिया दिट्ठा पुच्छिया य। तीए य स-कलुणं रोयन्तीए सव्वा ऊण हूअ-दुक्ख-परम्परा परि-कहिया। ततो सा तेहिं जायाणुकंपेहिं मुक्का। तं घेत्तूण सट्ठं गया सत्थवाहस्स जहावत्तं परिकहियं। ततो सत्थवाहेण समासासेऊण दिण्णच्छायण भोयणा भणिया—पुत्ति सत्थेण समं वच्चसु वीसत्था। मा वीहह त्ति। ततो सा आससिया वीसत्था तेण सत्थेणं समं उज्जेणि वच्चइ। तेण य सत्थेण समं बहु सिस्सिणी-परिवारा जिण-वयण-सारदिट्ठ-परमत्था सुव्वया नाम गणिणी जीवन्तसामि वन्दिया वच्चइ! सा य तीसे पाय-मूले धम्मं सोऊण सत्थवाहेणाणुन्नाया पव्वइया। नामं च से कण्टियज्जयत्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ततो सा ताहिं अज्जाहिं समं उज्जेणिं पत्ता पिउ-माउबन्धु-वग्गेण य सह मिलीणा। कहेउण य हुव्वनो दुक्खं दुगुणजायसंवेगा संझाए तवे य उज्जुत्ता धम्मं करेइ।

संस्कृत अनुवाद

अस्त्युज्जयिनी नाम नगरी। तत्र च वसुमित्रो नाम गृहपतिः परिवसति। भार्यास्य धणसिरीः नाम पुत्रोऽस्य धणवसू दुहितास्य वसुदत्ता। तेन च वसुमित्र-सार्थवाहेन कोसम्बीवास्तव्याय धणदेवसार्थवाहाय वाणिज्यसंगेन आगताय दुहिता वसुदत्ता दत्ता। स च वृतकल्याणः तां गृहीत्वा कोसम्बी आगतः पितृमातृसहितः सुष्ठु परिवसति।

तस्य च कालेन धणदेवस्य वधुदनायाः द्वौ पुत्रौ जातौ। तृतीयेन च गर्भेणा-सन्नप्रसवा। भर्त्ता चास्याः प्रोषितः। श्रुतं च तया उज्जयिनीं सार्थकः व्रजति। सा च पितृमातृबान्धवेभ्यः उत्कण्ठिता गन्तुमना श्वश्रूश्वशुरौ चापृच्छति—उज्जयिनीं व्रजामि, इति। ततः ताभ्यां भणिता—पुत्रि! एकाकिनी कुत्र व्रजिष्यसि। भर्ता च ते प्रोषितः। प्रतीक्षस्व यावदागच्छति। ततः गच्छसि। सा भणति, व्रजामि। किं मम भर्त्ता करिष्यति। ताभ्यां पुनरपि वार्यमाणा नेच्छति श्रोतुम्। स्वच्छन्दा गुरुजनातिक्रमण-कारिका पुत्रौ गृहीत्वा प्रस्थिता। तौ अपि च परिहीणकुटुम्बविभवा अस्माकं न करोति वचनमिति तूष्णीकौ स्थितौ। सापि च मन्दभाग्या गता तावत् सार्थाः दूरमतिक्रान्ताः। सापि सार्थपरिभ्रष्टान्येन मार्गेण गता। भर्त्ता चास्याः तद्दिवसमेवागतः, पृष्टा चानेन माता—अम्ब कुत्र वसुदत्ता गतेति। तया च भणितः—पुत्र, उज्जयनीसार्थेन सममस्माभिः वार्यमाणापि गतेति। ततः स—अतो! अकार्यं कृतमिति भणित्वा पुत्र-कलत्राबद्धस्नेहानुरागः गृहीतपाथेयः मार्गयन् अन्वेषयन् गतः। अनुसरता च सा अटवीमटन्ती दृष्टा भ्रमन्ती। तोषितानेन पुनरपि अनुनेतुम्। त्रस्थिता प्रविष्टा चाटवीं महतीम्। अस्तमिते दिनकरे आवासितः।

तस्मिन् च समये वसुदत्तायाः उदरे वेदना जाता। ततः धणदेवसार्थवाहेन वृक्षशाखापल्लवान् भङ्क्त्वा मण्डपः अस्यै कृतः। तत्र च वसुदत्ता प्रसूय दारकं प्रयाता। तत्र चान्धकारे रात्रौ रुधिरगन्धेन मृगमांसाहारः अटवी-शावक-क्षयकरः महाप्रतिभयो व्याघ्रः आगतः। तेन च स धणदेवः विश्वस्त इव गलं (ग्रीवां) गृहीत्वा नीतः। सापि च पतिवियोगजनित-दुक्खभय-करुणा-शोक-सन्तप्तहृदया रुदन्ती तं जातमात्रकम् अभव्य इति भणन्ती मोहं गता। तेऽपि च करुणाशरणाः भयवेपितसर्वाङ्गाः बालाः मोहं गता। सोऽपि च तद्दिवसं जातको दारकः स्तन्यमलभमानः उपरतः। सापि च चिरेण प्रत्यागतवेदना असमाना परिदेवमाना प्रभाते पुत्रौ गृहीत्वा प्रस्थिता। अकालवर्षया गिरिनदी पूर्णा। सा च तद्वृष्टं वकं पुत्रमुत्तार्य द्वितीयमुत्तारयितुमागता ... दारकश्चास्याः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हस्तात् प्रभ्रष्टः स चापरो दारकः उदकाभ्याशे स्थितः तां मातरं पानीये पतितां दृष्ट्वा तेनापि च जले आत्मकः त्यक्तः।

सापि च तपस्विनी चण्डवेगवाहिन्या गिरिनद्या दूरं त्यक्ता, तत्र च नदीकूले पतितस्य पादपस्य शाखया लग्ना मुहूर्त्तान्तरं चास्वस्था स्वैरमुत्थिता। तत्र सा क्षीयति नदीतटे वनगोचरैः तस्करपुरुषैः गृहीता पृष्टा चानीता सिंहगुहं नाम पल्लीमानीता च चौरसेनापतेः कालदण्डस्य। तेन च सा रूपवतीति कृत्वा भार्या कृता आनीता चान्तःपुरं। सा च सर्वासां सेनापति'महिलानामग्रमहिषी जाता।

ततः ताः तस्करमहिलाः पत्युः शरीर-परिभोगमलभमानाः उपायमचिन्तयन्—कथमियं परित्यज्येत इति। तस्य च तस्यां कालेन पुत्रो जातः। स च मातृसदृशकः। ततस्ताभिः सेनापतिः विज्ञापितः स्वामिन्, त्वमतिवल्लभायाः अस्याश्चरित्रं न जानासि। एषा परपुरुषासक्तहृदया। एष चास्याः पुत्रोऽन्येन जात इति ते विप्रत्ययः आत्मानमेनं च प्रेक्षस्वेति। तेन कलुषहृदयेन खड्गं कृष्ट्वा आत्मा द्योतितः दृष्टश्चानेन मुखम्। विच्छिन्नं महत् विभक्तगण्डलेखम्। रक्तायतविशालनयनं विशिष्टभुग्नमाङ्कयनासिकं विस्फारित-स्थूल-लम्बोष्टमात्मनः मुख दृष्ट्वा तं दारकं एवमेतदिति भणति। ततस्तेन चापरीक्षितिबुद्धिना प्राप्तेम तेन च खड्गेन दारको मारितः। सापि च वेत्रकशाप्रहाराभिहता मुण्डयित्वा तस्करान् सन्दिशति—व्रजत भोः एतां वृक्षे बन्धयतेति। ततस्ते तस्कर-पुरुषान्तां गृहीत्वा दूरं गता। तत्र च ते पथोऽभ्याशे एकस्य शालवृक्षस्य मूले रज्ज्वा वेष्टयित्वा कण्टकशाखायाः समन्ततः परिक्षिप्य निवृत्ताः। सापि वराकी पूर्वकर्मनिवृत्तिकं दुःखमनुभवन्ती बहूनि च हृदयेन चिन्तयन्त्यनाथा, अशरणा चाक्षीयति।

तत्र च तस्या भागधेयैः उज्जयिनीगमनीयकः सार्थः तत्रैव तस्मिन्नेव दिवसे पानीयसुलभे प्रदेशे आवासितः ततः सार्थाः तृणकाष्ठपत्रहारकाः कतिचिद् दूरं गताः। तैश्च सा कण्टकशाखभिः रुद्धा रज्जुपरिवेष्टित-शरीरा वृक्ष-मूले एकाकिनी दृष्टा पृष्टा च। तया च सकरुण रुदन्त्या सर्वानुभूतदुःखपरम्परा परि-कथिता। ततः सा तैः जातानुकम्पैः मुक्ता। तां च गृहीत्वा सार्थं गताः सार्थवाहस्य यथावृत्तं प्रतिकथितम्। ततः सार्थवाहेन समाश्वास्य वस्त्राच्छादनभोजना भणिता—पुत्रि! सार्थेन समं व्रज विश्वस्ता। मा भैषीः, इति। ततः सा आश्वस्ता विश्वस्ता तेन सार्थेन सममुज्जयिनीं व्रजति। तेन च सार्थेन समं बहुशिष्यिणीपरिवारा जिनवचनसारदिष्टपरमार्था सुव्रता नाम गणिनी जीवत्स्वामिवन्दिका व्रजति। सा च तस्मिन् पादमूले धर्मं श्रुत्वा सार्थवाहेनानुज्ञाता प्रव्रजिता। नाम चास्याः कण्टिकार्यका इति। ततः सा ताभिः आर्याभिः सममुज्जयिनीं प्राप्ता मातृबन्धुवर्गेण च सह मिलिता। कथयित्वा चात्मनो दुखं द्विगुणजातसंवेगा सन्ध्यायां तपसि चोद्युक्ता कर्म करोति।

हिन्दी अनुवाद

उज्जयिनी नाम की नगरी थी। वहाँ वसुमित्र नाम का गृहपति निवास करता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

था। इसकी घणसिरी नाम की पत्नी, घणवसु नाम का पुत्र एवं वसुदत्ता नाम को पुत्री थी। उस वसुमित्त सार्थवाह ने वाणिज्य के प्रसंग से आये हुए कौशाम्बी निवासी घणदेव सार्थवाह को अपनी पुत्री वसुदत्ता को दे दिया। वह मंगल कार्य सम्पन्न करके उसको लेकर कौशाम्बी आकर माता-पिता के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

समय से, वसुदत्ता से घणदेव को दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसे तृतीय गर्भ था। वह आसन्न-प्रसवा थी। उसका पति बाहर गया हुआ था। उसने सुना कि सार्थक उज्जैनी गये हुए हैं। पिता-माता एवं भाई-बन्धुओं के प्रति उत्कण्ठित तथा (उनके पास) जाने की इच्छावाली होकर श्वश्रू एवं श्वशुर से उसने पूछा—(मैं) उज्जैनी जाऊँगी। तदनन्तर उन दोनों ने कहा—हे पुत्री, अकेली कहाँ जाओगी। तुम्हारा पति बाहर गया हुआ है। उसके आने की प्रतीक्षा करो। तदनन्तर वह चली गयी। उसने कहा—(मैं) जाऊँगी। मेरा पति क्या करेगा। उन दोनों के बार-बार मना करने पर भी वह (रुकने की बात) नहीं सुनना चाहती थी। स्वच्छन्दचारिणी, गुरुजनों का अतिक्रमण करनेवाली, उसने पुत्रों के साथ प्रस्थान कर दिया। 'हम लोगों की बातों को नहीं मानती है' ऐसा सोचकर कौटुम्बिक वैभव से हीन (गरीब) वे दोनों भी चुप हो गये। वह मन्दभागिनी जब गयी तब तक काफिला दूर चला गया था। (काफिले के) साथ से वंचित वह भी अन्य मार्ग से गयी। उसी दिन उसका पति आया और उसने अपनी माता से पूछा—'माता, मेरी वसुदत्ता कहाँ गयी ?' उसने कहा—हे पुत्र, हम लोगों के मना करने पर भी काफिले के साथ उज्जैनी चली गयी। तदनन्तर 'अहो ! बुरा कार्य किया' ऐसा कहकर पुत्र एवं पत्नी के प्रति स्नेह एवं अनुरागवाला वह, पाथेय लेकर अन्वेषण करता हुआ, चला गया। अनुसरण करते हुए उसने जंगल में भटकती हुई उसको देखा।

महती अटवी में उसने प्रवेश किया सूर्यास्त होने पर रुक गया। उस समय वसुदत्ता के उदर में (प्रसूति) वेदना उत्पन्न हो गयी। तदनन्तर घणदेव सार्थवाह ने वृक्षों की शाखाओं के पल्लवों को तोड़कर उसके लिए मण्डप बनाया। पुत्र उत्पन्न कर वसुदत्ता चली गयी। उस अन्धकारपूर्ण रात्रि में रुधिर की गन्ध से मृगों के मांस का भक्षक, जंगल के शावकों का क्षय करनेवाला, अत्यन्त भयंकर व्याघ्र आया। वह अत्यन्त विश्वस्त की भाँति, गला पकड़कर घणदेव को लेकर चला गया। पति के वियोग से उत्पन्न दुःख, भय, करुणा और शोक से सन्तप्त हृदयवाली रोती हुई वह भी, सद्यः उत्पन्न (पुत्र) को अशोभनीय कहती हुई बेहोश हो गयी। करुणा के पात्र, असहाय तथा भय से काँपनेवाले शरीरोंवाले वे लड़के भी बेहोश हो गये। उसी दिन उत्पन्न, दूध न प्राप्त करनेवाला वह पुत्र भी मर गया। बहुत देर के बाद पुनः वेदना का अनुभव करती हुई, खेद करती हुई प्रातःकाल पुत्रों को लेकर उसने भी प्रस्थान कर दिया। असमय में वर्षा के कारण पहाड़ी नदी भर गयी थी। उसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देखकर एक पुत्र को पार करके दूसरे को पार करती हुई विषम शिलातल पर क्षत चरणोंवाली वह गिर गयी। (उसका) पुत्र उसके हाथ से गिर गया। जल के किनारे स्थित उस पुत्र ने भी माता को पानी में गिरी हुई देखकर अपने भी जल में गिर गया।

वह तपस्विनी भी प्रचण्ड वेगवाली गिरीनदी के दूर फेंक दी गयी। वहाँ नदी के किनारे गिरे हुए वृक्ष की शाखा से लग गयी। थोड़ी देर बाद पूर्ण स्वस्थ होकर अपने आप उठी और वहाँ गिरते हुए नदी के तट पर वनचर और चोरों के द्वारा वह पकड़ ली गयी तथा उससे उन लोगों ने पूछा तथा चौर-सेनापति कालदण्ड के पास सिंहगुह नाम की पल्ली में, वह लायी गयी। उसने (कालदण्ड ने) उसे रूपवती मानकर पत्नी बना लिया। वह सभी सेनापति की महिलाओं में अग्रमहिषी हो गयी।

तदनन्तर पति के शरीर के परिभोग को न प्राप्त करती हुई उन तस्कर महिलाओं ने उपाय सोचा--किस प्रकार इसे छुड़ाया जाय। समय से उससे (कालदण्ड से) उसको पुत्र उत्पन्न हुआ और वह माता के समान था। तदनन्तर उन महिलाओं ने सेनापति से कहा – हे स्वामी ! आप अपनी इस अत्यन्त प्रिया के चरित्र को नहीं जानते हैं। दूसरे पुरुष के साथ इसका हृदय लगा हुआ है। यह इसका पुत्र अन्य (पुरुष) से उत्पन्न हुआ है। यदि आपको विश्वास न हो तो अपने को तथा इसको (आप) देखें। उस कलुषित हृदयवाले ने खड्ग को खींचकर अपने आपको और अपना मुँह देखा। अपने कपोल-स्थल को, जिस पर बहुत बड़े घाव का निशान था, लम्बी, विशाल एवं लाल अपनी आँखों को, विशिष्ट कुछ टेढ़ी, मेढक की तरह नाक को, फैले हुए मोटे और लम्बे ओठों को तथा अपने मुख को और उस लड़के को देखकर 'यह बात ऐसी ही है' ऐसा कहा। इसके बाद अपरीक्षित बुद्धिवाले उसने उस उपस्थित तलवार से लड़के को मार दिया। उस स्त्री को बेंत के कोड़े के प्रहार से अभिहत करके तथा उसका मुण्डन कराके चोरों से उसने कहा--जाओ, इसे वृक्ष में बँधवा दो। उसके बाद वे चोर उसको लेकर दूर चले गये। वहाँ वे रास्ते के एक किनारे एक शाल वृक्ष के मूल में रस्सी से उसे बाँधकर, उसे काँटों की शाखों से घेरकर लौट गये। वह भी बेचारी अपने पूर्व कर्म के फल के रूप में दुःख का अनुभव करती हुई अपने हृदय से बहुत सोचती हुई अनाथ और अशरण होकर क्षीण हो रही थी।

वहाँ पर उसकी तकदीर से उज्जैनी जानेवाला काफिला वहीं उसी दिन जल-सुलभ प्रदेश में आ बसा। इसके बाद काफिले तृण, काष्ठ और पत्तों को एकत्र करने के लिए कुछ दूर गये। उन लोगों ने काँटों की शाखाओं से घिरी हुई, वृक्ष के मूल में रस्सी से बँधे हुए शरीरवाली उसको देखा और पूछा। उसने सकरुण रोते हुए अपनी सम्पूर्ण अनुभूत दुःख-परम्परा को कह सुनाया। तदनन्तर उन लोगों के हृदय में अनुकम्पा उत्पन्न हुई और [उन लोगों ने] उसे मुक्त कर दिया। उसको लेकर काफिले के पास गये और सार्थवाह से सम्पूर्ण वृत्तान्त उन लोगों ने कहा। तदनन्तर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सार्थवाह ने उसको आश्वासन देकर, भोजनाच्छादन देकर उससे कहा—हें पुत्रि, काफिले के साथ विश्वस्त होकर जाओ। डरो मत। तदनन्तर वह आश्वस्त और विश्वस्त होकर उस काफिले के साथ उज्जैनी चली आयी। उस काफिले के साथ शिष्यों के बहुत बड़े परिवारवाली जिन के वचनों को परमार्थ माननेवाली, शिष्या सुव्रता नाम की भिक्षुणी जा रही थी और (उसी से) वह (वसुदत्ता) उसके चरण में धर्म को सुनकर सार्थवाह से अनुज्ञप्त हो प्रव्रजित हो गयी और इसका नाम कण्टिकार्यका हो गया। तदनन्तर उन आर्याओं के साथ उज्जैनी आयी तथा पिता-माता, बन्धुवर्ग के साथ मिली। अपने दुःख को कहकर दुगुने संवेग से सन्ध्या-काल से तपस्या में लीन हो, धर्म करने लगी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कक्कुकाभिलेखः

ओम् । सग्गापवग्गा-मग्गं पढमं सयलाण कारणं देवं ।
णीसेस-दुरिअ-दलणं परम गुरुं णमह जिण-णाहं ॥ १ ॥
रहु-तिलओ पडिहारो आसी सिरि-ळक्खणो त्ति रामस्स ।
तेण पडिहार-वन्सो समुण्णइं एत्थ सम्पत्तो ॥ २ ॥
विप्पो हरिअन्दो भज्जा आसि त्ति खत्तिआ भद्दा ।
ताण सूओ उप्पण्णो वीरो सिरि-रज्जिलो एथ ॥ ३ ॥
अस्स वि णरहड णामो जाओ सिरि-नाइडो त्ति एअस्स ।
अस्स वि तणओ ताओ तस्स वि जसवद्धणो जाओ ॥ ४ ॥
अस्स वि चन्दुअ णामो उप्पण्णो सिल्लुओ वि एअस्स ।
झोटो त्ति तस्ये तणओ अस्स वि सिरि भिल्लुओ चाई ॥ ५ ॥
सिरि-भिल्लुअस्स तणओ सिरि कक्को गुरु गुणेहि गारविओ ।
अस्स वि कक्कुअ-णामो दुल्ळहदेवीए उप्पण्णो ॥ ६ ॥
ईसिविआसं हसिअं महुरं भणिअं पलोइअं सम्मं ।
णमयं जस्स ण दीणं रो [सो] थेओ थिरा मेत्ती ॥ ७ ॥
णो जम्पिअं ण हसिअं ण कयं ण पलोइअं सम्भरिअम् ।
ण थियं ण परिब्भमिअं जेण जने कज्जपरिहीणम् ॥ ८ ॥
सुत्था दुत्था वि पया अहमा तह उत्तिमा वि सोक्खेण ।
जणणिव्व जेण धरिआ णिच्च णिय-मण्डले सव्वा ॥ ९ ॥
उअरोह-राअ-मच्छर-लोहेहिम्पि णाय-वज्जिअं जेण ।
न कओ दोण्ह विसेसो ववहारे कवि मणयं पि ॥ १० ॥
दिअवर-दिण्णाणुज्जं जेण जणं रञ्जिऊण सयलंपि ।
णिम्मच्छरेण जणिअं दुट्ठाण वि दण्डणिट्ठवणम् ॥ ११ ॥
धण-रिद्ध-समिद्धाण वि पउराणं णिअकरस्स अब्भहिअम् ।
लक्खं सयञ्च सरिसन्तणञ्च तह जेण-दिट्ठाइम् ॥ १२ ॥
णव-जोव्वण-रूअ-पसाहिएण सिंगार-गुणगरुक्केण ।
जणवय-णिज्ज अलज्जं जेण जेण णेय सञ्चरिअं ॥ १३ ॥
बालाण गुरू तरुणाण तह सही गयवयाण तणओ व्व ।
णिअ-सुचरिएहि णिच्चं जेण जणो पालिओ सव्वो ॥ १४ ॥
जेण णमन्तेण सया सम्माणं गुणथुइं कुणन्तेण ।
जंपन्तेण य ललिअं दिण्णं पणईण धणणिवहम् ॥ १५ ॥
मरुमाड-वल्ल-तमणी-परिअङ्का-अज्ज-गुज्जरत्तासु ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जणिओ जेण जणाणं सच्चरिअ·गुणेहिं अणुराओ ॥ १६ ॥
गहिऊण गोहणाइं गिरिम्मि जालाउ [ला] ओ पल्लीओ ।
जणिआवो जेण विसमे वडणाणय-मण्डले पयडम् ॥ १७ ॥
णीलुप्पल दल-गन्धा रम्मा मायन्द-महुअविन्देहिं ।
वर·इच्छु·पण्ण-छण्णा एसा भूमी कया जेण ॥ १८ ॥
वरिस सएसु अ णवसुं अट्ठारसमअग्गलेसु चेत्तम्मि ।
णक्खत्ते विहु-ह्त्थे बुहवारे धवल-बीआए ॥ १९ ॥
सिरि कक्कुएण हट्टं महाजणं विप्प-पयइ-वणिबहुलं ।
रोहिन्सकूअगामे णिवेसिअं कित्ति-विद्धीए ॥ २० ॥
मड्डोअरम्मि एक्को बीओ रोहिंसकू-गामम्मि ।
जेण जसस्स व पुञ्जा एए त्थम्भा समुत्थविआ ॥ २१ ॥
तेण सिरि-कक्कुएणं जिणस्स देवस्य दुरिअणिद्दलणं ।
कारविअं अचलं इमं भवनं भत्तीए सुहजणयम् ॥ २२ ॥
अप्पिअं एअं भवणं सिद्धस्स धणेसरस्स गच्छम्मि ॥
तह सन्त-जम्ब-अम्बय-वणि-माउड-पमुहगोट्ठीए ॥ २३ ॥

संस्कृत अनुवाद

ओम् स्वर्गापवर्ग मार्गाय प्रथमाय सकलानां कारणाय देवाय ।
निश्शेष-दुरितदलनाय परमगुरवे नमत जिननाथाय ॥ १ ॥
रघुतिलकः प्रतिहार आसीत् श्रीलक्ष्मण इति रामस्य ।
तेन प्रतिहारवंशः समुन्नतिमत्र सम्प्राप्तः ॥ २ ॥
विप्रो हरिश्चन्द्रो भार्यासीदिति क्षत्रिया भद्रा ।
तयोः सुतः उत्पन्नो वीरः श्रीरज्जिलोऽत्र ॥ ३ ॥
अस्यापि णरहडनामा जातः श्रीनाहड इत्येतस्य ।
अस्यापि तनयः ताओ तस्यापि सवद्धनो जातः ॥ ४ ॥
अस्यापि चन्दुअनामा उत्पन्नः सिल्लुकोऽप्येतस्य ।
झोट इत्येतस्य तनयः अस्यापि श्रीभिल्लुकस्त्यागी ॥ ५ ॥
श्रीभिल्लुकस्य तनयः श्रीकक्कः गुरुगुणैः गर्वितः ।
अस्यापि कक्कुक नामा दुल्लहदेव्याः उत्पन्न ॥ ६ ॥
ईषद्विकासं हसितं मधुरं भणितं प्रलोकितं सम्यक् ।
नमनः यस्य न दीनं रोषः स्तोकः स्थिरा मैत्री ॥ ७ ॥
न जल्पितं न हसितं न कृतं न प्रलोकितं न संस्मृतम् ।
न स्थितं न परिभ्रमितं येन जने कार्यपरिहीनम् ॥ ८ ॥
स्वस्थाः दुःस्थाः अपि प्रजाः अधमास्तथोत्तमा अपि सौख्येन ।
जननीव येन धृताः नित्यं निजमण्डले सर्वाः ॥ ९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपरोध-राग-मत्सर-लोभैः अपि न्यायवर्जितं येन ।
न कृतः द्वयोः अपि विशेषः व्यवहारे कविः मनागपि ।। १० ।।
द्विजवर-दत्तानुज्ञं येन जनं रञ्जयित्वा सकलमपि ।
निर्मत्सरेण जनितं दुष्टानामपि दण्डनिष्ठापनम् ।। ११ ।।
धन-ऋद्धसमृद्धानामपि पौराणां निजकरस्याभ्यधिकम् ।
लक्षं शतञ्च सरित-सन्तानं च तथा येन दिष्टानि ।। १२ ।।
नवयौवनरूपप्रसाधितेन श्रृंगारगुणगुरुकेण ।
जनपदनिन्द्यमलज्जं येन जने नैव सच्चरितम् ।। १३ ।।
बालानां गुरुस्तरुणानान्तथा सखा गतवयसान्तनय इव ।
निजसुचरितैः नित्यं येन जनः पालितः सर्वः ।। १४ ।।
येन नमता सदा सम्मानं गुणस्तुति कुर्वता ।
जल्पता च ललितं दत्तं प्रणयिनः (ने) धननिवहम् ।। १५ ।।
मारवाड़-वल्ल-तमनी पर्यङ्कार्य-गूर्जत्रासु ।
जनितः येन जनानां सच्चरितगुणैः अनुरागः ।। १६ ।।
गृहीत्वा गोधनानि गिरौ ज्वालाकुलाः पल्लयः ।
जनिताः येन विषमे वडणाणय-मण्डले प्रकटम् ।। १७ ।।
नीलोत्पलदलगन्धा रम्या मकन्द-मधुपवृन्दैः ।
वर-इक्षु-पर्ण-छन्नैषा भूमिः कृता येन ।। १८ ।।
वर्षशतेषु च नवसु अष्टादशमग्रेषु चैत्रे ।
नक्षत्रे विधुहस्ते बुधवारे धवलद्वितीयायाम् ।। १९ ।।
श्रीकक्कुना हाटं महाजन विप्र-प्रकृति-वणिग्बहुलम् ।
रोहिन्सकूपग्रामे निवेशितं कीर्तिवृद्ध्यै ।। २० ।।
मड्डोवरे एको द्वितीयः रोहिन्सकूपग्रामे ।
येन यशसः एव पुञ्जो द्वौ स्तम्भौ समुत्थापितौ ।। २१ ।।
तेन श्रीकक्कुना जिनस्य देवस्य दुरितनिर्दलनम् ।
कारितमचलमिमं भवनं भक्त्या सुखजनकम् ।। २२ ।।
अर्पितमेतद्भवनं सिद्धस्य धनेश्वरस्य गच्छे (वृक्षे) ।
तथा सन्तजम्बअम्बक-वणि (गणि) भाउडप्रमुखगोष्ठ्याः ।। २३ ।।

हिन्दी अनुवाद

ओम् । स्वर्ग और अपवर्ग के सावन, प्रथम, सम्पूर्ण वस्तुओं के कारण देव, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाले परमगुरु जिननाथ को नमस्कार करो ।। १ ।।

राम के श्री लक्खण नामवाले रघुकुल के तिलक प्रतिहार थे । अतएव प्रतिहार-वंश समुन्नति को प्राप्त हुआ ।। २ ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एक हरिश्चन्द्र नाम के विप्र थे और उनकी भार्या भद्रा नाम की क्षत्रिया थी, इन दोनों से श्री रज्जिल नाम का वीर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

इसका णरहड नाम पड़ा और उसका (पुत्र) श्रोणाहड हुआ।

उनके लड़के ताओ और उनके लड़के जसवद्धन हुए ॥ ४ ॥

इनको चन्दुअ नाम का लड़का उत्पन्न हुआ, उनका लड़का सिल्लुक हुआ। उसका लड़का झोट हुआ, इसका भी (पुत्र) त्यागी भिल्लुक हुआ ॥ ५ ॥

श्रीभिल्लुक के लड़के श्रीकक्क हुए जो महान् गुणों से युक्त थे। इनके दुल्लहदेवी के गर्भ से कुक्कुट नाम का लड़का उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

(उनके गुण इस प्रकार थे) मन्द हास, मधुर भाषण, सम्यक् दृष्टि, अदीन नयन, थोड़ा क्रोध, स्थिर मित्रता ॥ ७ ॥

न वे ऐसा बोलते थे, न तो उनका बोलना, न हँसना, न (कोई ऐसा काम) करना, न देखना, न स्मरण करना, न स्थित रहना, न परिभ्रमण (ऐसा था) जिससे जनता के कार्य में हानि हो ॥ ८ ॥

प्रजा चाहे सुस्थ (व्यवस्थित) हो या दुस्थ (अव्यवस्थित) हो, अधम हो या उत्तम हो, माता की तरह सुखपूर्वक उन्होंने अपने मण्डल में सम्पूर्ण प्रजा को धारण किया ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् इस राजा ने अनुचित कृपा, अनुराग, मात्सर्य एवं लोभ के भी वश होकर व्यवहार में थोड़ा भी न्यायवर्जित, समान दो व्यक्तियों में भेद-दृष्टि, नहीं अपनायी ॥ १० ॥

निर्मत्सर जिसने सकल जनता का अनुरञ्जन करके द्विजवरों की अनुज्ञा के अनुसार दुष्टों के लिए दण्ड का विधान किया ॥ ११ ॥

धन से अभिवृद्ध तथा समृद्ध नागरिकों के लिए कर से भी अधिक लाखों, सैकड़ों तथा सरित्-सन्तान जिसने दे दिये ॥ १२ ॥

शृंगार के गम्भीर गुणों से युक्त, नयी युवावस्था तथा रूप से प्रसाधित जिन-जिन लोगों ने, जनपद से जैसे निन्दित और अलज्ज कार्य किये थे, वैसे कार्य इसने नहीं ही किये ॥ १३ ॥

लड़कों के लिए माता-पिता की तरह, जवानों के लिए मित्र की तरह तथा वृद्धों के लिए पुत्र की तरह जिसने हमेशा अपने सुन्दर चरित्रों से सम्पूर्ण जनता का पालन किया ॥ १४ ॥

गुण तथा सम्मान की प्रशंसा करता हुआ, सदा विनम्र रहता हुआ तथा मधुर बोलता हुआ जिसने याचकों को बहुत धन दिया ॥ १५ ॥

मारवाण-वल्ल, तमनी, पर्यङ्क, आर्य तथा गुजरात देशों में अपने सच्चरित (गुणों) से जिसने जनता में अनुराग पैदा किया ॥ १६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जिसने वडणाणय मण्डल में पर्वत के ऊपर गोधन ले जाकर ज्वाला निकलती हुई (यज्ञ-यागादि, भोजनादि के कारण) स्पष्टतः नगरी बसा दी ॥ १७ ॥

जिसने इस भूमि को, नीलोत्पलदलगन्ध से युक्त आम्र की मञ्जरियों पर बैठे भ्रमरों के वृदों से सुन्दर तथा अच्छी ईख के पत्तों में छायी हुई, बनाया ॥ १८ ॥

नौ सौ अठारह वर्ष में चैत्र के महीने में, चन्द्रमा के हस्त नक्षत्र में, बुधवार के दिन शुक्ल द्वितीया तिथि को श्रीकक्कु ने ब्राह्मण, प्रजा (साधारण जन) तथा वणिग्जनों से युक्त बहुत जनतावाला बाजार अपनी कीर्ति की वृद्धि के लिए रोहिंसकूप ग्राम में लगवाया ॥ १९, २० ॥

जिसने एक मण्डोवर में और दूसरा रोहिंसकूप ग्राम में अपने यश के पुञ्ज की भाँति दो स्तम्भ उठाये ॥ २१ ॥

उस श्रीकक्कु ने जिन भगवान् के दुरितों के दलन करनेवाले, सुख को देनेवाले, अचल इस भवन को भक्ति से बनवाया ॥ २२ ॥

इस भवन को धनेश्वर सिद्ध के तथा सन्त जम्ब अम्बक वणि (गणि) भाउड की प्रमुख गोष्ठी के वृक्ष (सम्प्रदाय) में अर्पित कर दिया ॥ २३ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभयं पाइयकव्वं पढिउं सोउं च जे न याणन्ति ।
कामस्स तत्ततत्ति कुणन्ति ते कह न लज्जन्ति ॥ १ ॥
दुक्खं कीरइ कव्वं कव्वम्मि कए पयुञ्जणा दुक्खं ।
सन्ते पउञ्जमाणे सोयार दुल्लहा होन्ति ॥ २ ॥
पाइयकव्वम्मि रसो जो जायइ तह व छेयभणियेहिं ।
उययस्स च वासिअसियलस्स तित्ति न वच्चामो ॥ ३ ॥
देसियसद्दपलोट्ठं महुरक्खरछन्दसंठियं ललियं ।
फुडवियडपागडत्थं पाइयकव्वं पढेयव्वं ॥ ४ ॥
वे पुरिसा धरइ धरा अहवा दोहिं पि धारिता धरणी ।
उवयारे जस्स मइ उवयरियं जो न पम्हुसइ ॥ ५ ॥
दिढलोहसंखलाणं अण्णाण वि विविहपासबन्धाणं ।
ताणं चिय अहिययरं वायावन्धं कुलीणस्स ॥ ६ ॥
कत्तो उग्गमइ रवि कत्तो वियसन्ति पंकयवणाइं ।
सुयणाण जत्थ णेहो न चलइ दूरट्ठियाणं वि ॥ ७ ॥
जं-जि खमेइ समत्थो धणवन्तो जं न गव्वं उव्वहइ ।
जं च सविज्जो नमिरो तिसु तेसु अलंकिया पुहवी ॥ ८ ॥
अप्पाणं अमुणन्ता जे आरम्भन्ति दुग्गमम् कज्जं ।
परमुहपलोइयाणं ताणं कह होइ जयलच्छी ॥ ९ ॥
तुङ्गो च्चिय होइ मणो मणंसियो अन्तिमासु वि दसासु ।
अत्थयन्तस्स वि रविणो किरणा उद्धं चिय फुरन्ति ॥१०॥
न महुमहणस्स वच्छे मज्झे कमलाण नेय खीरहरे ।
ववसायसायरे सुपुरिसाण लच्छी फुडं वसइ ॥११॥

संस्कृत अनुवाद

अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।
कामस्य तस्यतन्त्रीं कुर्वन्ति, ते कथं न लज्जन्ति ॥ १ ॥
दुःखं क्रियते काव्यं, काव्ये कृते प्रयुञ्जानो दुःखम् ।
सति प्रयुज्यमाने, श्रोतारो दुर्लभाः भवन्ति ॥ २ ॥
प्राकृतकाव्ये रसो यः जायते तथैव छेकभणितैः ।
उदकस्य च वासितशीतलस्य तृप्तिं न व्रजामः ॥ ३ ॥
देशीशब्दपर्यस्तं मधुराक्षरच्छन्दःसंस्थितं ललितम् ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्फुटविकटप्रकटार्थं प्राकृतकाव्यं पठितव्यम् ॥ ४ ॥
द्वौ पुरुषौ धरतां धरामथवा द्वाभ्यामपि धारिता धरणी ।
उपकारे यस्य मतिः उपकृतं यो न विस्मरति ॥ ५ ॥
दृढलौहशृंखलेभ्योऽन्येभ्योऽपि विविधपाशबन्धेभ्यः ।
तेभ्य एवाधिकतरं वाग्बन्धनं कुलीनस्य ॥ ६ ॥
कुत्रोद्गच्छति रविः कुत्र विकसन्ति पङ्कजवनानि ।
सुजनानां यत्र स्नेहो न चलति दूरस्थितानामपि ॥ ७ ॥
यदेव क्षमते समर्थो धनवान् यद्गर्वं नोद्वहते ।
यश्च सविद्यः नम्रस्त्रिषु तेषु (त्रिभिरेभिः) अलङ्कृता पृथ्वी ॥ ८ ॥
आत्मानममुञ्चन्तो ये आरभन्ते दुर्गमं कार्यम् ।
परमुखावलोकिनां तेषां कथं भवति जयलक्ष्मीः ? ॥ ९ ॥
तुङ्गमेव भवति मनः मनस्विनोऽन्तिमास्वपि दशासु ।
अस्तमयमानस्यापि रवेः किरणानि ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥ १० ॥
न मधुमथनस्य वक्षसि, मध्ये कमलानां, नैव क्षीराब्धौ ।
व्यवसायसागरे सुपुरुषां लक्ष्मीः स्फुटं वसति ॥ ११ ॥

हिन्दी अनुवाद

अमृत (स्वरूप) प्राकृत-काव्य को जो पढ़ना और सुनना नहीं जानते हैं और (केवल) काम का सैद्धान्तिक पर्यालोचन करते हैं तो (इससे) वे क्यों नहीं लज्जित होते ? ॥ १ ॥

काव्य की रचना करना अत्यन्त कठिन है, काव्य करने पर (यदि काव्य की रचना हो भी जाय तो) उसका प्रयोग करनेवाला और अधिक कठिन होता है, (उसका) प्रयोग करने पर (यदि प्रयोग कर भी दिया गया तो) उसके सुननेवाले दुर्लभ होते हैं ॥ २ ॥

विदग्ध लोगों (सहृदय) के द्वारा ही कहे गये (रचित) प्राकृत-काव्य में जो रस मिलता है (वह अन्यत्र दुर्लभ है) शीतल और सुगन्धि जल से तृप्ति नहीं ही होती ॥ ३ ॥

देशी शब्द से परिपूर्ण, मधुर अक्षरों और छन्दों से सुव्यवस्थित ललित, स्पष्ट एवं विकट दोनों तरह के अर्थों को प्रकट करनेवाला प्राकृत-काव्य अवश्य पढ़ना चाहिए ॥ ४ ॥

दो (प्रकार के) पुरुष पृथ्वी को धारण करें अथवा दो प्रकार के पुरुषों द्वारा यह पृथ्वी धारण की गयी है । (एक तो वे हैं) जिनकी बुद्धि उपकार में लगी रहती है (तथा दूसरे वे हैं) जो किये गये उपकार को नहीं भूलते ॥ ५ ॥

मजबूत लोहे की शृंखलाओं से और दूसरे विभिन्न प्रकार के पाशबन्धनों से भी कुलीनों का वाग्बन्धन (काव्य) अधिकतर (प्रभावशाली) होता है ॥ ६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कहाँ सूर्य उदित होता है और कहाँ भला पङ्कजवन विकसित होते हैं, जहाँ दूर रहने वाले सज्जनों का स्नेह नहीं चला जाता (जहाँ तक सूर्य का प्रकाश जाता है और जहाँ तक पङ्कजवन खिलते हैं वहाँ तक सुजनों का स्नेह जाता है अर्थात् सर्वत्र चला जाता है) ।। ७ ।।

समर्थ लोग जो क्षमा करते हैं, धनवान् लोग जो गर्व नहीं करते, विद्वान् लोग जो विनम्र होते हैं इसीलिए उन्हीं तीनों के विषय में (इन्हीं तीन से) यह पृथ्वी अलङ्कृत है ।। ८ ।।

जो लोग अपने आपको न छोड़ते हुए (भूलते हुए) दुर्गम कार्य आरम्भ करते हैं (वे ही सफल होते हैं), भला परमुखापेक्षी लोगों को जयलक्ष्मी कहाँ से मिले ? ।। ९ ।।

मनस्वी लोगों का मन अन्तिम अवस्था में भी (कठिन परिस्थिति में भी) ऊँचा ही रहता है। अस्त होते हुए (भी) सूर्य की किरणें ऊपर को ही प्रस्फुटित होती हैं ।। १० ।।

न तो मधुसूदन भगवान् के वक्षस्थल पर, न कमलों के मध्य में, न क्षीर-सागर में; अपितु कर्मठ पुरुषों के व्यवसायरूपी सागर में स्पष्ट रूप से लक्ष्मी रहती हैं ।। ११ ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपभ्रंश-सङ्ग्रह

१

भविसयत्तकहा

माइ महल्लमहुज्जमविज्जें, वन्धुयत्तु संचलिउ वणिज्जें ॥ १ ॥
तेण समानु मइं-मि जाइव्वउ, तं वोहित्थु तीरि लाइव्वउ ॥ २ ॥
देसन्तरपवासु माणिव्वउ, नियपुण्णद पमाणु जाणिव्वउ ॥ ३ ॥
दइवायत्तु जइ वि उल्लसिव्वउ, तो परिसि ववसाउ करिव्वउ ॥ ४ ॥
सं णिसुणेवि सगग्गिरवयणी, भणइँ जणेरि जलद्दियणयणी ॥ ५ ॥
हा इउ पुत्त काइँ पइँ जंपिउ, सिविणन्तरि, वि णाहि महु जम्पिउ ॥ ६ ॥
एक्क अकारणि कुविएअवियप्पें, दिण्णु अणन्तु दाहु तउ बप्पें ॥ ७ ॥
अण्णुपि पइँ देसन्तरु जन्तहो, को महु सरणु हियइ पोजलन्तहो ॥ ८ ॥
अण्णु वितेणु समउ तउ जन्तहो, णिव्वुइ खणु वि नाहि महु चित्तहो ॥ ९ ॥
को जाणइ कण्णमहाविसइ, अणुदिणु-दुम्मइ मोसियइं ।
समविसमसहावहि अन्तरइं दुट्ठसवत्तिहि दोहियइं ॥ १० ॥

संस्कृत अनुवाद

मातः ! महामहोद्यमविद्यया । बन्धुदत्तः संचलितः वाणिज्येन ॥१॥
तेन समानः मयापि यातव्यम् । तं वहित्रितीरे लातव्यम् ॥२॥
देशान्तरप्रवासो म नयितव्यः । निजपुण्यदप्रमाणं ज्ञातव्यम् ॥ः॥
दैवायत्तं यत्रापि विलसितव्यम् । ततः पुरुषेण व्यवसायः कर्तव्यः ॥४॥
तत् निःश्रुत्य सगद्गदवचना । भणति यवाहि जलार्द्रितनयना ॥ ॥
हा ! इतः पुत्र ! कुत्र त्वया जल्पितम् । स्वप्नान्तरेऽपि नास्ति मम जल्पितम् ॥६॥
एकोऽकारणेन कुपितप्रियेण । दत्तोऽनन्तोदाहस्तव पित्रा ॥ ७ ॥
अन्योऽपि त्वया देशान्तरे यातम् । को मम शरणं हृदयस्य प्रज्वलतः ॥ ॥
अन्योऽपि तेन समं तव यातः । निर्वृत्तिः क्षणमपि नास्ति मम चित्तस्य ॥९॥
को जानाति कर्ममहाविषाणि, अनुदिनं दुर्मतिमोहितानि ।
समविषमस्वभावाभिः अन्तराणि, दुष्टसपत्नीभिर्द्रोहितानि ॥१०॥

हिन्दी अनुवाद

हे माँ, बन्धुदत्त व्यापार के लिए बहुत बड़े परिश्रम और अज्ञान से चला ॥१॥
उसी के साथ मैं भी जाऊँगा और उसे वहित्री-तीर पर लाऊँगा ॥२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूसरे देशों के निवास का आदर करना चाहिए। (इस प्रकार) अपने पुण्य प्रमाण का ज्ञान करना चाहिए ॥३॥

जहाँ कहीं भी, भाग्य से प्राप्त वस्तु का भोग करना चाहिए। और इसोलिए ही पुरुष को व्यवसाय करना चाहिए ॥४॥

उसे सुनकर गद्गद कण्ठवाली एवं अश्रुपूर्ण नेत्रवाली ने (भावपूर्ण होकर) कहा ॥५॥

हे पुत्र! यह कहाँ से तुमने अनर्थक बात कही। मैं तो स्वप्न में भी ऐसी व्यर्थ बात नहीं कहती ॥६॥

(एक तो) तुम्हारे पिता ने जो मेरे प्रिय हैं, अकारण कुपित होकर मुझे एक अनन्त दाह (जलन या वियोग) दिया है ॥६॥

(दूसरे) तुम्हारे देशान्तर चले जाने पर भला वियोग में जलते हुए मेरे हृदय के लिए कौन दूसरा शरण होगा ॥८॥

उसके साथ जाते हुए तुम्हारे और मेरे चित्त के लिए क्षणभर भी दूसरी कोई शान्ति नहीं है ॥९॥

सम-विषम स्वभाववाली दुष्ट सपत्नियों के, अहर्निश मति से मोहित, कानों के लिए महाविष के समान, आन्तरिक द्रोहों को, भला कौन जानता है? ॥१०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२
दोहाकोष

सहज च्छाडी णिव्वाणेहिं धाविउ, णउ परमत्थ एक्कवि तें साहिउ।
जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठ, मोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठ ॥ १ ॥
सो वि पढिज्जइ सो वि गुणिज्जइ, सत्थ-पुराणे बक्खाणिज्जइ।
नाहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ, एत्तवि वर-गुरु-पाआ पेक्खइ ॥ २ ॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअइ, अहवा झाण अन्धार साधिअअ।
सरह भणइ मइ कड्ढिअ राव, सहज सहाउ णउ भावाभाव ॥ ३ ॥
झाण-हीण पव्वजें रहिअउ, गही वसंतें भज्जें सहिअउ।
जइ भिडि विसअ रमन्ते ण मुच्चअ, सरह भणइ परिआण कि रुच्चअ ॥ ४ ॥
पंडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ, देहहिं बुद्ध वसन्त ण जाणअ।
अमणागमण ण एक्क वि खण्डिअ, तउ णिलज्ज भणइ हंउ पण्डिअ ॥ ५ ॥

संस्कृत अनुवाद

सहजं छर्दयित्वा निर्वाणे धावितः, न तु परमार्थः एकोऽपि साधितः।
यः यस्य येन भवति सन्तुष्टः, मोक्षः किं लभ्यते ध्यानप्रविष्टः ॥१॥
सोऽपि पठ्यते सोऽपि गुण्यते, शास्त्रपुराणैः व्याख्यायते।
न हि सा दृष्टिः या तावत् न लक्ष्यते, एतदपि वरगुरुपादाः प्रेक्षन्ते ॥२॥
यदि प्रत्यक्षः किं ध्यानेन क्रियते, अथवा ध्यानम् अन्धकारे साध्यकम्।
सरहो भणति मया कृतो रावः, सहजस्वभावो न तु भावाभावः ॥३॥
ध्यानहीनः प्रव्रज्यया रहितः, गृहे वसन्ते नार्यया सहितः।
यदि भित्त्वा विषये रमते न मुच्यति,
सरहो भणति किं परिज्ञानं रोचते ? ॥४॥
पण्डितः सकलशास्त्रं व्याचष्टे, देहे बुद्धं वसन्तं न जानाति।
गमनागमनयोः न एकमपि खण्डितम्, तदु निर्लज्जो भणत्यहं पण्डितः ॥५॥

हिन्दी अनुवाद

सहज तत्त्व को छोड़कर जो निर्वाण चाहता है वह एक भी परमार्थ की सिद्धि नहीं कर पाता है। जो, जिसका (मन), जिसके द्वारा सन्तुष्ट होता है, क्या वह ध्यान में प्रविष्ट हो मोक्ष को प्राप्त करता है ? ॥१॥

वही पढ़ा जाता है, वही गुना जाता है तथा वही शास्त्र एवं पुराणों द्वारा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्याख्यात होता है। जो देखती नहीं वह दृष्टि नहीं है, यह भी श्रेष्ठगुरुपाद (ही) देखते हैं (समझ सकते हैं) ॥२॥

यदि (परमतत्त्व) प्रत्यक्ष है तो ध्यान करने से क्या लाभ ? (यदि परोक्ष है) तो अन्धकार में ध्यान करो। सरह कहते हैं कि मैंने बड़ी पुकार की कि सहज स्वभाव ही (मुख्य) है, भावाभाव कुछ नहीं है ॥३॥

ध्यान से हीन, प्रव्रज्यारहित, वसन्तऋतु में गृहस्थ, भार्या के साथ (ज्ञान आदि के बन्धनों को) तोड़कर विषयों में रमण करता है और छोड़ता नहीं है तो सरह कहते हैं कि उसे क्या परिज्ञान रुचता है ? ॥४॥

पण्डित सकल शास्त्रों का व्याख्यान करता है, देह में रहने वाले बुद्ध को नहीं जानता है। गमनागमन में से एक को भी खण्डित नहीं करता है फिर भी (वह) निर्लज्ज अपने को, मैं पण्डित हूँ, ऐसा कहता है ॥५॥

●

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३

पाहुडदोहा

देहहो पिक्खिवि जर-मरणु मा भउ जीव करेहि।
जो अजरामरु बम्भु परु सो अप्पाण मुणेहि ॥ १ ॥
सिव विणु सत्ति ण वावरइ सिज पणु सत्ति विहीणि।
दोहिं वि जाणहिं सयलु जगु बुज्झइ मोह विलीणु ॥ २ ॥
जेण णिरंजणि मणु धरिउ विसय-कसायहिं जन्तु।
मोक्खइ कारणु एत्तडउ अवरइँ तन्तु ण मन्तु ॥ ३ ॥
ताम कु-तित्थइँ परिब्भमइँ धुत्तिम ताम करन्ति।
गुरुहुं पसाए जाम ण वि देहहँ देउ मुणन्ति ॥ ४ ॥
पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिय तसु कंडिया।
अत्थे गंथे तुट्ठो सि परमत्थु ण जाणसि मूढो सि ॥ ५ ॥

संस्कृत अनुवाद

देहस्य प्रेक्ष्य जरामरणं मा भयं जीव ! कुरु।
यद्यजरामरं ब्रह्मपरं तदात्मानं मन्यस्व ॥१॥
शिवं विना शक्तिः न व्यापृणाति, शिवः पुनः शक्तिविहीनः।
द्वाभ्यामपि जानाति सकलं जगत्, बुध्यते मोहविलीनः ॥२॥
येन निरञ्जने मनः धृतं विषयकषायैः जन्तो !
मोक्षस्य कारणमेतत्कमपरकं तन्त्रं न मन्त्रः ॥३॥
तावत्कुतीर्थके परिभ्रमन्ति धूर्तिमानं तावत्कुर्वन्ति।
गुरुभ्यां प्रसादेन यावद् नापि देहानां देवं मन्यन्ते ॥४॥
पण्डित ! पण्डितो !! पण्डिताः !!! कणं छर्दयित्वा तुषं कण्डितः।
अर्थे ग्रन्थे तुष्टोऽसि परमार्थं न जानासि मूढोऽसि ॥५॥

हिन्दी अनुवाद

देह के जरामरण को देखकर हे जीव ! भय मत करो। यदि अजरामरत्व ब्रह्मपरक है तो अपने को भी (अजर-अमर) मानो ॥१॥

शिव के बिना शक्ति व्यापार में नहीं प्रवृत्त होती है तथा शक्तिहीन शिव भी व्यापार में प्रवृत्त नहीं होते हैं, फिर भी मूढ़जन इन दोनों के बिना सम्पूर्ण जगत् (की स्थिति) जानता और समझता है ॥२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हे जीव ! विषयों में फँसा हुआ (आत्मा के साथ विषयकृत मलिनता और पापों के चिपके हुए) होने के कारण, जिस (जीव) ने निरञ्जन (ब्रह्म) में मन लगा दिया है, यही मोक्ष का कारण है, दूसरे तन्त्र एवं मन्त्र नहीं ।।३।।

गुरु के प्रसाद से जब तक देह को (जीव) देव नहीं मानते हैं तब तक वे कुतीर्थ में परिभ्रमण एवं धूर्तता करते रहते हैं ।।४।।

हे पण्डित ! हे (दोनों) पण्डितो !! हे (सब) पण्डितो !!! (तुम लोगों ने) अन्न को छोड़कर भूसा एकत्र किया है । (तुम केवल अर्थ (संचय) में एवं ग्रन्थ (पठन) में ही सन्तुष्ट रहते हो । परमार्थ को नहीं जानते हो । तुम मूर्ख हो ।।५।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राकृत पैङ्गलम्

अरे रे बाहरि कान्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि,
तइँ इत्थि नइहि सन्तार देइ, जो चाहसि सो लेहि ॥ १.९ ॥ (दोहा)
सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेश समाण ।
ओ वक्कल ओ कठिणतणु ओ पसु ओ पासाण ॥ १.७९ ॥ (दोहा)
पअभरु दरमउ धरणि तरणिरह धुल्लिअ झंपिअ,
कमठपिट्ठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ ।
कोहे चलिअ हम्मीरवीर गअजूह सँजुत्ते,
किअउ कट्ठ हाकंद मुच्छि मेच्छहके पुत्ते ॥ १.९२ ॥ (रोला)
जस सीसहि गंगा गोरि अधंगा गिव पहिरिअ फणिहारा ।
कंठट्ठिअ वीसा पिंधण दीसा सन्तारिअ संसारा ॥
किरणावलिकंदा वंदिअ चंदा णअणहि अणल फुरंता ।
जो संपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ तुम्ह भवाणीकंता ॥ १.९८॥
(चउपइआ)

पिंधउ दिढ सण्णाह वाहु उप्पर पक्खर दइ ।
बंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ ॥
उड्डउ णहपह भमउ खग्ग रिउसीसहि झल्लउ ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पव्वअ अप्फालउ ।
हम्मीरकज्जु जज्जल भणह कोहाणलमह मइ जलउ ।
सुलताण सीस करवाल दइ तज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥ १.१०६ ॥
(छप्पय)

जहा सरअ ससि ब्रिब जहा हरहार हंस ठिअ ।
जहा फुल्ल सिअ कमल जहा सिरिखंड खंड किअ ॥
जहा गंग कल्लोल जहा रोसाणिअ रुप्पइ ।
जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फंफाइ तलप्फइ ॥
पिअ पाअ पसाए दिट्ठि पुणु णिहुअ हसइ जह तरुणिजण ।
वरमंति चंडेसर कित्ति तुअ तत्थ देक्ख हरिबंभ भण ॥ १.१०८॥
(छप्पय)

जे गंजिअ गोडाहिवइ राउ, उद्दंड ओड्डु जसु भअ पलाउ ।
गुरुविक्कमविक्कम जिणिअ जुज्झ, तता कण्ड परक्कम कोइ बुज्झ ।
(पज्झडिया) ॥ १.१२६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सेर एक जइ पावउँ घित्ता,
मंडा बीस पकावउँ णित्ता ।
टंकु ऍक्क जउ से धव पाआ ।
जो हउ रंक सोइ हउ राआ ॥ १.१३० ॥ [पादाकुलक]
ढाॅल्ला मारिअ ढिल्लि महँ मुच्छिअ मेच्छ सरीर ।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ वीर हम्मीर ॥
चलिअ वीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंपइ ।
दिग मग णह अंधार धूलि सूरह रह झंपई ॥
दिग मग णह अंधार आण खुरसाणक आॅल्ला ।
दरमरि दमसि विपक्ख मारु, ढिल्ली महँ ढाॅल्ला ॥ १.१४७॥
[कुंडलिया]

सहस मअमत्त गअ लाख लाख पक्खरिअि,
साहि दुइ साजि खेलंत गिंदू ।
कोप्पि पिअ जाहि तह थप्पि जसु विमल महि,
जिणइ णहि कोइ तुह तुलुक हिन्दू ॥ १.१५७ ॥ (द्विपदी)
राआ लुद्ध समाज खल बहु कलहारिणि सेवक धुत्तउ ।
जीवण चाहसि मुक्खजइ परिहरु घर जइ बहुगुणजुत्तउ ॥ १.१६९ ॥
(चुलिआला)

उच्चउ छाअण विमल धरा तरुणी घरिणी विणअपरा ।
वित्तक पूरल मुद्दहरा वरिसा समआ सुक्खकरा ॥ १.१७४ ॥ [हाकलि]
जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ,
मुट्ठि अरिट्ठि विणास करे गिरि हत्थ धरे ।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ,
काअिल कुल संहार करे जस भुअण भरे ॥
चाणूर विहंडिअ णिअ कुलमण्डिअ राहा-मुअ-महु पाणकरे
जिमि अमरवरे ।
सोइ तुम्ह णराअण विप्पपरायण
चित्तअ चिंतिअ देउ वरा भअभीअ हरा ॥ १.२०७ ॥ (मअणहरा)
जसु मित्त धणेसा ससुर गिरीसा तह विहु पिंधण दीस,
जइ अमिअह कंदा णिअल हि चंदा तह विहु भोअण बीस ।
जइ कणअ सुरंगा गोरि अधंगा तह विहु डाकिणि संग,
जो जस हि दिआवा देव सहावा कबहु ण हो तसु भंग ॥ १.२०९ ॥
[मरहट्ठा]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाआ माआ पुत्तो धुत्तो
इण्णे जाणी किज्जे जुत्तो ॥ २.२८ ॥ (तोर्णा)
सो मह कंता दूर दिगंता ।
पाउस आवे चेउ चलावे ॥ २.३८ ॥ (हंस)
पंडववंसहि जम्म धरीजे, संपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जे ।
सोउ जुहिट्ठिर संकट पावा, देवक लिक्खअ केण मिटाबा ॥ २.१०१ ॥ [बंधु]
बालो कुमारो स छमुंडधारी, उप्पा अहीणा हउँ ऐक्क णारी ।
अह्णिणसं खाहि विसं भिखारी, गई भवित्ती किल का हमारी ॥ २.१२० ॥
[उपजाति]
मह्ा मत्त माअंग पाए ठवीआ, तह्ा तिक्ख बाणा कडक्खे धरीआ ।
भुआ पास भोह्ा धणूह्ा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स
सेणा ॥ २.१२६ ॥ [भुजंगप्रयात]
जो जण जणमउ सो गुणमंतउ,
जे कर पर उअआर हसंतउ ।
जे पुण पर उअआर विरुज्झउ,
तासु जणणि किं ण थक्कइ वंझउ ॥ २.१४९ ॥ [पंकावली]
झत्ति जोह सज्ज होह गज्ज वज्ज तं खणा,
रोस रत्त सव्व गत्त हक्क दिज्ज भीसणा ।
धाइ आइ खग्ग पाइ दाणवा चलंतआ,
वीरपाअ णाअराअ कंप भूतलंतआ ॥ २.१५९ ॥ [चामर]
तरलकमलदलसरसिअणयणा,
सारअ समअ ससि सुसरिसवयणा ।
मअगल करिवर सअलसगमणी,
कमल सुकिअफल बिहुगढु तरुणी ॥ २.१६७ ॥ (सरभ)

संस्कृत अनुवाद

अरे वाह्य कृष्ण ! नावं क्षुद्रां, *डगमगां कुगतिं मा देहि ।
त्वमस्यां नद्यां, सन्तार्य यदिच्छसि तद् लभस्व ॥ १.९ ॥
सुरतरुः सुरभिः स्पर्शमणिः नहि वीरेशसमानाः ।
अथ (च) वल्कलमथ (च) कठिनतनुः, अथ पशुः, अथ पाषाणः ॥१७९॥
पदभरेण दलमलिता (दलिता) धरणिस्तरणिरथ धूल्याच्छादितः,
कमठपृष्ठमधः पतितं मेरुमन्दरशिरः कम्पितम् ।
क्रोधेन चलितो हम्मीरवीरो गजयूथसंयुक्तः,
कृतः कष्टं हाक्रन्दः मूर्छितं म्लेच्छानां पुत्रैः ॥१.९२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यस्य शीर्षे गंगा गौर्यर्द्धाङ्गी ग्रीवापरिधृतफणिहारः ।
कण्ठस्थितविषः दिक्पिधानः सन्तारित संसारः ॥
किरणावलिकन्दः वन्दितचन्द्रः नयने अनलः स्फुरन् ।
स सम्पदं दद्यात् बहुसुखं कुरुतात् युष्मभ्यं भवानीकान्तः ॥१.९८॥
पिदधानि दृढसन्नाथं वाहनोपरि वाणवारणं दत्त्वा ।
बन्धून् सम्माद्य रणे प्रवशनि स्वामिहम्मीरस्य वचनं गृहीत्वा ॥
उड्डीयै नभ पथे भ्रमामि खड्गं रिपुशीर्षे क्षिपानि ।
वाणवारणेन वाणवारणं निवार्य प्रेर्य पर्वतमास्फालयानि ॥
हम्मीरकृते जज्जलः भणति क्रोधानलमध्येऽहं ज्वलानि ।
सुल्तानशीर्षे करवालं दत्त्वा त्यक्त्वा कलेवरं दिवं चलानि ॥१.१०६॥
यथा शरच्छशिबिम्बः यथा हरहारहंसस्थितिः !
यथा फुल्लं सितकमलं यथा श्रीखण्डः खण्डीकृतः ॥
यथा गंगाकल्लोलः यथोज्ज्वलीकृतं रौप्यम् ।
यथा दुग्धवरः शुद्धफेनः स्फीत्वा स्फुरति ॥
प्रियात्प्राप्य प्रसादवृष्टि पुनः निभृतं हसति यथा तरुणीजनः ।
वरमन्त्रिन् ! चण्डेश्वर ! कीर्त्तिस्तव तथ्यं दृश्यते हरिर्ब्रह्मा भणतः ॥१.१०८॥
येन गञ्जितः (मारित) गौडाधिपतिः राजोद्दण्डोत्कलेशः यस्य भयेन पलायितः ॥
गुर्वविक्रमः जितः युद्धे, तस्मात् कर्णस्य पराक्रमं कोऽपि बुध्यते ॥
॥ १.१२६ ॥

सेटकमेकं (मानविशेषं) यदि प्राप्नोमि घृतं,
मण्डकानि विंशति पचामि नित्यं टङ्कमेकं यदि सैन्धवं प्राप्तं,
योऽहं रङ्कः सोऽहं राजा ॥१.१४०॥ [पादाकुलक]
डिण्डिमं मारितः दिल्लीमध्ये मूर्च्छितं म्लेच्छशरीरम् ।
पुरः जज्जलं मन्त्रिवरं चलितः वीरहम्मीरः ॥
चलित वीरहम्मीर. पादभरेण मेदिनी कम्पते ।
दिङ्मार्गेषु नभस्यन्धकारः घूमिलः सूर्यस्य रथमाच्छादयति ।
दिङ्मार्गेषु नभस्यन्धकार आनीताः खुरशानकाः ओल्ला ।
विमर्द्य दमयति विपक्षं मारय दिल्ली मध्ये डिण्डिमं ॥१.१४७॥
सहस्रं मदमत्तगजान् लक्षं लक्षं (अश्वान्) प्रक्षरीकृत्य,
शाहो द्वौ सज्जयित्वा खेलतः कन्दुकं ।
कुरु प्रिय ! याहि तत्र स्थापय यफो विमल मह्याम् ॥
जयति न कोऽपि त्वां तुर्कः हिन्दूः ॥ १.१५७ ॥
राजा लुब्धः समाजः खल. वधूः कलहकारिणी सेवको धूर्तः ।
जीवनमिच्छसि मुक्तं यदि, परित्यज गृहं, यदि बहुगुणयुक्तम् ॥१,१६९॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उच्चकैश्छादनं विमलगृहं तरुणी गृहिणी विनयपरा ।
वित्तकृतपूरितं मुद्रागृहं वर्षासमयः सुखकरः ॥१.१७४॥
येन कंसो विनाशितः कीर्तिः प्रकाशिता,
मुष्टिकारिष्टयोर्विनाशः कृतः गिरिर्हस्तेन धृतः,
यमलार्जुनौ भग्नौ, पदभरेण गञ्जितम् ॥
कालियं, कुलं संहृतं यशसा भुवनं भृतम् ।
चाणूरो विखण्डितः निजकुलं मण्डितम्,
राधामुखमधुपानं कृतं यथा भ्रमरवरेण,
स युष्माकं नारायणो विप्रपरायणः,
चित्तस्य चिन्तितं ददातु वरं भवभीतिहरः ॥१ २०८॥
यस्य मित्रं धनेशः श्वशुरो गिरीशः तस्यापि खलु पिधानं दिशः ।
यस्यामृतस्य कन्दः निकटे चन्द्रः तस्यापि खलु भोजनं विषम् ॥
यदि कनकसुरङ्गा गौर्यर्द्धाङ्गे तथापि खलु डाकिनी सङ्गे ।
यत् यस्य हि दापितः दैवेन स्वभावः कदापि खलु न भवति तस्य भङ्गः ॥

॥ १.२०९ ॥

जाया माया पुत्रो धूर्तः । एतद् ज्ञात्वा क्रियताम् युक्तम् ॥ २.२८ ॥
स मम कान्तः दूरे दिगन्ते । प्रावृड् आगता चेतश्चालितम् ॥ २.३ ॥
पाण्डववंशे जन्म ध्रियते सम्पदमर्जयित्वा धर्माय दीयते ।
सोऽपि युधिष्ठिरः संकटं प्राप्तः दैवस्य लिखितं केन विलुप्यते (विलुप्तम्)

[२.१०१]

बालः कुमारः स षड्मुण्डधार्युपायहीनाहमेको नारी ।
अहर्निशं खादति विषं भिक्षाचारी गतिः भवित्री किल का अस्माकम् ॥

॥ २.१२० ॥

महामत्तमातङ्गः पादे स्थापितः तथा तीक्ष्णबाणाः कटाक्षे धृताः ।
भुजाः पाशाः भ्रुवः धनुषा समानाः अहो नागरी कामराजस्य सेना ॥२ १२६॥
यो जनः जातः स गुणवान्, यः करोति परोपकारः हसन् ।
यः पुनः परोपकारविरुद्धकः, तस्य जननी किं न स्थगतु वन्ध्यका ॥२.१४९॥
झटिति योद्धारः सज्जाः भवन्ति गर्जन्ति वाद्यानि तत्क्षणम् ।
रोषरक्ताः सर्वगात्रे हवं दीयते भीषणम् ॥
धावित्वागत्य खड्गं प्राप्य दानवाः चलन्तः ।
वीरपादेन नागराजः कम्पते भूतलान्त ॥ २.१०९ ॥
तरलकमलदलसदृशकनयना, शरत्समयशशिसुसदृशवदना ।
मदकलकरिवरसालसगमना, केन सुकृतफलेन विधिना घटिता तरुणी ॥

॥ २.१६८ ॥ सरभ छन्द

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हे कृष्ण ! नौका खेवो, यह नाव छोटी है, इसे डगमगाओ नहीं। इस नदी से पार कर तुम जो चाहो, ले लेना ।। १.९ ।।

कल्पवृक्ष, कामधेनु तथा स्पर्शमणि ये तीनों वीरेश (राजा) के समान नहीं हैं। (क्योंकि) यह (कल्पवृक्ष) वल्कल तथा कठोर शरीरवाला है, (सुरभि) पशु है तथा (वह स्पर्शमणि) पत्थर है ।। १.७९ ।।

पृथ्वी (सेना के) पैर के बोझ से दबा दी गयी; सूर्य का रथ धूल से ढँक गया, कमठ की पीठ तड़क गयी, सुमेरु तथा मन्दराचल के अग्रभाग (चोटियाँ) काँप उठे। वीर हम्मीर हाथियों की सेना से सुसज्जित होकर क्रोध से (रण-यात्रा के लिए) चल पड़ा। म्लेच्छों के पुत्रों ने बड़े कष्ट के साथ हाहाकार किया तथा वे मूर्छित हो गये ।। १.९२ ।।

जिनके सिर पर गंगा है, अर्धाङ्ग में गौरी है और जो ग्रीवा में सर्प का हार पहनते हैं, जिनके कण्ठ में विष है, जिनके वस्त्र दिशाएँ हैं तथा जिन्होंने संसार को तार दिया है, जो किरणावलि के कन्द (समूह) हैं, जिन्होंने चन्द्रमा की वन्दना की है, जिनके नेत्रों में अग्नि चमकती है, वे भवानी के पति शिव, तुम्हें सम्पत्ति दें तथा बहुत सुख दें ।। १.९८ ।।

वाहनों के ऊपर पक्खर देकर (डालकर) मैं दृढ़ सन्नाह पहनूं, स्वामी हम्मीर के वचनों को लेकर बांधवों से भेंटकर युद्ध में धँसूं; आकाश में उड़कर घूमूं; रिपु के सिर पर तलवार जड़ दूँ, पक्खर से पक्खर ठेल-पेलकर पर्वतों को हिला डालूं; जज्जल कहता है, हम्मीर के लिए मैं क्रोधाग्नि में जल रहा हूं, सुलतान के सिर पर तलवार मारकर, अपने शरीर को छोड़कर मैं स्वर्ग जाऊँ ।। १.१०६ ।।

जिस प्रकार शरत्कालीन चन्द्रबिम्ब सुशोभित होता है, जैसी शिव के अट्टहास तथा हंस की स्थिति है, जैसा प्रफुल्लित श्वेत कमल होता है, तथा खण्ड-खण्ड करने पर श्रीखण्ड प्रतीत होता है, जैसी गंगा की कल्लोल होती है, जैसी तपाई हुई चाँदनी होती है, जिस तरह दूध का कोमल फेन फफाँता हुआ उफनता (तड़फड़ाता) है, प्रिय के चरणों पर गिरने पर जिस तरह तरुणियाँ चुपके से हँसकर प्रिय की ओर जिस दृष्टि से देखती हैं; हरि और ब्रह्मा कहते हैं, हे मन्त्रिवर चण्डेश्वर ! तुम्हारी कीर्ति वैसी ही दिखायी देती है ।। १.१०८ ।।

जिसने गौड़ देश के स्वामी राजा को मारा, जिसके भय से उद्दण्ड उत्कलराज भाग खड़ा हुआ और जिसने गुरु विक्रम को भी युद्ध में जीत लिया, उस कर्ण के पराक्रम को कौन जानता है ? ।। १.१२६ ।।

यदि मैं एक सेर घी पाऊँ, तो नित्य बीस भंडा (रोटियाँ) पकाऊँ। यदि एक टंक-भर सेंधा नमक मिले, तो जो मैं रंक हूँ, वही राजा हो जाऊँ ।। १.१३० ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिल्ली में (जाकर) वीर हम्मीर ने रणदुन्दुभि बजायी, जिसे सुनकर म्लेच्छों के शरीर मूर्छित हो गये। जज्जल मन्त्रिवर को आगे कर वीर हम्मीर विजय के लिए चला। उसके चलते पर (सेना के) पैर के बोझ से पृथ्वी काँपने लगी, दिशाओं के मार्ग में (आकाश में) अँधेरा हो गया, धूल ने सूर्य के रथ को ढँक दिया। दिशाओं में आकाश में अँधेरा हो गया तथा खुरासान देश के ओल्ला लोग ले आये गये। हम्मीर! तुम विपक्ष का दल-मलकर दमन करते हो; तुम्हारा ढोल दिल्ली में बजाया गया ॥१.१४७॥

हजारों मदमत्त हाथियों और लाख-लाख (घोड़ों) को पाखर के साथ सजाकर दोनों शाह गेंद खेलते हैं। हे प्रिय! तुम क्रुद्ध होकर वहाँ जाओ, पृथ्वी में निर्मल यश को स्थापित करो। तुम्हें कोई भी हिन्दू या तुर्क नहीं जीत सकेगा ॥ १.१५७॥

लोभी राजा, दुष्ट समाज, कलहकारिणी पत्नी तथा धूर्त सेवक हों, तो यदि तुम सुखमय जीवन चाहते हो, तो बहुत गुणयुक्त घर होने पर भी उसे छोड़ दो ॥१.१६९॥

ऊँचे छाजनवाला विमल घर, विनयशील युवती पत्नी, धन से भरा हुआ मुद्रागृह (कोषागार) तथा वर्षा समय सुखकर होते हैं ॥ १.१७४ ॥

जिन्होंने कंस को मारा, कीर्ति प्रकाशित की, मुष्टिक तथा अरिष्ट का नाश किया और पर्वत को हाथ में धारण किया, जिन्होंने यमलार्जुन को तोड़ा, पैरों के बोझ से कालिय नाग का दर्प चूर्ण किया तथा उसके कुल का संहार किया तथा यश से भुवन भर दिया, जिन्होंने चाणूर का खण्डन किया, अपने कुल का मण्डन किया तथा भ्रमर की भाँति राधा के मुख का मधुपान किया, वे भवभीति का हरण करनेवाले विप्रपरायण नारायण तुम्हें चित्त का चिन्तित (इच्छित) वर प्रदान करें ॥१.२०७॥

जिसके मित्र कुबेर हैं, श्वशुर पर्वतों के राजा हिमालय हैं, तथापि उनके वस्त्र दिशाएँ हैं, यद्यपि अमृत वा कन्द चन्द्रमा (उनके) समीप है, यथापि उनका भोजन विष है; यद्यपि कनक के समान सुन्दर रंग की पार्वती अर्धाङ्ग में हैं, तथापि उनके साथ में डाकिनियाँ रहती हैं, दैव ने जिसे जैसा स्वभाव दे दिया है, उस स्वभाव का कभी भी भंग नहीं होता ॥ १.२०९ ॥

जाया मायाविनी है, पुत्र धूर्त है—ऐसा समझकर उचित (कार्य) करना चाहिए ॥ २.२८ ॥

वह मेरा प्रिय दूर देश में है। वर्षाऋतु आ गयी है, चित्त को चञ्चल कर रही है ॥ २ ३८ ॥

जिसने पांडववंश में जन्म धारण किया, सम्पत्ति का अर्जन करके उसे धर्म के लिए दिया; उसी युधिष्ठिर को संकट प्राप्त हुआ; दैव के लेख को कौन मिटा सकता है? ॥ २.१०१ ॥

कुमार (स्वामी कार्तिकेय) बालक है, साथ ही छः मुँहवाला है, मैं उपायहीन अकेली नारी हूँ और (तुम) भिखारी (बनकर) रात-दिन विष का भक्षण करते रहते हो, बताओ तो सही, हमारी क्या दशा होगी? ॥ २.१२०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस सुन्दरी के चरणों में अत्यधिक मदमत्त हाथी स्थित है तथा कटाक्ष में तीक्ष्ण बाण धरे हुए हैं, इसकी भुजाएँ पाश हैं, भौंहें धनुष के समान हैं,--अरे! यह सुन्दरी तो कामदेव रूपी राजा की सेना है ॥ २.१२६ ॥

उसी व्यक्ति ने जन्म लिया है, वही व्यक्ति गुणवान् है जो हँसते हुए दूसरे का उपकार करता है और वह जो परोपकार के विरुद्ध है उसकी माँ बाँझ क्यों न रही? ॥ २.१४९ ॥

योद्धा लोग एकदम सुसज्जित हो रहे हैं, उस समय रणवाद्य गर्जन कर रहे हैं, रोष के कारण शरीर से रक्त हुए (लाल हुए) योद्धाओं के द्वारा भीषण हाँक दी जा रही है; दौड़कर, आकर, खड्ग पाकर, दैत्य चल रहे हैं; तथा वीरों के पैर के कारण पृथ्वीतल (पाताल) में शेषनाग काँप रहा है ॥ २.१५९ ॥

चञ्चल कमल-पत्र के समान नेत्रवाली, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान मुख-वाली, मदमत्त हाथी के समान मंथर गतिवाली रमणी किस सुकृत फल के कारण ब्रह्मा ने बनायी? ॥ २.१६८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५

अपभ्रंशमुक्तकसंग्रहः

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण ।
ताण गणन्तिएँ अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥ १ ॥
सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संकाणेइ खलाइं ॥ २ ॥
जो गुण गोवइ अप्पणा पयदा करइ परस्सु ।
तसु हउँ कलि-जुगि दुल्लहो बलि किज्जउँ सुअणस्सु ॥ ३ ॥
अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअलु तेवँ ।
जो पुणु अग्गि सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ ॥ ४ ॥
जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥ ५ ॥
भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु ॥ ६ ॥
वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड त्ति ॥ ७ ॥
एक्कहिं अक्खिहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्डत्थलें सरउ ।
अङ्गिहिं गिम्ह सुहच्छीतिल वणि मग्गसिरु,
तहें मुद्धहें मुह-पङ्कइ आवासिउ सिसिर ॥ ८ ॥
जइ पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ ।
विहलिअ-जण-अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ ॥ ९ ॥
मुद्धि निहालहि गयण-यलु कइ जण जोण्ह करन्ति ॥ १० ॥
अम्बणु लाइवि जे गया परिअ पराया के वि ।
अवस न सुअहिं सुहच्छिअहिं जिवँ अम्हइँ तिवँ ते वि ॥ ११ ॥
महु कन्तहों बे दोसडा हेल्लि म जङ्खहि आलु ।
देन्तहों हउँ पर उव्वरिअ जुज्झन्तहों करवालु ॥ १२ ॥
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥ १३ ॥
बप्पीहा पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तुइ जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस ॥१४॥
बलि–अब्भत्थणि महु-महणु लहुईहूआ सोइ ।
जइ इच्छहु वड्डत्तणउँ देहु म मग्गहु कोइ ॥१५॥
सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहों मलि कीसु ।
जसु दइवेण वि मुण्डियउँ जसु खल्लिहडउँ सीसु ॥१६॥
पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण । १७॥
जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु ।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गें पइसीसु ॥१८॥
विप्पिअ-आरउ जइ वि पिउ तो वि तं आणहि अज्जु ।
अग्गिण दड्ढा जइ वि घरु तो तें अग्गि कज्जु ॥१९॥

संस्कृत अनुवाद

ये मम दत्ताः दिवसाः दयितेन प्रवसता ।
तान् गणयन्त्याः अङ्गुलयः जर्जरिताः नखेन ॥ १ ॥
सागरोपरि तृणानि धरति तले क्षिपति रत्नानि ।
स्वामी सुभृत्यमपि परिहरति सम्मानयति खलान् ॥ २ ॥
यः गुणान् गोपयत्यात्मीयान् प्रकटान् करोति परस्य ।
तस्याहं कलियुगे दुर्लभस्य बलिं करोमि सुजनस्य ॥ ३ ॥
अग्निनोष्णं भवति जगत् वातेन शीतलं तथा ।
यः पुनः अग्निना शीतल तस्योष्णत्व कथम् ॥ ४ ॥
यथा यथा वक्रिमाणं लोचनयोः नितरां श्यामला शिक्षते ।
तथा तथा मन्मथः निजकशरान् खरप्रस्तरे तीक्ष्णयति ॥ ५ ॥
भव्यं भूतं यन्मारितो भगिनि ! अस्मदीयः कान्तः ।
अलज्जिष्यम् वयस्याभ्यः यदि भग्नः गृहमैष्यत् ॥ ६ ॥
वायसमुड्डापयन्त्याः प्रियो दृष्टः सहसेति ।
अर्धानि वलयानि मह्यां गतान्यर्धानि स्फुटितानि तटिति ॥ ७ ॥
एकस्मिन्नक्षिण श्रावणः अन्यस्मिन् भाद्रपदः,
माधवः (माघः) महीतलस्रस्तरे गण्डस्थले शरत् ।
अङ्गेषु ग्रीष्मः सुखासिकातिलवने मार्गशीर्षः,
तस्याः मुग्धायाः मुखपङ्कजे आवासितः शिशिरः ॥ ८ ॥
यदि पृच्छथ गृहाणि महान्ति तन्महान्ति गृहाण्यमूनि ।
विह्वलितजनाभ्युद्धरणं कान्तं कुटीरके पश्य ॥ ९ ॥
वयं स्तोकाः रिपवः बहवः कातराः एवं भणन्ति ।
मुग्धे निभालय गगनतलं कति जनाः ज्योत्स्नां कुर्वन्ति ॥ १० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अम्लत्वं लागयित्वा ये गताः पथिकाः परकीयाः केऽपि ।
अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायां यथा वयं तथा तेऽपि ॥ ११ ॥
मम कान्तस्य द्वौ दोषौ सखि ! मा पिधेहि अलीकम् ।
ददतोऽहं परमुर्वरिता युध्यमानस्य करवालः ॥ १२ ॥
यदि भग्नाः परकीयाः तत् सखि ! मम प्रियेण ।
अथ भग्नाः अस्मदीयाः तत्तेन मारितेन ॥ १३ ॥
चातक ! प्रियः प्रियः (पिबामि पिबामि) भणित्वा कियद् रोदिषि हताश !
तव जले, मम पुनर्वल्लभे, द्वयोरपि न पूरिताशा ॥ १४ ॥
वल्यभ्यर्थने मधुमथनः लघुकीभूतः सोऽपि ।
यदीच्छथ महत्त्वं दत्त, मा मार्गयत कमपि ॥ १५ ॥
सतो भोगान् यः परिहरति तस्य कान्तस्य बलिं क्रिये ।
तस्य दैवेनैव मुण्डितं यस्य खल्वाटं शीर्षम् ॥ १६ ॥
पुत्रेण जातेन को गुणोऽवगुणः कः मृतेन ।
यत्पैतृकी भूमिः आक्रम्यतेऽपरेण ॥ १७ ॥
यदि कथञ्चित् प्राप्स्यामि प्रियमकृतं कौतुकं करिष्यामि ।
पानीयं नवके शरावे यथा सर्वाङ्गेण प्रवेक्ष्यामि ॥ १८ ॥
विप्रियकारकः यद्यपि प्रियः तदपि तमानयाद्य ।
अग्निना दग्धं यद्यपि गृहं तदपि तेनाग्निना कार्यम् ॥ १९ ॥

हिन्दी अनुवाद

प्रवास जाते हुए मेरे प्रियतम ने मुझे जिन दिनों को (आने के लिए) दिया था, उन्हें गिनते हुए नखों से मेरी अंगुलियाँ जर्जरित हो गयीं ॥ १ ॥

(जैसे) सागर ऊपर तृणों को धारण करता है तथा रत्नों को तल में डाल देता (रखता) है (उसी प्रकार) मालिक अच्छे भृत्य का तो त्याग कर देता है (परन्तु) दुष्टों का सम्मान करता है ॥ २ ॥

जो अपने गुणों को छिपाता है (परन्तु) दूसरों के गुणों को प्रकट करता है, कलियुग में दुर्लभ उस सुजन पर मैं बलि हो जाता हूँ ॥ ३ ॥

अग्नि से (यह) संसार उष्ण होता है तथा वायु से शीतल होता है, परन्तु जो अग्नि से (भी) शीतल होता हो उसके लिए उष्णता कैसी ? ॥ ४ ॥

श्यामला जैसे-जैसे अपने नयनों में बाँकपन लाना सीखती है, वैसे-वैसे कामदेव अपने बाणों को खर-पत्थर पर तीक्ष्ण करता है ॥ ५ ॥

हे बहन ! (यह) अच्छा (ही) हुआ कि मेरा पति (युद्ध में) मार डाला गया । (क्योंकि) यदि भग्न (भाग कर) होकर घर आता तो मैं सखियों से लजवायी जाती ॥ ६ ॥

कौआ उड़ाती हुई नायिका ने सहसा प्रियतम को देख लिया । (इसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बीच) उसके आधे कंगन (चूड़ियाँ) पृथ्वी पर गिर गये (तथा) आधे तड़-तड़ करके टूट गये ॥ ७ ॥

उस मुग्धा (नायिका) की एक आँख में श्रावण मास, दूसरी में भाद्रपद है। पृथ्वी पर स्थित उसके बिस्तर पर माधव (माघ) है, गण्डस्थल पर शरदृतु (विद्यमान) है, (उसके) शरीर में ग्रीष्मऋतु (परिलक्षित हो रहा) है, चैन के तिलवन में मार्गशीर्ष (का निवास) है तथा मुग्धा के मुखपङ्कज में शिशिरऋतु ने आवास बना लिया है ॥ ८ ॥

यदि बड़े घर पूछते हो तो वह बड़ा घर है। (परन्तु) विह्वलित जनों के उद्धार करनेवाले (मेरे) कान्त को कुटिया में देखो ॥ ९ ॥

हम लोग थोड़े हैं तथा शत्रु बहुत हैं, ऐसा कायर लोग कहते हैं। हे मुग्धे ! इस आकाश को देखो, कितने जन (तारागण) प्रकाश करते हैं ॥ १० ॥

ललक लगाकर जो पथिक परकीय (दूसरी स्त्रियों के प्रियतम) हो चले गये, अवश्य ही वे हम लोगों की तरह ही सुखासिका पर सुखपूर्वक नहीं सोते होंगे ॥ ११ ॥

हे सखि ! झूठ मत बोल, मेरे पति में दो दोष हैं--दान करते हुए मैं तथा युद्ध करते हुए करवाल बच गयी ॥ १२ ॥

हे सखि ! यदि शत्रु मारे गये हैं तो (उन्हें) मेरे प्रियतम से (प्रियतम ने ही मारा होगा) तथा यदि हमारे पक्ष के लोग भागे तो मेरे पति के मारे जाने पर (ही भागे होंगे) ॥ १३ ॥

हे चातक ! 'प्रिय-प्रिय' (पीऊँगा, पीऊँगा) कहकर हताश, कितने समय तक रोओगे ? जल-विषयक तुम्हारी तथा प्रिय-विषयक मेरी--दोनों की--आशा पूरी नहीं हुई ॥ १४ ॥

बलि से याचना करने पर वे विष्णु भगवान् भी छोटे हो गये थे। (अतः) यदि बड़प्पन चाहते हो तो दान दो, किसी से माँगो मत ॥ १५ ॥

(भोगों के) रहते हुए (भी) जो भोगों को छोड़ देता है, उस प्रियतम के प्रति मैं बलि जाती हूँ। जिसका शिर खल्वाट है उसे तो भाग्य ने ही मूँड़ (मुण्डित कर) दिया है ॥ १६ ॥

यदि पैतृक भूमि दूसरों के द्वारा दबा ली जाती है तो उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या गुण (लाभ) और मरने से क्या अवगुण (हानि) ॥ १७ ॥

यदि किसी प्रकार प्रिय को पा जाऊँगी तो न किया हुआ (अपूर्व) कौतुक करूँगी। जैसे नये शराव (कसोरे) में जल प्रविष्ट हो जाता है (वैसे ही) सर्वाङ्ग रूप से उस (प्रिय) में प्रविष्ट हो जाऊँगी ॥ १८ ॥

प्रियतम यद्यपि अप्रिय कार्य करनेवाले हैं फिर भी उसे आज ही लाओ। यद्यपि अग्नि से घर जल गया है फिर भी उस अग्नि की आवश्यकता होती ही है ॥ १९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६

सन्देशरासकम्

(क)

जइ अत्थि णई गंगा तियलोए णिच्च-पयडिय-पहावा।
वच्चइ सायर-समुहा ता सेस-सरी म वच्चन्तु ॥१॥
जइ सरवरम्मि विमले सूरे उइयम्मि विअसिआ नलिणी।
ता किं वाडि-विलग्गा मा विअसउ तुंबिणी कह वि ॥२॥
जइ भरहभावछन्दे णच्चइ णवरंग-चंगिमा तरुणी।
ता किं गाम-गहिल्ली ताली-सद्दे ण णच्चेइ ॥३॥
जइ बहुल-दुद्धे संमीलिया य उल्ललइ तण्दुला खीरी।
ता कण-कुक्कसर्साहिआ रब्बडिया मा दडब्बडउ ॥४॥
जा जस्स कव्वसत्ती सा तेण अलज्जिरेण भणियव्वा।
जइ चउमुहेण भणियं ता सस-कई मा भणिज्जन्तु ॥५॥

(ख)

तवण-तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि बखाणिअइ,
मूलथाणु सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।
तिहँ हुन्तउ हउं इक्किण लेहउ पेसियउ,
खम्भाइत्तई वच्चउँ पहु-आएसियउ ॥१॥
एय वयण अयन्निवि सिन्धुब्भव-वयणि,
ससिउ सासु दीहुन्हउ सलिलब्भव-नयणि।
तोडि करंगुलि करुण सगग्गिर गिर पसरु,
जालन्धरि समीरिण मुद्ध थरहरिअ चिरु ॥२॥
रुइवि खणद्धउ फुसवि नयत पुण वज्जरिउ,
खम्भाइत्तह णामि पहिय तणु जज्जरिउ।
तह महु अच्छइ णाहु विरह-उल्लावयरु,
अहिअ-कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु ॥३॥
पाउ मोडिवि निमिसिद्दु पहिय जइ दय करि,
कहउं किम्पि सन्देसउ पिय तुच्छक्खरिहि।
पहिअ भणइ कणयङ्गि कहह किं रुन्नयण,
खिज्जन्ति णिरु दीसहि उव्विन्नमिय हयण ॥४॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जसु णिग्गमि रेणुक्करडि किअ ण विरह-दवेण ।
किव दिज्जइ सन्नेहडउ तसु निट्ठुरय मणेण ॥५॥
जसु पवसन्त ण पवसिआ मुहअ त्रिओइ ण जसु ।
लज्जिज्जजउ सन्देसडउ दिन्ती पहिय पियासु ॥६॥
लज्जिवि पथिअ जइ रहउ न धरणउ जाइ ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय कर लेविण मण्णाइ ॥७॥
तुह विरह-पहर-संचूरिआइ विहडन्ति जं न अंगाइं ।
तं अज्ज कल्ल-संघडउसहे णाह तग्गन्ति ॥८॥

संस्कृत अनुवाद

(क)

यद्यस्ति नवीं गंगा त्रिलोके नित्यप्रकटितप्रभावा ।
व्रजति सागरसम्मुख तत् शेषसरितः मा व्रजन्तु ॥१॥
यदि सरोवरे विमले सूर्ये उदिते विकसिता नलिनी ।
तत् किं वृतिविलग्ना मा विकसतु *तुम्बिनी (अलाबु) कथमपि ॥२॥
यदि भरतभावछन्दसि नृत्यति नवरंगचंगिमा (लीलावती) तरुणी ।
तत्किं*ग्रामगर्दभिल्ली तालीशब्दे न नर्तयति ॥३॥
यदि बहुलदुग्धे सम्मीलिताश्च उल्लसन्ति तण्डुलाः क्षीरिणः ।
तत्कणतुषसहिता *रब्बडिका मा *वडबड़ायताम् ॥४॥
या यस्य काव्यशक्तिः सा* अलज्जिरेण भणितव्या ।
यदि चतुर्मुखेण भणितं तच् शेषकविभिः मा भण्यन्ताम् ॥५॥

(ख)

तपनतीर्थं चतुर्दिक्षु मृगाक्षि*व्याख्यानीयते (व्याख्यायते) ।
मूलस्थानं सुप्रसिद्धकं मीतले ज्ञायते ॥
तस्मात् भावतकः अहमेकेन लेखः प्रेषितः ।
स्कम्भादित्ये व्रजामि प्रभ्वादेशिकः ॥१॥
एतद्वचनमाकर्ण्य सिन्धूद्भववदनी (वदना),
श्वसित्वा श्वासं दीर्घोष्णकं सलिलोद्भवनयनी (नयना) ।
त्रोटयित्वा कराङ्गुलिं करुणां सगद्गदं गिरं प्रसृता,
जालन्धरी-(कदली) समीरेण मुग्धा थरथरिता (कम्पिता) चिरम् ॥२॥
रुदित्वा क्षणार्द्धकं स्पृष्ट्वा नयणं पुनः उक्तवती,
स्कम्भादित्यस्य नाम्ना पथिकतनुः जर्जरिता ।
तत्र मम आक्षीयति (आस्ते) नाथः विरह आह्लादकरः ।
अधिककालं गतकः न आगतः *निर्दयालः (निर्दयालुः) ॥३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पादौ मोटयित्वा नमयित्वा निमिषार्द्धकं पथिक यदि दयां कुः,
कथयामि किमपि सन्देशकं प्रियं तुच्छाक्षरैः ।
पथिकः भणति कनकाङ्गि ! कथय किं रुदितेन,
क्षीयमाना नीरं दृश्यसे उद्विग्नमृगहायना ॥४॥
यस्य निर्गमे*रेणूत्करटिका (रेणुराशिः) कृता न विरहदवेन,
कथमिव दीयते सन्देशटकः तस्य (तस्यै) निष्ठुरकमनसा ॥५॥
यस्य प्रवसति न प्रोषिता मृतका वियोगे न यस्य ।
लज्जे संदेशकं ददती पथिकप्रियस्य (प्रियाय) ॥६॥
लज्जित्वा पथिक ! यदि रमे (भवामि) हृदयं न घरणकं याति ।
गाथा* पठ्यस्व (पठ्यताम्) एका प्रियं कृत्वा नीतं मानयित्वा (प्रसाद्य) ॥७॥
तव विरहप्रहारसंचूर्णितानि विघटन्ते यत्र अङ्गानि ।
तदद्यकल्यसङ्घाटनोत्साहे नाथ ! स्थगन्ति (बध्यन्ते) ॥८॥

हिन्दी अनुवाद

यदि त्रिलोक में नित्य प्रकटित प्रभाववाली गंगा नदी सागर में जाती है, तो दूसरी नदियाँ रहें, न रहें ॥ १ ॥

यदि सूर्य के उदित होने पर स्वच्छ सरोवर में नलिनी विकसित होती है, तो किसी प्रकार वन में तुम्बिनी (लौकी) विकसित हो, न हो ॥ २ ॥

यदि भरतमुनिप्रणीत (ताल-मात्रा में) नये रंगवाली सुन्दरी तरुणी नृत्य करती है, तो ग्रामीण महिलाएँ ताली के शब्द के साथ नाचें, न नाचें ॥ ३ ॥

यदि अधिक दूध में मिलाये गये दूधवाले तण्डुल उबाल खाते हैं तो कण और भूसे-सहित रबड़ी (पात्र में) डबडबाये, न डबडबाये ॥ ४ ॥

जो जिसकी काव्यशक्ति हो उसे लज्जाविहीन (स्पष्ट) होकर कहना चाहिए । यदि ब्रह्मा ने ही कहा है, तो उन भणितियों को शेष कवि कहें, न कहें ॥ ५ ॥

हे मृगनयनी ! चारों दिशाओं में तपनतीर्थ की व्याख्या की जाती है, उसे ही सुप्रसिद्ध 'मुल्तान' ऐसा पृथ्वी पर जाना जाता है । अतः मैंने एक आदमी के द्वारा आप का लेख खम्भात भेजवा दिया है । (अब) प्रभु के आदेश का पालन करनेवाला मैं जाता हूँ ॥ १ ॥

ऐसी बात सुनकर उस चन्द्रवदना कमलनयनी ने लम्बे-लम्बे गरम श्वास लेकर कराङ्गुलियों को तोड़कर (मरोड़कर) गद्गद कण्ठ से करुण वचन कहे तथा कदली वृक्ष की वायु से मुग्ध होकर बड़ी देर तक वह काँपी ॥ २ ॥

थोड़ी देर रोकर, अपनी आँखों को पोंछकर उसने फिर कहा कि हे पथिक ! खम्भात के नाम से ही मेरा शरीर जर्जर हो गया है । वहाँ मेरा प्रिय, जो विरह को शान्त करनेवाला है, अधिक दिन हुए, गया, किन्तु वह निर्दयी लौटकर नहीं आया ॥ ३ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हे पथिक ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, यदि थोड़ी देर दया करो तो मैं अपने टूटे-फूटे अक्षरों में कुछ प्रिय सन्देश कहूँ। पथिक कहता है कि हे सुवर्ण की भाँति अङ्गोंवाली ! उद्विग्न मृगछौने की तरह (तुम) क्षीण होती हुई आँसू दिखा रही हो। भला कहो, रोने से क्या लाभ ? ॥ ४ ॥

(वह कहती है) जिसके चले जाने पर मैं विरह की आग से धूल की ढेर न बन गयी, निष्ठुर मन से उसके लिए सन्देश भेजने से क्या ! ॥ ५ ॥

जिसके प्रवास करने पर मैंने स्वयं प्रवास नहीं किया और जिसके विरह में मैं मर न गयी, हे पथिक ! उस प्रिय के लिए सन्देश देती हुई मैं लज्जा का अनुभव करती हूँ ॥ ६ ॥

हे पथिक ! लजाकर यदि मैं चुप बैठ जाऊँ तो मैं हृदय ही धारण नहीं कर सकती। (अतः) एक गाथा (वहाँ जाकर) पढ़ दीजिये और उन्हें प्रसन्न कर मना लीजिये (अनुकूल कर दीजिये) ॥ ७ ॥

तुम्हारे विरह के प्रहार से चूर-चूर होकर जो ये अङ्ग विघटित नहीं होते, हे नाथ ! वे आजकल (आप से) मिलने के उत्साह में टँगे हुए हैं ॥ ८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कीर्तिलता

तिहुवन-खेत्तहि काञि तसु कित्तिवल्लि पसरेइ ।
अक्खर-खम्भारम्मञो मञ्चो बन्धि न देइ ॥ १॥
ते मोञे भलओ निरुढि गये, जइसओ कव्व ।
खल खेलछल दूसिहइ, सुअण पसंसइ सव्व ॥ २ ॥
सुअणपसंसइ कव्व मझु, दुज्जन बोलइ मन्द ।
अवसओ विसहर विस वमइ, अमिञ पिमुक्कइ चन्द ॥ ३ ॥
सज्जन चिन्तहि मनहि मने, मित्तकारिअ सब कोये ।
भेअक हन्ता मुज्झु जई, दुज्जन वैरि मा होए ॥ ४ ॥
बालचन्द विज्जावइभासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जनहासा ।
ओ परमेसर हरसिर सोहइ, ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ ॥ ५ ॥
का परबोधञो कमण यणावञो, किमि नीरस मने रस लए लावञो ।
जइ सुरसा होसई मझु मासा, जो बुज्झिह, सो करिह पसंसा ॥ ६ ॥
महुअर बुज्झइ कुसुमरस कव्वकलाउ छइल्ल ।
सज्जन पर उवआरमन दुज्जन नाम मइल्ल ॥ ७ ॥
सक्कय वाणी बहुअ (न) भावइ, पाउँअ रस को मम्म न पावइ ।
देसिलवअना सबजनमिट्ठा, तँ तइसन जम्पञो अवहट्ठा ॥ ८ ॥
भृङ्गी पुच्छइ, भिङ्ग सुन, की संसारहि सार ।
मानिनि जीवन मान सञो, वीर पुरुष अवतार ॥ ९ ॥
वीर पुरुष कइ जम्मिअइ, नाह न जम्पइ नाम ।
जइ उँक्षाहे फुर कहसि, हञो आकण्डन काम ॥ १० ॥
कित्तिलद्ध सूर सङ्गाम, धम्म पराअण हिअअ, विपअकंम
न हु दीन जम्पइ । सहज भाव सानन्द सुअण भुंजइ
सासु सम्पइ । रहसें द्रव्य दये विस्सरइ ।
सत्तु सरुअ सरीर ।
एत्ते लक्ख लक्खिअइ, पुरुष पसंसञो वीर ॥ १० ॥
पुरिसत्तणेन पुरिसओ, नहि, पुरिसओ जम्म मत्तेन ।
जलदादेन हु जलओ, नहि, जलओ पुञ्जिओ धूमो ॥ ११ ॥
सो पुरिसओ, जसु मानो, सो पुरिसओ जस्स अञ्जने सत्ति ।
इअरो पुरिसाआरो, पुच्छविहूना पसू होई ॥ १२ ॥
पुरिम कहानी हञो (कहञो) जसु पत्थावे पुण्डु ।
सुक्ख सुसोमन, सुभवअण देवहा जाइ सपुन्न ॥ १३ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पुरुस हुहउँ वलिराए जासु कर कन्ह पसारिअ ।
पुरिस हुँअउँ रघुननअ जेन बले रावण मारिअ ॥१४॥
पुरिस भगीरथ हुवउँ जेन निअकुल उद्धरउँ ।
परसुराम अरु पुरिस जेन खत्तिअ खअ करिअउँ ।१५॥
अरु पुरिस पसंसञो रायगुरुकित्तिसिंह गएणेस सुअ ।
जें सत्त समर सम्मद्दि कहु बप्प वैर उद्धरिअ धुअ ॥१६॥
रायचरित्त रसाल एहु णाह न राखहिं गोइ ।
कवन वंस को राय सो कित्तिसिंह को होइ ॥१७॥
तक्ककक्कस वेअ पढ तिन्नि दाने
दलिअ दारिद्द परमब्रह्म परमत्थ बुज्झइ । वित्ते
बटोरइ, कित्ति सत्ते सत्तु सङ्गम जुज्झइ ।
ओइनीवंस पसिद्ध जग को तसु करइ ण सेव ।
दुहु एक्कत्थ न पाविअइ भूअवे अरु भूदेव ॥१८॥

संस्कृत अनुवाद

दोहा—त्रिभुवनक्षेत्रे कथं तस्य कीर्तिवल्लिः प्रसरेत् ।
अक्षरस्तम्भारम्भः मञ्चं बद्धुं न ददाति ॥ १ ॥
तन्मम भद्र निर्व्यूढं गतं यादृशं तादृशं काव्यम् ।
खलः खेलच्छलेन दोक्ष्यति सुजनः प्रशंसति सर्वम् ॥ २ ॥
सुजनः प्रशंसति काव्यं मम दुर्जनो वलति मन्दम् ।
अवश्यं विषधरः विषं वमति अमृतं विमुञ्चति चन्द्रः ॥ ३ ॥
सज्जनश्चिन्तयति मनसि मनसि मित्रं कृत्वा सर्वकान् ।
भेदकः हन्ता मम यदि दुर्जनः, वैरी न भवति ॥ ४ ॥
बालचन्द्रः विद्यापतिभाषा द्वयोः न लगति दुर्जनहासः ।
स परमेश्वरे हरशिरसि शोभते, इयं नित्यं नागरमनः मुह्यति ॥ ५ ॥
कं पुनः प्रबोधयामि कं ज्ञापयामि, कथं नीरसे मनसि रसं लाभि ।
यदि सुरसा अभविष्यत् मम भाषा, योऽभोत्स्यत् स अकरिष्यत् प्रशंसाम् ॥ ६ ॥
मधुकरः बुध्यते कुसुमरसं काव्यकलां विदग्धः ।
सज्जनः परोपकारमनाः दुर्जनो नाम मलिनः ॥ ७ ॥
संस्कृतवाणी बहुभ्यो न भाति, प्राकृतं रसममं न प्राप्नोति ।
देशीवचनं सर्वजनमिष्टं तत्तादृशं जल्पामि अवहट्टम् ॥ ८ ॥
भृङ्गी पृच्छति भृङ्ग ! शृणु, कः संसारे सारः ।
मानिनि ! जीवनं मानसमं वीरपुरुषावतारः ॥ ९ ॥
वीरपुरुषः क्वचिज्जायते नाथ ! न जल्पसि नाम ।
यद्युत्साहेन स्फुटं कथयसि अहमाकर्णनकाम ॥ १० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कीर्तिलब्धः, शूरः संग्रामे, धर्मपरायणहृदयः विपत्कर्मण्यपि न खलु दीनं जल्पति। सहजभावः, सानन्दः सुजनः भुनक्ति यस्य सम्पत्तिम्। रहसि द्रव्यं दत्त्वा विस्मरति। सत्त्वः सरूपशरीरः।

एतैः लक्षणैः लक्ष्यते पुरुषं प्रशंसामि वीरम् ॥ १० ॥

जदो—पुरुषत्वेन पुरुषः नहि पुरुषः जन्ममात्रेण,
जलदानेन खलु जलदः न हि जलदः पुञ्जितो धूमः ॥ ११ ॥
स पुरुषः यस्य मानं स पुरुषः यस्यार्जने शक्तिः।
इतरः पुरुषाकारः पुच्छविहीनः पशुः भवति ॥ १२ ॥
पुरुषस्य कथामहं (कथयामि) यस्य प्रस्तावेन पुण्यम्।
सुखं सुभोजनं शुभवचनं देवस्य (लोकस्य) याति सपुण्यः ॥ १३ ॥
पुरुषोऽभवत् बलिराजः यस्य (समीपे) करः कृष्णः प्रसारितः।
पुरुषोऽभवत् रघुतनयः येन बलेन रावणो मारितः ॥ १४ ॥
पुरुषो भगीरथोऽभवत् येन निजकुलमुद्धृतम्।
परशुरामश्चपुरुषः येन क्षत्रियक्षयः कृतः ॥ १५ ॥
तथा पुरुषं प्रशंसामि राजगुरुं कीर्त्तिसिंहं गणेश्वरस्य सुतम्।
येन शत्रून् समरे सम्मर्द्य पितुर्वैरमुद्धृतं ध्रुवम् ॥ १६ ॥
राज्ञश्चरित्रं रसालं एतत् नाथ! न रक्षतु गुप्तम्।
कस्य वंशस्य राजा स कीर्त्तिसिंहः को भवति ॥ १७ ॥
तर्ककर्कशवेदपाठी त्रिभिः दानै दलितं दारिद्रयम् परम ब्रह्म परमार्थं बुध्यति,
वित्तेन सञ्चिनोति कीर्त्तिं, सत्त्वेन सत्त्वं संग्रामे युध्यते।
ओइनीवंशः प्रसिद्धः जगति कस्तस्य करोति न सेवाम्।
द्वौ एकत्र न प्राप्येते भुजपतिश्च भूदेवः ॥ १८ ॥

हिन्दी अनुवाद

दोहा—यदि अक्षररूपी स्तम्भ आरम्भ करके मंच न बाँध दिया जाय तो त्रिभुवन क्षेत्र में लतारूपी उनकी कीर्ति कैसे फैले ॥१

जिस किसी प्रकार मेरा काव्य ख्याति प्राप्त कर ले यही मेरे लिए ठीक है। दुष्ट स्वभाव-वाले लोग खेल के छल से दोष निकालेंगे परन्तु सज्जन लोग सबका प्रशंसा करेंगे ॥२॥

सज्जन लोग मेरे काव्य की प्रशंसा करते हैं किन्तु दुर्जन उसे मन्द बताते हैं, (क्योंकि) सर्प निश्चय ही विष-वमन करता है तथा चन्द्रमा अमृत ही छोड़ता है ॥३॥

सज्जन सबको मित्र समझकर मन-ही-मन सोचते हैं—'यदि दुर्जन मुझे काट डाले या मार डाले तो भी वैरी नहीं है' ॥४॥

बालचन्द्र और विद्यापति की भाषा इन दोनों को दुर्जनों की हँसी नहीं लगती है, (क्योंकि) वह परमेश्वर महादेव के शिर पर सुशोभित होता है और यह नित्य नागरिकों का मन मुग्ध करती है ॥५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मैं प्रबोध किस प्रकार करूँ, कैसे जनाऊँ ? इस नीरस मन में किस प्रकार रस लेकर भर दूं ? यदि मेरी भाषा सुरस होगी, तो जो समझेगा वही प्रशंसा करेगा ।। ६ ।।

भ्रमर पुष्परस को समझता है (रस के मूल्य को समझता है), विदग्ध जन ही काव्य-कला को समझ सकते हैं। सज्जनों का मन परोपकार में लीन रहता है, परन्तु दुर्जनों का मन मलिन होता है। संस्कृतवाणी बहुतों को अच्छी लगती है, प्राकृत भाषा रस का मर्म नहीं पाती । देशी भाषा सब लोगों को मीठी लगती है, इसीलिए अवहट्ठ-भाषा में (काव्य) कहता हूँ ।। ७-८ ।।

भृङ्गी पूछती है—'हे भृङ्ग ! सुनो; संसार में क्या सार वस्तु है ?'

'हे मानिनि ! मान सहित जीवन तथा वीर पुरुष का अवतार' ।। ९ ।।

'हे नाथ ! (यदि) वीर पुरुष का कहीं जन्म हुआ है तो नाम (क्यों) नहीं बताते हैं। यदि उत्साहपूर्वक स्पष्ट रूप से कहो तो मैं सुनना चाहती हूँ ।। १० ।।

'लब्धकीर्त्ति, संग्राम में वीर, धर्मपरायणहृदय, विपत्ति कर्म में भी जो दीन वाणी न बोले, सहज भाव से आनन्दपूर्वक सुजन जिनकी सम्पत्ति का भोग करें, एकान्त में द्रव्य देकर (जो) भूल जाये और जिसका शरीर सुन्दर, बलवान् हो—इन लक्षणों से युक्त पुरुष को वीर समझ कर उसकी प्रशंसा करता हूँ ।। १० ।।

जदी पौरुष से ही पुरुष कहा जाता है, जन्ममात्र से कोई पुरुष नहीं होता है, (क्योंकि) जलदान करने के कारण ही जलद कहा जाता है न कि पुञ्जीभूत धूम के कारण जलद (कहा जाता है) ।। ११ ।।

वही पुरुष है जिसका मान है तथा वही पुरुष है जिसमें धनोपार्जन की शक्ति हो। इतर जन पुरुष के आकार में (रहनेवाले) पूंछहीन पशु हैं ।। ११ ।।

मैं उस पुरुष की कथा कहता हूँ जिसके प्रस्ताव से पुण्य हो, सुख हो, अच्छा भोजन मिले, शुभ वचन मिलें तथा देवलोक की प्राप्ति पुण्य के कारण हो ।। १३ ।।

राजा बलि पुरुष थे जिनके आगे कृष्ण ने हाथ फैलाया था। रघुपुत्र रामचन्द्रजी पुरुष थे जिन्होंने बल से रावण को मारा। पुरुष थे भगीरथ जिन्होंने अपने कुल का उद्धार किया तथा पुरुष थे परशुराम जिन्होंने क्षत्रियों का नाश कर दिया। एक और पुरुष गणेश्वर के पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ कीर्तिसिंह की प्रशंसा करता हूँ जिन्होंने समर में शत्रुओं का मान-मर्दन करके अपने पिता के वैर का बदला लिया ।। १४-१६ ।।

इस राजा का चरित्र बड़ा रोचक है। हे नाथ ! इसे गुप्त न रखें। वह राजा किस वंश का है ? कीर्त्तिसिंह कौन है ? ।। १७ ।।

तर्क में कर्कश वेदपाठी, तीन प्रकार के दान से दरिद्रता नाश करनेवाले, परमब्रह्म परमार्थ को (वे) जानते हैं, धन से कीर्ति का संचय करते हैं, बल से युद्ध में शत्रु से लड़नेवाले हैं।

ओइनीवंश जगत् में प्रसिद्ध है, कौन उसकी सेवा नहीं करता। भुजपति और भूदेव (ब्राह्मण) और कहीं एकत्र नहीं देखे जाते ।। १८ ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८

पउमचरिउ

पडमो संधि

वद्धमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय । रामकहा-णइ एह कमागय ॥ १ ॥
अक्खर-वास-जलोह-मणोहर । सु-अलङ्कार-छन्द-मच्छोहर ॥ २ ॥
दीह-समास पवाहावङ्किय । सक्कय-पायय-पुलिणालङ्किय ॥ ३ ॥
देसीभासा-उभय-तडुज्जल । कवि दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥ ४ ॥
अत्थ-वहल-कल्लोलाणिट्ठिय । आसासय-समतूह परिट्ठिय ॥ ५ ॥
एह रामकह-सरि सोहन्ती । गणहर-देवहिं दिट्ठ वहन्ती ॥ ६ ॥
पच्छइ इन्दभूह-आयरिएं । पुणु धम्मेण गुणालङ्करिएं ॥ ७ ॥
पुणु पहदें संसारारा‌एं । कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ॥ ८ ॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं । बुद्धिएं अवगाहिय कइराएं ॥ ९ ॥
पउमिणि-जणणि-गब्भ-संभूएं । मारुयएव-रूव-अणुराएं ॥ १० ॥
अइ-तणुएण पईहर-गत्ते । छिव्वर-णासें पविरल-दन्तें ॥ ११ ॥

(घत्ता)

णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह-कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जन्तएण थिर कित्ति विढप्पइ ॥ १२ ॥
बुहयण सयम्भु पइँ विण्णवइ । मइँ सरिसउ अण्णु णाहिं कुकइ ॥१॥
वायरणु कयावि ण जाणियउ । णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ॥२॥
णउ पच्चाहारहो तत्ति किय । णउ संधिहे उप्परि बुद्धि थिय ॥३॥
णउ णिसुअउ सत्त विहत्तियउ । छव्विहउ समास-पउत्तियउ ॥४॥
छक्कारय दस लयार ण सुय । वीसोवसग्ग पच्चय वहुय ॥५॥
ण वलावल धाउ णिवाय-गणु । णउ लिङ्गु उणाइ वक्कु वयणु ॥६॥
णउ णिसुणिउ पचच-महाय-कव्वु । णउ भरहु गेउ लक्खणु वि सव्वु ॥७॥
णउ वुज्झिउ पिङ्गल-पत्थारु । णउ भम्मह-दण्डि-अलङ्कारु ॥८॥
ववसाउ तो वि णउ परिहरहमि । वरि रड्डावद्धु कव्वु करमि ॥९॥
सामण्ण भास छुडु सावडउ । छुडु (छुड्ड) आगम-खुत्ति का वि घडउ ॥१०॥
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइँ । गामिल्ल मास-परिहरणाइँ ॥११॥
एहु सज्जण-लोयहो किउ विणउ । जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउं ॥१२॥
जइ एम विरूसइ को वि खलु । तहो तत्थुत्थलिउ लेउ छलु ॥१३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(घत्ता)

पिसुण किं अब्भत्थिएण जसु को वि ण रुच्चइ ।
किं छण-चन्दु महाहेग कम्पन्तु वि मुच्चइ ॥१४॥

अवहत्थेवि खलयणु णिरवसे सु । पहिलउ णिहे वण्णामि मगह देसु ॥१॥
जहिं पक्क-कलमे कमलिणि णिसण्ण । अलहन्त तरणि थेरव विसण्ण ॥२॥
जहिं सुय-पन्तिउ सुपरिट्ठियाउ । णं वणसिरि-मरगय-कण्ठियाउ ॥३॥
जहिं उच्छु-वणइँ पवणाहयाइँ । कम्पन्ति व पीलण-भय-गयाइँ ॥४॥
जहिं णन्दणवणइँ मणोहराइँ । णच्चन्ति व चल-पल्लव कराइँ ॥५॥
जहिं फाडिम-वयणइँ दाडियाइँ । णज्जन्ति ताइँ णं कह-मुहाइँ ॥६॥
जहिं महुयर-पन्तिउ सुन्दराउ । पुणु पन्थिय रस-सलिलइँ पियन्ति ॥७॥
जहिं दक्खा-मण्डव परियलन्ति । पुणु पन्थिय रस-सलिल पियन्ति ॥८॥

(घत्ता)

तहिं तं पट्टणु रायगिहु धण-कणय-समिद्धउ ।
णं पिहिविए णव-जोव्वणए सिरे सेहरु भाइद्धउ ॥२॥

संस्कृत अनुवाद

वर्द्धमान-मुख-कुहर-विनिर्गता । रामकथा-नद्येषा क्रमागता ॥ १ ॥
अक्षरवास-जलौघमनोहरा । सु-अलंकार-छन्द-मत्स्यभरा ॥ २ ॥
दीर्घसमासप्रवाहाङ्किता । संस्कृत-प्राकृत-पुलिनालङ्कृता ॥ ३ ॥
देशीभाषोभय-तटोज्ज्वला । किमपि दुष्कर-घन-शब्द-शिलातला ॥ ४ ॥
अर्थबहल-कल्लोलनिष्ठिता (निष्ठा) । आश्वासक-समतीर्थ-परिस्थिता ॥ ५ ॥
एषा रामकथा सरित् शोभमाना । गणधरदेवैः दृष्टा वहन्ती ॥ ६ ॥
पश्चाद् इन्द्रभूत्याचार्येण । पुनः धर्मेण गुणालङ्कृतेन ॥ ७ ॥
पुनः प्रभावेण संसाररागेण । कीर्तिधरेणाणुत्तरवादेन ॥ ८ ॥
पुनः रविसेनाचार्यप्रसादेन । बुध्यावगाहिता कविराजेन ॥ ९ ॥
पद्मिनीजननीगर्भसंभूतेन । मारुकदेवीरूपानुरागेण ॥ १० ॥
अतितनुकेन प्रतिसरगात्रेण । चिपिटनासेन प्रविरलदन्तेन ॥ ११ ॥

(घत्ता)

निर्मल-पुण्य-पवित्र-कथा-कीर्त्तनमारभे ।
येन सम्यग्ज्ञायमानेन स्थिरा कीर्त्तिः विवर्द्धते ॥ १२ ॥
बुधजनान् स्वयम्भूः प्रणीय विज्ञापयति । मया सदृशकोऽन्यो नास्ति कुकविः ॥१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्याकरणं कदापि न जानामि । नापि वृत्ति सूत्रं *व्याख्यानयामि (व्याचष्टे)॥२॥
न च प्रत्याहारस्य ततिः कृता । न च सन्धेः उपरि बुद्धिः स्थिता । ३ ॥
न च निशाम्यामि सप्तविभक्तिकं । षड्विधकं समासप्रवृत्तिकम् ॥ ४ ॥
षट्कारकाणि दश लकाराः न श्रुताः । विंशोपसर्गाः प्रत्यया बहुकाः ॥ ५ ॥
न बलाबलं धातोः निपातगणः । न च लिङ्गमुणादिः वक्रं वचनम् ॥ ६ ॥
नापि निःश्रुतानि पञ्चमहाकाव्यानि । न च भरतस्य गेयं लक्षणमपि सर्वम् ॥ ७ ॥
न च बुद्ध्ये पिङ्गलप्रस्तारं । न च भामह-दण्डि-अलङ्कारान् ॥ ८ ॥
व्यवसायं तदपि न च परिहरामि । वरं रड्डाबद्धं काव्यं करोमि ॥ ९ ॥
सामान्यभाषायां शीघ्रं (छुडु) सायासः । क्षुद्रागमयुक्ति कामपि घटयामि ॥ १० ॥
क्षुद्राणि भवन्तु सुभाषितवचनानि । ग्रामीणभाषा परिहरणानि(परिहीनानि)॥ ११॥
एतत् सज्जन-लोकस्य कृतः विनयः । यदबोधः प्रदर्शित आत्मनः ॥१२॥
यद्येवमपि विशेषयति कोऽपि खलः । तस्य हस्तोच्छ्रितकं गृह्णामि छलम् ॥१३॥

(घत्ता)

पिशुनेन किमभ्यर्थितेन यस्मै कोऽपि न रोचते ।
किं क्षणचन्द्रं महाग्रहेण कम्पमानमपि मुञ्चति ? ॥ १४ ॥
(अपवार्य)अपहस्तार्यापि खलजनं निरवशेषं । प्रथमं निर्वर्णयामि मगधदेशम् ॥१॥
यत्र पक्वकलमे कमलिनी निषण्णा । अलभमाना तारुण्यं स्थविर इव विषण्णा ॥२॥
यत्र शुकपङ्क्तिः सुपरिस्थिता । ननु, वनश्रीर्मरकतकण्ठिता ॥ ३ ॥
यत्रेक्षुवनानि पवनाहतानि । कम्पन्ते इव पीडन-भय-गतानि ॥ ४ ॥
यत्र नन्दनवनानि मनोहराणि । नृत्यन्तीव चल-पल्लव-कराणि ॥ ५ ॥
यत्र स्फटितवदनानि दाडिमानि । जायन्ते तानि ननु, कपिमुखानि ॥ ६ ॥
यत्र मधुकरपङ्क्तिः सुन्दरी । केतकीकेशररजो धूसरिता ॥ ७ ॥
यत्र द्राक्षामण्डपाः परिचलन्ति । पुनः पथिकान् रससलिलं पाययन्ति ॥ ८ ॥

(घत्ता)

तस्मिन् तत्पत्तनं राजगृहं, धनकनकसमृद्धकम् ।
ननु पृथिव्याः नवयौवनायाः शिरसि शेखरमाविद्धकम् ॥ ९ ॥

हिन्दी अनुवाद

यह रामकथारूपी नदी वर्द्धमान के मुखरूपी कुहर (पर्वत) से निकलकर क्रमशः परम्परा से आ रही है । यह अक्षर-विन्यास के जल-समूह से मनोहर, सुन्दर, अलङ्कार तथा छन्दरूपी मत्स्यों से परिपूर्ण एवं लम्बे समासरूपी प्रवाहों से अङ्कित है । यह संस्कृत एवं प्राकृतरूपी पुलिनों से अलंकृत देशी भाषारूपी दो तटों से उज्ज्वल है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसमें कहीं कठिन घनशब्दरूपी शिलातल हैं, कहीं यह अनेक अर्थरूपी तरंगों से युक्त है और कहीं आश्वासरूपी तीर्थों से प्रतिष्ठित है। बहती हुई एवं सुशोभित होती हुई इस रामकथारूपी नदी को गणधर देवों ने देखा। तत्पश्चात् इन्द्रभूति आचार्य ने, पुनः गुणों से अलंकृत धर्माचार्य ने, पुनः संसार से अत्यधिक प्रभावित अनुत्तरवादी कीर्तिधर ने देखा। तदनन्तर रविसेन आचार्य की प्रसन्नता से कविराज ने अपनी बुद्धि से (इसका) अवगाहन किया। कवि मरुदेवी के रूप के तुल्य पद्मिनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ। उसका शरीर अत्यन्त कृश एवं लम्बा था, नाक चिपटी और दांत विरल थे॥ १-११॥

(घत्ता)

निर्मल पुण्य से पवित्र बनी हुई कथा का कीर्तन प्रारम्भ कर रहा हूँ, जिसको भलीभांति जानने से स्थायी कीर्ति बढ़ती है॥ १२॥

पण्डितजनों से स्वयम्भू यह विज्ञापन कर रहे हैं कि मेरे समान कोई दूसरा कुकवि नहीं है। मैंने कभी भी व्याकरण नहीं जाना। वृत्ति और सूत्रों की व्याख्या भी मैंने नहीं की और न तो मैंने प्रत्याहारों का विवेचन ही किया हैं। सन्धियों के ऊपर मेरी बुद्धि स्थिर नहीं रही है। न तो मैंने सात प्रकार की विभक्तियों को ही सुना है और न तो छह प्रकारवाली समास-प्रक्रिया ही। छह कारक, दश लकार, बीस उपसर्ग तथा बहुत से प्रत्ययों को भी नहीं सुना। धातु वा बलाबल, निपात, गण, लिङ्ग, उणादि, वक्रोक्तियाँ और वचन भी मैंने नहीं सुने। पाँच महाकाव्यों को और भरत के सभी नाट्यलक्षणों को भी मैं नहीं सुन सका। न तो मैंने पिङ्गलशास्त्र के प्रस्तार को समझा और न ही भामह तथा दण्डी के अलङ्कारों को ही समझा। फिर भी मैं इस व्यवसाय (काव्य) को नहीं छोड़ पा रहा हूँ, प्रत्युत रड्डा (छन्दोबद्ध)–बद्ध काव्य की रचना कर रहा हूँ। मैं प्रयत्नपूर्वक, सामान्यभाषा में कुछ आगम-युक्ति को उपन्यस्त कर रहा हुँ और चाहता हुँ कि ग्रामीण भाषा से हीन मेरे ये वचन सुभाषित हों। सज्जन लोगों से मैंने यह विनय की है। मैं अपना अबोध प्रकट कर चुका हुँ। फिर भी यदि कोई दुष्ट जन (इस काव्य से) रुष्ट हो तो मैं उसके छल को हाथ जोड़कर स्वीकार करता हूँ॥ १-१३॥

(घत्ता)

उस खल की अभ्यर्थना करने से क्या लाभ है, जिसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। क्या राहु काँपते हुए पूर्णिमा के चन्द्रमा को छोड़ देता है?॥ १४॥

मैं समस्त खलजनों की उपेक्षा कर सबसे पहले उस मगध देश का वर्णन करता हूँ जहाँ पके हुए धानों पर बैठी हुई लक्ष्मी तारुण्य न पानेवाली खिन्न वृद्धा के समान दिखायी देती थी। जहाँ अच्छी तरह बैठी हुई शुकपङ्क्ति वन-लक्ष्मी के गले में मरकत-मणि के हार के समान प्रतीत हो रही है। जहाँ वायु से हिलाये गये ईख के खेत पीड़न

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के भय से काँपते हुए जान पड़ते थे। जहाँ मनोहर नन्दन-वन अपने चंचल पत्तोंरूपी हाथों से नाचते हुए-से लगते थे। जहाँ खुले हुए अनारों के मुख कपि के मुख की तरह जान पड़ते थे। जहाँ सुन्दर भौंरों की पंक्तियाँ हैं। जहाँ (लतागृह) पथिक को रसरूपी जल पिला रहे थे।

(धत्ता)

उस (मगध) देश में धन-धान्य और सुवर्ण से समृद्ध राजगृह नाम का नगर था, जो धरतीरूपी नवयुवती के सिर पर बँधे हुए मुकुट के समान सुशोभित होता था ॥ ९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पालि-व्याकरण

पालि की वर्णसंघटना—पालि की वर्णसङ्घटना का विचार तीन बातों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है—

१. पालि और संस्कृत की वर्णराशि की तुलना।

२. पालि की स्वर-सङ्घटना।

३. पालि की व्यञ्जन-सङ्घटना।

उपर्युक्त विभाजन को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण पालि-ध्वनिसमूहों को दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) स्वर-ध्वनि-समूह।

(२) व्यञ्जन-ध्वनि-समूह।

मोग्गलान सम्प्रदाय के अनुसार पालि में कुल ४३ वर्ण होते हैं। परन्तु कच्चायन-सम्प्रदाय के अनुसार पालि में कुल ४१ वर्ण होते हैं। इन ४३ या ४१ वर्णों में क्रमशः १०, ८ स्वर हैं तथा ३३ व्यञ्जन।

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, (एँ) ए, (ओँ) ओ। पालि में 'अं' स्वर के अन्तर्गत नहीं पढ़ा जाता है। इसकी गणना व्यञ्जन में होती है। 'अः' पालि में पूर्णतया लुप्त हो गया है।

व्यञ्जन—क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल ळ व स ह अं

इन उपर्युक्त व्यञ्जनों में पाँच-पाँच वर्णों की वर्ग संज्ञा होती है। इस प्रकार पालि व्यञ्जन-समूह में पाँच वर्ग होते हैं। इन्हें क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग कहते हैं।

पालि में 'अं' की निग्गहीत संज्ञा होती है।

मात्राकाल-नियम (Law of Mora)

डब्ल्यू० गायगर महोदय ने पालि-भाषा एवं उसके साहित्य का बड़े परिश्रम के साथ अध्ययन किया, उस अध्ययन के परिणामस्वरूप उन्होंने जर्मनभाषा में 'पालि लिटरेचर उण्ड स्प्रारवे' नाम की पुस्तक लिखी। श्रीगायगर ने 'संस्कृतभाषा की किन-किन ध्वनियों का पालिभाषा में क्या-क्या स्वरूप हो गया', इसका पर्याप्त विवेचन करके 'मात्रा-काल-नियम' का निर्माण किया। यह बात दूसरी है कि उस नियम के अनेक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपवाद भी उन्हें मिले तथा मिलते हैं। परिभाषा का व्याकरण तथा उसके ध्वनि-परिवर्तनों के अध्ययन के समय इस मात्रा-काल-नियम पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। उन्होंने लिखा है—जैसा कि प्रायः मध्यभारतीय भाषाओं में देखा जाता है, पालिभाषा में किसी शब्द के अक्षर (syllable) की या तो केवल एक मात्रा, या दो मात्राएँ ही हो सकती हैं। दो मात्राओं से अधिक मात्राएँ कभी नहीं हो सकतीं। अक्षर स्वरान्त और व्यञ्जनान्त दो प्रकार का हो सकता है। स्वरान्त अक्षर में ह्रस्व स्वर (एक मात्रा) या दीर्घ स्वर (दो मात्राएँ) होंगे। व्यञ्जनान्त अक्षर में ह्रस्व स्वर (दो मात्राएँ) ही होगा। दीर्घ स्वरवाला स्वरान्त अक्षर और ह्रस्व स्वरवाला व्यञ्जनान्त अक्षर, इन दोनों की मात्राएँ दो-दो होती हैं। दीर्घ सानुस्वार स्वर नहीं होता। इस प्रकार 'मा-ला' शब्द में जिसमें दो दीर्घ स्वरवाले (चार मात्राओंवाले) स्वरान्त अक्षर हैं और 'गन्-तुम' शब्द में, जिसमें दो स्वर ह्रस्व स्वरवाले (ह्रस्व स्वर की एक मात्रा होती है, अतः दो मात्राएँ होनी चाहिए, परन्तु यहाँ सानुस्वार स्वर की दो मात्राएँ मानी जाती हैं, अतः चार मात्राओं-वाले) व्यञ्जनान्त अक्षर हैं, चार-चार मात्राएँ उच्चारण की दृष्टि से होती हैं।

इन नियम के कारण व्यञ्जनान्त अक्षर में संस्कृत में संयुक्ताचर के पहले यदि दीर्घ स्वर हो तो पालि में या तो संयुक्ताक्षर के पहले का वह दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हो जाता है, या संयुक्ताक्षर के पहले का वह दीर्घ स्वर रह जाता है और संयुक्ताक्षर, असंयुक्ताक्षर में परिवर्तित हो जाता है, यथा—

संस्कृत जीर्ण>पालि जिण्ण। यहाँ पर युक्ताक्षर के पहले का दीर्घ स्वर पालि में ह्रस्व हो गया है। इसी प्रकार सं० मांस>पा० मंस, सं० नदीम्>पा० नदि, सं० लाक्षा>पा० लाखा, सं० दीर्घ>पा० दीघ। यहाँ पर संयुक्ताक्षर के पहले का दीर्घ स्वर रह गया तथा संयुक्ताक्षर का असंयुक्ताक्षर हो गया है।

कुछ और भी ऐसे परिवर्तन पाये जाते हैं जिन्हें इस नियम के अनुसार सरलता से समझा जा सकता है।

१. (क) जहाँ संस्कृत में संयुक्ताक्षर के पूर्व ह्रस्व स्वर है वहीं उससे विकसित पालि-भाषा में असंयुक्ताक्षर के पूर्व दीर्घ स्वर हो जाता है, यथा—

सं० सर्षप>पा० सासप (* सस्सप के स्थान पर)
सं० वल्क>पा० वाक(* वक्क के स्थान पर)

(ख) जहाँ संस्कृत में असंयुक्त व्यञ्जन के पूर्व दीर्घ स्वर है वहीं पालि में संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व ह्रस्व स्वर है, यथा—

सं० आवृहति>पा० अब्बहति
सं० नीड>पा० निड्ड
सं० उदूखल>पा० उदुक्खल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ग) यतः ह्रस्व सानुस्वार स्वर की दो मात्रा, पालि में दीर्घ की तरह मानी जातो है, शुद्ध दीर्घ स्वर के स्थान पर प्रायः सानुस्वार ह्रस्व स्वर हो जाता है, यथा—

सं० मत्कुण>पा० मंकुण (* माकुण या * मक्कुण के स्थान पर)

सं० शर्वरी>पा० संवरी (* सावरी या * सब्बरी के स्थान पर)

सं० शुल्क>पा० सुंक (* सूक या * सुक्क के स्थान पर)

सं० घर्षति<पा० घंसति (* घासति या * घस्सति के स्थान पर)

(घ) उपर्युक्त '(ग)' नियम का विपर्यय भी पाया जाता है, यथा—

सं० सिंह>पा० सीह

सं० विंशति>पा० वीसति, वीसं

सं० संरम्भ<पा० सारम्भ। सम् उपसर्ग के साथ दूसरे शब्दों की भी यही स्थिति होती है।

२. कभी-कभी संयुक्त व्यञ्जन से पूर्व दीर्घ स्वर रह जाता है। ऐसा विशेषकर सन्धियों में होता है, यथा—

सं० साद्य>पा० साज्ज (स + अज्ज)

सं० यथाध्याशयेन>पा० यथाज्झासयेन (यथा + अज्झासयेन)

३. इस मात्रा-नियम के अनुसार ही जहाँ पर स्वर-भक्ति के द्वारा संयुक्त व्यञ्जन का विभाग किया जाता है वहाँ संयुक्त व्यञ्जन का पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर नियमतः ह्रस्व स्वर हो जाता है। इस तरह के प्रसङ्गों में एक मात्रावाले दो अक्षर दो मात्रावाले एक अक्षर का प्रतिनिधित्व करते हैं, यथा—

सं० सूर्य>पा० सुरिय (* सुय्य के स्थान पर)

सं० प्रकीर्ण>पा० पकिरिय

सं चैत्य>पा० चेतिय

सं० मौर्य>पा० मोरिय। इन अन्तिम दो उदाहरणों में 'ए' और 'ओ' ह्रस्व हैं।

ध्वनि-परिवर्तन

पालि में निम्नलिखित ध्वनियों लिए प्रायः निम्नलिखित ध्वनियों का प्रयोग मिलता है।

स्वर-परिवर्तन

(१) 'अ' ध्वनि के लिए पालिभाषा में 'आ', 'इ', 'उ' तथा 'ए' ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं। यथा—प्रत्यमित्रः=पच्चामित्तो, राजस्त्री=राजित्थि, निमज्जति=निमुज्जति, फल्गु=फेग्गु।

(२) 'आ' ध्वनि के लिए पालिभाषा में 'अ' तथा 'ए' ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा—लासिका=लसिका, मातृका=मेत्तिका।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) 'इ' ध्वनि के लिए अ, उ, ए तथा ओ ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं। यथा—द्विस्त्रिकृत्वः=द्वत्तिक्खत्तुं, इषुः=उसु।

विष्णु = वेण्हु, अग्रमहिषी = अग्गमहेसी, इक्ष्वाकुः = ओक्काको।

(४) संस्कृत की 'ई' ध्वनि पालिभाषा में 'अ' ध्वनि के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यथा—कौसीद्यं=कोसज्जं।

(५) 'उ' ध्वनि अ, इ, ए तथा 'ओ' ध्वनियों के रूप में प्रयुक्त होती है। यथा—मुकुल=मकुल, पुरुष=पुरिस, डुण्डुभ=डेण्डुभ, प्रामुख्य=पामोक्ख।

(६) 'ऊ' ध्वनि के लिए पालिभाषा में 'अ' तथा 'ओ' ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं। यथा—कूर्पर=कप्पर, गुडूची=गोलोची।

(७) पालिभाषा में ऋ तथा ऌ स्वरों का प्रतिनिधित्व करनेवाले स्वर—

पालिभाषा में ऋ ध्वनि अ, इ, उ, र् ध्वनियों के रूप में प्रयुक्त की जाती है। प्रायः ये परिवर्तन पड़ोसी स्वर के कारण होते हैं। उदाहरण के लिए ओष्ठस्थानीय व्यञ्जनों के बाद आनेवाली ऋ ध्वनि 'उ' में परिवर्तित हो जाती है, यथा—पृथ्वी=पुथवी।

ऋच्छः=अच्छः, पृषत् = पसद, ऋण = इण, वृश्चिक = विच्छिक, ऋजु = उजु, ऋसभ=उसभ, वृहन्त=ब्रहन्त।

'ऋ' कभी-कभी 'रु' ध्वनि के रूप में प्रयुक्त होती है, यथा— वृक्ष=रुक्ख।

'ऌ' ध्वनि के लिए 'उ' ध्वनि का प्रयोग पालिभाषा में मिलता है, यथा--क्लृप्त=कुत्त।

(८) ए तथा ओ ध्वनियों के लिए पालि में कभी-कभी इ तथा उ ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं। यथा—प्रतिवेश्यक=पटिविस्सक, श्रोष्यामि=सुस्सम, गोनाम्=गुन्नं।

व्यञ्जन-परिवर्तन

(१ पालिभाषा में असंयुक्त 'क' ध्वनि के लिए प्रायः 'ख, ग, ट, क्क, व तथा 'य' ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा—कुब्ज=खुज्ज, प्रतिकृत्य=पटिगच्च, कक्कोलं=टक्कोलं, भिषक्=भिसक्को, शुक=सुव, लौकिक=लोकिय।

(२) 'ग' ध्वनि के लिए पालिभाषा में 'क' एवं 'घ' ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। यथा – अगुरु=अकलु, गृहं=घरं .घर शब्द संस्कृत भी है।

(३) 'घ' ध्वनि के लिए 'ख' और 'ह' ध्वनि का प्रयोग पालिभाषा में होता है। यथा—परिघ=पलिख, प्राघुणः=पाहुणो।

(४) 'च' ध्वनि के लिए 'ज' तथा 'त' ध्वनि। यथा—स्रुच्=सुजा, चिकित्सा=तिकिच्छा।

(५) 'ज' ध्वनि के लिए 'च' तथा 'य' ध्वनि का प्रयोग। यथा—प्राजयति=पाचेति, ज्योत्स्ना=दोसिना, निज=निय।

(६) 'ट' ध्वनि 'ठ', 'ड', ल, ळ ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है यथा—कण्टक=कण्ठम, स्फटिक=फलिक, आटविक=आलविक।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(७) 'ड' के लिए 'ळ' ध्वनि का प्रयोग। यथा—बडवा = बळवा।

(८) त के लिए 'ट' 'थ' 'द' ध्वनि का प्रयोग। यथा—आर्त = अट्टो, तुषः = थुसो, वितस्तिः = विदत्थि।

(९) 'ध' के लिए 'भ' 'ह' 'ळ्ह' ध्वनि का प्रयोग। यथा—अधिरोहण= अभिरोहण, श्रद्दधाति=सद्दहति, द्वैधकं = द्वेळ्हकं।

(१०) 'य' के लिए 'व' का प्रयोग। आयुत्र =आवुत्र।

(११) 'ह' के लिए 'ध' और 'भ' ध्वनि का प्रयोग। यथा—इह=इध, गह्वर=गब्बर।

(१२) 'क्ष' ध्वनि के लिए 'क्ख', 'च्छ', 'ज्झ', 'ख' और 'ग्घ' ध्वनियों का प्रयोग पालिभाषा में मिलता है। यथा—परीक्षा=परिक्खा, पक्ष—पच्छ, विज्ञापति= विज्झापेति, क्षुधा-खुधा, प्रक्षरति=पग्घरति।

(१३ 'ज्ञ' के लिए 'ञ्ञ' एवं 'ञ' ध्वनि का प्रयोग। यथा—राज्ञः =रञ्ञो, ज्ञानं=ञानं।

(१४) 'द्य' के लिए 'ज', 'ज्ज' का प्रयोग। द्युति=जुति। अद्य=अज्ज।

(१५) 'प्त' के लिए 'त्त' ध्वनि का प्रयोग। यथा-प्राप्त=पत्तो।

(१६) 'प्स' के लिए 'च्छ' का प्रयोग। यथा—अप्सरा=अच्छरा।

(१७) 'स्ख' के लिए 'ख' का प्रयोग। यथा—स्खलित=खलित।

(१८) 'स्थ' के लिए 'थ' एवं 'ठ' का प्रयोग। यथा—स्थूल=थूलो, स्थानं=ठानं।

(१९) स्प, स्फ, ह्य और ह्व के लिए क्रमशः फ, य्ह, व्ह का प्रयोग होता है। यथा—स्पन्दः=फन्दो, स्फटिकः=फटिको, मह्यं=मय्हं, आह्वानं= आव्हानं।

सन्धि-प्रकरण

यद्यपि किसी शब्द में, किसी भी कारण, स्वरात्मक या व्यञ्जनात्मक परिवर्तन-मात्र को सन्धि समझना चाहिए, तथापि इस प्रसंग में एक ही शब्द में अथवा दो शब्दों के बीच, चाहे वे दोनों शब्द पृथक्-पृथक् प्रयुक्त हों या किसी समास-नियम के कारण एकत्र प्रयुज्यमान हों, बोलने की सुविधा की दृष्टि से प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर और द्वितीय शब्द के आदि अक्षरों के बीच किन्हीं नियमों के अनुसार जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें सन्धि कहा गया है। पालि-भाषा में ये सन्धियाँ तीन प्रकार की पायी जाती हैं—

(१) स्वर-सन्धि, (२) व्यञ्जन-सन्धि और (३) निग्गहीत-सन्धि।

अ—स्वर-सन्धि—

(१) सरो लोपो सरे (मो० १,२६) :—पालि-भाषा में यदि स्वर के बाद स्वर आवे तो प्रायः पूर्ववर्ती स्वर का लोप हो जाता है। यथा—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सद्धा + इन्द्रियं= सद्धिन्दियं

मे + अत्थि = मत्थि

(२) परो क्वचि (मो० १, २७) :--स्वर के बाद यदि स्वर आवे तो प्रायः परवर्ती स्वर का लोप हो जाता है। यथा--

सो + अपि = सोपि

चत्तारो+इमे=चत्तारोमे

(३) न द्वे वा (मो० १, २८) :--स्वर के बाद यदि स्वर हो तो दोनों स्वरों में से किसी का भी लोप, विकल्प से नहीं होता है। यथा--

लता + इव= { लता इव / लताव }

(४) युवण्णा न मे ओ लुत्ता (मो० १, २९) :--यदि ऐसे स्वर के बाद, जिनका लोप हो गया हो, इ और उ आवें तो इ और उ क्रमशः ए और ओ में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा--

तस्स + इदं=तस्स् + इदं=तस्सेदं

वि + उदकं=व् + उदकं=वोदकं

(५) यवा सरे (मो० १, ३०) :--इ तथा उ के बाद कोई भी स्वर आवे तो इ और उ क्रमशः य और व में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा--

वि + आकतो=व्याकतो

सु + आगतं=स्वागतं

(६) ए ओ नं (मो० १, ३१) :--ए और ओ के बाद कोई भी स्वर आवे तो ए, ओ क्रमशः य, व में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा--

ते + अज्ज=त्यज्ज

पब्बते + अहं=पब्बत्याहं

सो + अहं = स्वाहं

(७) गोस्सावङ (मो० १, ३२) --'गो' शब्द के बाद यदि कोई भी स्वर आवे तो 'गो' को गव आदेश होता है। यथा--

गो + अस्सं=गव + अस्सं=गवास्सं

ब--व्यञ्जन-सन्धि--

(१) व्यञ्जने दीघरस्सा (मो० १, ३३) :--यदि ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद व्यञ्जन आवे तो प्रायः उन स्वरों का क्रमशः दीर्घ एवं ह्रस्व हो जाता है। यथा--

मुनि + चरे=मुनीचरे

सम्मा + एव=सम्मदेव

(२) सरम्हा द्वे (मो० १, ३४) :--स्वर के बाद व्यञ्जन को कभी-कभी द्वित्व हो जाता है। यथा--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प + गहो=पग्गहो ।

दु + कतं=दुक्कतं ।

(३) चतुत्थदुतियो स्वेसं ततियपठमा (मो० १, ३५) :—यदि किसी वर्ग के दो द्वितीय या दो चतुर्थ वर्ण संयुक्त हों तो पूर्ववर्ती वर्ण अपने ही वर्ग के क्रमशः प्रथम एवं तृतीय में परिवर्तित हो जाते हैं । यथा—

अ + ख्खन्ति= अक्खन्ति

नि + घ्घोसो=निग्घोसो

(४) वितिस्सेवे वा (मो० १, ३६) :—यदि 'इति' शब्द के बाद 'एव' शब्द आवे तो 'इति' को विकल्प से 'इत्व' आदेश हो जाता है । तथा—

इति + एव= { इत्वेव / इच्चेव

(५) एवोन मवण्णे मो० १, ३७) :—यदि ए और ओ के बाद कोई भी वर्ण आवे तो ए, ओ को अ आदेश हो जाता है । यथा—

सो + सीलवा=ससीलवा

याचके + आगते=याचकमागते

स– निग्गहीत सन्धि

(१) निग्गहीतं (मो० १, ३८) :—कहीं-कहीं निग्गहीत का आगम हो जाता है । यथा—

त + खणे=तंखणे

अव + सिरो=अवंसिरो

(२) लोपो (मो० १, ३९) :—कहीं-कहीं निग्गहीत का लोप हो जाता है। यथा—

सं + रत्तो= सारत्तो

सं + रागो=सारागो

(३) परसरस्स (मो० १, ४०) :—निग्गहीत के बाद आनेवाले स्वर का कभी-कभी विकल्प से लोप हो जाता है । यथा—

त्वं + असि + { त्वंसि / त्वमसि

इदं + अपि = { इदम्पि / इदमपि

(४) वग्गेवग्गन्तो (मो० १, ४१) :—निग्गहीत के बाद यदि कोई व्यञ्जन आवे तो निग्गहीत उस व्यञ्जन के वर्ग के पञ्चम वर्ण में परिवर्तित हो जाता है । यथा—

तं + करोति=तङ्करोति

(५) येवहिसुञ्ञो (मो० १, ४२) :—यदि निग्गहीत के उपरान्त 'य', 'एव' एवं 'हि' शब्द आवें तो निग्गहीत कभी-कभी 'ञ' में परिवर्तित हो जाता है । यथा—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तं + एव = तञ्ञेव

यं + एव = यञ्ञदेव

तं + हि = तञ्हि

(६) ये सं स्स (मो० १, ४३) :—यदि 'य' बाद में आवे तो पूर्ववर्ती 'सं' के निग्गहीत का 'ञ' हो जाता है। यथा—

सं + यमो = सञ्ञमो

(७) मयदासरे (मो० १, ४४) :—यदि स्वर बाद में आवे तो पूर्ववर्ती निग्गहीत कहीं-कहीं म, य, द में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा—

तं + अहं = तमहं

तं + इदं = तयिदं

तं = अलं = तदलं

नाम-प्रकरण

पालि-व्याकरण की दृष्टि से नाम-प्रकरण में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण एवं अव्यय शब्दों के विभिन्न रूपों की बनावट का अध्ययन किया जाता है। संस्कृत-भाषा के शब्दों की भाँति पालि-भाषा में हलन्त शब्द नहीं मिलते, अजन्त ही मिलते हैं। इन सभी शब्दों के सातों विभक्तियों तथा आलपन (सम्बोधन) में विभन्न रूप पाये जाते हैं। पालि-भाषा में द्विवचन नहीं होता। ये सातों विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
१. पठमा	सि	यो
२. दुतिया	अं	यो
३. ततिया	ना	हि
४. चतुत्थी	स	नं
५. पञ्चमी	स्मा	हि
६. छट्ठी	स	नं
७. सत्तमी	स्मि	सु
८. आलपन	सि (ग)	यो

संस्कृत-भाषा के व्याकरणों की वासना के कारण ही पालि-भाषा में चतुर्थी और षष्ठी दो विभक्तियाँ मानी जाती हैं। कच्चायन ने ('सम्पदाने चतुत्थी' २.६.२३ तथा 'सामिस्मि छट्ठी' २.६ ३१) एवं मोग्गलान ने ('चतुत्थी सम्पदाने' २ २६ तथा 'छट्ठी सम्बन्धे' २.४१) जो दो विभक्तियाँ मानीं उससे सम्प्रदान और सम्बन्ध इन दोनों अर्थों में भेद दिखलाना मात्र तात्पर्य है, किन्तु शब्दों के रूपों के आधार पर तो यह भेद कदापि ज्ञात नहीं हो सकता।

जहाँ तक अव्यय शब्दों का प्रश्न है, इनका रूप के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता। संस्कृत के वैयाकरणों ने भी स्वमतानुसार तीनों लिङ्गों, सब विभक्तियों एवं सब वचनों में जिसका रूप न बदलता हो उसे अव्यय माना है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेसु, यन्न व्येति तदव्ययम् ।।) ।

यतः पालि-भाषा में पुंल्लिग; स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग ये तीन लिंग होते हैं अतः संज्ञाओं एवं सर्वनामों के इन लिंगों के आधार पर कुछ अतिप्रचलित मानक शब्दों के पृथक्-पृथक् एक-एक उदाहरण दिये जाते हैं और अवशिष्ट शब्दों के रूप इन्हीं के आधार पर समझना चाहिए—

नाम-शब्दों के रूप—

अकारान्त पुंल्लिग 'बुद्ध' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	बुद्धो (बुद्धे)	बुद्धा
दुतिया	बुद्ध	बुद्धे
ततिया	बुद्धेन	बुद्धेहि, बुद्धेभि
चतुत्थी	बुद्धाय,बुद्धस्स	बुद्धानं
पञ्चमी	बुद्धा, बुद्धम्हा, बुद्धस्मा	बुद्धेहि, बुद्धेभि
छट्ठी	बुद्धस्स	बुद्धानं
सत्तमी	बुद्ध, बुद्धिम्हि, बुद्धस्मि	बुद्धेसु
आलपन	बुद्ध, बुद्धा	बुद्धा

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'फल' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	फलं	फला, फलानि
दुतिया	फलं	फले, फलानि
आलपन	फल, फला	फलानि

अवशिष्ट रूप अकारान्त पुंलिङ्ग 'बुद्ध' शब्द के समान ही बनेंगे ।

अकारान्त स्त्रीलिंग 'लता' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	लता	लता, लतायो
दुतिया	लतं	लता, लतायो
ततिया	लताय	लताहि, तलाभि
चतुर्थी	लताय	लतानं
पञ्चमी	लताय	लताहि, लताभि
छट्ठी	लताय	लतानं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सत्तमी	लतायं, लताय	लतासु
आलपन	लते	लता, लतायो

इकारान्त पुंलिङ्ग 'मुनि' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	मुनि	मुनी, मुनयो
दुतिया	मुनि	मुनी, मुनयो
ततिया	मुनिना	मुनीहि, मुनीभि
चतुर्थी	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
पञ्चमी	मुनिना, मुनिम्हा, मुनिस्मा	मुनीहि, सुनीभि
छट्ठी	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
सत्तमी	मुनिम्हि, मुनिस्मि	मुनिसु, मुनीसु
आलपन	मुनि, मुनी	मुनि, मुनयो

इकारान्त नपुंसकलिंग 'अट्ठि' (अस्थि) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी
दुतिया	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी
आलपन	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी

'अट्ठि' शब्द के अवशिष्ट रूप 'मुनि' की भाँति ही बनाये जायँगे।

इकारान्त स्त्रीलिंग 'रत्ति' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो
दुतिया	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो
ततिया	रत्तिया, रत्या	रत्तीहि, रत्तीभि
चतुत्थी	रत्तिया, रत्या	रत्तीनं
पञ्चमी	रत्तिया, रत्या	रत्तीहि, रत्तीभि
छट्ठी	रत्तिया, रत्या	रत्तीनं
सत्तमी	रत्तियं, रत्यं, रत्या, रत्ति, रत्तो, रत्तिया	रत्तिसु, रत्तीसु
आलपन	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो

ईकारान्त पुंलिंग 'दण्डी' (संन्यासी) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	दण्डी	दण्डी, दण्डिनो
दुतिया	दण्डिनं, दण्डि	दण्डी, दण्डिनो, दण्डिने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ततिया	दण्डिना	दण्डीहि, दण्डीभि
चतुत्थी	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
पञ्चमी	दण्डिनां, दण्डिस्मा, ददण्डिम्हा	दण्डीहि, दण्डीभि
छट्ठी	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
सत्तमी	दण्डिनि, दण्डिम्हि, दण्डिस्मि	दण्डिसु, दण्डीसु
आलपन	दण्डि, दण्डी	दण्डी, दण्डिनो

ईकारान्त नपुंसकलिंग 'सुखकारी' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सुखकारि	सुखकारीनि, सुखकारी
दुतिया	सुखकारिं	सुखकारीनि, सुखकारी
आलपन	सुखकारि	सुखकारीनि, सुखकारी

'सुखकारी' शब्द के अवशिष्ट रूप 'दण्डी' के समान ही शेष विभक्तियों में बनाये जायँगे।

ईकारान्त स्त्रीलिंग 'इत्थी' (स्त्री) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	इत्थी	इत्थी, इत्थियो
दुतिया	इत्थियं, इत्थि	इत्थी, इत्थियो
ततिया	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि
चतुत्थी	इत्थिया	इत्थीनं
पञ्चमी	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीनि
छट्ठी	इत्थिया	इत्थीनं
सत्तमी	इत्थियं, इत्थिया	इत्थीसु
आलपन	इत्थि	इत्थी, इत्थियो

उकारान्त पुंलिंग 'भिक्खु' (भिक्षु) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवो
दुतिया	भिक्खुं	भिक्खू, भिक्खवो
ततिया	भिक्खुना	भिक्खूहि, भिक्खूभि
चतुत्थी	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खूनं
पञ्चमी	भिक्खुना, भिक्खुस्मा, भिक्खुम्हा	भिक्खुहि, भिक्खूभि
छट्ठी	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खूनं
सत्तमी	भिक्खुस्मि, भिक्खुम्हि	भिक्खुसु, भिक्खूसु
आलपन	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवे, भिक्खवो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उकारान्त नपुंसकलिंग 'आयु' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	आयु	आयूनि, आयू
दुतिया	आयुं	आयूनि, आयू
आलपन	आयु	आयूनि, आयू

'आयु' शब्द के अवशिष्ट रूप 'भिक्खु' की भाँति ही बनाये जायेंगे।

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'धेनु' (गाय) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	धेनु	धेनू, धेनुयो
दुतिया	धेनुं	धेनू, धेनुयो
ततिया	धेनुया	धेनूहि, धेनूभि
चतुत्थी	धेनुया	धेनूनं
पञ्चमी	धेनुया	धेनूहि, धेनूभि
छट्ठी	धेनुयं, धेनुया	धेनूसु
आलपन	धेनु	धेनू, धेनुयो

ऊकारान्त पुंल्लिंग "धम्मञ्ञू' (धर्मज्ञ) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	धम्मञ्ञू	धम्मञ्ञू, धम्मञ्ञुनो
दुतिया	धम्मञ्ञुं	धम्मञ्ञू, धम्मञ्ञुनो
ततिया	धम्मञ्ञुना	धम्मञ्ञूहि, धम्मञ्ञूभि
चतुत्थी	धम्मञ्ञुनो, धम्मञ्ञुस्स	धम्मञ्ञूनं
पञ्चमी	धम्मञ्ञुना, धम्मञ्ञुस्मा, धम्मञ्ञुम्हा	धम्मञ्ञूहि, धम्मञ्ञूभि
छट्ठी	धम्मञ्ञुनो, धम्मञ्ञुस्स	धम्मञ्ञूनं
सत्तमी	धम्मञ्ञुम्हि, धम्मञ्ञुस्मि	धम्मञ्ञूसु
आलपन	धम्मञ्ञु	धम्मञ्ञू, धम्मञ्ञुनो

ऊकारान्त नपुंसकलिंग 'सयम्भु' (स्वयम्भू) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सयम्भु	सयम्भू, सयम्भुनि
दुतिया	सयम्भुं	सयम्भू
आलपन	सयम्भु	सयम्भू, सयम्भुनि

अवशिष्ट रूप 'धम्मञ्ञू' की भाँति ही बनाये जायेंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऊकारान्त स्त्रीलिंग 'वधू' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	वधू	वधू, वधुयो
दुतिया	वधुं	वधू, वधुयो
ततिया	वधुया	वधूहि, वधूभि
चतुत्थी	वधुया	वधूनं
पञ्चमी	वधुया	वधूहि, वधूभि
छट्ठी	वधुया	वधूनं
सत्तमी	वधुयं	वधूसु
आलपन	वधु	वधू, वधुयो

ओकारान्त पुंल्लिग 'गो' (बैल) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	गो	गावो, गवो
दुतिया	गावुं, गावं, गवं	गावो, गवो
ततिया	गावेन, गवेन, गावा, गवा	गोहि, गोभि
चतुत्थी	गावस्स, गवस्स, गवं	गवं, गुन्नं, गोनं
पञ्चमी	गवा, गावा, गावस्मा, गावम्हा, गवस्मा, गवम्हा	गोहि, गोभि
छट्ठी	गावस्स, गवस्स, गवं	गवं, गुन्नं, गोनं
सत्तमी	गावे, गवे, गवम्हि, गावम्हि, गावस्मिं, गवस्मिं	गावेसु, गवेसु गोसु
आलपन	गो	गावो, गवो

पालिभाषा में प्रायः एकारान्त शब्द नहीं मिलते हैं। 'गो' शब्द को छोड़कर अन्य ओकारान्त शब्द प्रायः नहीं मिलते हैं।

ओकारान्त नपुंसकलिंग 'चित्तगो' (विचित्र गौवोंवाला) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	चित्तगु	चित्तगू, चित्तगूनि
दुतिया	चित्तगुं	चित्तगू, चित्तगूनि
आलपन	चित्तगु	चित्तगू, चित्तगूनि

शेष विभक्तियों में 'चित्तगो' शब्द के रूप 'आयु' शब्द की भाँति ही बनाये जायेंगे।

स्त्रीलिङ्ग में भी ओकारान्त गो शब्द के रूप पुंल्लिग 'गो' शब्द की भाँति ही बनाये जायेंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जिनके रूप ऊपर निर्दिष्ट किये गये रूपों से भिन्न पाये जाते हैं, उन शब्दों में से, उदाहरण के लिए, कुछ शब्दों के रूप नीचे दिये जा रहे हैं—

अकारान्त पुंल्लिग 'अत्त' (आत्मा) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अत्ता	अत्ता, अत्तानो
दुतिया	अत्तानं, अत्तं	अत्तानो, अत्ते
ततिया	अत्तेन, अत्तना	अत्तेहि, अत्तेभि, अत्तनेहि, अत्तनेभि
चतुत्थी	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
पञ्चमी	अत्तना, अत्तस्मा, अत्तम्हा	अत्तेहि, अत्तेभि, अत्तनेहि, अत्तनेभि
छट्ठी	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
सत्तमी	अत्तति, अत्तस्मि, अत्तम्हि, अत्ते	अत्तनेसु, अत्तेसु
आलपन	अत्त, अत्ता	अत्ता, अत्तानो

पुंल्लिग उकारान्त 'धनवन्तु' (धनवाला) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	धनवा	धनवन्तो, धनवन्ता
दुतिया	धनवन्तं	धनवन्ते
ततिया	धनवता, धनवन्तेन	धनवन्तेहि, धनवन्तेभि
चतुत्थी	धनवतो, धनवन्तस्स	धनवतं, धनवन्तानं
पञ्चमी	धनवता, धनवन्तस्मा, धनवन्तम्हा	धनवन्तेहि, धनवन्तेभि
छट्ठी	धनवतो, धनवन्तस्स	धनवतं, धनवन्तानं
सत्तमी	धनवति, धनवन्ते, धनवन्तस्मि, धनवन्तम्हि	धनवन्तेसु
आलपन	धनवं, धनव, धनवा	धनवन्तो, धनवन्ता

उकारान्त पुंल्लिग 'पितु' (पिता) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	पिता	पितरो
दुतिया	पितरं	पितरे, पितरो
ततिया	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुत्थी	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं पितूनं
पञ्चमी	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि
छट्ठी	पितु,पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं, पितूनं
सत्तमी	पितरि	पितरेसु, पितूसु
आलपन	पित, पिता	पितरो

उकारान्त स्त्रीलिंग 'मातु' (माता) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	माता	मातरो
दुतिया	मातरं	मातरे, मातरो
ततिया	मातुया	मातरेहि, मातरेभि
चतुत्थी	मातुया	मातरानं, मातानं, मातूनं
पञ्चमी	मातुया	मातरेहि मातरेभि
छट्ठी	मातुया	मातरानं, मातानं, मातूनं
सत्तमी	मातरि	मातरेसु, मातुसु
आलपन	मात, माता	मातरो

विशेषण

विशेष्य में जो लिंग, वचन और विभक्ति होती है, वही लिंग, वचन और विभक्ति विशेषण में होती है। उदाहरण के लिए :—

पुंल्लिग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
विसालो मनुस्सो	विसालं फलं	विसाला नगरी

उपर्युक्त उदाहरण में विशेष्य 'मनुस्स', 'फल' और 'नगरी' हैं तथा विशेषण 'विशाल' शब्द है। जो रूप लिङ्ग, वचन एवं विभक्ति में मनुस्स, फल एवं नगरी का है वही रूप उसके विशेषण 'विशाल' शब्द का भी है।

जहाँ तक संख्यावाचक विशेषणों का सम्बन्ध है, इनकी स्थिति अन्य विशेषणों से थोड़ी भिन्न है और वह यह कि संख्यावाचक विशेषण एक ही वचन में (या तो एकवचन या बहुवचन में) होते हैं, जैसा— संख्यावाची 'एक' शब्द एकवचन, 'द्वि', 'ति', 'चतु', बहुवचन होते हैं। 'एक' शब्द से 'चतु' शब्द तक के रूप तीनों लिङ्गों में पाये जाते हैं। 'पञ्च' से 'अट्ठारस' तक के रूप बहुवचन में ही तीनों लिङ्गों में समान होते हैं। 'एक' शब्द के रूप 'कि' शब्द की भाँति होंगे। 'द्वि' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में समान हैं, यथा—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

	बहुवचन
पठमा	दुवे, द्वे
दुतिया	दुवे, द्वे
ततिया	द्वीहि, द्वीभि
चतुत्थी	द्विन्नं, दुविन्नं
पञ्चमी	द्वीहि, द्वीभि
छट्ठी	द्विन्नं, दुविन्नं
सत्तमी	द्वीसु

'ति' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा :—

	पुंलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
पठमा	तयो	तीणि	तिस्सो
दुतिया	तयो	तीणि	तिस्सो
ततिया	तीही, तीभि	(शेष	तीहि, तीभि
चतुत्थी	तिण्णं, तिण्णन्नं	रूप	तिस्सन्नं
पञ्चमी	तीहि, तीभि	पुंल्लिग के	तीहि, तीभि
छट्ठी	तिण्णं, तिण्णन्नं	समान ही	तिस्सन्नं
सत्तमी	तीसु	होंगे।)	तीसु

'चतु' शब्द के भी रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—

	पुंल्लिग	नपुंसकलिंग	स्त्रीलिंग
पठमा	चत्तारो, चतुरो	चत्तारि	चतस्सो
दुतिया	चत्तारो, चतुरो	चत्तारि	चतस्सो
ततिया	चतूहि, चतूभि	चतूहि, चतूभि	चतूहि, चतूभि
चतुत्थी	चतुन्नं	चतुन्नं	चतस्सन्नं
पञ्चमी	चतूहि, चतूभि	चतूहि, चतूभि	चतूहि, चतूभि
छट्ठी	चतुन्नं	चतुन्नं	चतस्सन्नं
सत्तमी	चतुसु	चतुसु	चतुसु

'पञ्च' से 'अट्ठारस' तक के रूप तीनों लिङ्गों में बहुवचन में 'पञ्च' शब्द के समान ही होते हैं, यथा—

पठमा	पञ्च
दुतिया	पञ्च
ततिया	पञ्चहि, पञ्चभि
चतुत्थी	पञ्चन्नं
पञ्चमी	पञ्चहि, पञ्चभि
छट्ठी	पञ्चन्नं
सत्तमी	पञ्चसु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'एकूनवीसति' से 'अट्ठनवुति' तक के रूप तीनों लिङ्गों के समान होते हैं, जिनके रूप स्त्रीलिङ्ग एकवचन में होते हैं तथा उन सभी शब्दों के रूप 'एकूनवीसति' शब्द की भाँति ही होते हैं, यथा—

	एकवचन
पठमा	एकूनवीसति
दुतिया	एकूनवीसति
ततिया	एकूनवीसतिया
चतुत्थी	एकूनवीसतिया
पञ्चमी	एकूनवीसतिया
छट्ठी	एकूनवीसतिया
सत्तमी	एकूनवीसतियं

'एकूनसतं' के रूप सभी लिङ्गों में समान होते हैं, जिनके रूप नपुंसकलिङ्ग एकवचन में 'फल' शब्द की भाँति ही होते हैं।

'सतं' शब्द से 'सतसहस्सं' शब्द तक सभी शब्दों के रूप नपुंसकलिङ्ग एकवचन में 'फल' शब्द की भाँति होंगे।

'कति' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं तथा केवल बहुवचन में ही पाये जाते हैं, यथा—

	बहुवचन
पठमा	कति
दुतिया	कति
ततिया	कतीहि, कतीभि
चतुत्थी	कतीनं, कतिन्नं
पञ्चमी	कतीहि, कतीभि
छट्ठी	कतीनं, कतिन्नं
सत्तमी	कतीसु

'पूरणार्थक' जो संख्यावाची शब्द हैं, उनके रूप, जिन पुंल्लिग, नपुंसकलिंग, स्त्रीलिंग शब्दों को हम पीछे कह आये हैं, उन्हीं शब्दों की भाँति होंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सर्वनाम शब्द

'अम्ह' (मैं)

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अहं	मयं, अस्मा, अम्हे, ना
दुतिया	मं, ममं	अम्हं, अम्हाकं, अम्हे, नो
ततिया	मया, मे	अम्हेहि, अम्हेभि, नो
चतुत्थी	मम, मय्हं, अम्हं, ममं, मे	अस्माकं, अम्हाकं, अम्हं, अम्हे, नो
पञ्चमी	मया	अम्हेहि, अम्हेभि
छट्ठी	मम, मय्हं, अम्हं, ममं, मे	अस्माकं, अम्हाकं, अम्हं, अम्हे, नो
सत्तमी	मयि	अस्मासु, अम्हेसु

'तुम्ह' (तुम)

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	त्वं, तुवं	तुम्हे, वो
दुतिया	तं, तवं, तुवं, त्वं	तुम्हं, तुम्हाकं, तुम्हे, वो
ततिया	त्वया, तया, ते	तुम्हेहि, तुम्हेभि, वो
चतुत्थी	तव, तुय्हं, तुम्हं, ते	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
पञ्चमी	त्वया, तया, त्वम्हा	तुम्हेहि, तुम्हेभि
छट्ठी	तव, तुय्हं, तुम्हं, ते	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
सत्तमी	त्वयि, तयि	तुम्हेसु

इन उपर्युक्त सर्वनामों के रूप तीनों लिंगों में समान होते हैं। सर्वनाम में आलपन नहीं होता है।

'त' (वह)
पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सो, स्यो	ते, ने
दुतिया	तं, नं	ते, ने
ततिया	तेन, नेन	तेहि, नेहि, तेभि, नेभि
चतुत्थी	तस्स, नस्स, अस्स	तेसं, नेसं, तेसानं, नेसानं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्चमी	तम्हा, अम्हा, नम्हा, तस्मा	तेहि, नेहि, तेभि, नेभि
छट्ठी	तस्स, नस्स, अस्स	तेसं, नेसं, तेसानं, नेसानं
सत्तमी	तम्हि, अम्हि, नम्हि, तस्मिं, नस्मिं, अस्मिं	तेसु, नेसु

'त' (वह)

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	तं, नं	ते, ने, तानि, नानि
दुतिया	तं, नं	ते, ने, तानि, नानि

अवशिष्ट रूप पुंलिङ्ग 'त' की भाँति ही बनेंगे।

'त' (वह)

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सा, स्या	ता, ना, तायो, नायो
दुतिया	तं, नं	ता, ना, तायो, नायो
ततिया	ताय, नाय, तस्सा, तिस्सा	ताहि, नाहि, ताभि, नाभि
चतुत्थी	तिस्साय, तस्साय, अस्साय, तिस्सा, तस्सा, ताय	तासं, आसं, तासानं
पञ्चमी	ताय, नाय, तस्सा	ताहि, नाहि, ताभि, नाभि
छट्ठी	तिस्साय, तस्साय, अस्साय, तिस्सा, तस्सा, ताय	तासं, आसं, तासानं
सत्तमी	तिस्सं, तस्सं, अस्सं, तायं तस्सा, तिस्सा	तासु

'एत' (यह)

पुंलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	एसो	एते
दुतिया	एतं, एनं	एते, एने
ततिया	एतेन	एतेहि, एतेभि
चतुत्थी	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
पञ्चमी	एतम्हा, एतस्मा	एतेहि, एतेभि
छट्ठी	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
सत्तमी	एतम्हि, एतस्मिं	एतेसु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'एत' (यह)
नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	एतं	एते, एतानि
दुतिया	एतं	एते, एतानि

अवशिष्ट रूप पुंल्लिङ्ग 'एत' शब्द की भाँति ही बनेंगे।

'एत' (यह)
स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	एसा	एता, एतायो
दुतिया	एतं	एता, एतायो
ततिया	एताय	एतासं, एतासानं
चतुत्थी	एतिस्साय, एतिस्सा, एताय	एताहि, एताभि
पञ्चमी	एताय	एताहि, एताभि
छट्ठी	एतिस्साय, एतिस्सा, एताय	एतासं, एतासानं
सत्तमी	एतिस्सं, एतस्सं, एतासं	एतासु

'इम' (यह)
पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अयं	इमे
दुतिया	इमं	इमे
ततिया	अनेन, इमिना	एहि, एभि, इमेभि
चतुत्थी	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं, इमेसं, इमेसानं
पञ्चमी	अस्स, इमस्मा, इमम्हा	एति, एभि, इमेहिं, इमेभि
छट्ठी	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं, इमेसं, इमेसानं
सत्तमी	अस्मि, इमम्हि, इमस्मि	एसु, इमेसु

'इम' (यह)
नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	इदं, इमं	इमे, इमानि
दुतिया	इदं, इमं	इमे, इमानि

अवशिष्ट रूप पुंल्लिग 'इम' शब्द की भाँति ही बनेंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'इम' (यह)
स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अयं	इमा, इमायो
दुतिया	इमं	इमा, इमायो
ततिया	इमाय	इमाहि, इमाभि
चतुत्थी	अस्याय, अस्मा, इमिस्साय, इमिस्सा, इमाय	इमासं, इमासनं
पञ्चमी	इमाय	इमाहि, इमाभि
छट्ठी	अस्याय, अस्सा, इमिस्साय, इमिस्सा, इमाय	इमासं, इमासनं
सत्तमी	अस्सं, इमिस्सं, इमाय	इमासु

'अमु' (वह)
पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अमु, अमुको	अमू, अमुयो
दुतिया	अमुं	अमू, अमुयो
ततिया	अमुना	अमूहि, अमूभि
चतुत्थी	अमुस्स	अमूसं, अमूसानं
पञ्चमी	अमुना, अमुम्हा, अमुस्सा	अमूहि, अमूभि
छट्ठी	अमुस्स	अमूसं, अमूसानं
सत्तमी	अमुम्हि, अमुस्मि	अमूसु

'अमु' (वह)
नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि
दुतिया	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि

अवशिष्ट रूप पुंलिंग 'अमु' की भाँति ही बनेंगे।

'अमु' (वह)
स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	असु, अमु	अमू, अमुयो
दुतिया	अमुं	अमू, अमुयो
ततिया	अमुया	अमूहि, अमूभि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

चतुत्थी	अमुस्सा, अमुया	अमूसं, अमूसानं
पञ्चमी	अमुया	अमूहि, अमूभि
छट्ठी	अमुस्सा, अमुया	अमूसं, अमूसानं
सत्तमो	अमुस्सं, पमुयं	अमूसु

'किं' (कौन)
पुंलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	को	के
दुतिया	कं	के
एतिया	केन	केहि, केभि
चतुत्थी	कस्स, किस्स	केसं, केसानं
पञ्चमी	कम्हा, कस्मा, किस्मा	केहि, केभि
छट्ठी	कस्स, किस्स	केसं, केसानं
सत्तमी	कम्हि, किम्हि, कस्मिं, किस्मि	केसु

'किं' (कौन)
नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	किं, फं	के, कानि
दुतिया	किं, कं	के, कानि

अवशिष्ट रूप पुंल्लिग 'किं' शब्द की भाँति ही बनेंगे।

'किं' (कौन)
स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	का	का, कायो
दुतिया	कं	का, कायो
ततिया	काय	काहि, काभि
चतुत्थी	कस्सा, काय	कासं, कासानं
पञ्चमी	काय	काहि, काभि
छट्ठी	कस्सा, काय	कासं, कासानं
सत्तमी	कस्सं, कायं	कासु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'य' (जो) शब्द के रूप तीनों लिंगों में 'किं' (कौन) के समान ही होंगे।

तद्धित-प्रकरण

वैयाकरणों के दो सम्प्रदाय हैं। एक का मत है कि सब शब्द धातु से हो निकले हैं, जिन्हें यौगिक कह सकते हैं और दूसरे सम्प्रदाय के मत में कुछ ऐसे शब्द अवश्य हैं जो धातु से नहीं बने अपितु प्रकृति-प्रत्यय विभाग कठिन है और ये शब्द रूढ़ या अव्युत्पन्न कहलाते हैं। अतः इनके मत में कुछ शब्द यौगिक और कुछ शब्द रूढ़ होते हैं। पहले मत के अनुसार सब नाम कृदन्त होंगे और दूसरे मत के अनुसार कुछ शब्द कृदन्त नहीं भी होंगे। कुछ भी हो, इन नाम शब्दों से कुछ प्रत्यय लगाकर विभिन्न अर्थों का द्योतन किया जाता है। नाम के आगे जुड़नेवाले प्रत्यय 'तद्धित' कहलाते हैं। ये तद्धित-प्रत्यय कई अर्थों में होते हैं, जानकारी की दृष्टि से भाववाचक, देवताद्यर्थक आदि विभेद कर वैयाकरणों ने इन्हें सिखाने का प्रयत्न किया है। पुंल्लिङ्ग नाम शब्दों से कुछ प्रत्यय जोड़कर उन्हें स्त्रीलिङ्ग नाम शब्द बनाया जाता है। अतः स्त्रीप्रत्यय को तद्धित प्रत्यय की भाँति समझना चाहिए। तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दों के रूप उनके लिङ्ग, वचन के अनुसार उपर्युक्त नाम शब्दों की भाँति ही होते हैं।

कुछ ऐसे भी तद्धित प्रत्यय हैं, जिनके जुड़ने पर वे शब्द अव्यय कहलाते हैं और इसलिए स्वभावतः उनके रूपों में कोई परिवर्तन लिङ्ग, वचन या विभक्तिकृत नहीं पाया जाता। जैसे—

तो, त्र, त्थ, धि, हिं, हं, दा, था, धा, ज्झं, एधा, क्खत्तुं, सो तथा ची आदि।

तो	कुतो	(कहाँ से)
त्र	कुत्र	(कहाँ)
त्थ	यत्थ	(जहाँ)
धि	सब्बधि	(सब जगह)
हिं	कुहिं	(कहाँ)
हं	कहं	(कहाँ)
दा	कदा	(कब)
था	यथा	(जैसे)
धा	बहुधा	(प्रायः)
ज्झं	एकज्झं	(एक प्रकार से)
एधा	तेधा	(तीन प्रकार से)
क्खत्तं	तिक्खत्तं	(तीन बार)
सो	अनेकसो	(अनेक प्रकार से)
ची	गामीकरोति	(जो ग्राम नहीं है, उसे ग्राम बनाता है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्त्रीप्रत्यय

प्रत्यय	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग
आ	अजो (बकरा)	अजा (बकरी)
ई	कुमारो	कुमारी
इनी	यक्खो	यक्खिनी, यक्खी
नी	दण्डी (दण्डवाला)	दण्डिनी (दण्डवाली)
आनी	मातुलो (मामा)	मातुलानी (मामी)
ऊ	वामोरु (सुन्दर जाँघोंवाला)	वामोरू सुन्दर जाँघोंवाली)
ति	युवा	युवती

मन्तत्थक

मति + मन्तु = मतिमन्तु=मतिवाला

सील + वन्तु = सीलवन्तु=शीलवाला

धन + इक=धनिक=धनवाला

धन + ई=धनी=धनवाला

तप + स्सी=तपस्सी=तपस्वी

दया + आलु=दयालु=दयावाला

मेधा + वी=मेधावी=मेधावाला (बुद्धिमान्)

पुत्त + इम=पुत्तिमो=पुत्रवाला

भाववाचक

बुद्ध + त्त= बुद्धत्तं=बुद्धत्व

मनुस्स + ता=मनुस्सता=मनुष्यता

अणु + इम=अणिमा=अणुत्व

देवताज्जत्थक

'सुगतो देवता अस्सत' इस अर्थ में सुगत + ण=सोगत=बौद्ध

'माघी पुण्णमासी अस्स मासस्स सम्बन्धिनी' इस अर्थ में माघी + ण=माघो=माघ (महीना)

'वीणा वादनं सिप्पमस्स' इस अर्थ में वीणा + णिक→इक=वेणिको, जिसे वीणा बजाने की कला ज्ञात हो।

इसी प्रकार शील, पण्य, अस्त्र, निन्दा, अज्ञात आदि अर्थों में विभिन्न प्रत्यय होते हैं।

अपच्चत्थक

'वसिट्ठस्स अपच्चं' इस अर्थ में वसिट्ठ + ण=वासिट्ठो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'कच्चस्स गोत्तपच्चं (पुं०)' इस अर्थ में कच्च+णान=कच्चानो, कच्च+णायन=कच्चायनो आदि ।

कृदन्त-प्रकरण

धातु से दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं, आख्यात प्रत्यय और कृत् प्रत्यय। आख्यात प्रत्यय से अतिरिक्त जो प्रत्यय धातु से होते हैं उन सबको कृत् प्रत्यय कहते हैं और इनसे बने शब्दों को कृदन्त। ये कृदन्त शब्द नाम शब्दों की भाँति होते हैं।

धातु दो प्रकार के होते हैं—सकर्मक और अकर्मक। सकर्मक धातु से कर्त्ता और कर्म में प्रत्यय होते हैं और अकर्मक से कर्त्ता और भाव में प्रत्यय होते हैं। इन्हें ही कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य कहते हैं। आख्यात प्रत्यय हों या कृत् प्रत्यय, दोनों, इन तीनों वाच्यों में स्वभावतः होंगे। ये कृदन्त शब्द प्रायः विशेषण की तरह प्रयुक्त होते हैं, अतः अपने विशेष्य के साथ संगति करने के लिए तीनों लिंगों में होते हैं। कुछ कृदन्त शब्द वर्तमान काल, कुछ अतीत काल, कुछ अनागत काल तथा कुछ भाव (क्रिया) वाचक होते हैं। यथा—

	पुंल्लिग	नपुंसकलिंग	स्त्रीलिंग
वि (उपसर्ग) + √जि + क्तवन्तु =	विजितवा	विजितवं	विजितवती
वि + √जि + क्तावी	विजितावि	विजितावि	विजिताविनी

√हस + तब्ब=हसितब्बं (भाववाचक)
√हन + तब्ब=हन्तब्बो (पुं०), हन्तब्बं (नपुं०), हन्तब्बा (स्त्री०)
√हस + अनीय=हसनीयं (भाववाचक)
√कर + अनीय=करणीयो (पु०) करणीयं (नपुं०), करणीया (स्त्री०)
√चि + घ्यण→य=चेय्यो (पुं०), चेय्यं (नपुं०), चेय्या (स्त्री०)
√पठ + न्त=पठन्तो (पुं०), पठन्तं (नपु०), पठन्ती (स्त्री०)
√पठ + मान=पठमानो (पुं०), पठमानं (नपुं०), पठमाना (स्त्री०)
√गम + क्त=गतो (पु०), गतं (नपुं०), गता (स्त्री०)
√दा + ल्तु→तु=दातु (पुं०, नपुं०, स्त्री०)
√दा + णक→अक=दायको (पुं०) दायकं (नपुं०), दायिका (स्त्री०)
√चि + अ=चय (भाववाचक)
√चज + घण=चागो (भाववाचक)
√गम + क्ति=गति (भाववाचक)
√दा + अन=दानं (भाववाचक)
√हा + नि=हानि (भाववाचक)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समास-प्रकरण

मोग्गलान व्याकरण में 'स्यादि स्यादिनेकत्थं' (३, १) तथा कच्चायन-व्याकरण में 'नामानं समासो युत्तत्थो' (२, ७, १) सूत्रों द्वारा समास की परिभाषा बतायी गयी है। तात्पर्य यह है कि दो या दो से अधिक विभिन्नार्थक स्याद्यन्त (विभक्त्यन्त) पदों का एक अर्थ में प्रयोग समास कहलाता है। ये समास अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, तथा द्वन्द्व चार प्रकार के होते हैं। तत्पुरुष का भेद कर्मधारय आर उसका भेद द्विगु होता है। बहुव्रीहि समास समानाधिकरण और व्यधिकरण दो प्रकार का होता है। द्वन्द्व के भेद समाहारद्वन्द्व और इतरेतरद्वन्द्व होते हैं!

नगरस्स समीपं=उपनगरं (अव्ययीभाव)

रञ्ञो पुरिसो=राजपुरिसो (तत्पुरुष)

दुतिया से सत्तमी तक सब विभक्तियों के साथ तत्पुरुष समास होता है।

नीलं च तं उप्पलं च=नीलुप्पलं (कर्मधारय)

पञ्चन्नं गुन्नं समाहारो=पञ्चगवं (द्विगु)

वजिरं पाणिम्हि यस्स सो=वजिरपाणि (व्यधिकरण बहुव्रीहि)

लम्बं उदरं यस्स सो=लम्बोदरो (समानाधिकरण बहुव्रीहि)

माता च पिता च=मातापितरो (इतरेतर द्वन्द्व)

गंगा च यमुना च=गंगयमुनं (समाहार द्वन्द्व)

आख्यात-प्रकरण

पालि-भाषा में मोग्गलानधातु-पाठ के अनुसार प्रायः ५०० से कुछ अधिक और कच्चायन व्याकरण के अनुसार स्थविर सीलवंस द्वारा लिखित धातुमंजूसा के अनुसार प्रायः आठ सौ धातु हैं। इन समग्र धातुओं के रूपों की दृष्टि से इन्हें ९ गणों में विभक्त किया गया है। यथा—

१. भ्वादि—भवति, पचति, पठति, आदि।

२. रुधादि—रुन्धति, मुंचति आदि।

३. दिवादि—दिब्बति, भिज्जति, झायति आदि।

४. तुदादि—तुदति, लिखति आदि।

५. ज्यादि—जिनाति, जानाति (ञा धातु) आदि।

६. क्यादि—किणाति, सुणाति आदि।

७. स्वादि—सुणोति, वुणोति आदि।

८. तनादि—तनोति, करोति आदि।

९. चुरादि—चोरेति, अच्चयति आदि।

उदाहरण के लिए भ्वादिगण के भू धातु के समस्त रूप नीचे दिये जा रहे हैं। इन्हीं रूपों के समान प्रायः भ्वादिगण के शेष धातुओं के रूप तथा अन्य गणों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के धातुओं के रूपों को भी, उन-उन गणों के कारण होनेवाले परिवर्तनों सहित समझना चाहिए।

'भू' धातु
वर्त्तमान काल
'परस्सपद'

	एकवचन	बहुवचन
पठम पुरिस	भवति	भवन्ति
मज्झिम पुरिस	भवसि	भवथ
उत्तम पुरिस	भवामि	भवाम

अनुञ्ञा

	एकवचन	बहुवचन
पठम पुरिस	भवतु	भवन्तु
म० पु०	भव, भवाहि	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवाम

विधिलिङ्

	ए० व०	ब० व०
प० पु०	भवेय्य, भवे	भवेय्युं
म० पु०	भवेय्यासि	भवेय्याथ
उ० पु०	भवेय्यामि	भवेय्याम

अतीत काल (परिसमाप्त्यर्थक)

	ए० व०	ब० व०
प० पु०	अभवि, भवि, अभवी, भवी	अभवुं, भवुं, अभविंसु, भविंसु, अभवंसु, भवंसु
म० पु०	अभवो, भवो, अभवि, भवि	अभवित्थ, भवित्थ, अभवुत्थ, भवुत्थ
उ० पु०	अभविं, भविं	अअभविम्ह, भविम्ह, अभविम्हा, भविम्हा, अभवुम्हा, भवुम्हा

अनज्जतन (अनद्यतन) अतीतकाल

	ए० व०	ब० व०
प० पु०	भवा, अभवा, अभव	अभवु, अभवू
म० पु०	अभवो	अभवित्थ, अभवुत्थ
उ० पु०	अभव	अभवुम्हा, अभविम्हा, अभविम्ह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परोक्ष अतीत

	ए० व०	ब० व०
प० पु०	बभूव	बभूवु
म० पु०	बभूवे	बभूवित्थ
उ० पु०	बभूव	बभूविम्ह

कालातिपत्ति (हेतुहेतुमद्भूत)

	ए० व०	ब० व०
प० पु०	अभविस्सा	अभविस्संसु
म० पु०	अभविस्से	अभविस्सथ
उ० पु०	अभविस्सं	अभविस्सम्हा

भविष्यत्काल

	ए० व०	ब० व०
प० पु०	भविस्सति	भविस्सन्ति
म० पु०	भविस्ससि	भविस्सथ
उ० पु०	भविस्सामि	भविस्साम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट 'ख'

प्राकृत-व्याकरण

प्राकृत की वर्णसङ्घटना

वैयाकरणों ने प्राकृत के कई भेद बताये हैं। वे सभी प्राकृत कुछ समान विशेषताओं के साथ-साथ अपनी विशिष्टताएँ रखती हैं। यथा पैशाची में 'ट' के लिए 'त' ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। 'ल' ध्वनि के लिए 'ळ' ध्वनि पायी जाती है। अर्धमागधी में मध्यवर्ती असंयुक्त 'क' ध्वनि 'ग', 'त' और 'य' में परिवर्तित हो जाती है, दो स्वरों के बीच में स्थित 'प' ध्वनि प्रायः 'व' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। जैन महाराष्ट्री में भी प्रायः अर्धमागधी की विशेशताएँ वर्तमान हैं। शौरसेनी में स्वरों के बीच में आनेवाली असंयुक्त 'त' और 'द' ध्वनि 'द' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है, स्वरों के बीच में आनेवाली असंयुक्त 'थ' ध्वनि, 'ह' और 'ध' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है, 'य' ध्वनि के स्थान पर 'ज्ज' और 'य्य' ध्वनि प्रयुक्त होती है। मागधी में 'र' ध्वनि के स्थान पर सर्वत्र 'ल' ध्वनि का प्रयोग होता है, 'स' 'ष' 'श' तीनों ध्वनियों के स्थान पर 'श' ध्वनि का प्रयोग होता है। ये उपर्युक्त कुछ विशिष्टताएँ हैं। इन विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी सामान्य विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर इन समस्त भाषाओं को एक बृहद् नाम प्राकृत दिया जाता है। उनमें से कुछ विशेषताओं को नीचे दिया जा रहा है—

स्वर :—प्राकृत में ऋ, ॠ और ऌ ध्वनियाँ लुप्त हो गयी हैं। इन ध्वनियों का स्थान निम्नलिखित ध्वनियों ने ले लिया है—

१. 'ऋ' के लिए प्रयुक्त 'इ' ध्वनि :—प्राकृत में प्रायः 'ऋ' ध्वनि के लिए 'इ' ध्वनि का प्रयोग होता है, यथा—समृद्धि > सामिद्धि, मातृ > माइ।

२. 'ऋ' के लिए 'अ' ध्वनि :—प्राकृत में 'ऋ' के लिए 'अ' ध्वनि का प्रयोग होता है यथा – तृण > तण।

३. ऋ के लिए 'आ' ध्वनि :—'ऋ' के लिए 'आ' ध्वनि का प्रयोग प्रायः प्राकृत भाषा में पाया जाता है। यथा—मृदुक=माउक्क।

४. 'ऋ' के लिए 'उ' ध्वनि का प्रयोग—प्राकृत भाषा में 'ऋ' ध्वनि के लिए 'उ' ध्वनि का प्रयोग प्रायः होता है यथा—मृषा > मुसा, ऋतु > उतु।

५. 'ऋ' के लिए 'रि' ध्वनि का प्रयोग—'ऋ' के लिए 'रि' ध्वनि प्रायः प्राकृत भाषा में प्रयुक्त होती है। यथा—ऋतु > रिउ, ऋद्धि > रिद्धि, ऋक्ष > रिच्छ दृप्त > दरिअ आदि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६. 'ऌ' ध्वनि के लिए 'इलि' ध्वनि का प्रयोग—प्राकृतभाषा में 'ऌ' ध्वनि के लिए 'इलि' ध्वनि का प्रयोग प्रायः मिलता है। यथा—क्लृप्त > किलित्त, क्लृन्न > किलिण्ण।

७. 'अ' ध्वनि के लिए प्रायः प्राकृत भाषा में 'आ' ध्वनि भी प्रयुक्त होती है। यथा—समृद्धि > सामिद्धि।

८. 'अ' ध्वनि के लिए 'इ', 'ई', ध्वनि का प्रयोग भी प्रायः प्राकृत भाषा में मिलता है। यथा—ईषत् > ईसि, हर > हीर।

९. 'अ' ध्वनि के लिए 'एं' ध्वनि का प्रयोग प्रायः प्राकृत भाषा में मिलता है। यथा—शय्या > सेज्जा।

१०. 'अ' ध्वनि के लिए 'ओ' ध्वनि का प्रयोग भी प्राकृत में होता है। यथा-पद्म > पोम्म।

११. 'आ' ध्वनि के लिए, 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ' 'ए' और 'ओ' ध्वनियाँ प्राकृत-भाषा में प्रयुक्त होती हैं। यथा—सदा > सइ, स्त्यान > थीण, सास्ना > सुण्हा, आसार > ऊसार, ग्राह्य > गेज्झ, आली > ओली आदि।

१२. 'इ' ध्वनि के लिए 'अ', 'ई', 'उ', 'ए' और 'ओ' ध्वनियों का प्रयोग प्राकृत भाषा में होता है। यथा —इति > इअ, पथिन् > पह, जिह्वा > जीहा, द्विवचन > दुवअण, पिण्ड > पेंड, द्विधाकृत > दोहाइअ।

१३. 'ई' ध्वनि के लिए 'अ', 'आ', 'इ' 'उ', 'ऊ', 'ए' ध्वनियों के प्रयोग प्राकृत-भाषा में प्रायः उपलब्ध होते हैं। यथा—हरीतकी > हरडई, कश्मीर > कम्हार, पानीय > पाणिअ, जीर्ण > जुण्ण, हीन > हूण, पीयूष > पेऊस आदि।

१४. 'उ' ध्वनि के लिए 'अ' 'इ', 'ई', 'ऊ', 'ओ' ध्वनियों का प्रयोग प्रायः प्राकृत-भाषा में होता है। यथा—मुकुल > मऊल, क्षुत > छीअ, मुसल > मूसल, तुण्ड > तोंड।

१५. 'ऊ' ध्वनि के लिए 'अ' 'ई' 'उ' 'ए' और 'ओ' ध्वनि का प्रयोग प्राकृत-भाषा में मिलता है। यथा—सूक्ष्म > सण्ह, उद्व्यूढ > उव्वीढ, वातुल > बाउल, नूपुर > णेउर, तूणीर > तोणीर।

१६. 'ए' ध्वनि के लिए 'इ' और 'ऊ' ध्वनियों के प्रयोग प्रायः प्राकृत भाषा में मिलते हैं। यथा—वेदना > विअणा, स्तेन > थूण।

१७. 'ओ' ध्वनि के लिए 'अ', 'उ', 'आ' और ऊ ध्वनियों के प्रयोग प्राकृत भाषा में मलिते हैं। यथा—मनोहर > मणहर, गो > गउ और गाअ, सोच्छ्वास > सूसास।

१८. प्राकृत में 'ऐ' और 'औ' ध्वनियाँ लुप्त हो गयी हैं। इनके लिए क्रमशः 'ए' और 'ओ' ध्वनियों के प्रयोग उपलब्ध होते हैं। कुछ विशिष्ट स्थलों पर 'ऐ' के लिए 'अइ' और 'औ' के लिए 'उ' एवं 'अउ' ध्वनियों के प्रयोग भी मिलते हैं। यथा—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शैल > सेल, एरावण > एरावण, सैन्य > सेण्ण और सइण्ड कैलास > केलास, और कइलास, कौमुदी > कोमुई, दौवारिक > दुवारिअ, कौरव > कउरव, गौड > गउड ।

व्यञ्जन—(१) दो स्वरों के बीच में आनेवाली, क, ग, च, ज, त, द, प, य, व ध्वनियां प्रायः प्राकृत-भाषा में लुप्त हो जाती हैं । यथा—लोक > लोअ, नग > णअ, शची > सई, रजत > रअअ, यती > जई, गदा > गआ, वियोग > विओअ, लावण्य > लाअण्ण आदि ।

(२) दो स्वरों के बीच में आनेवाली ख, घ, थ, ध और 'भ' ध्वनियां प्राकृत-भाषा में 'ह' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती हैं । यथा—शाखा > साहा, श्लाघते > लाहइ, नाथ > णाह, साधु > साहु, सभा > सहा आदि ।

(३) दो स्वरों के बीच आनेवाली 'ट' ध्वनि के लिए 'ड' ध्वनि का प्रयोग मिलता है । यथा—भट > भड, घट > घड ।

(४) स्वरों के बीच की 'ठ' ध्वनि 'ढ' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है । यथा—मठ > मढ, पठति > पढइ ।

(५) स्वरों के बीच की 'ड' ध्वनि 'ल' ध्वनि के रूप में प्रयुक्त होती है । यथा—गरुड > गरुल ।

(६) 'न' के स्थान पर सर्वत्र 'ण' ध्वनि पायी जाती है । यथा—कनक > कणअ, वचन > वअण, नर > णर, नदी > णई ।

(७) आदि में आनेवाली 'य' ध्वनि के स्थान पर 'ज' ध्वनि का प्रयोग प्राकृत भाषा में प्रायः मिलता है । यथा—यम > जम, याति > जाइ आदि ।

(८) 'श' 'ष' 'स' ध्वनियों के स्थान पर 'स' ध्वनि प्रयुक्त होती है । यथा—शब्द > सद्द, पुरुष > पुरिस, शस्य > सास ।

(९) 'क्ष' के स्थान पर 'ख' 'छ' और 'झ' ध्वनियों का प्रयोग होता है । यथा—क्षय > खय, अक्षि > अच्छि, क्षीण > झीण ।

(१०) 'त्व', 'थ्व', 'द्व', 'ध्व' ध्वनियों के स्थान पर क्रमशः 'च', 'छ', 'ज' और 'झ' ध्वनियां होती हैं । यथा—ज्ञात्वा > णच्चा, पृथ्वी > पिच्छी, विद्वान् > विज्जं, बुद्ध्वा > बुज्झा ।

(११) 'ज्ञ' ध्वनि के स्थान पर 'ण' एवं 'ज' ध्वनियां प्रयुक्त होती हैं । यथा—ज्ञान > णाण, प्रज्ञा > पज्जा ।

(१२) स्वरभक्ति के द्वारा भी प्राकृत-भाषा में दो संयुक्त व्यञ्जन ध्वनियों को पृथक् किया जाता है । यथा—अर्हत् > अरह, अरिह, अरुह, आदर्श > आयरिस, हर्ष > हरिस, क्लिष्ट > किलिट्ठ आदि ।

(१३) व्यत्यय के द्वारा भी कभी-कभी प्राकृत-भाषा में ध्वनियों में परिवर्तन हो जाते हैं । यथा—करेणु > कणेरू, महाराष्ट्र > मरहट्ठ, हरिताल > हलिआर, गुह्य > गुय्ह, सह्य > सय्ह आदि ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सन्धि

(१) समस्त पद में प्रायः ह्रस्वस्वर का दीर्घ एवं दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर हो जाता है। यथा—अन्तर्वेदि > अन्तावेइ, नदीस्रोत > णइसोत्त आदि।

(२) यदि एक शब्द के अन्तिम स्वर के बाद कोई स्वर आवे तो पूर्व स्वर का प्रायः लोप हो जाता है। यथा—त्रिदशेश > तिअसीस।

(३) संयुक्त व्यञ्जन का पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व होता है। यथा—आस्य > अस्स, चूर्ण > चुण्ण आदि।

नामप्रकरण

अकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

'पुत्त'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुत्तो	पुत्ता
द्वितीया	पुत्तं	पुत्ते, पुत्ता
तृतीया	पुत्तेण, पुत्तेणं	पुत्तेहि, पुत्तेहिं, पुत्तेहिँ
चतुर्थी	पुत्ताअ	पुत्ताण, पुत्ताणं, पुत्ताणँ
पञ्चमी	पुत्ताओ, पुत्ताउ, पुत्ता, पुत्ताहि, पुत्ताहिंतो	पुत्तेहि, पुत्ताहि, पुत्ताओ, पुत्ताउ, पुत्ततो, पुत्तासुंतो, पुत्तेसुंतो, पुत्ताहिंतो
षष्ठी	पुत्तस्स	पुत्ताण, पुत्ताणं, पुत्ताणँ
सप्तमी	पुत्तम्मि, पुत्ते	पुत्तेसु, पुत्तेसुं, पुत्तेसुँ
सम्बोधन	पुत्त, पुत्ता	पुत्ता

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

'फल'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलं	फलाइ, फलाइं, फलाइँ, फलइँ
द्वितीया	फलं	फलाइ, फलाइं, फलाइँ, फलइँ
सम्बोधन	फल	फलाइ, फलाइं, फलाइँ

शेष रूप 'पुत्त' की भाँति समझने चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

'माला'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	माला	मालाओ
द्वितीया	मालं	मालाउ
तृतीया	मालाए, मालाइ, मालाअ	मालाहि, मालाहिँ, मालाहिं
चतुर्थी	मालाए	मालाण, मालाणँ, मालाणं
पञ्चमी	मालाओ, मालाउ	मालाहितो
षष्ठी	मालाए, मालाइ, मालाअ	मालाण, मालाणँ, मालाणं
सप्तमी	मालाए, मालाइ, मालाअ	मालासु, मालासुं, नालासुं
सम्बोधन	माले, माला	माला

इकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

'अग्गि'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	अग्गी (अग्गि)	अग्गिणो, अग्गी, अग्गीओ, अग्गओ, अग्गउ
द्वितीमा	अग्गिं	अग्गिणो, अग्गी, अग्गओ
तृतीया	अग्गिणा	अग्गीहि, अग्गीहिँ, अग्गीहिं
चतुर्थी	[अग्गिणो, अग्गिस्सं]	अग्गीण, अग्गीणँ, अग्गीणं
पञ्चमी	अग्गीओ, अग्गीउ, अग्गिणो, अग्गिहितो	अग्गीहितो, अग्गिहुँ
षष्ठी	अग्गिणो, अग्गिस्स	अग्गीण, अग्गीणँ, अग्गीणं
सप्तमी	अग्गिम्मि	अग्गीसु, अग्गीसुँ, अग्गीसुं
सम्बोधन	अग्गि, अग्गी	अग्गिणो, अग्गी

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

'दहि'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	दहिं, दहिँ, दहि	दहीइं, दहीइँ, दहीणि
द्वितीया	दहिं, दहिँ, दहि	,, ,, ,,
सम्बोधन	दहि	,, ,, ,,

शेष रूप इकारान्त 'अग्गि' की भाँति समझने चाहिए ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

'रुइ' (रुचि)

	एकवचन
तृतीया	रूईअ
पञ्चमी	रूईआ
षष्ठी	रूईइ
सप्तमी	रूईए

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के अवशिष्ट रूप आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की भाँति होते हैं ।

उकारान्त पुंलिलङ्ग शब्द

'वाउ' (वायु)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाऊ (वाउं)	वाउणो, वाऊ, वाऊओ, वाअवो, वाअओ, वाअउ
द्वितीया	वाउं	वाउणो, वाऊ
तृतीया	वाउणा	वाऊहि, वाउहिँ, वाऊहिं
चतुर्थी	वाउणो, वाउस्स	वाऊण, वाऊणँ, वाऊणं
पञ्चमी	वाऊओ, वाऊउ	वाऊहिंतो, वाऊसुंतो, वाउत्तो वाऊओ
षष्ठी	वाउणो, वाउस्स	वाऊण, वाऊणँ, वाऊणं
सप्तमी	वाउम्मि	वाऊसु. वाऊसूं, वाऊसु
सम्बोधन	वाउ, वाऊ	वाअवो

उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

'महु' (मधु)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	महुं, महुँ, महु	महूइं, महूइँ, महूणि महू
द्वितीया	महुं, महुँ, महु	,, ,, ,,
सम्बोधन	महु	,, ,, ,,

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

'धेणु' (धेनु)

	एकवचन
तृतीया	धेणूअ
पञ्चमी	धेणूआ
षष्ठी	धेणूइ
सप्तमी	धेणूए

'धेणु' शब्द के शेष रूप आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'माला' की भाँति होंगे ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

'वहू' (वधू)

	एकवचन	
तृतीया	वहूअ	शेष रूप आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'माला' की भाँति समझने चाहिए।
पञ्चमी	वहूआ	
षष्ठी	वहूआ	
सप्तमी	वहूए	

इन उपर्युक्त रूपावलियों के अतिरिक्त कुछ और भी रूप हैं, जिनमें पर्याप्त अनियमितताएँ पायी जाती हैं। यथा—पिउ, भत्तु। कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जिनके प्राचीन रूप कुछ विभक्तियों और कुछ वचनों में पाये जाते हैं, यथा—गो, नौ आदि।

पिअर', पिउ' = (पिता)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिआ (पिअरो)	पिउणो, पिअरा, पिऊ, पिअउ, पिअओ, पिअवो
द्वितीया	पिअरं	पिउणो, पिअरा, पिअरे, पिऊ
तृतीया	पिउणा, पिअरेण, पिअरेणं	पिअरेहि, पिअरेहिं, पिअरेहिँ, पिऊहि, पिऊहिं, पिऊहिँ
चतुर्थी और षष्ठी	पिउणो, पिअरस्स, पिउस्स	पिऊण, पिईण, पिऊणं, पिऊणं, पिअराण, पिअराणं
पञ्चमी	पिवरत्तो, पिअरा, पिअउ, पिअओ, पिअहि, पिअहिंतो, पिउतो, पिउणो, पिऊउ, पिऊओ, पिऊहिन्तो	पिअरत्तो, पिअराउ, पिअरोओ, पिअराहि, पिअराहिन्तो, पिअरासुन्तो, पिअरेहि, पिअरेहिन्तो, पिअरेसुन्तो, पिउत्तो, पिऊउ, पिऊओ, पिऊहिन्तो, पिऊसुन्तो
सप्तमी	पिअरे, पिअरम्मि, पिउम्मि,	पिऊसु, पिअरेसुं, पिअरेसु, पिऊसुं
सम्बोधन	पिअ, पिआ, पिअरं, पिअरो, पिअर	पिअरा, पिऊ, पिऊणो, पिअउ, पिअओ, पिअवो

सर्वनाम प्रकरण

'युष्मद् शब्द'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तुमं, तुं, तं	तुम्हे, तुब्भे
द्वितीया	तुमं	तुम्हे, तब्भे, वो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृतीया	तए, तइ, तुइ, तुमए, तुमाइ, तुमें, ते, दे	तुम्हेहिं, तुब्भेहि
पञ्चमी	तत्तो, तुमाहि, तुमाहिंतो, तुताओ, तुवत्तो, तुज्झतो, तुमा, तुवा, तुहा, तुम्हा, तुब्भा	तुब्भो, तुज्झत्तो, तुम्हत्तो, उब्भत्तो, उम्हत्तो, उज्झत्तो
चतुर्थी और षष्ठी	तव, तुज्झ, तुह, तुहं, तुब्भ, तुब्भं, तुम्ह, तुम्हं, ते, दे, तु तुमं, तुम्म	तुम्हाणं, तुम्हाण, तुम्हं तुम्हं तुब्भं
सप्तमी	तइ, तुमम्मि, तुमे, तुवि, तुइ	तुम्हसु, तुम्हासु, तुज्झिसुं तुम्मिसुं

'अस्मद्' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहं, अहअं	अम्हे, वयं
द्वितीया	मं, ममं, महं, मे	अम्हे, अम्ह
तृतीया	मए, मइ, मे	अम्हेहिं
पञ्चमी	ममाओ, ममाहिंतो	अम्हत्तो, अम्हाहिंतो, महत्तो ममाहिंतो
चतुर्थी और षष्ठी	मम, मह, मज्झ, ममं महं, मज्झं, मे, मि	अम्हाणं, अम्हाण, अम्हं, अम्ह, म्ह, अम्हे
सप्तमी	मह, ममम्मि	अम्हेसु, अम्हासु

'त' (वह) शब्द : पुंलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सो	ते
द्वितीया	तं	ते
तृतीया	तेण	तेहिं
पञ्चमी	तो, ता	तेब्भो, (अर्द्धमागधी)
चतुर्थी और षष्ठी	तस्स, तास	ताणं, ताण
सप्तमी	तम्मि	तेसु

'त' (वह) सब्दः नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तं	ताइं
द्वितीया	तं	ताइं

शेष रूप पुंलिङ्ग की भाँति होंगे। ताइं

'त' शब्द : स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सा	ताओ
द्वितीया	तं	ताओ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

	एकवचन	बहुवचन
तृतीया	तीए, तीअ	ताहि
पञ्चमी	ताओ	तेब्भो (अर्द्धमागधी)
चतुर्थी और षष्ठी	तिस्सा, तीए, तीअ	ताणं, ताण
सप्तमी	तीए, तीअ	तासु

'य' (जो) के रूप 'त' की भाँति ही समझने चाहिए। प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क' के रूप 'त' की भाँति ही होंगे। शेष सर्वनामों के रूप प्रायः 'त' की भाँति ही होंगे।

संख्यावाचक शब्द

एक्क 'एक'

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	ऍक्क	एक्के
तृतीया	ऍक्केण	
सप्तमी	ऍक्कम्मि	

'एक्क' शब्द के शेष रूप अन्य सर्वनाम की भाँति ही चलते हैं।

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन
प्रथमा	एक्कं
द्वितीया	एक्कं

शेष रूप अन्य सर्वनाम को भाँति हो चलते हैं।

'दो' शब्द

	पुंल्लिङ्ग बहुवचन	स्त्रीलिङ्ग बहुवचन
प्रथमा	दो, दुवे, वे	दो
द्वितीया	दो दुवे, वे	दो
तृतीया	दोहिं, दोहि	दोहिं, दोहि
पञ्चमी	दोहितो, दोसुंतो	दोहितो, दोसुंतो
चतुर्थी और षष्ठी	दोण्ह, दोण्हं	दोण्ह, दोण्हं
सप्तमी	दोसुं, दोसु	दोसुं, दोसु

नपुंसकलिङ्ग

प्रथमा	दोण्णि, दुण्णि, बेण्णि, विण्णि
द्वितीया	,, ,, ,, ,,

शेष रूप पुंल्लिङ्ग की भाँति ही समझने चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'ति' शब्द (बहुवचन)

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्रथमा	तओ	तओ
द्वितीया	तओ	तओ
तृतीया	तीहिं	तीहिं
पञ्चमी	तीहितो, तीसुंतो	तीहितो. तीसुंतो
चतुर्थी और षष्ठी	तिण्हं, तिण्ह	तीण्हं, तीण्ह
सप्तमी	तीसु, तीसुं	तीसु, तीसुं

नपुंसकलिङ्ग
(बहुवचन)

प्रथमा	तिण्णि
द्वितीया	तिण्णि

शेष रूप पुल्लिङ्ग शब्द की भांति ही समझने चाहिए।

'चतुर' (चार) शब्द

	पुंल्लिङ्ग बहुवचन	स्त्रीलिङ्ग बहुवचन
प्रथमा	चत्तारो, चत्तारि	चतस्सो
द्वितीया	चउरो	चत्तारि
तृतीया	चउहिं	चउहिं
पञ्चमी	चउहितो, चउसुंतो	चउहितो, चउसुंतो
चतुर्थी और षष्ठी	चउण्हं	चउण्हं
सप्तमी	चउसु, चउसुं	चउसु, चउसु

नपुंसकलिङ्ग

	बहुवचन
प्रथमा	चत्तारि
द्वितीया	चत्तारि

शेष रूप पुंल्लिङ्ग की भांति समझने चाहिए।

'पञ्च' शब्द

	पुंल्लिङ्ग बहुवचन	स्त्रीलिङ्ग बहुवचन
प्रथमा	पञ्च	पञ्चा
द्वितीया	पञ्च	
तृतीया	पञ्चहिं	पञ्चाहिं
पञ्चमी	पञ्चहितो, पञ्चसुंतो	
चतुर्थी और षष्ठी	पञ्चण्हं, पञ्चन्नं	
सप्तमी	पञ्चसु, पञ्चसुं	

शेष रूप पुंल्लिङ्ग की भांति समझने चाहिए।

नपुंसकलिङ्ग के रूप पुंल्लिङ्ग की भांति ही समझने चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'छ' शब्द

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिंग
प्रथमा	छ	छाओ
द्वितीया	छ	छाओ
तृतीया	छहिं	छआहिं, छाहिं
पञ्चमी	छअहिंतो	छआहिंतो
चतुर्थी और षष्ठी	छण्हं, छसु	छअण्णं
सप्तमी	छसु	छसु, छोसु

	'सत्त' शब्द	'अट्ठ' शब्द	'नव' शब्द
प्रथमा	सत्त	अट्ठ	नव
द्वितीया	सत्त	अट्ठ	नव
तृतीया	दत्तहिं,	अट्ठहिं	नवहिं
पञ्चमी	सत्तहिंतो, सत्तसुंतो	अट्ठहिंतो, अट्ठसुंतो	नवहिंतो, नवसुंतो
चतुर्थी और षष्ठी	सत्तण्हं, सत्तण्ह	अट्ठण्हं, अट्ठण्ह	नवण्हं, नवण्ह
सप्तमी	सत्तसु	अट्ठसु	नवसु

'दस' शब्द

प्रथमा	स
द्वितीया	दसं
तृतीया	दसहिं, दसहि
पञ्चमी	दसहिंतो, दससुंतो
चतुर्थी और षष्ठी	दसण्हं, दसण्ह
सप्तमी	दससु

सत्त से दस तक के शब्दों के रूप सभी लिंगों में समान होते हैं।

'एक्कारस' से अठ्ठारस तक के शब्दों के रूप समान चलते हैं। इसी प्रकार, एगूणवीस (उन्नीस) से ५८ तक के रूप नपुंसकलिंग एकवचन में होते हैं। इन शब्दों के रूप शब्द में 'अं' जोड़कर बनते हैं, अथवा अन्त में 'आ' जोड़कर स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं। ५९ से ९९ तक के शब्दों के रूप कर्त्ता एकवचन में नपुंसकलिंग में चलते हैं। शब्द के अन्त में 'इं' जोड़कर नपुंसकलिंग शब्दों की रचना होती है। शेष कारकों में इनके रूप स्त्रीलिंग एकवचन में ही होते हैं। स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए शब्द के अन्त में 'ई' जोड़ा जाता है।

'सत' (१००) शब्द की रूपावली अकारान्त नपुंसकलिंग को भाँति ही होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तद्धित-प्रकरण

प्राकृत-भाषा में संस्कृत की भाँति ही तद्धित प्रत्यय होते हैं। उनमें से उदाहरण के लिए कुछ प्रत्ययों को दिया जा रहा है—

(१) आलु, आल, इल्ल और उल्ल प्रत्यय--इन प्रत्ययों को 'वाला' अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है :

णिद्दा + आलु=णिद्दालु (निद्रालु)
घण + आल=घणाल (घनवत्)
भास + इल्ल=भासिल्ल (भाषिन्)
मंस + उल्ल=मंसुल्ल (मांसवद्)

(२) 'त्त' प्रत्यय--
पुप्फ + त्त = पुप्फत्त (पुष्पत्व)
देव=त्त=देवत्त (देवत्व)

(३) 'त्तण' प्रत्यय--
महुर (मधुर) + त्तण=महुरत्तण
मइ (मति) + त्तण=मइत्तण
बम्ह < त्तण=बम्हत्तण

(४) 'क' प्रत्यय--स्वार्थ में प्राकृत में शब्दों से 'क' प्रत्यय लगते हैं। प्रायः 'क' का 'अ' शेष रह जाता है। यथा--
बहुअ + 'क' (य)=बहुअय
तुम्बवीण + 'क' (इय)=तुम्बवीणिय

(५) 'इत्त' प्रत्यय--संस्कृत के मत् और वत् प्रत्ययों के अर्थ में प्राकृत भाषा में 'इत्त' प्रत्यय होता है।
यथा—कव्व + इत्त=कव्वइत्त, माण + इत्त=माणइत्त

(६) 'मत्', 'वत्' प्रत्ययों के अर्थ में ही 'मन्त' एयं 'वन्त' प्रत्यय प्राकृत भाषा में पाये जाते हैं—
आयार + वत्त=आयारवत्त (आचारवन्त)
चित्त + मन्त = चित्तमन्त। आदि।

इसी प्रकार बहुत-से अन्य तद्धित प्रत्यय भी प्राकृत-भाषा में प्रयुक्त होते हैं।

कृदन्त-प्रकरण

जिन प्रत्ययों को धातु में लगाया जाता है उन प्रत्ययों को कृत् प्रत्यय कहते हैं तथा इनसे बने हुए शब्दों को कृदन्त शब्द कहते हैं। प्राकृत-भाषा में पाये जानेवाले कृत् प्रत्ययों में से कुछ प्रत्ययों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) शीलाद्यर्थक 'इर' प्रत्यय—शील अर्थ बताने के लिए धातुओं में 'इर' प्रत्यय लगते हैं। इस प्रत्यय के लिए संस्कृत में 'तृ' प्रत्यय प्रयुक्त होता है—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यथ√गम + इर = गमिर (गमनशाल)

√णम + इर = णमिर (नमनशील)

(२) तुम प्रत्यय--

√पठ + तुम (उं) = पठिउं (पढिउं)

√सो + तुम (उं) = सोउँ

(३) 'अ' प्रत्यय--

√पठ + अ = पढिअ

(४) 'तूण'--

√पठ + तूण (ऊण) = पढिऊण

√कर + तूण (ऊण) = करिऊग

(५) तुआण--

√पठ + तुआण (उआण) = पढिउआण

(६) त्ता--

√पिच + त्ता = पिवित्ता, √गम + त्ता = गन्ता

इन कृदन्त प्रत्ययों के अतिरिक्त और भी प्रत्यय हैं, जिन्हें महत्त्वपूर्ण न होने के कारण नहीं दिया जा रहा है।

आख्यात-प्रकरण

प्राकृत-भाषा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि से दशम तक दश गण होते हैं। ये दशों गण संस्कृत के भ्वादि, अदादि से चुरादिगण तक के लिए प्रयुक्त होते हैं। प्राकृत-भाषा में सप्तमगण अर्थात् संस्कृत के तुदादिगण के रूपों का लोप हो गया है।

जहाँ तक परस्मैपद और आत्मनेपद का प्रश्न है, ये दोनों पद प्राकृत-भाषा में पाये जाते हैं। प्रत्येक धातु, परस्मैपदी एवं आत्मनेपदी, दोनों प्रकार का होता है। भूतकाल में केवल एक ही प्रकार का रूप होता है। उसके सामान्य, अनद्यतन एवं परोक्ष के भेद लुप्त हो गये हैं। इन भूतकाल के रूपों के प्रयोग के स्थान पर प्रायः त प्रत्ययान्त कृदन्त रूपों के प्रयोग ही अधिकतर उपलब्ध होते हैं। भविष्यत्काल के रूपों में भी श्वस्तन भविष्यत्काल के रूपों का पूर्णतया लोप हो गया है। इस प्रकार भविष्यत्काल में भी केवल एक ही प्रकार के रूप प्राप्त होते हैं। भविष्यत्काल के प्रत्ययों के पूर्व धातुओं में 'हि' जोड़ दिया जाता है। भाव अर्थ में तथा कर्म अर्थ में धातुओं में इज्ज और ईय प्रत्यय लगाये जाते हैं। अधोलिखित पंक्तियों में इन उपर्युक्त नियमों को स्पष्ट करने के लिए कुछ धातु-रूपों को दिया जा रहा है।

वर्तमान

परस्मैपद (लट्लकार के अर्थ में)

'वट्ट' धातु

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वट्टइ	वट्टन्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मध्यम पुरुष	वट्टपि	वट्टह
उत्तम पुरुष	वट्टामि	वट्टामो

आत्मनेपद

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वट्टए	वट्टन्ते
मध्यम पुरुष	वट्टसे	×
उत्तम पुरुष	वट्टे	×

विधिलिङ् के अर्थ में

	एकवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	वट्टेॅज्जा, वट्टेॅज्ज	वट्टेॅज्जा, वट्टेॅज्ज
मध्यम पुरुष	वट्टेॅज्जसि, वट्टेॅज्जसि, वट्टेॅज्जाहि, वट्टेॅज्जाहि, वट्टेजासु वट्टेॅज्जासु, वट्टेॅज्जा	वट्टेॅज्जाह, वट्टेज्जह
उत्तम पुरुष	वट्टेॅज्जा, वट्टेॅज्ज, वट्टेॅज्जामि	बट्टेॅज्जाम

आज्ञावाचक (लोट् लकार के अर्थ में)

	एकवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	वट्टउ	वट्टन्तु
मध्यम पुरुष	वट्ट, बट्टसु, वट्टेसु, वट्टेहि	वट्टह
उत्तम पुरुष	वटामु, वट्टमु	वट्टामो, वट्टम्ह, वट्टेम्ह

भविष्यत्काल

	एकबचन	बहुवथन
प्रथम पुरुष	वट्टिस्सातिइ	वट्टिस्सन्ति
मध्यम पुरुष	वट्टिस्सइ	वट्टिस्सह
उत्तम पुरुष	वट्टिस्सामि	वट्टिस्सामो

भाव अर्थ में प्रयुक्त धातु में लगनेवाले प्रत्यय--भाव अर्थ में प्रयुक्त धातु में ईअ प्रत्यय लगते हैं यथा–√हस + ईअ + लट् = हसीअइ ।

कर्म अर्थ में प्रयुक्त धातु में लगनेवाले प्रत्यय––कर्म में प्रयुक्त धातु में 'इज्ज' प्रत्यय लगते हैं । यथा—हस + इज्ज = हसिज्जइ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट 'ग'

अपभ्रंश-व्याकरण

वर्णसङ्घटना

अपभ्रंश-भाषा में प्रायः वे ही ध्वनियाँ (स्वर एवं व्यञ्जन) पायी जाती हैं जो प्राकृत-भाषा में। स्वरों में 'ऐ', 'औ', 'ऋ' एवं 'ऌ' तथा 'अं' और 'अः' को छोड़कर संस्कृत की प्रायः समस्त स्वर-ध्वनियाँ अपभ्रंश में ज्यों की त्यों उपलब्ध होती हैं। 'ऐ' और 'औ' के स्थान पर 'ए' तथा 'ओ' ध्वनियों का प्रयोग होता है। इन दोनों ध्वनियों का परिस्थिति-विशेष में ह्रस्वीकरण भी हो जाता है। अपभ्रंश में 'अं' को स्वर न मानकर व्यञ्जन ध्वनि की श्रेणी में रखा जाता है। 'अः' ध्वनि का अपभ्रंश-भाषा में पूर्णतः लोप हो गया है।

पालि एवं कई अन्य प्राकृत-भाषाओं की भाँति अपभ्रंश-भाषा में केवल दन्त्य 'स' ध्वनि ही है। मूर्धन्य एवं तालव्य 'ष' और 'श' ध्वनि का प्रायः लोप हो गया है। शेष प्राकृत की ध्वनियाँ ही अपभ्रंश-भाषा में प्रायः सुरक्षित हैं।

संस्कृत की ध्वनियों से अपभ्रंश-भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों में कुछ विभिन्नताएँ आ गयी हैं, जिनमें से कुछ विशेष को गिना देना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) 'ऋ' के लिए 'अ', 'आ' तथा 'इ' ध्वनियों का प्रयोग—अपभ्रंश-भाषा में 'ऋ' ध्वनि के स्थान पर 'अ', तथा 'आ' ध्वनि का प्रयोग मिलता है। यथा—कृत्य= कच्च; काव्य। पृष्ठ = पिट्ठ।

(२) 'अ' के लिए 'ए', 'इ' और 'ई' का प्रयोग—अपभ्रंश-भाषा में 'ए', 'इ' तथा 'ई' ध्वनियाँ संस्कृत की 'अ' ध्वनि का प्रतिनिधित्व करती हैं। यथा—वचन= वेण, वीण। पृष्ठ=पिट्ठि।

(३) 'उ' ध्वनि के लिए 'अ', 'आ' तथा 'उ' ध्वनि का प्रयोग—'उ' ध्वनि का प्रतिनिधित्व 'अ' आ' ध्वनियाँ करती हैं।

परन्तु यत्र-तत्र 'उ' के लिए 'उ' ध्वनि का भी प्रयोग मिलता है। इस प्रकार परिवर्तन के साथ 'उ' ध्वनि के लिए 'उ' ध्वनि अपभ्रंश-भाषा में वर्तमान है। यथा— बाहु=बाह, बाहा, बाहु।

(४) 'ए' ध्वनि के लिए 'इ', 'ई' तथा 'ए' ध्वनियों का प्रयोग होता है। यथा— लेखा=लिह, लीह, लेह।

(५) स्वरों के मध्य में आनेवाली असंयुक्त 'क', 'ख', 'त', 'थ', 'प' तथा 'फ' ध्वनियों के स्थान पर प्रायः क्रमशः 'ग', 'घ' 'द', 'ध', 'ब' एवं 'भ' ध्वनियों का प्रयोग अपभ्रंश भाषा में पाया जाता है। यथा—विक्षोभकर = विच्छोहगर, सुखेन=सुघि, शपथ=सबध ('ब' और 'ध' ध्वनि के उदाहरण)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कथितं=कधिदु ('ध' और 'द' ध्वनि के उदाहरण)

सफलम् = सभलउँ ('भ' ध्वनि का उदाहरण)

(६) अपभ्रंश में कहीं-कहीं अनादि तथा असंयुक्त 'म' के लिए 'वँ' ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा—कमलं = कवँलु, भ्रमर=भवँरु, जेम=जेवँ।

(७) संस्कृत में व्यञ्जन-ध्वनि के बाद प्रयुक्त होनेवाली 'र' ध्वनि का अपभ्रंश-भाषा में कभी-कभी लोप हो जाता है। यथा—प्रिय=पिउ, चन्द्र=चन्द (चन्द्र)।

(८) संस्कृत-भाषा में जहाँ 'र' ध्वनि नहीं होती है, अपभ्रंश-भाषा में वहाँ भी 'र' ध्वनि का आगम हो जाता है। यह 'र' ध्वनि विकल्प से 'य' ध्वनि के लिए प्रयुक्त होती है। जहाँ 'य' ध्वनि के लिए 'र' ध्वनि नहीं होती है वहाँ उसका लोप हो जाता है। यथा—व्यास=व्रासु, वास। व्याकरण + व्रागरण, वागरण।

(९) आपद्, विपद् तथा संपद् की 'द' ध्वनि के लिए अपभ्रंश-भाषा में 'इ' ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा—आपद् = आपइ, विपद् = विपइ, संपद = संपइ।

(१०) महाराष्ट्री प्राकृत में प्रयुक्त होनेवाली 'म्ह' ध्वनि अपभ्रंश में 'म्भ' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। यथा—(ग्रीष्म) गिम्ह = गिम्भो, (श्लेष्म) सिम्ह= सिम्भो आदि।

नाम शब्दों के रूप—

अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

पुत्त (पुत्रः)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुत्तु, पुत्तउ, पुत्तो, पुत्त, पुत्ता	पुत्त, पुत्ता
द्वितीया	पुत्तु, पुत्तउ, पुत्तो, पुत्त, पुत्ता	पुत्त, पुत्ता
तृतीया	पुत्तेण, पुत्तें, पुत्ते, पुत्तिण, पुत्ति	पुत्तेंहिँ, पुत्तेहिँ, पुत्तेहि पुत्तेंहि, पुत्तिहिँ, पुत्तिंहि, पुत्तहिँ, पुत्तहि
पञ्चमी	पुत्तहेँ, पुत्तहे, पुत्तहु	पुत्तहु, पुत्तहु
चतुर्थी और षष्ठी	पुत्तस्सु, पुत्तसु, पुत्तहोँ, पुत्तहो, पुत्ताहँ पुत्तहँ, पुत्ताणं	
सप्तमी	पुत्ति, पुत्तइ, पुत्तेँ, पुत्ते, पुत्तए, पुत्तएँ, पुत्तहिं, पुत्तहि	पुत्तेंहिं, पुत्तिहिं, पुत्तहिं
(आमन्त्रण) सम्बोधन	पुत्त, पुत्ता	पुत्तहो

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

कमल

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	कमलु, कमल	कमलइं, कमलइँ
द्वितीया	कमलु, कमल	कमलइं, कमलइँ

कमल शब्द के अवशिष्ट रूप अकारान्त पुंल्लिङ्ग 'पुत्त' शब्द की भाँति होंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द
'बाला'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	बाला	बाला, बालाउ, बालउ
द्वितीया	बाला	बाला, बालाउ, बालउ
तृतीया	बालाएँ, बालाए	बालहिँ, बालहि
चतुर्थी	बालहेँ	बालहु, बालहं, बालहँ
पञ्चमी	बालहेँ	बालहु
षष्ठी	बालहेँ	बालहु, बालहं, बालहँ
सप्तमी	बालहि, बालहिँ	बालहि, बालहिँ, बालहु, बालहुं
सम्बोधन	बाला, बाल	बालउ, बालाउ, बाला

इकारान्त पुंलिङ्ग शब्द
'अग्गि'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	अग्गी, अग्गि	अग्गी, अग्गिहो
द्वितीया	अग्गी, अग्गि	अग्गी, अग्गिहो
तृतीया	अग्गिण, अग्गि, अग्गिएं	अग्गीहि
पञ्चमी	अग्गिहे, अग्गिहिन्तो	अग्गिहुँ, अग्गीहिंतो
चतुर्थी और षष्ठी	अग्गिहेँ	अग्गिहिँ अग्गिहुँ, अग्गि
सप्तमी	अग्गिहिँ	अग्गिहिं, अग्गिहुँ
सम्बोधन	अग्गि, अग्गी	अग्गिहोँ

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द
णदी (नदी)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	णदी, णदि	णदी, णदिउ
द्वितीया	णदी, णदि	णदी, णदिउ
तृतीया	णदिएँ, णदिए	णदीहिँ, णदीहि
चतुर्थी	णदिएँ, णदिहेँ	णदिसु, णदीणं
पञ्चमी	,, ,,	णदिहु
षष्ठी	,, ,,	,, णदीणं
सप्तमी	णदिहिँ, णदी, णदि	णदीहि, णदिहिँ, णदिहुँ
सम्बोधन	णदि	णदिहोँ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उकारान्त नपुंसकलिंग शब्द
महु (मधु)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	महु, महूँ	महूइं, महूइँ
द्वितीया	महु, महूँ	महूइं, महूँइँ
सम्बोधन	महु, महूँ	महूइं, महूइँ

शेष विभक्तियों में इसके रूप आगे दिये जानेवाले ऊकारान्त पुंलिंग शब्द 'वाऊ' के समान होंगे।

ऊकारान्त पुंल्लिग शब्द
वाऊ (वायु)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाऊ, वाउ	वाऊ, वाउ
द्वितीया	वाऊ, वाउ	वाऊ,वाउ
तृतीया	वाऊण, बाउ (वाएँ)	वाऊहिँ, वाऊँहि, वाऊहि
चतुर्थी	वाउहेँ	वाऊहिँ, वाउहुँ, वाउ
पञ्चमी	वाउहेँ, घाउहिन्तो	वाउहुँ, वाऊहिन्तो
षष्ठी	वाउहे	वाउहिँ, वाउहुँ, वाउ
सप्तमी	वाउहि	वाउहि, वाउहुँ
सम्बोधन	वाउ, वाऊ	वाउहोँ

सर्वनाम शब्दों के रूप
अस्मद् शब्द (मैं)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	हउँ (हउं)	अम्हे, अम्हइँ (अम्हइं)
द्वितीया	मइँ (मइं	अम्हे, अम्हइँ, (अम्हइं)
तृतीया	,, ,,	अम्हेहिँ, (अम्हेहिं)
चतुर्थी	महु, मज्झु, मज्झ	अम्हहँ, (अम्हहं)
पञ्चमी	,, ,, ,,	,, ,,
षष्ठी	,, ,, ,,	,, ,,
सप्तमी	मइँ (मइं)	अम्हासु

युष्मद् शब्द के रूप (तुम)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तुहुँ (तुहुं)	तुम्हे, तुम्हइं, तुम्हइँ
द्वितीया	पइँ. पइं, तइँ, तइं	,, ,, ,,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृतीया	पइँ, पइं, तइँ, तइं	तुम्हेहिँ, तुम्हेहिं
चतुर्थी	{ तउ, तुज्झ, तुध्र, तुह, तुज्झह, तुज्झु	तुम्हहँ, तुम्हहं
पञ्चमीं	तउ, तुज्झ, तुध्र	,, ,,
षष्ठी	तउ, तुज्झ, तुध्र, तुह, तुज्झह, तुज्झु	,, ,,
सप्तमी	पइँ, पइं, तइँ, तइं	तुम्हासु

पुंल्लिङ्ग 'यत्' शब्द (जो)

	एकवचन
प्रथमा	ध्रुं, जु
द्वितीया	ध्रुं, जु
पञ्चमी	जहाँ
षष्ठी	जासु
सप्तमी	जहिं

'यत्' शब्द के शेष रूप अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूपों को भाँति ही होंगे। 'यत्' शब्द की भाँति ही किञ्चित् परिवर्तनों के साथ 'किम्' और 'तत्' शब्दों के रूप भी होंगे।

पञ्चमी एकवचन में 'किम्' को रूप विकल्प से 'किहे" होगा। 'किम्' को 'कवण' एवं 'काइँ' आदेश भी कभी-कभी हो जाता है। इस अवस्था में 'कवण' के रूप अकारान्त पुंल्लिग शब्द की भाँति एवं 'काइ' के रूप इकारान्त पुंल्लिङ्ग की भाँति होंगें !

'यत्' शब्द के रूप नपुंसकलिङ्ग 'यत' शब्द की भाँति ही होंगे। 'यत' शब्द के रूप स्त्रीलिङ्ग में भी प्रायः पुंल्लिङ्ग की भाँति ही होंगे। केवल षष्ठी विभक्ति के एकवचन में विकल्प से 'जहे' रूप होगा। 'किम्' और 'तत्' के लिए भी ऐसा ही समझना चाहिए।

'इदम्' शब्द के स्थान पर 'आय' आदेश हो जाता है तथा उसके रूप समस्त लिङ्गों में अकारान्त शब्दों की भाँति होते हैं। केवल नपुंसकलिङ्ग प्रथमा एवं द्वितीया एकवचन में 'इमु' रूप होता है।

पुंलिलङ्ग 'एतत्' शब्द (यह)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	एहो	एइ
द्वितीया	एहो	एइ

शेष रूप अकारान्त 'पुत्त' शब्द की भाँति होंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नपुंसकलिंग 'एतत्' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	एहु	एइ
द्वितीया	एहु	एइ

शेष रूप 'पुत्त' की भाँति समझना चाहिए।

स्त्रीलिंग 'एतद' शब्द

प्रथमा	एहु	एह
द्वितीया	एहु	एइ

शेष रूप 'पुत्त' की भाँति समझना चाहिए।

'अदस' शब्द के रूप भी प्रायः तीनों लिङ्गों में 'पुत्त' की भाँति ही होंगे। भेद केवल यह है कि पुंल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा एवं द्वितीया बहुवचन में इसका रूप 'ओइ' होगा तथा नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के एकवचन में कमल की भाँति तथा बहुवचन में पुंल्लिङ्ग 'अदस' की भाँति रूप होंगे।

'सव्व' शब्द को विकल्प से 'साह' आदेश होता है। इसके रूप भी 'पुत्त' की भाँति समझने चाहिए।

तद्धित-प्रत्यय-प्रकरण

अपभ्रंश-भाषा में निम्नलिखित तद्धित प्रत्यय होते हैं--

(१) डु--स्वार्थ में पुनः एवं बिना शब्द से डु प्रत्यय होते हैं--

यथा--पुन + डु (उ) = पुणु, विना + डु=विणु।

(२) डें, ड--स्वार्थ में 'अवस' से 'डें' एवं 'ड' 'प्रत्यय' होते हैं। यथा--अवस + डें (एं)=अवसें (अवश्यं), अवस + ड (अ)=अवस।

(३) डि--स्वार्थ में 'एक्कस' (एकशः) शब्द से 'डि' प्रत्यय होता है। यथा--एक्कस+डि (इ =एक्कसि।

(४) अ, डड, डुल्लु--संज्ञा शब्दों से स्वार्थ में 'अ', 'डड' एवं 'डुल्ल' प्रत्यय होते हैं। यथा--'अगिगट्ठअ'=गिगट्ठअ + प्रत्यय, दोसड = दोस + डड प्रत्यय एवं कुडुल्ली=कुड + डुल्ल प्रत्यय होते हैं।

(५) डार प्रत्यय--संस्कृत के 'ईय' प्रत्यय के (सम्बन्धी) अर्थ में अपभ्रंश के युष्मद, अस्मद आदि शब्दों से 'डार' प्रत्यय होता है। यथा--

युष्मद (तुहुं) + डार=तुहार

अस्मद् (अम्ह)+डार = अम्हार

(६) डेत्तुल--इदम, किम, यत, तत, आदि शब्दों से डेत्तुल प्रत्यय होता है। यथा--इदम + डेत्तुल=एत्तुलो, किम + डेत्तुल=केत्तुल, यत + डेत्तुल=जेत्तुल, तत + डेत्तुल=तेत्तुल।

(७) डेत्तहे--यत, तत, सव्व आदि शब्दों से सप्तम्यर्थ में डेत्तहे प्रत्यय होता है। यथा--यत + डेत्तहे=जेत्तहे, आदि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(८) प्पण—संस्कृत के 'त्व' एवं 'तल' प्रत्ययों के अर्थ (भाव) में अपभ्रंश-भाषा में 'प्पण' प्रत्यय होता है, यथा—वड्डु + प्पण=वड्डुप्पण

इसी प्रकार अन्य भी बहुत-से तद्धित प्रत्यय अपभ्रंश-भाषा में पाये जाते हैं।

कृदन्त-प्रकरण

अपभ्रंश-भाषा में निम्नलिखित मुख्य कृत् प्रत्यय होते हैं—

(१) इएव्वउं, एव्वउं, एवा—अपभ्रंश में संस्कृत के तव्य प्रत्यय के (भाव एवं कर्म) अर्थ में 'इएव्वउ' 'एव्वउं' एवं 'एवा' प्रत्यय होते हैं।

√कर + इएव्वउं=करिएव्वउं= (कर्तव्यं)

√सह + एव्वउं=सहेव्वउं

√कर + एवा=करेवा (कर्तव्यं)

(२) इ, इउ, इवि एवं अवि—क्त्वा के अर्थ (पूर्वकालिकक्रिया) में अपभ्रंश-भाषा में 'इउ' तथा 'इवि' प्रत्यय होते हैं, यथा—

√कर + इ=करि (कृत्वा=करके)

√कर + इउ=करिय, √कर + इवि=करिवि, √कर + अवि=करवि।

(३) एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु—क्त्वा के अर्थ में ही ये चार प्रत्यय होते हैं, यथा—

√कर + एप्पि=करेप्पि, √कर + एप्पिणु=करेप्पिणु, √कर + एवि=करेवि

√कर + एविणु=करेविणु।

(४) एवं, अण, अणहं, अणहिं—तुमुन् के अर्थ (क्रियार्था क्रिया) में अपभ्रंश में 'एवं', 'अण', 'अणहं' 'अणहि' प्रत्यय होते हैं, यथा—

√कर + एवं=करेवं, √कर + अण = करण, √कर + अणहं = करणहं, √कर + अणहिं=करणहिं। इन प्रत्ययों के अतिरिक्त इसी अर्थ में एप्पि', 'एप्पिणु', 'एवि' 'एवं' 'एविणु' प्रत्यय भी धातुओं से लगते हैं।

(५ अणअ—शील आदि के अर्थ में धातु से 'अणअ' प्रत्यय लगता है, यथा—

√कर + अणअ=करणअ, √मार + अणअ=मारणअ, आदि।

आख्यात-प्रकरण

अपभ्रंश-भाषा में आख्यात में निम्नलिखित प्रत्यय पाये जाते हैं—

वर्तमानकाल (परस्मैपद)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	इ	हिं, हिँ, न्ति
मध्यम पुरुष	सि, हि, हिं, हिँ	हु
उत्तम पुरुष	उं, उँ, आमि, एमि	हुँ, हुं, मु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आज्ञार्थं (लोट् लकार)

	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	इ, उ, ए, हि, हिँ ह	ह, हु, हिं

भविष्यत्काल में प्रायः वे ही प्रत्यय होते हैं, जो वर्तमानकाल में, केवल प्रत्यय के पूर्व 'स' का आगम हो जाता है। उदाहरण के लिए कुछ रूप दिये जा रहे हैं—

'कर' धातु (वर्तमानकाल)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करइ, करदि	करहिं, करहिँ, करन्ति
मध्यम पुरुष	करसि, करहि, करहिं, करहिँ	करहु
उत्तम पुरुष	करउं, करउँ, करामि, करेमि	करहुं, करहुं, करिमु

आज्ञार्थक (लोट् लकार)

	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	करु, करहि, करहिँ, करे, करइ, करि	करह, करहु, करहि

भविष्यत्काल

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करिसइ, करिहइ	करिसहि, करिहहि
मध्यम पुरुष	करीहिसि, करिसहि	करिसहु, करिहहु
उत्तम पुरुष	करीमु, कीमु	करिसहुं, करिसउँ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट 'घ'

(अ)

अइरेण <ऐलेन = इलावंशी

अउच्चेय <अतश्चैव

अक्षयनीवि < अक्षयनीयी=न्यासनिधि

अकरम्हसे < √कृ + लुङ्

अकतञ्ञु <अकृतज्ञं

अकरी < अ + √कृ + लुङ्=किया

अकिञ्चायतनं <आकिञ्चन्य + आयतन=अकिञ्चनता की बोत्र-दशा

अग्घापनियकम्मे <अर्घ (नामधातु) + इक (तद्धित) + कर्म + सप्तमी एकवचन=मूल्यांकन के काम में

अग्घाइआ <आघ्रापिताः=सुँघाया गया

अच्चयेन <अत्ययेन= मृत्यु से

अच्छरासद्देन=चुटकी से

अज्जकल्लसंघट्टउसहे <अद्यकल्य + सङ्घट + उत्साहे=आजकल मिलने के उत्साह में

अज्झावसिस्सति <अध्या+√वस् + लृट्=रहेगा

अज्झोत्थरित्वा <अधि + अव + √स्तृ + ल्यप् (पालि में त्वा) = बिखरा कर

अट्ठि <अस्थि

अट्ठिमिञ्जा <अस्थि + मज्जा

अट्ठूसभमत्तं <अष्ट + वृषभ + मात्र=आठ वृषभ के प्रमाण का

अणज्जन्तो ∠ अ + √ज्ञा + (कर्मवाच्य) + शतृ + प्रथमा एकवचन=न जाना जाता हुआ

अणत्थसलिलावत्ते <अनर्थ + सलिल + आवर्त्त + सप्तमी एकवचन = अनर्थ के भंवर में

अणुहूअ सुरआइं > अनुभूत + सुरतानि

अतिणिग्घिणं <अतिनिर्घृणं=अतिनिर्दय

अतिधोतचारिनं <अति + धौत (धावन) + चारिणं=अशुचि कर्म करनेवाले को

अतियायिकय <अत्यायिकाय=संकट की स्थितियों के लिए

अतीतसत्थुकं <अतीतशास्तृकं=दिवंगत उपदेष्टा को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अत्ताकिलमथानुयोगो <आत्मक्लमथानुयोगः=अपने को थकानेवाला

अत्तानो <आत्मनः (अत्त तथा आतुम शब्द से परे 'स' विभक्ति का विकल्प से नो हो जाता है <अत्त + स (नो)

अत्थयन्तस्स <अर्थयतः

अत्थितं <अस्तितां=अस्ति का भाव अस्तित्व

अद्दावलेवलित्तेन <आर्द्रविलेपलिप्तेन=मलहम

अद्धंचिय <अर्धं + चैव

अधिगिच्च <अधिकृत्य

अनत्थसंहिता <अनर्थसंहृतः

अनरियो <अनार्यः

अनाथनां <अनाथानां

अनागतभयानि=आनेवाले भय

अनुपुब्बेन <अनुपूर्वेण=धीरे-धीरे

अनेजो <अनेजः=उद्वेगरहित

अनोतत्तादहं <अनवतप्त + ह्रदं=अनवतप्त नामक सरोवर

अन्देउरदिग्घिआसु <अन्तःपुरदीर्घिकासु = अन्तःपुर की दीर्घिकाओं में

अन्धकमसका=अन्धकमशकाः

कण्णहिं <अन्यस्मिन्

अपदिन्नं <अप्रतिज्ञं

अप्पओ <आत्मकः

अप्पटिपुग्गलो <अप्रतिपुद्गलः=अप्रतिम व्यक्ति

अप्पुधजण-जेविद <अपृथग्जनासेवितं=साधारणजन द्वारा असेवित

अभिक्खिनं <अभीक्ष्णं=बार-बार

अभिरमापेन्तियो <अभि + √रम् + णिच् + शतृ + (द्वितीया बहुवचन) = मनोरंजन करती हुई

अमिअह <अमृतस्य ('ह' सम्बन्ध कारक एकवचन का चिह्न है)

अमुतपदानि <अमृतपदानि

अमोयघणं <आमोदघनं

अम्बणु <अम्लनं (अमलत्वं) =खटाई, लगाव, ललक

अम्बपक्कोदकं <आम्र + पक्व + उदकं=पके आम और पानी

अम्मणमत्तेन <अर्मण ? (एक प्रकार का माप) + मात्रेण

अयण्णिवि <आकर्ण्य=सुनकर

अयोगुला <अयः + गुडाः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अय्यिका<आर्यिका=पितामही

अलियवसानि<आर्यवंशाः (संगीत सुत्त)

अल्लीया<आनीताः

अविनिपातधम्मो<अविनिपातधर्मः=अनश्वर स्वभाववाला

अवले<अपरः

अवशलोवशप्पणीआ<अवसरोपसर्पणीयाः

अवहोवासेसु<अपथोपपार्श्वेषु

अविचिम्हि<अवीचि+(सप्तमी एकवचन) =अवीचि नामक नरक में

अवहे<आवृहेत्=निकाल ले

अब्भत्थणि<अभ्यर्थने

असम्पवेधी<असम्प्रव्यथिन्=अचल

असामण्णरूवसोहा<आसामान्य+रूप+शोभा

अस्सपोतप्पमाणो<अश्वपोतप्रमाणः (अस्स + पोत + प्पमाणो, अस्स (घोड़ा) <√अस=खेपने)

अस्सवा ∠ अस्रवा=मदरहित

अहायया ∠ अहीयत

अहियासए ∠ अध्यासीत (लुङ् के अर्थ में लिङ् का प्रयोग) =सहन किया

अहुवम्हसे ∠ √भू + लुङ्

अहेढ्यं ∠ अहेडयत्=छीना

(आ)

आअअगिग्गो ∠ आयत + ग्रीवः=गर्दन उठाकर

आइ (<आइय) पूर्वकालिक रूप

आइदाणि<आचितानि=चुन लिये गये

आकासानञ्चायतनं< आकाश + आनन्त्य + आयतन=आकाशबोध की तन्मयतावाली समाधि-दशा

आगतागता=आ-आकर

आचिक्खि<आ + √ख्या + लुङ्=आख्यत्

आढत्ता<आरब्धा=आ√रभ् + क्त+(स्त्रीलिङ्)

आदिण्णवा<आदीर्णवान्=चीर डाला

आदित्तगेहसदिसा<आ + दीप्त + गेह + सदृशाः=आग लगे घर की तरह

आयकसुसानं<आमकश्मशानम् (श्मशान) =ऐसा श्मशान, जहाँ मुर्दे कच्चे फेंके जाते हों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आरभित्वा<आ + √लभ् + क्त्वा

आरभिसरे<आ + √रभ् + लृट् (रे)

आवतके<यावत्तक=जितना

आसणगाइं<आसनकानि

आहिजाइए<आभिजात्यै

आहितोगिनि<आहितः + अग्निः

(इ)

इ = इति

इक्किण<एकेन

इंयुअभि = इस प्रकार

(ई)

ईसीसि<ईषत् + ईषत् = हल्की, हल्की

(उ)

उअरोह-रामअ-मच्छर-लोलेहिम्पि<उपरोध (अनुचित कृपा) + राग + मत्सर + लोभैः + अपि

उइयम्मि<उदिते

उक्कारभूमियं<उत्कारभूम्यां = घूर पर, अपवित्र स्थान पर

उज्जता<उद्युक्ता

उठाअण<उत्थापन = आँगन, चबूतरा

उड्डउ<उड्डित। (√उड्ड + उ)

उड्डावन्तिए<उड्डापयन्त्याः

उण्हाकारं<उष्णाकारं = प्रज्वलित

उण्हाय<उष्णायां

उतुंगाहापेंसु<ऋ + अजीग्रहन् (√गह् + आप् + लुङ्) प्र० पु०, ब० व० = स्वस्थता प्राप्त करायी

उत्तारेऊण<उत + तारि + त्वान = उतारकर

उदगब्भासे<उदकाभ्याशे = पानी के पास

उदानं<ओदानं<अवदानम् = उपदेश

उदाह<उताहो

उद्धुमायि<उद्√ध्मा + (भाववाच्य) + लुङ् = उदध्मायि = सूज गया

उपता<उपान्तात् = समीप से

उपतिसपसिने<उपतिष्यप्रश्नः

उपदए<उपान्तात्

उपधी<उपधिः = परिग्रह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपशंगिदव्य < उपशंकितव्यः

उपसम्पदा = ज्ञान

उपोसथंगानि < उपवसथ + अङ्गानि=उपवास के नियम

उमुग्गा < उन्मग्नाः=न डूबे हुए

उम्मारे (अव्युत्पन्न)=देहली पर

उम्मुज्जनिमुज्जं < उन्मज्जननिमज्जने=उतराना-डूबना

उययस्स < उदकस्य

उव्वरिअ < उर्वरित=छोड़ दिया

उसभदत्तस्स < वृषभदत्तस्य

उसीरत्थो < उशीरार्थः

उसुकारा < इषुकारः=बाण बनानेवाले

उस्सन्नं < उत्सन्नं

(ए)

एआई < एकाकी=अकेला

एकप्पहारेन < एक + प्रहारेण=एकदम

एकफालिफुल्लं=अच्छी तरह फूला हुआ

एकंसेन < एक + अंशेन=एकदम (एकबारगी)

एत्तडउ < एतावत्कः डक=द्विगुणित स्वार्थिक प्रत्यय)

एलिक्खए < ईदृक्षकः (ईदृशः)

(ओ)

ओअन्तकरअलोग्गलिअवलअमज्झट्ठिअं < उपान्त + करतल + उद्गलित + वलय + मध्यस्थितं

ओट्ठमियाए < अवष्टम्भितायां=निस्तब्ध मुद्रा में

ओडिदव्य < अव + √टि + तव्यत्=छोड़ने योग्य

ओल्लोल्लाइ < उष्णोष्णया=अत्यन्त उष्ण

ओवइअमअरणिद्दअल्लुअगत्तावरविसण्ठुला < अवपतितमकरनिर्दयलूनगात्रावरविसंष्ठुलाः

ओवाव < अववादं=उपदेश

ओशलध < अपसरथ (अपसरत)

ओसट्ठकाए < व्यवसृष्टकायः=शरीर को दूसरे की कृपा पर छोड़े हुए

असज्जमणगारे < व्यवसृज्य + (म् + व्यञ्जनभक्ति) अनागारः=अपने को उत्सर्ग कर अनिकेत हो

ओसीदापेस्सन्ती < अव + √सद् (> √सीद्) + णिच् + ऌट्

ओलुक < औत्सुक्यं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ओहजेदि<अवभासयति

ओहालिअं <अपराधितं

(क)

कइअवरहिअं<कैतव + रहितम्=छलरहित

कइणिवहा<कपिनिवहा=कपिसमूह

कउत्तमासगा<कवि + उत्तम + आसङ्गा

कतञ्ञुता<कृतज्ञता

कत्तो<कत्तः (कुतः) कहाँ से

कदुअ<कृत्वा (इसमें ल्यप् का 'य', 'अ' में परिवर्तित हो गया है)

कप्पडिओ<कार्पटिक=भिखमंगा

कमण=कौन

कम्मजवाता<कर्मजवाता=प्रसववेदना

कंपिअ, चलिअ<√ कंप + इअ, √ चल + इअ। (कर्म० भूतकाल कृदन्त)

कयं<कृतं

कर<करोति, वर्तमान प्र० पु० एकवचन में शुद्ध धातु का प्रयोग

करण्डिआए<करण्डिकासु = पेटियों में

करि घरि √ कर + इ √धर + इ

करिस्सामित्थिकिच्चअ<करिष्यामि + स्त्री + कृत्यं + च

कलिङ्गरं<(अव्युत्पन्न) = लकड़ी का टुकड़ा

कलिज्जिहिसि<जलम् + (भाववाच्य इज्ज + ऌट्=पहचान ली जाओगी

काकच्छन्तियो<काकथ्यमानाः (√ कथ् + यङ् लुगन्त + शतृ)=बड़बड़ाती हुई

कास्ति=कैसे

कामसुखल्लिकानुयोगो < (काम + (स्वार्थिक) लिक + अनुयोग=कामसुख की इच्छा करनेवाला

काऊण<कर्त्वान (कृत्वा) करके

किअउ<कृतः (√ कि (>कर) + इ अ + उ। इअ कर्म० भूतकालिक कृदन्त है तथा 'उ' अपभ्रंश में कर्ता और कर्म एकवचन की विभक्ति है

किर<किल

किलिम=विधवा-विवाह

किलोमकं<क्लोमकम्=फुप्फुस (फेफड़े) का आवरण

कीलम्ह<क्रीडामः

कीस अलंकिदा<कस्मात् अलंकृता

कुड्डो<कुड्यः = दीवाल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुलसन्तकं<कुल + सत्(<सन्त) + क(स्वार्थिक) = कुल का

कोञ्चनादं<क्रौञ्चनादं = महानाद

कोठगलानि<कोष्ठागाराणि

कोड्डेण<कौतेन = कौतूहलवश

कोहाइमाणं<क्रोधातिमानम्

कोहाणलमह(>क्रोधानले)>कोह + अणल + मह (परसर्ग, इसका अधिकरण में प्रयोग हुआ है)

(ख)

खत्तियसुखुमालो>क्षत्रिय + सुकुमार

खन्तिमेत्तानुद्दयसम्पन्नो>क्षान्ति + मैत्रानुदय + सम्पन्न = क्षमा, और दयायुक्त

खल्लिहडउं>खल्वाटकम्

खायिंसु>अडागम विरहित क्षि + (कर्मवाच्य) + लुङ् प्रथम पु० बहुवचन = नष्ट हो रहे थे

(ग)

गई<गतिः

गज्ज<गर्जति (√गज्ज + ०)

गडलाविइ<गौडाधिपतिः

गयण-यलु<गगन-तले

गरहितु<गर्हितः

गलपरियोसानं<गल + पर्यवसानम् = गले तक

गब्भत्ताए<गर्भत्वा + तृ० एकवचन = गर्भत्व में

गहिअत्थो<गृहीतार्थः = समझदार

गारवेनापि<गौरवेण + अपि

गालवे<गौरवः

गिमि<ग्रीवायाम्

गिरिघाउक्खित्तसलिलरेइअभरिअं<गिरिघातोत्क्षिप्तसलिलरेचितभरितम्

गुत्तिअं<गुप्तिकाम् = कारागार

गुर्पये<गोर्पइओस (Gorpaios) महीने में

गोउतदुआले<गोपुरद्वारे

गोमिको = गौ वाला

गोवइ<गोपयति

(घ)

घल्लइ = फेंक देता है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

घित्ता <घृत
घेत्तूण <गृहीत्वा

(च)

चक्कपलिवट्टिं <चक्रपरिवृत्तिम्
चक्खुकरणो <चक्षुष्करणी = दृष्टि देनेवाली
चक्खुम <चक्षुष्मन् = दृष्टिसंपन्न
चडावियं <देशी धातु √चट् + णिच् + त
चतुदसेन <चतुर्दशेन
चम्पिजइ <आक्रम्यते = दबायी जाती है
चयं चइत्ता <च्यवं च्यवित्वा
चलंतउ <चलन्, वर्तमानकालिक कृदन्त रूप
चवल <चपल = शीघ्र
चाई = त्यागी
चागो (<त्यागः) √चज + घण प्रत्यय (भाव में ज अनुबन्धवाला प्रत्यय होने से धातु के अन्तिम 'ज' का 'ग' हो गया—कगाचजानं धातुबन्धे)
चिलठितिके < चिरस्थितिकः
चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारं <चीवर + पिण्डपात + शयन + आसन + ग्लान + प्रत्यय + भैषज्य + परिष्कारं = वस्त्र, भोजन, शयन, रोग होने पर दवा आदि का विधान
चुरोम = एक विशेष प्रकार का द्रव्य
चेलुं <चैलं = चीर

(छ)

छइल्ल <*छबिल्ल = चतुर
छड्डेत्वा <छर्दयित्वा = छोड़कर
छविच्छेए <शरीरच्छेदः
छाता इ <घाताः इति = भूखे
छिन्नतटमहासोब्भो <छिन्नतटमहाश्वभ्रः = टूटे हुए किनारेवाले बड़े गड्ढे
छिवसु <√क्षिप् = डालो
छीरेकपाइणा <क्षीरैकपायिना = दूध पीते हुए
छुहामि <*क्षुभामि (क्षिपामि) = फेंक दूँ
छूढो <√क्षुभ् + क्त = व्यक्त

(ज)

जगइ <संख्याय
जगरवोशमु <संस्कारोपशमम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जच्चित < सचित्त
जणद्दियणयणी < जलार्द्रितनयनी
जणावत्तो < ज्ञापयामि
जदिजत्शर < जातिसंसारे
जव्वजि < संवसेत्
जमकद < समकृताः=एकत्र
जमदइ < समादाय
जमधि < समाधिः
जम्मी < जाल्मी
जयमिणामो < जयं + (जगत्) + इणमो (इदं)
जर्वस्पोर < सर्वस्फुं=पूरी तेजी से
जलव्हु < सलाभं
जसु— < यस्य > जस्स > जासु > जसु
जह, जहा < सं० यथा
जहिच्छं < यथेच्छम्
जालन्धरि < जालन्धरी < कदली
जिअ < स्यात्
जिदवंसरोअणो < जितवंशरोचनः
जुण्णबडएण < *जूर्ण (जीर्ण) नटकेन
जूदिअरो < द्यूतकरः
जूरसु < √जूर (< ज्वल्) + स्व = रंजन हो
जेण < स्वेन
जेव < सेवेत
जोइओ < द्योतितः
जोण्ह√ज्योत्स्ना
जंपत्रो < जल्पामि

(झ)

झम्पइ=झेंप जाय
झायन्तं < ध्यायन्तं
झंपिअ < √झंप + इ अ√झंप देशी शब्द है

(ञ)

ञदर्थ < ज्ञातार्थः
ञाणकराणी < ज्ञानकरणी=ज्ञानप्रद
ञाणसम्पण्णो < ज्ञानसम्पन्न

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ट)

टपरिअ <√टरपर (अनुरणनात्मक धातु) + इअ (कर्म० भूतकालिक कृदन्त)

(ठ)

ठवीआ <स्थापितः (=ठविअ का छन्दोनिर्वाहार्थ विकृत रूप, णिजंत का कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त)

(ढ)

ढोल्ला=ढोल

(ण)

णउग्गदिन्दुमहुरच्छाअस्स < नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य

णवमोत्तिअत्तणं < नवमौक्तिकत्वम्

णवरंगचंगिमा < नवरंगसुन्दरी

णस्सालज्जुकडुआ < नस्यारज्जुकटुकाः = नाथ के बड़े तीखे

णस्स < नश्य = भग जाओ

णह < नमः

णहसाअरन्तरालुद्देसो < नभः सागरान्तरलोद्देशः

णायवज्जिअं < न्यायवर्जितम्

णिअअदुमोसरिअकुसुमरअघूसरिआ < निजकद्रुम + अपसृत + कुसुमरजः + धूसरिता

णिद्दयरु < निर्दय + टः + (डो < रोरु <)

णिव्वाडन्ताण < निवर्त्तयमानाणाम्

(त)

तग्गन्ति = टँगे हुए हैं

तज्जि (< त्यक्त्वा) √तज्ज + इ (पूर्वकालिक क्रिया प्रत्यय)

तत्ततांति < तत्त्वतन्त्रीम्

तप्पडिरूवगववहार < तत्प्रतिरूपक व्यवहारः

तलिणं < सूक्ष्मे (< तलिनम्)

तासु < तस्य < तस्स < तस्सु < तासु

तिच्छेत्तु < अतिच्छेत्तु = तुड़ाने के लिए

तित्थियानं < तीर्थिकानाम् = असद्धर्मियों के

तिनि < त्रीणि

तित्ति < तृप्तिम्

तियलोए < त्रिकलोके

तिरिआवलिअमुहअन्दं < तिर्यक् + वलित + मुखचन्द्रम् = तिरछे मुँह किये

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तुअ < तव (इसका वैकल्पिक रूप तउ, तुज्झु, तुझह, तुध्र, तुह । 'तुअ' 'तुह' का प्राण ध्वनिरहित रूप

तुण्णाओ < तूर्णगः=डाकिया

तुतो < ततः

तेजनं=बाणः

तोम्मन=एक अधिकारी

तोम्मिहि < तोम्मिभिः = तोम्मि के साथ

(थ)

थक्कउ < तिष्ठतु टीकाकारों ने इसे वर्तमानकालिक रूप 'तिष्ठति' माना है, जो गलत है

थलमुब्भता < स्थलं + उद्भृताः

थेओ < स्तोकः=कम

(द)

दइ, लइ, समादि < √द + इ, √ल + इ, स + √ मद + इ= पूर्वकालिक क्रिया प्रत्यय

दक्ख < दृश्यते (कर्मवाच्य वर्तमानकालिक प्रथम पु०, एक व० में धातुरूप कुछ टीकाकारों ने इसे < पश्य माना है)

दण्डत्रिट्ठवणम्—दण्डनिष्ठापनम्

दम्मी V दद्मि

दरमउ < दलमलिता √दर + √मर + उ

दवाविओ < दातिप + णिच् + क्त + दिलवाया

दिअवर=दिण्णाज्जु < द्विजवरदत्तानुज्ञाम्

दिअहडा < दिवसटाः = (दिवसाः)

दिअहद्धे < दिवसार्धे

दिज्ज < दीयते कर्मवाच्य रूप

दिण्णजाणुवडणेंण < दत्तजानुवदनेन = घुटने के बल चलते हुए, गिरे हुए

दीस— < दिशा < दिसा < अपभ्रंश दिस । छन्दोनिर्वाहार्थ 'इ' का दीर्धीकरण

दीहुण्हउ < दीर्घोष्णकम्

दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिं < दुःशिक्षितरत्नपरीचकैः=अनाड़ी रत्न-परीक्षकों द्वारा

देवसिकं < दैवसिकं=नित्य

देवसुप्पलवण्णस्स < देवस्य + उत्पलवर्णस्य

देसियसद्दपलोट्ठं < देशिकशब्दपर्यस्तम्

दोन्नि < द्वौ=दो

दोहियइम्—द्रोहिवानि

द्रमघरे = शासनाधिकारी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ध)

धणूहा–<धनुः (अर्धतत्सम रूप 'धनुह' का छन्दोनिर्वाहार्थ विकृत रूप या धणु + ह (स्वार्थे)

धमनिसंथितं<धमनी+संस्तृतं=जिसकी नसें साफ-साफ दिखती हों

धम्मगण्डिकट्ठाने<धर्मगण्डिकास्थाने=वधस्थान

धरीआ<धृताः (=धरिआ बहुवचन का रूप, 'इ' का छन्दोनिर्वाहार्थ दीर्घ रूप)

धाइ<(धाविअ<धावित्वा) पूर्वकालिक रूप

धुत्तिमं<धूर्तिमानं=धूर्तता

धुल्लिअ<धूल्वा√धुल्ल + ईअ

ध्रुवो<ध्रुवः = निश्चित

(न)

नडकर>नलाकरम्

नत्थितं<नास्तिताम्+अनस्तित्व

नदिमञ्ञ<नातिमन्येत (न + अति√मन् + लिङ्)

नधिकछदि <न + अधि + √गम् + लट् प्रथमपुरुष एकवचन = नाधिगच्छति

नवइ<नवके=नये (कसोरे) में

नहारु<स्नायु

नाओ<नाग=हाथी

नासक्खि<न+√ शक्+लुङ्

निच्चई<निश्चयम्

निच्छितो<निश्चितः

निपज्जापेमुं<√निपज्ज (निपद्यते) + आपय् (प्रेरणार्थक) + सु (लुङ् प्रथम पुरुष, बहुवचन)

निज्झाइओ<निर्ध्यातः

नियादेमाति < निर्यातयामः (नि + √या + णिच् + लट् + उत्तमपुरुष बहुवचन)+इति

निय्यामकजेट्ठस्स<नियामक+ज्येष्ठस्य=पोतनायक

निरुम्भित्वा<नि√रुम्भ + त्वा (निरुध्य)=रोककर

निवापं<चारा

निवापतिनं<निवाप+तृणम्

निसिरियचलणा<निशीर्य+चरणा=फिसले हुए पैरोंवाली

निहालय<निभालय

नीहरित्वा<निर्हृत्य

नेत्तिका<नेतृकाः=नालियाँ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं < नैव + संज्ञा + असंज्ञा + आयतनम् = ऐसी अवस्था जिसमें न तो संज्ञा की पूर्णतः स्थिति रहती है और न संज्ञा का पूर्णतः अभाव ही रहता है ।

(प)

पअमरु < पदभरेण ('उ' कर्मवाच्य कर्ता एकवचन का भी चिह्न है)

पइसीसु < प्रविशानि = प्रविष्ट हो जाऊँ

पकटबीभच्छसंबाधट्ठाना < प्रकटबीभत्सम्बाधस्थानाः = जिनके विद्रूप गुप्तांग दिखायी दे रहे थे

पकतिसमुद्दपिट्ठे < प्रकृतिसमुद्रपृष्ठे

पक्ककोइलाथं < पक्वकपित्थानाम्

पक्खदुआलए < पक्षद्वार के

पग्घरितखेला < प्रक्षरितश्वेडाः = जिनकी थूक इधर-उधर गिर रही थी

पच्छावामकधातुको < पश्चाद्वामकधातुको = पीछे से बौना

पज्जुस्सुअमणा < पर्युत्सुकमनाः = उत्कण्ठित

पञ्ञत्तिवोहारो < प्रज्ञप्ति + व्यवहारः = जानकारी और व्यवहार

पञ्चानन्तरियकम्मं < पञ्च + आनन्तरिय + कर्म = प्रायश्चित्त के योग्य पाँच कर्म

पञ्ञायेत्वा < प्र √ज्ञा (< पञ्ञ) + आपय् + क्त्वा = प्रस्तुत करके

पञ्हपटिभानानि < प्रश्न + प्रतिभानानि = प्रश्न के समाधान

पटिकुज्जेत्वा < प्रतिकुज + अय् (नामधातु) + क्त्वा = ढँककर

पटिच्चसमुप्पादं < प्रतीत्यसमुत्पादम्

पटिजग्गिसु < प्रति + √जागृ + लुङ् = पालन किया

पटिसंधि < प्रति + सन्धिम् = गर्भ

पट्टंसुअजुअलं < पट्टांशुकयुगलम्

पडिसुविणएण < प्रतिस्वप्नकेन

पडिवादेसुत्ति < प्रतिपादयस्व = सौंप दो

पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए (प्रतिवेशिक + गृहपति + दारक + कार्यकथा

पणयासि < प्रणतः + आसीत्

पडिविजु < प्रतिविद्यन्

पण्डुकम्बलशिलासनं < पाण्डुकम्बलशिलासनम्

पण्णसञ्ञं < पर्णसंज्ञा = पत्तियों का निशान

पति < √पत् + लुङ्

पतिसंखारयति < प्रतिसंस्कारयति

पत्थयगो < पाथेय

पत्थरित्वा < प्र + स्तृ + त्वा (∠ल्यप्) फैलाकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पत्थाव <प्रस्तावे

पत्थिया <प्रस्थिता

पदमुलम्मि <पादमूले

पधमे <प्रथमें

पनसेहि √ पनतैः=कटहलों से=(√पन + अस् (प्रत्यय) पन्यते, थवीयतेति पनसो

पन्तं <(अन्युत्पन्न) = बासी

पप्फासं <फुप्फुसं = फेफड़ा

पभंकरो <प्रभाकरः

पम्हुसइ <प्रमृशति (प्र √मृश् + लट् प्रथम पुरुष एकवचन)

पयईओ <पदव्यः

पयच्छायाएँ ←प्राकृतच्छायायाम्

पययस्सवि (पययस्स + वि) >प्राकृतस्य + अपि

पया <प्रजाः

परज <लूट लिया

परिचगेन <परि + त्यागेन

परिच्चजित्वा <परि+ √त्यज (चज) + क्त्वा (ल्यप के लिए)

परिछिन्वितांति <परिक्षीणयन्ति

परित्तसुत्ततेजेन <परित्त+सूत्र+तेजसा

परिसाय <परिषा (←परिषद्) षष्ठी

परिस्सहाइं <परिस्रवाणि = केशों को

पलवती <प्लवते

पलिश्शंतश्श <परिश्रान्तस्य

पलेति <परैति, पलायते = चला जाता है

पलोभेउं <प्रलोभयितुम् (यहाँ तुमुन् का पयोग क्त्वा के अर्थ में हुआ है ।)

पल्हत्यन्ति <पर्यत्रन्ति (नामधातु)

पसथ <प्रशस्त

पहिणि <प्र+हि (<हिष)+लुङ् प्रथम पुरुष एकवचन (अडागमविरहित)
= भेजा

पहितत्त <प्रहितात्मनि

पाआलुन्हगिरिघाउकद्दमिअमुहा <पातालोष्मगिरिधातुकर्दमितमुखाः

पाइ (<पाइअ) <प्राप्य पूर्वकालिक कृदन्त

पाइयकव्वं <प्राकृतकाव्यम्

पाउसआले <प्रावृट्काले

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाकटो <प्रकट:

पाणका <प्राणका:=छोटे प्राणी

पाणातिपातं <प्राणातिपातं=हिंसा

पाणिउ <पानीयम्

पाणिप्पहारसद्देन <पाणिप्रहारशब्देन=ताली बजाने से

पातोव्व <प्रात: एव

पायसोयं <पादशौचम्=पादप्रक्षालन

पारक्कडा <पारक्यटा:=शत्रु के

पासादिको <प्रासादिक:=सौम्य

पाहुणयस्स <प्राघुणकस्स=पाहुन का

पिक्खिवि <प्रक्ष् + इवि (ल्यप् अर्थ में)

पिचविदेमि <प्रत्यर्पित: + अस्मि=सौंपा गया हूँ

पिदहितुं <पिघातुम्

पिंधउ (<पिदधामि) √पिंध + उ-ऊँ (अउँ) वर्तमान उ० पुं० एकवचन

पिलन्धापेत्वा < √पिलन्ध (<अपिनद्ध) + आप् + अय् + त्वा=पिन्हाकर

पिहकं <प्लीहकम्

पिहुलवलन्तणिअओज्झरपरिक्खित्ता <पृथुलवत् + निज + अवज्झर + परिक्षिप्ता

पीतिसोमनस्सजाता <प्रीतिसौमनस्यजाता=प्रीति और सौहार्द से भरकर

पीलेत्वा <पीडयित्वा

पुट्ठपुब्बा <स्पृष्टपूर्वा: (पूर्व = स्वार्थिक प्रत्यय) = पीटे गये

पुत्तंघीवासु <पुत्र + घोता स० ब० व० (दुहितृ)

पुत्तिमा < <पुत्रवान्—पुत्रवाला

पुत्ते (पुत्रैः) <पुत्त + ए (करण) एहि के हि का लोप कर दिया गया है

पुप्फकण्णिकसदिसं <पुस्पकर्णिकसदृशम्

पुप्फुआसुअन्धेण <करीष (पुप्फुआ=अभ्युत्पन्न) + सुगन्धेन

पुवि <पूर्वम्

पुव्वनत्थासणे <पूर्व + न्यस्तासने=पहले से लगाये गये आसन पर

पुव्वो <पूय=पीब

पुव्वोभेइय-लेक्खानुसारेण (पूर्ववेदितलेख्यानुसारेण—पूर्वलिखित लेख के अनुसार

पूतिलतं <पूतिलतां=पोई की लता

पेक्खिअ <प्रेक्ष्य

पोक्खरा <पुष्करात्=कमल से

पोजलन्तही <प्रज्वलन्ता (प्रज्वलत:)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पोट्टे=पेट में (अव्युत्पन्न)
पोथुज्जनको<पृथक् + जन + इक्=पामरजन
पोनोब्भविक<पौनर्भविका=पुनर्जन्म का कारण बननेवाली
प्रजूहितव्यम्<प्र + √बू (जुहू) + तव्य
प्रठ<प्रस्थ
प्रतअ<प्रासये
प्रथमक्ष्रो<प्रथमतरः
प्रशजति<प्रशंसति
प्रसादे<प्रसादः
प्रहइ<प्रहाय
प्रहिदेमि<प्रहितः + अस्मि=मैंने भेजा
प्रहुअ<प्राभृतं=उपहार

(फ)

फलमिच्छं<फलम् + इच्छन्
फस्सो<स्पर्शो
फालेन्तो<स्फालयन्
फासुविहालतं<स्पशु (प्राशु) विहारतां=सुखविहार
फुट्ट<स्फुटित
फुडं—स्फुटम्
फुसितो<√स्पृश्+क्त
फेणकुसुमन्तरुत्तिण्णकेसराअरवेरदिरमऊलाइं<फेनकुसुमन्तरोत्तीर्णकेसराकारवेपर + मयूखानि

(प)

बन्धुयत्तु<बन्धुदत्तः
बंधे<बन्धः
बप्पीकी<पैतृकी=पिता की
बहिणिआए<भगिनिकायाः
बहोषुकेण>बहु+ औत्सुक्येन
बालबालुंकितन्तुकुडिलाणं<बाल+बालुंकी (अव्युत्पन्न)=ककड़ी +तन्तुकुटिलानाम्=ककड़ी की बतिया के रेशे की तरह कमजोर
बासट्ठि<द्वाषष्ठिः (बा + सट्ठि)
बाहित्वा<बाहिर् + (नामधातु) + क्त्वा=ऊपर उठाकर
बेभ=बेवा (ईरानी व्युत्पत्ति)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बोधिसत्तरूपसिरं < बोधिसत्वरूपश्रीं=बोधिसत्त्व की रूपशोभा को
बीतिसारेत्वा < वि + अति + √सारि + क्त्वा (ल्यप्)=करके
बोलीणे < (अव्युत्पन्न) उक्ते

(भ)

भग्गेन=टुकड़े-टुकड़े करके
भग्गा=भग्नाः=भागे
भरिया < भृत्या=नौकरी
भद्दवउ < भाद्रपदः
भमरकवलिअन्ता < भ्रमरकवलितान्ताः
भमरुच्छङ्ग < भ्रमरोत्सङ्गम्
भल्लो < (भव्यः)=भले
भिखुपाये < भिक्षुप्रायः
भिन्तो < भिन्दः
भिसनको < भीषणकः = भयंकर
भिय्योसोमत्ताय < भूयः (> भूय्य > भिय्य) + सुमात्रया=और अधिक मात्रा में
भिसी < वृषी = आसन (चटाई)
भुद्रजुं < भद्रं यूह=आपका कल्याण हो
भुंहडी < भूमिटी
भारहें < भारते

(म)

मअगल < मदकलः
मउलउ < मुकुलतु
मक्खिता < म्रक्षिता=लिप्त
मजुर < मयूर
मज्झान्तिकसुरियो < मध्यान्तिकसूर्यः=दुपहर के सूर्य
मणयं < मनाग्
मण्डुक्कनासं > माण्डूक्यनासम्=मेंढक की तरह नाकवाला
मनसाकासि < मनसा + अकार्षीत् (√कृ + लुङ्, प्रथम पुरुष एकवचन)
मनापा < मन + आपा (< मनस् + √आप् + अ + आ)
मूलेन < मूल्येन
मंससूला < मांसशूलौ
महत्त-विहत्त-गंडलेहं < महद् + विभक्त + गण्डलेखम्=बहुत बड़े घाव के निशान-वाले
महमगन < महामार्गाणाम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महरयज <महाराजस्य

महल्लमंहुज्जमबिज्जेम् <महत्त्वं महोद्यमविद्यया

महामणिभाशुले <महामणिभास्वरः

महालिहलदणेण <महार्हरत्नेन

महिया <मह्याः = मही नदी के

महिंहि <मह्याम्

महसक्खो <महेशाख्यः=बहुत बड़ा, ऐश्वर्यशाली महेश नाम का

मापेसि <√माङ् + लुङ् + (प्रथम पुरुष एकवच)

मारिज्जिहिसि <√मृ + णिच् + (कर्मवाच्य) + लृट्=मारे जाओगे

मारुअभिरिज्जन्ता ∠ मारुतभ्रियमाणाः

मालुवा=एक लता का नाम

माहणीए <माहनीय + (षष्ठी एकवचन)=सम्माननीय

माहउ <माघकः (माधवः)

मुक्कोअआइं <मुक्तोदकानि

मुच्छि√मुच्छ + इ (अ) कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त के पदान्त 'अ' का लोपकर केवल 'इ' प्रत्यय का प्रयोग

मुणि=मुनिः

मुण्डेऊण <√मुण्ड + य् + क्त्वान्=मुड़ाकर

मुद्धि <मुग्धे

मुलालयो <मृणाल्यः

मुलुक्खुहिअं <*मूलोक्षुभितम्

मुल्लकहा <मूल्य + कथा

मुसावादं <मृषावादम्

मिअच्छि < मृगाक्षि

मिगव <मृगयाम्

मिगवधपसुतो <मृगवधः=प्रसृतः=मृगवध में लगा हुआ

मिल्लीणा <मिलिता

मेच्छहके (म्लेच्छानां)√ मिच्छ + ह (सम्बन्धकारक बहुवचन) + के (सम्भवतः परसर्ग है)

मोडिवि=मोड़कर

मोञे=मया

मोत्तागब्भिणसोणिअभरेन्तुकुहकंदरा <मुक्तागर्भितशोणितभरतकुहकन्दराः

मोनेयसुत्ते <मौनेयसूत्रम्

मोसोवएसे <मृषोपदेशः

मोहियहं <मोहितानि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(य)

यकनं < यकृत्
यथातुच्चं < यथा + भूत्यः
ये भुय्येन < यत् + भूयस् (तृतीया एकवचन)

(र)

रजकिचज < राजकृत्यस्था
रजिजम्न < राज + इष् + (तृतीया एकवचन)=राजा की इच्छा से
रज्जन्ति < रज्यन्ते=फबते हैं
रयसछि < राजसाक्षि=राजा द्वारा देखा गया
राजुपट्ठानेन < राज्ञः + उप + √स्था + ल्युट् + (करणकारक एकवचन) = राजा की सेवा से

राजेन < राज्ञेन
राहा-मुह-महु < राधामुखमधु
रुक्ख कोट्ठकसकुणो < वृक्षकोष्ठकशकुनः
रुअं < रूपम्
रेणुक्करडि < रेणु + उत्कर + टी = धूलिसमूह
रोगनिड्डं < रोगनीडम्
रोयअ < रोचयेत्
रोयमाणी < √रोद (< रुद्) + दानच् + ई (स्त्रीप्रत्यय) = रोती हुई

(ल)

लवृण < लवण (संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति)
लवेसि < लपय=बोलो
लहुईहुआ < लघुकीभूतः = छोटा हो गया
लाअकीए < राजकीयः
लाअशालअ शंडाणेण < राजश्यालकसंस्थाकेन
लाघुलोवादे < राहुलः + अववादः = राहुल की शिक्षा
लाभग्गयसग्गपत्तो < लाभाग्र + यशः + अग्र + प्राप्तः = अग्रलाभ एवं अग्रयश पानेवाला
लायण्णं < लावण्यम्
लुक्ख-देशिए < रुक्षदेशीयः=रूखा-सूखा-सा
लूसिसु < √रुष् + लुङ्
लिविस्तरंमि < लिपिविस्तरे=ब्योरे में
लेख-रूप-गणना-ववहारविधिविसारदेन < लेखरूपगणनाव्यवहारविशारदेन
लेआगज < लेखहारकस्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लोकवढणो < लोकवर्धनः
लोणजलपहटानि < लवणजलप्रहतानि = नमकीन जल से नष्ट

(व)

वक्कं < वृक्कम्
वक्कल < वल्कल ('ल्क' की 'ल' ध्वनि परवर्ती 'क' के कारण 'क' हो गयी है)
वच्चइ < व्रजति
वच्चिहिसि < व्रजिष्यसि
वजिरं < वज्रं = हीरा
वज्ज < वाद्यानि (बाजा)
वज्जपडहो < वध्यपटहः
वज्जरिउ < *वद्य + त (>ड>र) + क (बोल उठी)
वट्टउँ (< वर्ते) √वट्ट + उँ (अउँ)
वडन्ता < पतन्तः
वणआपरा < विनयपरा
वण-लयाणं < वनलतानाम्
वतिं < वृतिं = घेरा
वत्तकल्लाणो < वृत्तकल्याणः = मङ्गलकार्य सम्पन्न करनेवाला
वधमानस < वर्धमानस्य
वधमानसेसयो < वर्धमानशैशवः
घपयन्ति < व्यपयन्ति
वम्म < ब्रह्म
वम्महु < मन्मथः
वरिसासमआ < वर्षासमयः
वलाअपन्ति < वलाकापंक्तिम्
ववसायसायरे < व्यवसाय + सागरे
वसा < वशा
वसीअदि < √ वस (भाववाच्य) + ईय + ति (दि) = रह जाता है
ास्सति < वास्यति
वपाओ < वघात्
वड्डत्तणउं < *महत्त्वं (बड़प्पन)
वाआइ < वाचा (वाच् + तृतीया एकवचन)
वाएं < वातेन (वात + तृतीया एकवचन)
वयानो < व्यायामः = प्रयत्न
वावरइ < व्यापारयति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाहहि < वाहसि
विइक्कंतेहिं < व्यतिक्रान्तैः
विइगिच्छा < विचिकित्सा
विओइअं < वियोजितम्
विक्कमणिहसं < विक्रम + निकषम्
विज़जिदवो < विसर्जितव्यः
विज्जरे < *विद्यरे=हैं (विद्यन्ते)
विज्जावइभासा < विद्यापतिभाषा
विज्झित्वा < √विध् + क्त्वा=बींधकर
विञ्ञुतं < विज्ञताम्
विणडेइ < विनटयति = विडम्बयति
विनयसमुक्से < विनयसमुत्कर्षः
विप्पटिसारिनो < वि + प्रति + सारिणः=प्रतिकूल
विम्हयमुवेन्ति < विस्मय + उप + √या + न्ति (लट्, बहुवचन)
वियपउत्ता < विजयप्रवृत्ताः
विरह उल्हावयरु < विरह + उल्लासकरः=विरह शान्त करनेवाला
विरुज्झउ < विरुद्धः (√बिरुज्झ + उ (कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त रूप)
विवज्जणीअए < विवर्जनीयकः
विवटा < विवृता=खुली
विशुमलिदे < विस्मृतः
विश्पशम् < विश्वासम्
विस्सं < वेश्यं
विहथिदि < विहर्षति (विहरिष्यति)
वीमंसति < √मान + स=मान + मान + स + ति (लट्) > वी + मं + स + ति > वीमंसति (मान धातु जब द्वित्व होता है तो प्रथम अंश को 'वी' तथा द्वितीय अंश को 'मं' आदेश होता है
वीस < विषं (छन्दोनिर्वाहार्थ 'इ' का दीर्घीकरण)
व्योषिसि < वि + अव + √सृज् + (लृट्) (तुम सौंपोगे)
व्रम्म-यियव < ब्रह्मचर्यवान्

(स)

सअडिआए < शकटिकया
सअलमहिवेढविअडो < सकलमहीवेष्टविकटः
सइअन्तरद्धा < स्मृति + अन्तर्धानम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सइरं<स्वैरं=अपने आप

सएसु<स्वकेषु

सकसरीरं<स्वकशरीरं

सक्खरकठलवालिका<शर्कर + कठलबालुका=खरी और रवादार बालू

सक्खा<शक्या

सक्तना<सक्तुना

सच्चवज्जेन<सत्यवद्येन=सच बोलने में

सच्चकिरियं<सत्यक्रियाम्

सचाहं<स + चेत् + अहं=यदि मैं

सज्जु<सद्यः

सण्णिओ<शज्ञितः=इशारा किया गया

सतसहस्सग्घनकं<शतसहस्र + अर्घनकं=शतसहस्रमूल्यवाले

सत्तामच्चसतानुगो<सप्त + अमात्य + शत + अनुगः

सत्थओ<सार्थकः

सदामन्तभेए<स्वदारमन्त्रभेदः

सन्तस्स<श्रान्तस्य

सन्नेहडउ<सन्देशटकम्

समयम्वि<*समाजस्मिन् (समाजे)

समिञ्जन्ति<सम् + ऋजन्ति

समीरति<समीर्यते

सम्भरिअम्<सम्भृतम्

सम्मासति<सम्यक् स्मृतिः

सम्मुतीति<संवृतः इति

सराविं<शरावे

संवणपहणिविट्ठा<स्वप्नपथनिविष्टा

सव-विजावदातेन<सर्वविद्यावदातेन

सवूयानप (टि)- संथयनं<सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापनम्

ससुमते<साधुमतः

सहसाभक्खाण<सहसा + अभ्याख्यान

साअदं<स्वागतम्

साणचिक्खिल्लं,<श्यानपङ्कम् ('चिक्खिल्लं' अव्युत्पन्न)

साद्यं<सद्यः + (तद्धित)=तुरन्त का बना हुआ

सायरु<सागरः

साराणीयं<√सारि + अनीयर=रसास्वादक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सावय > शावक

सिअब्भाइम् > सिताभ्राणि

सिविणन्तरि > स्वप्नान्तरे

सिस्सिणीपरिवारा > *शिष्यिणी + परिवारा

सुओ > सुतः

सुज़ामहिदजगप > सुसमाद्रितसंकला

सुप्रवेदिदि > सुप्रवेदिते

सुमणोवण्णअं > सुमनोवर्णकम् = पुष्प और आलेपन

सुयतमानुसो > श्रूयते अमानुषः

सुरिउ > सूर्य

सुरुङ्गायम् > सुरङ्गायाम्

सुवण्णरजतपातीहि > सुवर्णरजतपात्रीभिः

सुसंखना > सुसंस्कृता

सुहच्छीतिलवणि > सुखासिकातिलवने

सूलाए > शूलायाम्

सोणिरूपेन > शुनीरूपेण

सोतापन्नो > स्रोतः + आपन्नः = संसार के प्रवाह में पड़ा हुआ

सोत्तुं > *स्वप्तुम्

सेम्हं > श्लेष्म

सेय्थीदं > (तत् से व्युत्पन्न त) सो > से + यथा + इदम्

सेहालिआगुम्हआणि > शेफालिकागुल्मकानि

सोयं > स्रोतः

सोयार > श्रोतारः

सोवण्णअसडिअं > सुवर्णशर्कटिकाम्

संथव > संस्तवः

संमरन्तीए > संस्मरन्त्याः

संसन्देत्वा > सं + √सन्द् + क्त्वा = थाह लेना

स्त्रोर = एक विशेष प्रकार का द्रव्य

स्पस > स्पर्श = पहरा

स्पोरं > स्फुरम्

स्रेव > सर्वः

स्वदिमद > स्मृतिमन्त्र

स्विहओ > स्पृहयन्

(ष)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

षिय > स्यात्

(श)

शनुलाणं < श्वकुलानाम् = कुत्तों का

शक्खिके < साक्षिकः

शक्त < *युक्तः (= शुष्क) = सूखा मसाला

शछ्यामि < शक्ष्यामि

शमाशादिरे < समासादितः

शहिअं < सभिकम् = जुआ खेलानेवाले

शोत्तिए < श्रोत्रियम्

(ह)

हकं < अहकं

हग्गे < अहकः (वहं)

हमष्मि < अहम् + अस्मि

हमा < मम (अस्मद् = षष्ठी एकवचन)

हमियाये < मया

हम > मम

हरित कलापक = उड़द या मूंग

हलिद्दीए < हरिद्रया

हसंतनु < हसन् 'वर्तमानकालिक कृदन्त रूप'

हिद < दूध (इह)

हु < खलु

हुन्तनु < भवन्त + कः (परसर्ग पंचमी के अर्थ में)

हुराहुरं < हुरात् + हुरं (< असोः + असुं) = एक जन्म से दूसरे जन्म का

हेट्ठा < घेस्तात् < अधस्तात् = नीचे

होसतीति < भविष्यति + इति

हंअन्ति < हन्यते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत भाषा, व्याकरण तथा साहित्य : प्रमुख ग्रन्थ

रचनानुवाद कौमदी	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
प्रौढ-रचनानुवाद कौमदी	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
संस्कृत-व्याकरण एवं लघुसिद्धान्त कौमुदी (सम्पूर्ण)	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
संस्कृत-निबन्ध-शतकम्	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
पिंगल कृत छन्दः सूत्रम् (हिन्दी व अंग्रेजी अनुवाद सहित)	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
(वैदिक व गणितीय अनुप्रयोगों सहित)	डॉ० श्यामलाल सिंह
वैदिक साहित्य एवं संस्कृति	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
अभिनव रस सिद्धान्त / रसाभिव्यक्ति	डॉ० दशरथ द्विवेदी
वक्रोक्तिजीवितम्	डॉ० दशरथ द्विवेदी
ध्वन्यालोकः (दीपशिखा टीका सहित)	आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
संस्कृत के प्रतीकात्मक नाटक	डॉ० आशारानी त्रिपाठी
संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र	प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र
संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास	डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी
संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	डॉ० भोलाशंकर व्यास
कादम्बरी : कथामुखम् (बाणभट्ट विरचितम्)	डॉ० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
कादम्बरी : महाश्वेतावृत्तान्त	डॉ० देवर्षि सनाढ्य व डॉ० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
कादम्बरी : शुकनासोपदेशः (बाणभट्ट विरचितम्)	डॉ० महेश कुमार श्रीवास्तव
ईशावास्योपषिद् (भूमिका, मूलमन्त्र, अन्वय, व्याख्या आदि)	डॉ० महेश कुमार श्रीवास्तव
उत्तररामचरितम् (श्री भवभूति प्रणीतम्)	डॉ० रामअवध पाण्डेय
'प्रभावती' हिन्दी व्याख्यासंवलिता	डॉ० रविनाथ मिश्र
मुद्राराक्षसम् / दशरूपकम्	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी
मेघदूतम् (कालिदास)	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	सम्पादक : डॉ० शिवशंकर गुप्त

₹ 175.00

ISBN:978-81-7124-699-1

9 788171 246991

विश्वविद्यालय प्रकाशन

पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001

Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082

e-mail : sales@vvpbooks.com

www.vvpbooks.com

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection